It is certified -

1) That the thesis embodies the work of the candidate herself

2) That the candidate worked under me for the period required under ordinance 7 and

3) That she has put in the required attendance in my department during that period.

(Dwarka Prasad Mittal) 27/12/82

M.A., Ph.D., D.Litt.,

Supervisor,

Reader & Head Hindi Department,

Bundelkhand College, Jhansi.

It is certified -

1) That the thesis embodies the work of the candidate herself

2) That the candidate worked under me for the period required under ordinance 7 and

3) That she has put in the required attendance in my department during that period.

(Dwarka Prasad Mittal)
M.A., Ph.D., D.Litt.,
Supervisor,
Reader & Head Hindi Department,
Bundelkhand College, Jhansi.

हिन्दी और पंजाबी का संत साहित्य : एक तुलनात्मक अध्ययन

सन् १९८२

निर्देशक—
डा० द्वारकाप्रसाद मीतल
एम. ए., पी–एच. डी., डी. लिट्.
अध्यक्ष हिन्दी–विभाग
बुन्देलखण्ड कालिज, झाँसी

श्रीमती यशवन्त कौर
एम. ए.
प्राध्यापिका हिन्दी–विभाग
बुन्देलखण्ड कालिज. झाँसी।

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की पी-एच. डी.
की
उपाधि के लिये प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

सन् १९८२

निर्देशक—

डा० द्वारकाप्रसाद मीतल
एम. ए., पी–एच. डी., डी. लिट्.
अध्यक्ष हिन्दी–विभाग
बुन्देलखण्ड कालिज, झाँसी।

श्रीमती यशवन्त कौर
एम. ए.
प्राध्यापिका हिन्दी–विभाग
बुन्देलखण्ड कालिज, झाँसी।

-: आभार :-

प्रस्तुत ` शोध - प्रबंध ` बुन्देलखण्ड कालिज के हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० द्वारका प्रसाद मीतल के निर्देशन में लिखा गया। उनके प्रति आभार प्रकट करना धृष्टता और औपचारिकता मात्र है। उनके लिए अपनी श्रद्धा एवं विनय हेतु मेरे पास शब्द हो ही क्या सकते हैं ? यह सब उन्हीं की कृपा का परिणाम है । इस ` शोध - प्रबंध ` को परिणति तक ले जाने में श्रद्धेय डा० मीतल ने मेरे मंद पड़ रहे उत्साह को जागृत एवं कार्यरत रखा है । इन्हीं की प्रेरणा और आशीर्वाद से ` शोध-प्रबंध ` अपना अंतिम आकार पा सका है । मैं श्रद्धेय डा० दिनेश्वर प्रसादजी , (रांची विश्वविद्यालय) जैसे लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना अपना पुनीत कर्तव्य समझती हूं , जिन्होंने इस शोध-ग्रंथ की रूपरेखा बनाने में अमूल्य सहयोग दिया । गुरु नानक लाइब्रेरी के पुस्तकालयाध्यक्ष को मैं कृतज्ञ हूं जिन्होंने अनेक हस्तलिखित ग्रंथों को मुझे सुलभ किया । साथ ही साथ मैं अमृतसर के शिरोमणि गुरुद्वारा के प्रबंधक एवं पटियाला सेन्ट्रल लाइब्रेरी की भी कृतज्ञ हूं जिससे मुझे अमूल्य सहायता प्राप्त हुई ।

------ 0 --------

:- हिंदी और पंजाबी का संत साहित्य -:

(एक तुलात्मक अध्ययन)

विषयानुक्रमणिका

:- षष्ठ अध्याय -:

257 ---- 294

क- पंजाबी संतमत द्वारा प्रभावित साहित्य(१८वीं-१९वीं सदी) 158 ----

१- शेख फरीद

क- जीवन वृत्त

ख- साहित्य

ग- विचारधारा

२- दादू-

क- जीवनवृत्त

ख- साहित्य

३- वाजिद -

क- जीवनवृत्त

ख- साहित्य

ग- विचारधारा

४- बुल्लेशाह -

क- जीवनवृत्त

ख- साहित्य

ग- विचारधारा

५- वारिसशाह-

क- जीवनवृत्त

ख- साहित्य

ग- विचारधारा

:- प्रथम अध्याय :-

संत-साहित्य में पंजाबी संतों का एक विशिष्ट स्थान है। पन्द्रहवीं सदी के अन्तिम चरण से जो काव्य की निर्मल धारा फूट निकली, उसका अनवरत प्रवाह आधुनिक युग में भी निष्प्रतिम से बह रहा है। गुरुनानक देवजी ने जिस काव्य-धारा का सूत्रपात किया, उसको प्रथम पांच गुरुओं एवं अन्तिम दो गुरुओं ने संवारकर उसे मुखरित वाणी का रूप दिया, जिसने काव्य-संसार को नवीन रूपरेखा प्रदान की। इन धर्म-प्रणेताओं के अतिरिक्त अनेक तत्कालीन हिंदी भाषी संतों ने भी पंजाबी संत साहित्य को समृद्ध एवं परिष्कृत करने में सहयोग दिया। हिन्दी संत साहित्य में व्याप्त रहस्यवादिता, सूक्ष्मवादिता एवं गूढ़ संवेदनाओं को अत्यन्त प्रांजल रूप में अनुदित किया जिससे हिंदी संत साहित्य लोकप्रिय हो गया।

युगबोध एवं कला चेतना से ओत-प्रोत यह काव्यधारा पंजाबी जनजीवन, संस्कृति एवं लोक प्रतिभा का नेतृत्व करती हुई नवीन आदर्शों एवं कलादृष्टियों के नवीन सौंदर्य मानदंडों की स्थापना करती है। यह साहित्य में कला क्षितिज का विस्तार करती हुई पंजाबी साहित्य के भाव जगत में भी नवीन संवेदनाओं की स्थापना करती है। काव्य जैसी ललित कला को समाज के नए संदर्भों में प्रयुक्त करने का गौरव इस काव्य धारा को है, जिसने लोक कल्याण के अलौकिक संदेश की मंगलमयी वाणी के द्वारा प्रचारित करने का प्रथम प्रयास किया। धर्म के विकासशील तत्वों के प्रति तार्किक दृष्टिकोण पंजाबी संत साहित्य की उल्लेखनीय उपलब्धि है।

सामाजिक विषमता, साम्प्रदायिकता, रूढ़िवादिता एवं धार्मिक विभेदों की आलोचना के तीव्र स्वर उस काव्य में गूंजते हैं, जिससे ध्वंसात्मक शक्तियां शिथिल होकर रचनात्मक शक्तियों को बल देती है। संतों की वाणी में शाश्वत सत्य एवं सौंदर्य का साक्षात्कार हुआ है, जिससे सम्पूर्ण पंजाबी साहित्य आलोकित हो उठा है।

इस विषय से संबंधित पंजाबी हिंदी और अंग्रेजी में कुछ प्रयास हुए हैं । डा० जयराम मिश्र का ' श्री गुरु ग्रंथ दर्शन ' का प्रकाशन १९६० ई० में हुआ । उसमें श्री मिश्रजी ने बड़ी विद्वता से श्री गुरु ग्रंथ साहब की दार्शनिकता, आध्यात्मिकता एवं साधनाओं का अध्ययन प्रस्तुत किया, किंतु अभी भी संतों की वाणी एवं साधना शोध का विषय बनी हुई है । इसी क्रम में एक और ग्रंथ - ' नानक वाणी ' भी प्रकाश में आया है, जो गुरुनानक देवजी की वाणियों का संग्रह है ।

डा० मनमोहन सहगल का महत्वपूर्ण ग्रंथ ' संत - काव्य का दार्शनिक विश्लेषण ' मुख्यत: हिन्दी काव्य के संदर्भ में है । इसका प्रकाशन १९६५ ई० में हुआ । इनका एक और ग्रंथ ' गुरु ग्रंथ साहब एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण ' के नाम से प्रकाशित हुआ है। इस ग्रंथ की शोध सीमा भले ही गुरु ग्रंथ साहब का सांस्कृतिक अध्ययन है किंतु लेखक ने बड़े विश्लेषणात्मक ढंग से गुरु ग्रंथ साहब के सभी मुख्य पक्षों पर विचार किया है । इसमें संस्कृति के मूल्यों एवं साहित्यक पक्षों की ऐतिहासिक और पौराणिक विवेचना की है । यह पुस्तक राष्ट्रीय भावात्मक एकता की ओर महत्वपूर्ण चरण है किंतु उसका मुख्य उद्देश्य गुरु ग्रंथ साहब के सांस्कृतिक पक्षों का विवेचन है ।

डा० सीताराम बाहरी ने अपने शोध प्रबंध - ' गुरु नानक का हिंदी काव्य में ' गुरु नानक वाणी का भाषा के आधार पर पंजाबी और हिंदी में विभक्त कर विवेचन किया है । यह प्रयत्न सार्थक एवं महत्वपूर्ण है ।

डा० हरवंशलाल शर्मा ने ' कबीर और गुरुनानक के विशेष संदर्भ में हिंदी निर्गुण साहित्य के प्रेरणा स्त्रोत ' शोध-प्रबंध लिखा जो १९६२ ई० में प्रकाशित हुआ । इसमें कबीर और गुरुनानक की वाणियों, साधना पद्धतियों का महत्वपूर्ण विवेचन है

डा० भाई जोधसिंह के ग्रंथ -' गुरमति निर्णय ' में गुरुवाणी के परिप्रेक्ष्य में दार्शनिक तत्वों का विश्लेषण किया गया है। इस शोध का उद्देश्य गुरुओं की काव्य-प्रतिभा का वर्णन करना है ।

डा० शेरसिंह के ' शोध-प्रबंध ' फिलासफी एण्ड सिक्खिज्म ' का मुख्य आधार गुरुवाणी है। लेखक ने सिख धर्म एवं सिख दर्शन की रूपरेखा पाश्चात्य दर्शन एवं इस्लाम दर्शन के संदर्भ में प्रस्तुत की है ।

पंजाबी में ही डा० तारनसिंह का ग्रंथ ' गुरुनानक चिंतन ते काव्य-कला ' में गुरुनानकजी की वाणी का दार्शनिक एवं साहित्यिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । इनका एक अन्य ग्रंथ ' गुरुनानक वाणी प्रकाश ' भी है ।

डा० दिलीपसिंह का ग्रंथ ' जपुजी एक तुलनात्मक अध्ययन ' में जपुजी एवं श्रीमद्भगवद्गीता का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया और सिख दर्शन को हिन्दू दर्शन के समकक्ष रखकर स्वतंत्र रूप से विवेचन किया है ।

मेकालिफ ने सिख रिलीजन इट्स गुरुज सेक्रेट राइटिंग्स एण्ड आथर्स ग्रंथ की रचना की जो छः संस्करणों में प्रकाशित हुआ । इसमें दस गुरुओं के जीवन चरित्र, धार्मिक मान्यताओं एवं काव्य प्रतिभाओं का वर्णन है । इसके छठे संस्करण में अन्य संत नामदेव आचार्य रामानुज एवं रामानंदजी के सम्प्रदायों का विवेचन है ।

डा० सुरिन्दर सिंह कोहली के ग्रंथ ' ए क्रिटिकल - स्टडी आफ आदि ग्रंथ -१९६१ में प्रकाशित हुआ । इसमें चिंतन प्रधान नवीन विचार दिखाई पड़ता है। तीन अध्यायों में क्रमशः साहित्यिक मूल्यांकन, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियां एवं दर्शन तथा साधना विवेचित हैं ।

डा० कोहलीजी का एक अन्यग्रंथ -' आउटलाइन आफ सिक्ख थौटेस १६६६ में मुद्रित हुआ । इसमें सरल शैली के द्वारा दर्शन एवं सिख धर्म संबंधी विभिन्न सिद्धांतों पर प्रामाणिक प्रकाश डाला गया है । इन्हीं का एक और शोध-ग्रंथ ' फिलासफी आफ गुरुनानक - १६६६ में प्रकाशित हुआ । इसमें इन्होंने गुरुनानक देवजी के दार्शनिक पक्षों का उनकी काव्य वाणी के आधार पर अनुशीलन किया है तथा भारतीय परम्परा के साथ भी तुलनात्मक दृष्टि रखी है, जिससे गुरु दर्शन के अनेक पक्ष प्रकाशित हुए हैं । परन्तु डा० कोहली ने उपर्युक्त सभी ग्रंथों में गुरु ग्रंथ साहब विशेषतः गुरुनानक वाणी पर ही विशेष बल दिया है । पंजाबी संत साहित्य का सम्पूर्ण क्षेत्र अभी अछूता है ।

अभी तक पंजाबी संत साहित्य के क्रमबद्ध आलोचनात्मक अध्ययन एवं हिंदी संत साहित्य से तुलनात्मक अध्ययन की अत्यन्त आवश्यकता थी । इस आवश्यकता की पादपूर्ति हेतु एवं आदि ग्रंथ के गुरुओं तथा हिंदी भक्तों से इतर गुरु ग्रंथ साहब तथा गुरुओं से किसी न किसी रूप में प्रभावित संतों की काव्य वाणी पर शोध कार्य होना नितांत आवश्यक था । इसके अतिरिक्त जो सम्बन्ध इन दोनों साहित्यों के मध्य परोक्ष रूप से विद्यमान हैं उन्हें एकत्र कर तथ्यात्मक अभिव्यक्ति देना भी, इस शोध प्रबंध का उद्देश्य है ।

प्रथम अध्याय में पंजाबी संत साहित्य के संबंध में हुए पंजाबी, हिंदी एवं अंग्रेजी के कार्यों का सर्वेक्षण है । इसके साथ ही शोध का विषय निरूपण एवं रूपरेखा प्रस्तुत की है ।

दूसरे अध्याय में संतसाहित्य की उद्भवकालीन परिस्थितियों का राजनीतिक सामाजिक आर्थिक धार्मिक तथा सांस्कृतिक विवेचन है ।

इसकी दार्शनिक पीठिका में संत साहित्य के पूर्ववर्ती धार्मिक सम्प्रदायों - सिद्ध, नाथ वैष्णव, वेदांत इस्लाम, सूफी सम्प्रदाय आदि के साथ सामञ्जस्य एवं वैभिन्य स्थापित किया गया है । ऐतिहासिक पृष्ठभूमि ने इस युग के विघटन और निराशा दी तथा व्यक्ति को परमात्मा की ओर उन्मुख किया । दक्षिण में रामानुज एवं उत्तर भारत में कबीर नानक आदि का प्रादुर्भाव हुआ ।

तीसरे अध्याय में पंजाबी संत साहित्य के उद्भव के पूर्वकाल की पंजाबी भाषा एवं उसके साहित्य की प्रवृत्तियों पर भाषा विज्ञान की दृष्टि से विवेचन है । इस अध्याय से साहित्यक पंजाबी भाषा को समझना सुलभ होगा । इसी अध्याय में पंजाबी संतों के समकालीन संत - जयदेव, रैदास, त्रिलोचन, धन्ना सेन, पीपा नामदेव प्रभृति संतों का विवेचन है ।

चतुर्थ अध्याय में आदि ग्रंथ के प्रथम पांच गुरुओं - गुरु नानक देव, गुरु अंगद देव, गुरु अमरदास, गुरु रामदास एवं गुरु अर्जुनदेव के जीवन चरित्र साहित्य तथा विचारधारा का सम्यक विश्लेषण है।

पंचम अध्याय में नवम गुरु तेगबहादुर तथा दशम गुरु गोविंदसिंहजी के जीवनवृत्त, उनकी साहित्य सेवाओं एवं विचार दर्शन का वर्णन है ।

षष्ठ अध्यायमें आदि ग्रंथ एवं पंजाबी संतों द्वारा प्रभावित उन प्रमुख संत कवियों का वर्णन है , जिन पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से गुरुओं का प्रभाव पड़ा , किंतु उनकी वाणी गुरु ग्रंथ साहब में संकलित नहीं है । इनमें केवल फरीदजी की वाणी को ही आदि ग्रंथ में संकलित किया गया है ।

सप्तम अध्याय में पंजाबी संत साहित्य की हिंदी संत साहित्य में तुलना - दर्शन, साधना, सिद्धांत एवं उपदेश के आधार

पर की है। इस अध्याय में विशद रूप से एक साथ तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है । संतों की वाणियों के आधार पर यह दिखाने की चेष्टा की है कि पंजाबी एवं हिंदी में भावनागत ऐक्य है । उनके उपदेशों से मानव कल्याण हुआ और संत साहित्य आज के विशृंखल संदेह संकुल जगत् के लिए प्रेरणादायक है । ये उपदेश भावनात्मक ऐक्य स्थापित करने में अपना विलक्षण महत्व रखते हैं । आधुनिक युग में जहाँ विभिन्न मतावलम्बियों के मध्य वैमनस्य बढ़ रहा है एवं तथा - कथित सैद्धांतिक टकराव बना हुआ है, इससे उत्पन्न भावनात्मक विशृंखलता को समाप्त करने के दुष्कर कार्य को पंजाबी संतों की वाणी सफलता पूर्वक रूपायित कर सकती है ।

अष्टम अध्याय में पंजाबी संतों के काव्य का शास्त्रीय मूल्यांकन रस, अलंकार बिम्ब योजना, प्रतीक योजना छंद विन्यास एवं संगीत के आधार पर किया गया है ।

नवम् अध्याय में पंजाबी संतों का साहित्य एवं समाज के प्रति योगदान का विस्तृत विवेचन है ।)

:- द्वितीय अध्याय :-

पंजाबी संत साहित्य की परिस्थिति और वैचारिक पीठिका -

क- पंजाबी संत साहित्य की उद्भवकालीन परिस्थितियां -

राजनीतिक परिस्थितियां-

मध्ययुग की राजनीतिक परिस्थितियां बहुत विषम एवं विशृंखल थीं। यवनों के आक्रमण भारतीय जनता को अपनी धर्मान्धता एवं नृशंसता से झकझोर रहे थे। भारत पर अरबों के आक्रमण ७वीं शताब्दी से प्रारम्भ हो गये थे।[१] किंतु इन आक्रमणों से भारतीय जनता और भारतीय जनता और भारतीय राजनीतिक वातावरण अछूता रहा। भारतीय वातावरण सर्वप्रथम महमूद गजनवी के आक्रमण से प्रभावित हुआ।[२] विसेंट स्मिथ ने महमूद गजनवी के आक्रमणों की संख्या सत्रह बतायी है।[३] उसके मतानुसार सोमनाथ का आक्रमण सबसे भयानक था। इस आक्रमण का इतिहास हिन्दू जाति के आंसुओं से लिखा हुआ है। भारतीय इतिहास का यह प्रथम अवसर था, जब भारतीय अहं विदेशियों के द्वारा बुरी तरह पददलित किया गया था। मुहम्मद बिन कासिम का आक्रमण केवल सिंध पर ही हुआ था। सबसे क्रूर विदेशी आक्रमण गजनवी और गौरी के थे। इन आक्रमणों ने भारत की सभ्यता और कला को विध्वंस करना प्रारम्भ कर दिया था। गजनवी के साथ प्रसिद्ध इतिहासकार अलबरूनी भी था। उसने अपने समय के भारत का विस्तृत वर्णन किया है। उसके अनुसार - महमूद गजनवी ने भारत के वैभव को सम्पूर्ण रूप से मिटासा दिया। साथ ही उसने आश्चर्य के वे कारनामे किए कि हिन्दू धूल के कण मात्र रह गए।[४]

---

१. अरब और भारत के संबंध- मूल लेखक सैयद सुलेमान नदवी-अनुवादक रामचन्द्र वर्मा (१९३०) पृ०-१२

२. एन एडवांस हिस्ट्री आफ इण्डिया-आर०सी०मजुमदार रा चौधरी (१९५०, लंदन) पृ०-२७६

३. आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया -विसेंट स्मिथ-पृ०-१९१

४. एलबरूनीज इण्डिया-एडवर्ड सचाऊ-पृ०-१९११

राजपूतों ने आक्रमणों का सामना करने की चेष्टा की थी, किंतु वे बुरी तरह पराजित हुए। महमूद गजनवी के अन्य आक्रमणों से भारतीय राजपूती नींव बुरी तरह हिल गयी।

महमूद गजनवी के पश्चात मोहम्मद गोरी ने भारत पर आक्रमण किए और लूटपाट की। वह कूटनीतिज्ञ एवं प्रपंची था। अपनी कूटनीति के बल पर दिल्ली के सम्राट पृथ्वीराज को बंदी बना लिया था।

मुसलमानी आक्रमणों की आंधी के समक्ष देश सारा झुकता गया। परन्तु हिन्दुओं ने अपनी पराजय को इतनी शीघ्रता से स्वीकार नहीं किया। उन्होंने पग-पग पर मुसलमानी आक्रमणों का विरोध किया। परन्तु आपसी फूट, शत्रु के प्रति क्षमाशीलता की भावना, और अन्य अंध विश्वासों ने मिलकर उनकी अवनति की। समय की निष्ठुरता के समक्ष उन्हें सिर झुकाना ही पड़ा।

मुसलमानी विजेता पहले केवल आक्रमणकारियों के रूप में भारत में आए। बाद में उन्होंने यहां पर बसना प्रारंभ कर दिया। बंगाल तक विजय प्राप्त करने के पश्चात गोरी ने कुतुबुद्दीन ऐबक को वायसराय के रूप में दिल्ली में नियुक्त किया। यह गुलाम वंश का पहला बादशाह था। भारत पर बर्बर लुटेरे बादशाहों के पश्चात गुलामों ने राज्य किया। कुतुबुद्दीन ऐबक बड़ा कट्टर और धर्मान्ध था। उसने हिन्दुओं के प्रति बहुत अत्याचार किए। मैकालिफ ने लिखा है कि - ऐबक ने बनारस, कोयल और कलिंजर नामक नगरों पर आक्रमण कर उनको पूरी तरह विध्वंस कर दिया था। इनके अनुसार ऐबक ने केवल बनारस में एक हजार मंदिरों को तुड़वाकर मसजिदें बनवाईं थीं।

कोयल नगर (अलीगढ़) पर आक्रमण कर वहां की जनता को इस्लाम स्वीकार करने को बाध्य किया , न करने पर क्रूरता से मार डाला। हजारों हिन्दुओं को गुलाम बनाकर ले गया ।[1]

कुतुबुद्दीन ऐबक के पश्चात अल्तमश भारत का शासक बना । वह हिन्दुओं के प्रति अपेक्षाकृत कम क्रूर था किंतु इसी समय चंगेज खां का आक्रमण हो गया ।[2] इससे भारत को बड़ी गहरी क्षति उठानी पड़ी । इसके पश्चात रजिया, बलबन ने राज्य किया। इसके पश्चात खिलजी वंश स्थापित हुआ । अलाउद्दीन इस वंश का प्रसिद्ध क्रूर बादशाह माना जाता है। उसका व्यवहार हिन्दुओं के प्रति अत्यन्त कठोर था । तुगलक वंश में मुहम्मद तुगलक प्रसिद्ध बादशाह हुआ । वह भी क्रूर और अन्यायी शासक था । संत नामदेव के साथ जो अन्याय किया उसे हिन्दू जाति कभी विस्मृत नहीं कर सकती ।[3] तैमूर ने भारत पर आक्रमण प्रारंभ कर दिए । अपने आक्रमण के कारणों के विषय में तैमूर का कहना है कि - मेरा लक्ष्य काफिरों को दण्ड देना बहुदेववाद और मूर्ति पूजा का अंत करके गाजी और मुजाहिद बनना है । उसने अपने इस लक्ष्य की पूर्ति जी खोलकर की थी ।[4]

लोदी वंश का सबसे प्रसिद्ध बादशाह सिकन्दर लोदी था । यह सुल्तान अत्यन्त अत्याचारी था । इसके संबंध में इतिहास में लिखा है कि इसने लखनऊ के बुद्धन ब्राह्मण को केवल इतना कहने पर कि उसका धर्म भी इस्लाम के सदृश सच्चा है, जीवित जलवा दिया था ।[5] संत कबीर के प्रति किए गए अत्याचारों से तो सभी परिचित हैं ।[6]

- -

१. सिख रिलीजन-मैकालिफ (भाग-१-२ भूमिका) पृ०-४२
२. सुल्तनत आफ देहली-डा०श्रीवास्तव(१९५०) पृ०-१२६
३. हिन्दी की निर्गुण काव्य धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि - गोविंद त्रिगुणायत-पृ०६०
४. एन एडवांस हिस्ट्री आफ इण्डिया(इलियट एंड डाउसन) भाग-३, पृ०-३९४
५. मुस्लिम रूल इन इंडिया-डा०ईश्वरी प्रसाद-पृ०-१६०
६. सुल्तनत आफ देहली -पृ०-४५८

इसी समय बाबर ने भारत पर आक्रमण किया। हिंदू वीरता के प्रतिनिधि राणा सांगा की पराजय हुई और स्वतंत्रता के लिये प्रयत्नशील भारत पुनः पराधीन हो गया । बाबर यों तो योग्य शासक था किंतु हिंदुओं से वह भी घृणा करता था । सैयदपुर के हिन्दुओं के प्रति किए अत्याचारों का वर्णन संत गुरुनानकजी ने आदि ग्रंथ में किया है । [१] अकबर एक उदार शासक था किंतु इसके उत्तराधिकारी जहांगीर और शाहजहां विलासी और कलाप्रिय थे किंतु जहांगीर ने भी सिखों के पांचवें गुरु अर्जुनदेवजी जीवित उबलवा दिया था । औरंगजेब सबसे कट्टर बादशाह था । उसने हिन्दू जाति और धर्म के लिए उसने अकेले ही इतने अत्याचार किए थे , जितने मुगल वंश के अन्य समस्त बादशाह मिलकर भी नहीं कर सके थे ।[२] सिखों के नवम् गुरु तेगबहादुरजी को तलवार के घाट उतारने का नृशंसतापूर्वक कार्य भी इसी दुष्ट ने किया था । गुरु गोविंदसिंह जी के चारों पुत्रों की हत्या का उत्तरदायी भी यही नराधम था। [३] कोई भी हिन्दू किसी सार्वजनिक स्थान में धार्मिक अनुष्ठान और पूजा नहीं कर सकता था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्यकाल में विदेशी शासकों के कारण भारतीय जनता त्रस्त एवं असुरक्षित रहती थी। उनकी सम्पत्ति एवं सुरक्षा का ध्यान नहीं रखा जाता थी । उनके धर्मस्थल अपवित्र किए जाते थे एवं राजनीति भेदभाव पराकाष्ठा पर पहुंच गया था । स्त्रियों की मर्यादा सुरक्षित नहीं थी । पुरुषों को गुलाम एवं स्त्रियों को बांदी बना लिया जाता था । मुसलमान बादशाह और सरदार अपनी शादियां अधिकतर उच्च कुल की हिन्दू कन्याओं से करते थे ।

- -

१. आदि ग्रंथ महला-१, पृ०
२. हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि-पृ०-६३
३. दी सिख रिलीजन भाग-१-२ पृ०-४८

जिस हिन्दू लड़की को वे सुन्दर देखते थे, उसका बलपूर्वक अपहरण कर लेते थे और उसे इस्लाम में परिवर्तित कर शादी कर लेते थे ।[१] मध्यकाल भारत प्राय: नित्य विदेशी आक्रमणों का युद्धस्थल बना रहता था । इन क्रूर शासकों का लक्ष्य हिन्दू धर्म और जाति को अपमानित कर अधिक से अधिक क्षति पहुंचाना होता था । इस प्रकार हिन्दू जाति सुख शान्ति से विहीन हो गई थी । सम्पूर्ण समाज में घोर निराशावाद की छाया फैल गई थी, जीवन दुरूह हो गया था । फलत: जनता मूक और अंतर्मुखी हो गयी थी । धर्म के स्वरूप को इस प्रकार से व्यवस्थित करने की चेष्टा की जाने लगी जिससे तत्कालीन वैराग्यपूर्ण वातावरण समाप्त हो सके । इन सभी परिस्थितियों ने ऐसे जागरूक संतों को वाणी दी जो उनके आविर्भाव में पूर्णत: सहायक हो सकी ।

यह समय हिन्दू समाज के लिये अभिशप्त युग था। अनेक शासकों ने सब प्रकार से जनता को पददलित तथा पीड़ित किया। उस समय शोषण उत्पीड़न और दमन की प्रबलता थी । विनाश का नृत्य चल रहा था । समाज आडंबर पाखंडों में लिप्त हो रहा था । साधु भी पथभ्रष्ट हो रहे थे । धर्म का रूप जटाजूट एवं तिलक ही रह गया था । पंडित जन मुक्ति पाने के लिए मिथ्या साधनों में लग गए थे । यह बाह्याचारों का युग था । समाज अंधविश्वासों का केन्द्र-स्थल बना हुआ था ।

इन सभी परिस्थितियों में देखकर संत कवि मौन न रह सके । समाज को इन सब व्याधियों से बचाने के लिए वे प्रयत्नशील हो गए । उन्होंने जनता को सन्मार्ग पर लाने के लिए उन्होंने निर्गुण ब्रह्म की उपासना का मार्ग प्रदर्शित किया और परस्पर एकता लाने का प्रयत्न किया ।[२]

- -

१. सल्तनत आफ देहली-पृ०-४८६
२. हिंदी संत साहित्य -त्रिलोकी नाथ दीक्षित-पृ०-२६

आर्थिक परिस्थितियां -

तत्कालीन राजनीतिक स्थितियों के साथ आर्थिक स्थितियों पर भी विचार करें तो देखेंगे, कि मध्यकाल का जीवन बहुत विषम था। एक और वैभव विलास की अबाध धारा तरंगित होती थी एवं दूसरी ओर दरिद्रता की आंच में तपने वाले सामान्य जन थे। एक ओर ऊंचे आवास थे, जहां प्रवेश पाने का भी अधिकार नहीं था तो दूसरी ओर जर्जर घर थे। जहां अर्थ की लिप्सा प्राप्त ऐश्वर्य का प्रदर्शन हो वहां गरीब जनता किस प्रकार संतोष से रह सकती है।

व्यवसाय की अस्थिरता और आवश्यक आय के अभाव में जीवन दुखद, विषमय और विषादपूर्ण था। अभाव के कारण निम्नस्तर के जीवन में पारिवारिक कलह की प्रचुरता थी। परिवार दरिद्रता के कारण व्याकुल रहते थे। आय बढ़ाने की सारी चेष्टाएं व्यर्थ जाती थी।[१]

घर-घर कलह और वैमनस्य का राज्य था। घरेलू झगड़ों का चित्रण संत साहित्य में मिलता है। संत तुकाराम ने अपने कटु अनुभवों का वर्णन अपने एक अभंग में किया है - संसार में पीड़ा हुई इसलिए घर छोड़ दिया, ढोरों को भगा दिया। जो कुछ धन था वह पूर्णतया नष्ट हो गया। भाग्यहीन हो जाने के कारण स्त्री-पुरुष भाई सबका रिश्ता, स्नेह छूट गया। लोगों को मुख दिखाते न बना अतएव कोनों और जंगलों में रहने लगा और इस प्रकार एकान्तवास का प्रेम बढ़ गया। पेट पूजने में बड़ी तंगी हुई।[२] कबीरजी की माता भी पुत्र कबीर के निठल्लेपन पर रोती हुई कहती हैं -

मुसि मुसि रोवै कबीर की माई। ऐ बारिक कैसे जीवहि रघुराई
तनना बुनना छड्यिों कबीर।हरि का नाम लिख लियो शरीर।।[३]

---

१. संत कबीर, राग गउड़ी, ५४ पृ०-५७
२. संत तुकाराम अभंग, पृ०-७८
३. संत कबीर गूजरी-२, पृ०-१२६

सास-बहू का झगड़ा नित्य-प्रति होता था । पिता गृह से पर्याप्त धन न आने के कारण वधुओं का निरादर होता था। धनहीन पिता कन्या के दुख से दुखी रहते थे । सहज प्रेम का स्वाभाविक स्त्रोत सूख गया था अतः स्त्रियां कर्कश और तिक्त हो गयी थीं । संतों को प्राय इसी प्रकार की स्त्रियों से पाला पड़ा था । सामान्य कुलों की स्त्रियां रनिवास में स्थान पाती थी किंतु उनका सम्मान नहीं होता था । इसका तात्पर्य यह नहीं है कि सुशील स्त्रियां बिल्कुल नहीं थी । सुशील स्त्रियां परिवार के प्रत्येक व्यक्ति से प्रेम करती, उनका यथायोग्य आदर करती और परिवार में आनंद की धारा प्रवाहित करती।

पिता-पुत्र का संबंध भी सदा आदर्श नहीं था । संस्कार और आचार के नाम व्यर्थ व्यय करना पड़ते थे । कबीर जी कहते हैं -

जीवत पित्रहि न माने कोई । मुवां सराध कराए
जीवत पित्रहि मारहि डंडा , मुऐ पित्र ले घालै गंगा।[1]

इस समय धन केवल महत्त्वपूर्ण ही नहीं था, अपितु महत्व-सम्पादन का साधन भी था । संसार की प्रतिष्ठा और महत्ता, धार्मिकता तथा विद्वत्ता के मूल में धन ही था । धन के कारण राज-सम्मान और धर्म-कर्म प्राप्त होता था । निर्धन का कहीं आदर नहीं था। धन का सर्वत्र सम्मान था । धन की महत्ता के कारण निर्धन सभी जगह तिरस्कृत होता था । और धनवान यदि निर्धन के यहां पहुंच जाए तो वह निर्धन स्वयं को धन्य मानता था । कबीरजी ने इस स्थिति का चित्रण करते हुए कहा है -

- -

१. कबीर ग्रंथावली - पृ०-२०७
२. वही मैरउ पृ०-२१३

जऊ निरधन सरधन के जाइ । आगे बैठा पीठि फिराइ।
जऊ सरधन निरधन के जाई।दीआ आदरु लिया बुलाई।[1]

धनी और प्रभावशाली शिष्यों के लिये महंतों और सम्प्रदाय के साधुओं में विरोध होता था, और पारस्परिक संघर्ष कभी-कभी बड़ा उग्र रूप धारण कर लेता था । निर्धन एवं साधारण वित्त वाले व्यक्ति के शिष्य बनाने में अनिच्छा प्रकट की जाती थी । दीक्षित होने पर अधिकाधिक भेंट चढ़ाना आवश्यक था । मंदिरों में पूजाएं स्वीकृत नहीं होती थी । दक्षिणा के लोभ से कारण ब्राह्मण कहीं भी जा सकते थे । धनोपार्जन की विद्या ही बड़ी विद्या थी । साधु भी धन-एकत्र कर राजसी जीवन व्यतीत कर रहे थे सम्मान और कुलीनता का मापदंड ऐश्वर्य ही था । ऐसे समय में जनता त्रस्त और निराश हो गयी थी । समाज के ठगों से भोली जनता को त्राण दिलाने के लिये संतों ने अपनी विरोधिता प्रदर्शित करनी प्रारंभ कर दी ।

सामाजिक परिस्थितियां -

संत साहित्य के विकास की प्रेरक शक्तियों में सामाजिक परिस्थितियां भी थीं । हिन्दुओं की राजनीतिक दशा के समान सामाजिक दशा भी शोचनीय थी। उस समय देश में दो वर्ग प्रधान थे - हिन्दू और मुसलमान । इन दोनों समाजों में अनेक कुप्रथाएं थी । हिंदु जाति और धर्म पर मुसलमान शासक प्रहार कर रहे थे साथ ही उनके अत्याचारों से हिंदू जाति अत्यंत व्यथित थी । हिंदू मुसलमानों के परस्पर भेदभाव ने हिन्दू जनता को और विरागी बना दिया । ऊंच-नीच एवं छुआछूत की भावना बलवती थी । हिंदु समाज तो ब्राह्मण और शूद्र के पारस्परिक भेद के लिए नामी था । निम्न जातियों की तो बहुत बुरी दशा थी।

---

१. कबीर ग्रंथावली मेरठ- पृ०-२१३

शूद्र और निम्न जातियों को समाज में अत्यन्त घृणित काम दिए गए थे। उनकी प्रतिष्ठा समाज में नहीं के समान थी। ऊँच वर्ग के साथ उनका कोई संबंध नहीं था। वे इनका स्पर्श करना भी निषिद्ध समझते थे। देव-दर्शन तक उनके लिए वर्जित था। ऊँच नीच के इस असमान्य व्यवहार से बहुत रूढ़िवादिता और संकीर्णता आ गई थी। अलबरूनी लिखता है - " हिन्दू समझते हैं कि उनकी जाति के समान कोई जाति ही नहीं है। उनके देश के समान कोई देश ही नहीं है और उनके राष्ट्र के समान कोई अन्य राष्ट्र ही नहीं है।[१] संन्यास भी उस समय इतना सरल हो गया था जब व्यक्ति संसार से निराश हो जाता तो वह संन्यासी हो जाता था। इन साधु और संन्यासियों में विरला ही पहुंचा हुआ साधु होता था।

समाज में दासता की प्रथा बहुत भयावह थी। मुसलमान बादशाहों के पास हजारों गुलाम हुआ करते थे। इनमें अधिकांश निरीह हिंदु हुआ करते थे।[२] दासों में स्त्रियां और बच्चे भी हुआ करते थे। यवनों की इस गुलाम बनाने की प्रथा ने हिंदु समाज में भय और निराशा की भावना भर दी थी। इनका व्यवहार गुलामों के प्रति बहुत कठोर दुखदायी था। मुसलमान शासकों का नैतिक स्तर इस प्रकार की कुप्रथाओं से बहुत निम्न हो गया था। मुसलमानों के बहुस्त्रीवाद ने भी उनके समाज में घोर व्यभिचार फैला दिया था। एक-एक बादशाह के हरम में भिन्न-भिन्न देशों और जातियों की हजारों स्त्रियां होती थी। वे साधारणतः दो तीन हजार स्त्रियां रख सकते थे। इससे वेश्यावृत्ति को बल मिला। यवनों के राज्यकाल में शराब, जुआ, जालसाजी की आदि कुप्रथाओं को बल मिला। इस प्रकार यवन समाज नैतिक दृष्टि से पतन के गर्त में गिर गया था।

- -

१. हिन्दी में निर्गुण सम्प्रदाय (पीताम्बर दत्त) परशुराम द्वारा सम्पादित-पृ०-२

२. एन एडवांस हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ०-३६६

नैतिक दृष्टि से हिंदू समाज का स्तर उतना ही ऊँचा था । इस नैतिकता का कारण उनकी संस्कृति थी । किंतु इस युग में विधा और पांडित्य की कमी हो गयी थी । अधिकांश शासक अशिक्षित और बर्बर होते । ये न तो विद्वानों और पंडितों का राजाश्रय देते और न उनके प्रति सम्मान का भाव ही रखते थे। मुसलमान बादशाहों में एक अकबर ही ऐसा बादशाह था, जो विद्वानों का उचित सम्मान करता था । विधा और विद्वता की प्रतिष्ठा कम हो जाने के कारण सामान्य जनता की अभिरुचि उनकी ओर से हट गई थी, फलतः समाज में गहरा अंधविश्वास उत्पन्न हो गया था । हिंदू मुसलमानों की संकीर्णता और अंधविश्वास ने उन्हें एक नहीं होने दिया । उनकी इसी असहयोग भावना को विदेशी शासकों ने और चौड़ा किया।

संतों की सुधारवादी आत्मा उपर्युक्त सामाजिक दुर्बलताओं और विकारों को न सह सकी और उनके प्रतिरोध में प्रवृत्त हो गई । इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्यकालीन परिस्थितियों और प्रवृत्तियों ने संत विचार-धारा के उदय और विकास में प्रतिक्रियात्मक प्रेरणा दी ।

धार्मिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियां -

उपर्युक्त राजनीतिक आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों के साथ ही संत काव्य के आविर्भाव के लिए धार्मिक परिस्थितियां भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं । तत्कालीन परिस्थिति में धार्मिक रूढ़िवादिता और कर्मकांड के विरुद्ध अनेक साधना पंथ पल्लवित हो रहे थे , साथ ही भक्ति सुधार जन आन्दोलन भी उठ गए हुए थे जो धार्मिक चेतना को सबसे अधिक प्रभावित कर सके थे ।

इस्लाम धर्म शासित वर्ग के द्वारा फैल रहा था फलतः धार्मिक परिस्थिति की विकास धारायें स्वतंत्र न होकर मिश्रित रूप में पल्लवित हुई । इस्लाम के अंतर्गत सूफियों की धार्मिक भावना और व्यापक मातृत्व भावना और रहस्यात्मकता भी आ गई थी, जिसके फलस्वरूप धार्मिक सहिष्णुता का आविर्भाव हुआ ।[१] सभी सूफी फकीरों ने धार्मिक सहिष्णुता का पोषण किया हो, ऐसी बात नहीं थी, फिर भी जिस सामाजिक और राजनीतिक आक्रोश की भावना भारतीय समाज में बद्धमूल हो रही थी , उसे शिथिल करने में यह नवीन धर्म पर्याप्त सक्रिय रहा ।

हिंदू धर्म में विविध आचारों एवं तत्वों के आ-जाने से विकृतियाँ आनी प्रारम्भ हो गयी थी । मध्यकालीन हिंदू धर्म क्षेत्र में घोर अनाचार फैल गया था । अनेक विकृतियों में बहुदेववाद, मूर्ति पूजा, पुरोहितवाद, वर्णाश्रम धर्म , धार्मिक अंधविश्वास, जातावार, विकृत पूजा विधियाँ और कट्टर पौराणिकता था । धर्म के क्षेत्र में इतने विरोध और कुरीतियों को देखकर संतों की आत्मा अवश्य व्यथित हुई होगी और वे सद्धर्म की प्रतिष्ठा में कटिबद्ध हुए होंगे ।

बौद्ध और जैन चिंतन के व्यावहारिक सुधार आन्दोलन जब स्वयं ही लोक विरोधी हो गये तब स्वाभाविक मांग के फलस्वरूप स्वामी शंकराचार्य तथा अन्य आचार्यों के क्रान्तिकारी परिवर्तन दृष्टिगत हुए ।[२] दर्शन के क्षेत्र में जिस बौद्ध शून्य-वाद के नैरात्म्य ने सम्पूर्ण भारतीय जाति को निष्क्रिय और पराङ्मुख बना दिया था , स्वामी शंकराचार्य ने उसी शून्यवाद में आत्मभाव का आरोपकर लोगों के मन पर से बौद्ध धर्म के दार्शनिक युक्तिजाल की आस्था को मिटा दिया ।[३]

---

१. काव्य कला तथा अन्य निबंध-जयशंकर प्रसाद,पृ०-३१
२. वही अध्याय-२
३. हिन्दी साहित्य की भूमिका-डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी-पृ०-५

स्वामी शंकराचार्य की प्रसिद्ध दिग्विजय से नास्तिक एवं वेद विरोधी मतों का उन्मूलन हो गया और वैदिक धर्म का पुनरुत्थान हुआ। शंकराचार्य का अद्वैत वेदान्त मुख्त: तर्क प्रधान है। यह सामान्य जनों का धर्म न बना सका। साधारण जन-मानस धर्म और दर्शन को तर्क की अपेक्षा भक्ति के माध्यम से समझने के लिए व्याकुल हो उठा। विभिन्न वैष्णव आन्दोलन का आधार स्वामी शंकराचार्य के मत का परिष्कार था और अपने मतों का संगठन था। वैष्णव आचार्यों के मतों के साथ ही जिस आडम्बर भक्ति का स्त्रोत्र दक्षिण से उठकर सम्पूर्ण देश में व्याप्त हो गया था, निर्गुण संत-काव्य के आविर्भाव की परिस्थितियों में उसका महत्वपूर्ण स्थान है। दक्षिण में जिस समय आडम्बर भक्ति अपनी चरम सीमा पर थी, उत्तर में योगमार्गी तान्त्रिक साधना प्रबल हो रही थी। मध्ययुगी धर्म-साधना की चर्चा करते हुए डॉ०हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि - भक्ति साहित्य के पढ़ने वाले पाठक को जो बात सबसे पहले आकृष्ट करती है, विशेषकर निर्गुण भक्ति के अध्येता को, वह यह कि उन दिनों भारत के हठयोगियों और दक्षिण के भक्तों में मौलिक अंतर था। एक को अपने ज्ञान का गर्व था, दूसरे को अपने अज्ञान का भरोसा, एक के लिए पिंड ही ब्रह्मांड था, दूसरे के लिये ब्रह्मांड ही पिंड, एक का भरोसा अपने पर था, दूसरे का राम पर। एक प्रेम को दुर्बल समझता था, दूसरा ज्ञान को कठोर। एक योगी था, दूसरा भक्त इन दो धाराओं का अद्भुत मिलन ही निर्गुण धारा का वह साहित्य है जिसमें एक तरफ न झुकने वाला अक्खड़पन है और दूसरी तरफ घर फूंक मस्ती वाला अक्खड़पन।[१]

वास्तव में जिस समय संत काव्य का आविर्भाव हुआ उस समय धार्मिक व्यवस्था की प्रधानता थी और समाज के किसी भी अंग का पुनर्निर्माण अथवा उसकी कार्य पद्धति का समुचित निर्देश

- -

१. मध्ययुगीन धर्म साधना- पृ०-६४

केवल धार्मिक विधान एवं धार्मिक शब्दावली के ही सहारे संभव समझा जाता था ।[१] जिस धार्मिक कट्टरता, कर्मकांड, बाह्याडम्बर तथा आध्यात्मिकता के नाम पर विभिन्न मतवाद लोकचिंता को प्रभावित करने में लगे हुए थे, उस समय धार्मिक क्षेत्र में भी मुसलमानों की आक्रमण प्रवृत्ति के विरुद्ध आत्म रक्षा के प्रयत्न हुए, किंतु ठीक इसी समय उत्तर भारत के हिन्दुओं को मुस्लिम विजय के कारण समस्त विरक्तिमय धर्मों के उस मूल सिद्धांत का अपने ही जीवन में अनुभव हो रहा था। जिसके अनुसार संसार केवल दुख का आगार है ।[२] भगवान की शरण के अतिरिक्त इस दुखमय संसार से छुटकारा संभव नहीं था । उत्तर भारत में स्वामी राघवानंद, रामानंद तथा बल्लभाचार्य आदि के प्रयत्न से १५वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ही वैष्णव भक्ति सर्वप्रिय हो उठी थी । हिंदी का भक्ति साहित्य उसी से संबद्ध एक जन-आन्दोलन ही कहा जा सकता है । यह आन्दोलन प्राचीन धर्म का आश्रय लेकर ही चला था, परन्तु शास्त्रगत सूक्ष्म विचारों और पांडित्यपूर्ण चिंताओं का प्रभाव उस पर बहुत कम था ।[३] हिंदू धर्म में इस्लाम धर्म के प्रभाव के फलस्वरूप अनेक प्रतिक्रियाएं हुईं । डा० रामकुमार वर्मा का कथन है कि हिंदुओं को शान्त करने के लिए मुसलमानों ने उन्हें अपनी संस्कृति से दीक्षित करने का भी प्रयत्न किया, क्योंकि अब मुसलमान भी अपने को इस देश का निवासी मानने लगे थे । शासकों की नीति रीति शासितों को प्रभावित अवश्य करती है, इसी सिद्धांत के अनुसार इस्लाम धर्म भी हिन्दुओं के धार्मिक विचारों में अज्ञात रूप से परिवर्तन लाने में व्यस्त था । हिन्दू धर्म पर आघात होते ही यद्यपि जनता विचलित हो उठी तथापि आत्म रक्षा के विचार से किसी अंश तक हिंदुओं ने भी इस्लाम धर्म को समझने की चेष्टा की ।

---

१. कबीर साहित्य की परख-परशुराम चतुर्वेदी, पृ०-२
२. हिंदी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय-डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल-पृ०-१३
३. हिन्दी साहित्य की भूमिका-डा०हजारी प्रसाद द्विवेदी-पृ०-५७

फलत: धार्मिक विचारों में परिवर्तन होने का सूत्रपात एक ऐसे रूप में प्रारम्भ हुआ जिसने हमारे साहित्य में एक नवीन धारा की ही सृष्टि कर दी ।[1] साम्य के आधार पर एक व्यापाक लोकधर्म की पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी, किंतु यह तथ्य सत्य है कि धार्मिक परिस्थितियों में एक विशेष प्रकार की उत्तेजना थी और धर्म के कर्मकांडी रूप में एक परिवर्तन आ गया था । दूसरी ओर उन्मुक्त आत्मभाव ने उसके क्षेत्र का असंकुचित और सहिष्णु बनाया । हिंदू-मुस्लिम धार्मिक कट्टरता से ऊबकर उस युग के कुछ स्वतंत्र विचारकों ने आध्यात्म के माध्यम से जगत के संबंधों को समझने के लिए लोक परम्परा से प्राप्त सिद्धों, नाथ योगियों के मार्ग को अपनाया जिनमें धार्मिक कट्टरता अन्य सामाजिकों से कुछ कम थी ।[2] ऐसे व्यक्ति वैष्णव धर्म के लोकव्यापी प्रभाव को सर्वत्र स्वीकार करते हुए दिखाई दिए । सगुण और निर्गुण रूप में भगवान की भक्ति के सूत्र अधिक विस्तार पा सके । हिंदी साहित्य पर उसका विशेष प्रभाव हुआ और लोक जीवन में ईश्वर के निर्गुण रूप की चर्चा संतों की वाणियों का मुख्य विषय बनी। उस युग की धार्मिक प्रवृत्ति में खंडनात्मक प्रवृत्ति का भी समावेश हुआ सामान्य-जन खंडनात्मक प्रवृत्तियों की ओर नहीं झुके, केवल भक्तों और संतों ने भी जनजीवन के प्रतिनिधि के रूप में ऐसी रचनाओं के लिये पृष्ठभूमि तैयार कर दी । सूफियों ने हिंदू और मुसलमानों के वैमनस्य को दूर करने का प्रयास किया था । इस्लाम के उद्भव के कारण इस्लाम में इनकी पूर्ण आस्था थी । भारत में बस जाने के पश्चात यहाँ के रीति-रिवाजों को इन्होंने अपना लिया । हिन्दू मुस्लिम विरोध दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा था। हिन्दू, मुसलमान दोनों धर्मों में विकृतियों ने घर कर लिया था।

---

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास -डा०रामकुमार वर्मा पृ०-१६२

२. वही पृ०-१६२

कबीरजी ने इस समय की दुर्दशा के विषय में कहा है -

इन दोहुन राह न पाई

हिन्दू अपनी करै बड़ाई, गागर छुअन न देई,

वेश्या के पायन तर सोवे, यह देखो हिन्दु आई।

मुसल्मान के पीर औलिया, मुर्गी मुर्गा खाई।

खाला केरी बेरी ब्याहे घर में करै सगाई ।[१]

ऐसे घोर विरोध और अंधकारमय युग में कुछ महान महात्माएं अवतीर्ण हुई, जिन्होंने यह अनुभव कर लिया था कि न तो मुसल्मानों को ही भारत से भगाया जा सकता है और न ही मुसल्मानों का हिन्दुओं के प्रति यह व्यवहार उचित है। इन्होंने माध्यम मार्ग का अनुसरण किया। कालांतर में इन्हें ही निर्गुण संतों की संज्ञा मिली। इन्होंने जाति-पांति के बंधनों का बहिष्कार किया, श्रद्धा भक्ति के लिये सबके लिये मार्ग खोल दिया। यह सामान्य सहज भक्ति मार्ग था।[२]

संतों की पृष्ठभूमि रामानंदजी और चैतन्य भक्त ने प्रस्तुत कर दी थी। रामानंदजी ने अपनी शिष्य परम्परा में जाति भेद को दूर कर दिया था। इसी विचारधारा के प्रवर्तक पंजाब में सिख गुरु थे। इस निर्गुण विचारधारा के दो महान प्रवर्तक कबीर और गुरुनानकजी थे। उत्तरी भारत की संत परम्परा में अर्द्धशिक्षित और अशिक्षित संत भी थे, जिन्होंने अपनी वाणी को जनता तक पहुंचाया। संतों ने गृहस्थ जीवन अपनाकर साधना की। देशाटन कर जनता को जागृति का संदेश दिया। स्वानुभूति पर आधारित इनकी वाणी मर्मस्पर्शी होती थी। सादगी और सदाचरण को इन्होंने मानव की कसौटी माना है। संतों ने सभी धर्मों और लोकप्रचलित विचार-धाराओं के सारभूत सिद्धांत ग्रहण कर लिए थे। अपनी इसी विशेषता के कारण वे धर्म के विश्रृंखल युग से सारभूत सिद्धांतों को चुन सके।

- -

१. कबीर - डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी-पृ०-३५८
२. संत साहित्य - मजीठिया-पृ०-७०

सिद्धनाथ सम्प्रदाय -

मध्य धर्मसाधना के क्रमिक विकास में, यह तथ्य तो सहज ही निसृत हो जाता है कि उसकी अभिव्यक्ति पर अनेक पूर्वा पर प्रभाव है। साथ ही एक लोक-सामान्य विद्रोही प्रवृत्ति के फलस्वरूप उस युग में अनेक मौलिक उद्भावनाएं भी हुई हैं। हिंदी का संत-साहित्य इसका सबसे पुष्ट प्रमाण है। किंतु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि संत-काव्य केवल सिद्धों अथवा नाथपंथी योगियों की रचनाओं का अक्षरश: अनुकरण है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है कि " जहां तक उनकी उपासना पद्धति, विषय, भाव, भाषा, अलंकार, छंद पद आदि का संबंध है, ये संत सौफी सदी भारतीयपरंपरा में पड़ते हैं। उनके पारिभाषिक शब्द, उनकी रूढ़ि विरोधिता, उनकी खंडनात्मक वृत्ति और उनका अक्खड़ता आदि उनके पूर्ववर्ती साधकों की देन है। परन्तु उनमें आत्मा उनकी अपनी है, उसमें भक्ति का रस है और वेदान्त का ज्ञान है।[1]

संतों के काव्य पर नाथ पंथियों का महत्वपूर्ण प्रभाव दिखाई पड़ता है। दर्शन और विचारधारा भी इससे अछूती नहीं है। नाथ पंथी ब्रह्म को द्वैताद्वैत विलक्षण मानते हैं। उनके अनुकरण पर संतों ने कहीं कहीं ब्रह्म को द्वैताद्वैत विलक्षण माना है। संत दरियादास के अनुसार -

निर्गुण सरगुन दुहु ते न्यारा।
संत स्वरूप होहि विमल सुधारा ।।[2]

नाथपंथियों के अनुसार मन को शून्य में लीन करना मुक्ति है उन्हीं का अनुकरण करते हुए संतों ने भी मन के लय को ही मुक्ति माना है। नाथपंथी साधना से संत-जन बहुत प्रभावित हुए थे। संतों को हठयोग साधना का ही रूपान्तर है। नाथपंथियों की भांति संत गण गुरु को महत्व देते हैं।

- -

१. हिन्दी साहित्य की भूमिका-डा०हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ०-४०
२. दरिया सागर - पृ०-६४

गोरखनाथी साधना के तीनों तत्व - प्राण साधना, इन्द्रियसाधना और मन साधना संतों के प्रमुख साध्य थे । प्राणसाधना के अन्तर्गत कुंडलिनि शोधन, नाड़ी शोधन, काया शोधन, अष्टांग योग, हठयोग,अजपा जाप आदि अपने काव्य में अपना लिया है। ' इन्द्रिय जय ' के सिद्धांत को संतों ने अपना प्रमुख प्रतिपाद्य बनाया था । सिद्धांत रूप में कही हुई उनकी जितनी उक्तियां है, उनमें सदाचार एवं इन्द्रिय जय तथा मिथ्याचारों का खंडन मिलता है । संतो को नाथपंथियों की ' मनसाधना ' का सिद्धांत बहुत प्रिय था । उन्हीं के ढंग पर उन्होंने सर्वत्र मन को महत्व और उसके परिष्करण पर बल दिया है।

संतों पर नाथपंथी भाषा और अभिव्यक्ति का भी बहुत व्यापक प्रभाव पड़ा है । कबीर और गुरु नानक देव आदि संत तो इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने शब्द, वाक्यांश, यहा तक कि पूरे पद पुनरक्त कर दिए हैं । निम्नलिखित साखी गोरख और कबीर में समान रूप से पाई जाती है -

> यहु मन सकती यहु मन सीव यहु मन पांच तत्व को जीव ।
> यहु मन ले उन्मनि रहै तो तीन लोक की बाता कहै ।।[१]

संतों की पारिभाषिक शब्दावली अधिकांश नाथपंथियों से ही ली गई है। जैसे - अलख, निरंजन, शून्य, समाधि, परमपद आदि पारिभाषिक शब्द हैं । गुरुनानक देवजो भी अपनी वाणी में गोरखनाथ, चरपटनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, गोपीचंद भतृहरि के नामों का उल्लेख किया है ।[२] पंजाबी संत साहित्य में भी नाथों के धार्मिक चिन्हों, योग-साधनाओं, विश्वासों और दार्शनिक सिद्धांतों का वर्णन हुआ है । धार्मिक चिन्हों में मुद्रा, झोली, विभूत, डंडा , भगवे कपड़े , सिंघी, किंगरी आदि शब्द हैं ।[३]

- -

१. गोरखबानी संग्रह , पृ०१८ तथा संत कबीर पृ०-८२
२. आदि गुरु ग्रंथ साहब महला-१,पृ०- ८७७,६३८,२६०
३. वही पृ०-८७७,७३०,२४०

संतजन नाथपंथी योगी के स्वरूप से पूर्णतया परिचित थे। कबीर, गुरुनानक आदि संतों ने उनके स्वरूप का वर्णन किया तो विविध पंथों के साधुओं के वेशाडम्बरकी आलोचना के प्रसंग में किया है या फिर उसका मानसीकरण करने का प्रयास किया है। इस प्रकार संत-साहित्य पर नाथपंथी धारा का प्रभाव अवश्य पड़ा। किंतु संतों ने इन प्रवृत्तियों को परिमार्जित कर मौलिक रूप में जनता के समक्ष रखा।

भक्तिमत वैष्णव सम्प्रदाय -

मध्ययुग में वैष्णव धर्म का बहुत प्रचार और प्रसार था। अन्य धर्मों की अपेक्षा समाज में इसकी प्रतिष्ठा भी अधिक थी। इसकी सरलता, सात्विकता और व्यावहारिकता ने इसे अधिक लोकप्रिय बना दिया था। इसकी सात्विकता पर संतजन भी मुग्ध थे। इसीलिये उन्होंने अपने काव्य में इनके प्रति श्रद्धात्मक भाव प्रकट किए हैं।[१] वैष्णवों की अधिकांश बातें संतों की रुचि के अनुकूल थीं। इसलिए संतों पर वैष्णवों के तत्वों का समुचित प्रभाव पड़ा। संत दादू दयाल ने वैष्णवों की प्राणभूत विशेषताओं का अपनी वाणी में उल्लेख किया है -

निर्मल तन मन आत्मा निर्मल मनसा सार।
निर्मल प्राणी पंच करि दादू लंघै पार ।।[२]

इस निर्मलता और सात्विकता की अभिव्यक्ति संतों ने विविध सद्गुणों के आचरण पर बल देकर भी की है। जिन सद्गुणों पर उन्होंने विशेष बल दिया है वे क्रमशः शील, क्षमा, संतोष, धीरज, दीनता संबंधित उनकी वाणियों में उनके उपदेश मिलते हैं।

---

१. संत सुधा सार पृ०-६२० (खण्ड-१)
२. दादू बानी, भाग-१पृ०-४

इनमें भी उन्होंने सबसे अधिक महत्व सत्याचरण, अहिंसा और साधु-सेवा को दिया है । अहिंसा के महत्व की ओर संकेत करते हुए संत मलूकदास कहते हैं जो आत्महत्या है वह करोड़ों कसाइयों के सदृश होता है ।[1] यथा -

" कोटि कसाई तुल्य है जो आत्म मारे ।

गुरु नानक देवजी ने भी हिंसा की भयानकता चित्रित की है - अगर वस्त्र पर रक्त का दाग लग जाए तो वस्त्र अपवित्र हो जाता है , अतः जिनका लोगों का जो रक्त पीते हैं, उनका चित्त कैसे निर्मल हो सकता है -

जे रतु लगै कपड़ै जामा होई पलीत[2]

गुरु अमरदासजी ने बड़े सशक्त शब्दों में आत्मघात और हत्या को न करने का आदेश दिया है -

आपि मरै अवरा नह मारे ।[3]

साधु सेवा पर भी संतों ने अतिरिक्त बल दिया है। वे साधु चरणों की सेवा करोड़ों तीर्थों के फल के सदृश समझते हैं। संत दरियादास के अनुसार -

कोटिन तीरथ साधुन के चरना ।।[4]

गुरु अमरदासजी का कथन है कि जो साधु सेवा में लग जाते हैं वे पुण्यात्मा है । यथा -

" सेवा लागे से वड़ भागे ।[5]

गुरु अर्जुनदेव के अनुसार - जिनके कर्म में सेवा है वही सेवा कर सकते है। संत-सेवा बड़े पुण्य से प्राप्त होती है । यथा -

- -

१. मलूकदासी बानी, पृ०-८
२. आदिग्रंथ -महला-१-पृ०-१४०
३. आदि ग्रंथ महला-३,पृ०-११२८
४. दरिया सागर -पृ०-२४
५. आदि ग्रंथ महला-३,पृ०-५७१

टहल करउ तेरे दास की पग झारउ बाल
मसतकु अपना भेंट देउ गुन सुनउ रसाल।।[1]

संतों ने नम्रता और दया पर भी विशेष बल दिया है। गुरुनानक देवजी के अनुसार सभी अच्छाइयों का सार नम्रता है। यथा-

मिठत नीवी नानका गुण चंगिआइआ ततु।[2]

दया के सम्बंध में गुरु अर्जुनदेवजी कहते हैं कि व्रत सम्पूर्ण तभी होता है जब जीवों के प्रति दयाभाव हो। यथा-

मनि संतोखु सरब जीअ दइआ। इन बिधि बरत संपूरन भइआ।।[3]

क्षमा संतों का प्रथम गुण है। जहाँ क्षमा है, वहाँ प्रभु का निवास होता है। गुरु की संगत से क्रोध समाप्त होता है और क्षमा प्राप्त होती है।-

जिनसे क्रोध खिमा नहि ठहीं[4]

वैष्णव धर्म में जन्मांतरवाद का सिद्धांत भी मान्य है। वास्तव में जन्मवाद ही मानव के दुख का कारण है। इस दुख से मुक्ति पाने का साधन है - भगवत शरण। सहजोबाई के अनुसार -

जनम मरन छूटे नहीं बिना सरन भगवंत[5]

गुरुवाणी में भी कहा गया है -

गुरु की मति तू लेहि इआने। भगति बिना बहु डूबे सिआने।[6]

- -

१. आदिग्रंथ महला-५ पृ०-८१०
२. वही महला-१ पृ०-४७०
३. वही महला-५ पृ०-२९६
४. वही महला-३ पृ०-२३३
५. सहजोबाई - पृ०-३२
६. आदि ग्रंथ महला-५ पृ०-२८८

वैष्णव धर्म में सबसे अधिक महत्व भक्ति को दिया गया है।
भक्ति को ज्ञान योगादि साधनों से भी श्रेष्ठ माना गया है। गुरु
नानकदेवजी के अनुसार -

प्रणवति नानक गिआनी कैसा होई। आपु पछाणै बूझै सोई।[1]
तजहु सिआनप सुरजनहु सिमरहु हरि हरि राइ ।।[2]

सहजो बाई भी भक्ति को श्रेष्ठ बताते हुए कहती है-
बिना भक्ति थोथे सभी जोग जुक्ति आचार ।[3]

प्रेम-भक्ति और भाव भगति का उपदेश तो संतों ने अपनी रचनाओं में
सर्वत्र दिया है। यारी साहब के अनुसार -
निसिदिन प्रेम भगति कर लोपै ।[4]

इसी प्रकार कबीर ने भी कहा है -
भाव भगति जिन हरि न अराधा , जिजन मरन की मिटि न बाधा।[5]

गुरु वाणी में भी भाव भक्ति की महानता स्वीकार की गई है।
यथा -
भाउ भगति गुरमति भार। हउमैं विचहु सबदि बजार।
पावन राखै ढाकि रखार। उमा नानु मनि बसार।।[6]

संतों ने वैष्णवों की प्रेमा भक्ति को केवल स्थूल रूप से ही नहीं लिया
है वरन उन्होंने उसको समस्त विशेषताओं, सूक्ष्मताओं और अंगों के
साथ अपनाने की चेष्टा की है। दादूजी के अनुसार संतों को वैष्णवी
सदाचरण और प्रेमा भक्ति बहुत प्रिय है। यथा -
सहज शील संतोष सत प्रेम भगति ले सार।[7]

- -

१. आदि ग्रंथ महला-१ पृ०-२५
२. वही पृ०-२५
३. सहजो बाई की वाणी -पृ०-३२
४. यारी साहब की रत्नावली-पृ०-१२
५. कबीर ग्रंथावली पृ ०-२४४
६. आदि ग्रंथ, महला-१ पृ०-१२४२
७. दादू बानी , भाग-१ पृ०-६५

इस प्रकार वैष्णव सम्प्रदाय ने संतों पर अपनी अमिट छाप अंकित कर दी । संतों ने अपने निर्गुण ब्रह्म के वाचक थे किंतु संतों ने उन्हें अपने ढंग से वर्णित किया है । यथा - राम, माधौ, विश्वम्भर, नारायण, मुरारी, गोपाल, हरि आदि उल्लेखनीय है। इन समस्त अभिधानों में उन्हें राम, गोविंद और हरि विशेष प्रिय थे । संतों द्वारा भगवान के इन वैष्णवी नामों के अपनाने में वैष्णव धर्म का ही प्रभाव मानते हैं ।

वैष्णव धर्म में अवतार की भावना बहुत बलवती है। भगवान के अवतारों के साथ-साथ भगवान की शक्ति के अवतारों की भी कल्पना की गई है । यथा- सीता , राधा दुर्गा आदि । किंतु संतों को वैष्णवों के अवतारवाद का सिद्धांत मान्य न था । क्योंकि उनकी विचारधारा का सिद्धांत एकेश्वरवाद पर आधारित है । इसी धारणा के अनुसार संत कवि वैष्णवों की मूर्तिपूजा, कर्मकांड और यज्ञ विधान को स्वीकार नहीं करते ।

<u>वेदांत और संत साहित्य -</u>

भारतीय विचारधाराओं का मूल स्त्रोत्र वेद अर्थात श्रुति ग्रंथ है। भारतीय विज्ञान भारतीय दर्शन धर्म,साधना,रहस्यवाद आदि परम्पराओं को वेदों से ही जोड़ते है । इस दृष्टि से वैदिक साहित्य ही सम्पूर्ण परम्पराओं का प्रेरणा स्त्रोत्र है । संत वैदिक दर्शन से प्रभावित अवश्य थे किंतु कहीं-कहीं वे वेदों की निंदा भी करते हैं । दरिया साहब (बिहार वाले) वेदों की निंदा करते हुए कहते हैं ।

छत्री वक्र औधारि चतुरदल बेद मती अरुम्भाना।[१]

- -

१. दरिया साहब (बिहार वाले) के चुने हुए पद-४६

किंतु वेद सम्बन्धी ऐसी उक्तियों के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है संत जन श्रुति ग्रंथों के प्रति श्रद्धा ही नहीं रखते थे या श्रुति ग्रंथों से प्रभावित नहीं हुए थे। वे वेदों का अंधानुकरण और मिथ्यात्व का विरोध करते हैं। कबीरजी वेदों के संबंध में कहते हैं-

वेद कतेब कहौ मत झूठा, झूठा जोउ बो न बिचारे।[१]

गुरु नानक देवजी ने भी अपनी वाणी में श्रुति ग्रंथों का उल्लेख किया है यथा -

केते पंडित जोतकी बेदा करहि बीचारु ।।[२]

चारे वेद होए सचिआर । पढ़हि पढहि गुणहि तिन चार बीचार।[३]

ऐसा प्रतीत होता है कि संत कवि व्यावहारिक दृष्टि से - वैदिक कर्मकांड, उपासना विधि, योग, क्रियाचार, बहुदेव पूजा, मंत्राचार, आदि का विरोध करते थे, दूसरी ओर वे आध्यात्मिक और रहस्यवादी दृष्टि से वेदों से प्रभावित थे। गुरु नानक देवजी ने ऋग्वेद के पुरुषसूक्त[४] और नारदीय सूक्त[५] के अनुकरण पर रहस्यवादी और सृष्टि वैज्ञानिक वाणी आरती और[६] मारु सोलहे की अष्टपदी की रचना की। ऐसा प्रतीत होता है कि संत-जन वैदिक क्रियाचारों की अपेक्षा वैदिक दर्शन से अधिक प्रभावित थे।

संतों की रचनाओं में संहिताओं के ऐकेश्वरी अद्वैतवाद, विराट ब्रह्म वर्णन एवं सृष्टि उत्पत्ति संबंधी विचारों की झलक मिलती है। ऐकेश्वरी अद्वैतवाद की ओर संकेत करते हुए संत दरियाजी ने लिखा है -

" दादू के दूजा नहीं एकै आत्म राम ।[७]

- -

१. कबीर वचनावली पृ०-२२२
२. आदि ग्रंथ महला-१, पृ०-५६
३. वही , पृ ०-४७०
४. ऋग्वेद मंडल-१० सूक्त -९०
५. वही सूक्त-१२९
६. आदि ग्रंथ महला-१, पृ०-१०३५
७. दादू साहब की वाणी, भाग-१पृ०-१४

पुरुष सूक्त के विराट ब्रह्म का अनुकरण संतों ने किया है ।
संत कबीरजी के अनुसार ।

कोटि सूर जाके परगास कोटि महादेव अरु कबिलास।
दुर्गा कोटि जाके मर्दन करै ब्रह्म कोटि वेद उच्चरै।[1]

उपनिषदों का दर्शन आत्मवादी है। उसमें आत्मा का ही विवेचन किया गया है। उसी से ज्ञान प्राप्ति की जिज्ञासा प्रकट की गई है। उनका प्रमुख लक्ष्य आत्म स्वरूप निरूपण करना और उसकी अनुभूति करना ही था। उपनिषदों के लक्ष्य योग से संत जन भी पूर्णतया परिचित थे। उन्होंने भी आत्मसाधन अध्यात्म चिंतनको ही जीवन का लक्ष्य बनाया था। संत चरनदास ने संतों के जीवन लक्ष्य को प्रकट करते हुए लिखे हैं -

आत्म विद्या पढ़ि पढ़ावै परमात्म का ध्यान लावै।।[2]

लक्ष्य साम्य होने के कारण संतों की विचारधारा उपनिषदों की गुरु शिष्य अधिकारित्व, ज्ञान वैराग्य की स्वीकृति, अध्यात्मिक अद्वैतवाद, ब्रह्म निरूपण, आत्म निरूपण, मोक्ष धारणा, साधना पद्धति, सदाचार प्रवणता, पिंड में आत्मा और परमात्मा के अस्तित्व की कल्पना, जन्मांतरवाद, कर्म सिद्धांत, रहस्य भावना आदि विविध बातों का प्रभाव दिखाई पड़ता है। संतों ने उपनिषदों से प्रभावित होकर अधिकारित्व को भी अनिवार्य बताया है। दरिया साहब के अनुसार -

सद्गुरु सीख जो उर बसावै ।[3]

उपनिषदों की विचारधारा निवृत्तिमार्गी है । अतः उनमें ज्ञान और वैराग्य पर विशेष बल दिया गया है । निवृत्तिमार्गी विचारधारा से संत गण भी प्रभावित हुए थे । इसीलिए उन्होंने भी ज्ञान-वैराग्य को महत्व दिया है । दरिया साहब ज्ञान को महत्व देते हुए कहते हैं।

- -

१. कबीर ग्रंथावली पृ०-२७८
२. संत वाणी संग्रह, भाग-२ पृ०-१७१
३. दरिया सागर, पृ०-५

आतम दरसन ज्ञान जो जाने तबहि ठीक पयाना ठाने ।[1]

मोक्ष साधना में ज्ञान के सदृश ही वैराग्य का भी महत्व माना गया है। संत पलटूजी ने बड़े मधुर शब्दों में वैराग्य का महत्व प्रतिपादित किया है।

पहले संसार से तोरि आवै । तब बात पिया की पूछिये जी ।[2]

उपनिषदों का प्रसिद्ध आध्यात्मिक अद्वैतवाद है। संतों ने जहां संहिताओं के सेश्वरी अद्वैतवाद को स्वीकार किया है, वहीं उपनिषदों के आध्यात्मिक अद्वैतवाद प्रतिपादन भी किया है। संत दरिया जी ने जिसकी अभिव्यक्ति अद्वैत ब्रह्म घट व्यापक [3] कहकर की है।

साहिब सब में साहिब सब घट रह्यो समाई ।[4]

कहकर की है । गुरुनानक देवजी ने भी कहा है -

रंगी रंगी भाती करि करि जिनसी माइआ जिनि उपाई।
करि करि वेखै कीता आपणा जिव तिस दी वडिआई।।[5]

उपनिषदों के ब्रह्म निरूपण का बहुत प्रभाव संतों पर दिखाई पड़ता है। ब्रह्म वर्णन में जितनी शैलियों का प्रयोग उपनिषदों में किया गया है, संतों में भी वे सब पाई जाती है । जैसे - भक्तवत्सल, करुणामय, दयालु, शरणपालक, ज्ञानवान, सर्वसमर्थ आदि

उपनिषदों की साधना पद्धति की छाप भी संतों पर पड़ी। इनमें ज्ञान, भक्ति और योग तीनों साधनाओं का उल्लेख मिलता है । उपनिषदों के सरल और सदाचार पूर्ण जीवन से संत कवि पूर्ण रूपेण प्रभावित थे । उन्होंने सर्वत्र सरल और सदाचारपूर्ण जीवन पर बल दिया है।

कहै दादू मोहि अचरज भारी हृदय कपट क्यों मिलै मुरारी।[6]

उपनिषदों का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत पिंडस्थ आत्मतत्व और ब्रह्म तत्व का निरूपण है ।

- -

१. दरिया सागर पृ०-१५
२. संतवाणी संग्रह भाग-२ पृ-२०६
३. दरिया साहब के चुने हुए पद-४६
४. कबीर ग्रंथावली-पृ०-१०४ ५-आ०ग्र०महला-१पृ०-६
६. संतबानी भाग-२-पृ०१३५

संतजन इस सिद्धांत से पूर्णतया प्रभावित थे। गुरु नानकदेवजी के अनुसार - हे हरि वही साधक तुम्हारा गुणगान करते हैं, जो तुम्हें अच्छे लगते हैं, तुमसे ही वे उत्पन्न होते हैं और तुम्हीं में विलीन हो जाते हैं। यथा-

से गुण गावहि जो तुधु भावहि, तुझ ते उपजहि तुझ माहि समावहि।[1]

संतों की प्रवृत्ति और निवृत्ति संबंधी धारणा इसी सिद्धांत पर आधारित है। उपनिषदों के जन्मांतरवाद, प्रणववाद, कर्मवाद आदि अनेक सिद्धांतों का प्रभाव संतों पर देखा जा सकता है। अत: वेदांत का संतों की विचारधारा पर बड़ा गहरा प्रभाव है।

इस्लाम धर्म और सूफी मत -

मध्य युग में हिन्दू और बौद्ध धर्म के बाद इस्लाम धर्म की ही प्रतिष्ठा थी। शासकों का धर्म होने के कारण उसका प्रचार और प्रसार और भी अधिक था। यद्यपि संत जन सब प्रकार के सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक बंधनों से मुक्त थे, फिर भी वे अपने युग की क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं की उपेक्षा नहीं कर सके। यद्यपि इस्लाम धर्म का उन पर प्रत्यक्ष और गहरा प्रभाव नहीं पड़ा, फिर भी संत उससे अछूते नहीं रहे। संतजन उनके परम्परागत, संस्कार जनित और वातावरण युक्त प्रभाव से प्रभावित अवश्य हुए।

इस्लाम धर्म सत्यनिष्ठ धर्म है। संतजन इस सत्यनिष्ठता से अवश्य प्रभावित हुए। गुरु नानक देवजी सच्चे मुसलमान का वर्णन करते हुए कहा है -

मिहर मसीति सिदकु मुसला हकु हलालु कुराणु
सरम सुंनति सीलु रोजा होहु मुसलमाणु।।[2]

---

१. आदि ग्रंथ -महला-१ पृ०-१०३५
२. आदि ग्रंथ -महला-१ पृ०-१४१

दीन इस्लाम का महत्व पक्ष है। यही इसका आचार पक्ष है। दीन के अन्तर्गत चार बातों को सबसे अधिक महत्व दिया गया है - रोजा, नमाज, जकात और हज्ज । सच्चे मुसलमान को चारों का बड़ी श्रद्धा के साथ पालन करना पड़ता है । विविध धर्मों के आडम्बर पक्ष का विरोध करने वाले संत इस्लाम धर्म के दीन पक्ष के विशेष नियमों से विशेष सहमत नहीं थे । उन्होंने उसके आध्यात्मिक पक्ष पर बल दिया है । यही उनकी मौलिकता है। नमाज (बंदगी) के लिए वे किसी समय विशेष की आवश्यकता नहीं मानते थे । किसी दिशा विशेष की ओर मुख करना भी उनके लिये महत्व नहीं रखता था । संत दादूजी ने भावात्मक नमाज का सुन्दर वर्णन किया है -

काया मसीत करि पंच जमाती, मन ही मुल्ला इमाम ।
आप अलेख इलाही आगे, तहँ सिजदा करै सलाम ।। [1]

नमाज के सदृश्य ही इन्होंने रोजा, जकात और हज्ज के भी मानसिक पक्ष पर ही बल दिया है । उनका विश्वास था कि जिसका मन और हृदय पवित्र है वही सच्चा धार्मिक है । गुरु तेगबहादुरजी के अनुसार

काहे रे बन खोजन जाई
सरब निवासी सदा अलेपा तोहि संग समाई
पुहप मधि जिउ बासु बसतु है मुकर माहि जैसे छाई।।
तैसे ही हरि बसे निरंतरि घट ही खोजहु भाई ।। [2]

चरनदासजी ने लिखा है -

घट में तीरथ क्यों न नहावो।
इत उत डोलो पथिक भये हो भरमि परमि क्यों जनम गवावो
गोमती कर्म अकारथ कोगे अधरम मैल छुटावो।।
सील सरोवर हित कर नहिये, काम अग्नि की तपन बुझावो।। [3]

- -

१. दादूदास बानी - पृ०-१७३
२. आदि ग्रंथ महला-९ - धनासरी
३. चरनदास की बाणी -राग बिलास, संतसुधा सार-पृ०-१६०

इस प्रकार संतों ने दीन को मानसिक पक्ष को ही महत्त्व दिया है।

इस्लाम में " ईमान " को भी बहुत महत्त्व दिया गया है। संतों में इस्लाम के एकेश्वरवाद और नूरवाद की छाया दिखाई पड़ती है। कबीरदास जी नूरवाद के संबंध में अपनी वाणी में कहते हैं-

अवल अल्ला नूर उपाइया कुदरति के सब बंदे।
एक नूर तै सब जग उपज्या कौन भले कौन मंदे।।[1]

संतों ने इस्लामी एकेश्वरवाद में भारतीय अद्वैतवाद का भी सम्मिश्रण कर उसे वैदिक एकेश्वरवाद में परिणित कर दिया। [2]

संत कबीर की वाणी में इसी एकेश्वरवाद का रूप दृष्टिगोचर होता है-

हम तो एक एक करि जानां
दोई कहै तिनही को दोजग, जिन नाहिन पहिचाना।
एकै पवन एक ही पानी, एक जोति संसारा।
एक ही खाक घड़े सब भांडे, एक ही सिरजनहारा।।
निरभै भया कछु नहीं व्यापै, कहै कबीर दिवाना।।[3]

इस्लाम की प्राणभूत विशेषता है साम्यवाद। संतों पर इसका सर्वाधिक प्रभाव पड़ा। संतजन भी इस्लाम धर्म के अनुसार सभी को धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से बराबर समझते हैं। वे पारस्परिक भेदभाव और वर्ण व्यवस्था में विश्वास नहीं करते।

इस्लाम एक नियतिवादी धर्म है। इनके भाग्यवाद की छाया संतों पर भी पड़ी। एक स्थल पर दादूजी लिखते हैं-

दादू सहजै सहजै होइगा, जे कुछ रचिआ राम।
काहिको कलपै मरै, दुखी होत बेकाम।।[4]

- -

१. कबीर ग्रंथावली-पृ०-२६८
२. हिन्दी की निर्गुण काव्य धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि पृ०-२८६
३. कबीर ग्रंथावली पृ०-१०५
४. संत सुधा सार - पृ०-४८८

गुरु वाणी में भी लिखा है कि मनुष्य व्यर्थ चिंता करता है, ईश्वर को जो रुचता है वही वह करता है -

चिंता ताकी कीजिए जो अनहोनी होय।
इह मारगि संसार को नानक थिरु नहि कोय। [1]

इस्लाम धर्म में साधु संतों को बड़ी प्रतिष्ठा है। संतों को वे ईश्वर का रूप समझते हैं। इस्लाम त्याग और वैराग्य प्रधान धर्म है। संतों को इस विचारधारा से बहुत प्रेरणा मिली। अतः उनकी वाणियों में सर्वत्र त्याग और वैराग्य विशिष्ट नश्वरतावाद की झलक दिखाई पड़ती है। संत कबीर के अनुसार -

यहु ऐसा संसार है, जैसा सैंबल फूल
दिन दस के व्यवहार को झूठे रंगनि भूलि ।। [2]

गुरुवाणी में गुरु तेग बहादुरजी भी वैराग्य संसार की नश्वरता के विषय में कहते हैं -

जैसे जल ते बुदबुदा, उपजि बिनसै नीत।
जग रचना तैसी रची, कहु नानक सुन मीत।।
जो सुख को चाहे सदा, सरनि राम की लेह।
कहु नानक सुन रे मना, दुरलभ मानुख देह।। [3]

इस्लाम में कर्म की प्रधानता है। कर्मों के अनुसार फल मिलता है। संतों ने भी इसी विश्वास की अभिव्यक्ति मिलती है। संत सुंदरदास जो इस संबंध में कथन करते हैं -

" होयगा हिसाब जब तब न आवैगा जवाब कछु
सुन्दर कहत गुनहगार है खुदाय का। [4]

संतों पर इस्लाम की खंडनात्मक प्रवृत्ति का बहुत प्रभाव पड़ा था। इनमें मूर्ति पूजा के विरोध की प्रवृत्ति विशेष उल्लेखनीय है। संतों ने मूर्ति पूजा का विरोध उसी कटुता के साथ किया है जिस कटुता के साथ मुसल्मान करते हैं।

१- आ०ग्रं० महला-९-पृष्ठ-१४२१ २- कबीर ग्रंथावली-पृ०-२१

संत सारग्रही थे । अतः हिन्दू धर्म के विशेषताओं को तो उन्होंने ग्रहण किया ही, अन्य धर्मों की भी विशेषताओं को अपनाने की चेष्टा की ।

सूफियों के मतवादों से भी संतों को पर्याप्त प्रेरणा मिली । संतजन उनको संगति किया करते थे । अतः सूफियों की विचारधारा से बहुत प्रभावित हुए । सूफियों के ' प्रेम और विरह ' तत्व संतों को बहुत प्रिय थे । संतों ने अपनी वाणियों में इन्हें पर्याप्त स्थान दिया है । मन को वश में करने के लिये ये दोनों तत्व श्रेयस्कर हैं । पंजाबी सूफी कवि फरीद जो लिखते हैं -

दिलहु मुहब्बत जिन सेइ सचिआ .... रहे इश्क खुदाइ
रंगो दीदार के ।[1]

गुरु कवि प्रेम को ईश्वरीय देन मानते हैं उनके अनुसार -

प्रेम की सार सोइ जाणै जिसनु नदरि तुमारी जोऊ।।[2]

दादू दयाल के अनुसार सच्चा प्रेमी वही होता है जिससे प्रेमी और प्रियतम एक रूप हो जाते हैं -

दादू उस माशूक का अल्लाह आशिक होई ।।[3]

इनके विरह भाव का वर्णन भी संतों ने बड़े मार्मिक ढंग से किया है गुरु नानकदेवजी ने अपने ' बारहमाहा में आध्यात्मिक विरह को बड़े प्रभावक ढंग से वर्णित किया है -

पिरु घर नहीं आवै धन किउ सुख पावै विरह विरोध तन
छीजै ।। ४

- -

१. आदि ग्रंथ-फरीद वाणी , पृ०-१३७८
२. आदि ग्रंथ-महला ३ पृ०-१०१६
३. दादू, भाग-१, पृ ०-४४
४. आदि ग्रंथ -महला-१ पृ०-११०८

फरीदजी ने तो विरह के अनेक श्लोक उच्चरित किए हैं -

फरीदा काली धउली साहिबु सदा है जे को चित करे ।
आपणा लाइआ पिरमु न लगई जे लोचै सभु कोई।
एहु पिरम पिआला खसम का जै भावै तै देई ।। [1]

प्रेम और विरह के साथ संतों ने सुरा को भी महत्व दिया है। किंतु उनकी सुरा भावात्मक है भौतिक नहीं । उस मदिरा को पीने का उपदेश देते हुए संत चरनदास लिखते हैं -

अवधु ऐसी मदिरा पीजे
बैठि गुफा में यह जग बिसरै चंद सुर सम कीजै।

जो चाखै यह प्रेम सुधा रस निज पुर पहुंचै सोइ।
अमर होइ अमरा पद पावै आवागमन न होई ।। [2]

सूफियों के पतिवाद से भी संत अत्याधिक प्रभावित थे । ब्रह्म को पति और जीव को पत्नी रूप में चित्रित किया गया है। फरीदजी इस संबंध में लिखते हैं ।

अज न सुती कंत सिउ अंग मुड़े मुड़ि जाई
जाइ पुछहु डोहागणी तुम किउ रैणि विहाई।। [3]

सूफियों की प्रतीकात्मक शैली ने भी संतों को प्रभावित किया है। दाम्पत्य प्रतीकों को विशेष रूप से प्रयुक्त किया गया है कबीरजी के अनुसार - " हरि मेरा पीव हरि मेरा पीव माई हरि पीव । [4]
सूफियों के इन प्रभावों के अतिरिक्त संतजन उनको अन्य बातों से भी प्रभाव थे । जैसे -स्वतंत्र चिंतन,बुद्धिवादिता,पीर को प्रतिष्ठा,ईश्वरीय न्यमदान की अनुभूति,आत्म बलिदान और त्याग,सदाचारण आदि। इन बातों ने प्रत्यक्ष रूप से विशेष प्रभावित भले हो न किया हो किंतु प्रेरणा अवश्य प्रदान की है।

- -

१. आदि ग्रंथ श्लोक शेख फरीद-पृ०-१३७८
२. संत चरनदास की वाणी-भाग-१पृ०-३८
३. आदि ग्रंथ सलोक शेख फरीद -पृ०-३७९
४. कबीर ग्रंथावली,पृ०-१२५

9-3-83

-: तृतीय अध्याय :-

क- " पंजाबी संतमत के उद्भव के पूर्वकाल की पंजाबी भाषा और उसका साहित्य "

" पंजाबी भाषा " में पंजाबी का सर्वप्रथम प्रयोग किसने किया एवं यह कैसे प्रचलित हुई इसके विषय में विद्वानों का अलग-अलग मत है। डा० मोहनसिंह के अनुसार पंजाबी शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग सुन्दरदास नामक कवि ने किया है। इसके पहले के कवियों ने इसे हिंदी या हिंदवी की ही संज्ञा प्रदान की है।

पंजाबी का नाम लेते ही यही धारणा बन जाती है कि यह समस्त पंजाब की भाषा है या समस्त पंजाब की एक मात्र भाषा यही है। यह बात नहीं है। भारत विभाजन के पूर्व समस्त पंजाब में पंजाबी भाषा - भाषियों का अनुपात वर्तमान पूर्वी पंजाब की अपेक्षा कम था। विभाजन के पश्चात पूर्वी पंजाब में इस भाषा के बोलने वालों की काफी वृद्धि हो गई। इसलिये वर्तमान पूर्वी पंजाब की यही प्रान्तीय भाषा है।

पंजाबी के इस समय दो रूप हैं- एक हिन्दी प्रधान पंजाबी और दूसरी उर्दू प्रधान पंजाबी। हमारा विषय हिन्दी प्रधान पंजाबी से सम्बन्धित है। ग्रियर्सन ने जिसे " पूर्वी पंजाबी " कहा है वह यही हिन्दी प्रधान पंजाबी है।

पंजाबी भाषा की उत्पत्ति -

ग्रियर्सन के अनुसार मांझा प्रान्त में पहले पैशाची ही बोली जाती थी। धीरे-धीरे उस पर शौरसेनी का प्रभाव पड़ा। पंजाबी की नींव पैशाची द्वारा पड़ी उस पर शौरसेनी द्वारा भवन निर्मित हुआ। पी०डी०गुने के मतानुसार पंजाबी और हिन्दी शौरसेनी से विकसित हुई हैं। लहिंदा कश्मीरी पैशाची अपभ्रंश से निकली है।[1] दुनीचंद के मतानुसार आधुनिक पश्चिमी हिंदी और पंजाबी शौरसेनी अपभ्रंश से निकली है।[2]

- -

१. पी०डी०गुने - इंट्रोडक्शन टू प्राकृत लैंग्वेजेज - पृ०-२२३
२. दुनीचंद - हिंदी और पंजाबी का भाषा-विज्ञान, पृ०-१५-१६

-: तृतीय अध्याय :-

क- " पंजाबी संतमत के उद्भव के पूर्वकाल की पंजाबी भाषा और उसका साहित्य "

" पंजाबी भाषा " में पंजाबी का सर्वप्रथम प्रयोग किसने किया एवं यह कैसे प्रचलित हुई इसके विषय में विद्वानों का अलग-अलग मत है। डा० मोहनसिंह के अनुसार पंजाबी शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग सुन्दरदास नामक कवि ने किया है। इसके पहले के कवियों ने इसे हिंदी या हिंदवी की ही संज्ञा प्रदान की है।

पंजाबी का नाम लेते ही यही धारणा बन जाती है कि यह समस्त पंजाब की भाषा है या समस्त पंजाब की एक मात्र भाषा यही है। यह बात नहीं है। भारत विभाजन के पूर्व समस्त पंजाब में पंजाबी भाषा-भाषियों का अनुपात वर्तमान पूर्वी पंजाब की अपेक्षा कम था। विभाजन के पश्चात् पूर्वी पंजाब में इस भाषा के बोलने वालों की काफी वृद्धि हो गई। इसलिये वर्तमान पूर्वी पंजाब की यही प्रान्तीय भाषा है।

पंजाबी के इस समय दो रूप हैं- एक हिन्दी प्रधान पंजाबी और दूसरी उर्दू प्रधान पंजाबी। हमारा विषय हिन्दी प्रधान पंजाबी से सम्बन्धित है। ग्रियर्सन ने जिसे ' पूर्वी पंजाबी' कहा है वह यही हिन्दी प्रधान पंजाबी है।

पंजाबी भाषा की उत्पत्ति -

ग्रियर्सन के अनुसार मांझा प्रान्त में पहले पैशाची ही बोली जाती थी। धीरे-धीरे उस पर शौर सेनी का प्रभाव पड़ा। पंजाबी की नींव पैशाची द्वारा पड़ी उस पर शौर सेनी द्वारा भवन निर्मित हुआ। पी०डी०गुने के मतानुसार पंजाबी और हिन्दी शौर सेनी से विकसित हुई हैं। लहिंदा कश्मीरी पैशाची अपभ्रंश से निकली है।[१] दुनीचंद के मतानुसार आधुनिक पश्चिमी हिंदी और पंजाबी शौरसेनी अपभ्रंश से निकली है।[२]

---

१. पी०डी०गुने - इंट्रोडक्शन टू प्राकृत लाजी - पृ०-२२३
२. दुनीचंद - हिंदी और पंजाबी का भाषा-विज्ञान, पृ०-१५-१६

तारा पोरवाल का कथन है कि जिस भाषा से लहिंदा और पंजाबी निकली हैं उस बोली का संस्कृत या प्राकृत साहित्य में कोई वर्णन नहीं है परन्तु फिर भी उन पर शौरसेनी का प्रभाव है । [1]

बनारसी दास जैन ने ग्रियर्सन के मत ही को स्वीकार किया है । डा० मोहनसिंह का मत है कि उज्जैन से पेशावर तक सिंध से लेकर कन्नौज तक महाराष्ट्री प्राकृत का क्षेत्र था । उसी से आर्य भाषाएं मराठी, गुजराती, राजस्थानी, डिंगल, पिंगल, सिंधी, पंजाबी, पूर्वी आदि का उद्भव हुआ । पंजाबी अपभ्रंश का नाम उस समय आठवीं सदी में पिशाची,अवहट्ट,अपभ्रष्ट या भूतभाषा था । आभीर, पिशाच, भूतभाषा,अवहट्ट, जटकी ये सब प्राचीन पंजाबी ही के नाम थे ।[2] किंतु प्रो०तेजासिंह का मत इनसे भिन्न है , इनके अनुसार-"ग्रियर्सन के मतानुसार हमारी पंजाबी पिशाची और प्राकृत के मेल से बनी है । यह ठीक नहीं, हमारी बोली का विकास आर्यों की बोली से हुआ। वेद पंजाबी में हैं । वर्तमान पंजाबी की अपेक्षा वे प्राचीन पंजाबी में है । परंतु है पंजाबी में, संस्कृत में नहीं । संस्कृत की रचना तो बाद में हुई ।"[3] नलिनी मोहन सन्याल ने पंजाबी की उत्पत्ति को वाल्हिक से माना है । [4] पंजाबी के उत्पत्ति के संबंध में कुछ निर्णय सामने आते हैं -

१- पंजाबी और लहिंदा अलग-अलग बोलियां हैं। पंजाबी का विकास शौरसेनी लहिंदा का पैशाची से हुआ है ।

२- मूलआधार पैशाची है उस पर प्रभाव शौरसेनी का है।

३- पंजाबी और लहिंदा दोनों ही पैशाची से निकली हैं ।

४- वैदिक संस्कृत से सीधे ही पंजाबी की उत्पत्ति हुई है ।

---

१. तारापोरवाला - दी एलीमेंट्स आफ साइंस आफ लैंग्वेज,पृ०-५२
२. डा० मोहनसिंह, जितिंदर सहित सरोवर, पृ०-२३-८१
३. प्रो० तेजासिंह - साहित्य दर्शन, पृ०-२०-१६७
४. नलिनी मोहन सन्याल- बिहारी भाषाओं का विकास (निबंध)

ग्रियर्सन ने पंजाबी को आंतरिक समुदाय की भाषा माना है । लहिंदा की गणना बाह्य समुदाय में की है । यह माना जाता है कि पंजाबी का सम्बन्ध केवल अपभ्रंश से था । उस पर बाद में शौरसेनी का प्रभाव पड़ा। मथुरा, वृन्दावन,आगरा एवं दिल्ली का पश्चिमोत्तर भाग भार शूरसेन कहलाता था । प्रो० तेजासिंह का मत कि वेद पंजाबी में है या पंजाबी सीधी वैदिक संस्कृत से ही निकली है, भ्रामक ही कहा जायेगा। भाषा में परिवर्तन होता रहता है । यह कैसे संभव है कि वैदिक संस्कृत से पंजाबी निकल कर आज तक वैसी ही रही है । वैदिक संस्कृत से तो समस्त आर्य भाषाएं निकली हैं , इस कारण प्रत्येक भाषा-भाषी के अनुसार वेद उसकी भाषा में ही है । पंजाबी की उत्पत्ति वाह्लिक से भी नहीं हुई है । नलिनिमोहनजी का मत भी अशुद्ध है । पंजाबी की उत्पत्ति पैशाची से भी नहीं हुई है । पंजाबी और शौरसेनी का निकट संबंध है। शौरसेनी प्राकृत से पंजाबी की काफी साम्यता है । किंतु इससे भी पंजाबी की उत्पत्ति नहीं हुई है । ऐसा प्रतीत होता है कि पंजाबी को जन्म देने वाली शौरसेनी से प्रभावित कोई अपभ्रंश रही होगी । उसे शौरसेनी से प्रभावित या उसका भेद कहा जा सकता है ।[1]

प्राचीन पंजाबी बोलियों के निश्चित रूप का पता नहीं चलता । पंजाब में प्रचलित बोलियों के नाम पांचाली, टक्की, कैकयी आदि थे किंतु इन बोलियों की निश्चित रूप-रेखा का पता नहीं चलता ।

पश्चिम पंजाब को ही प्राचीन प्रदेश कहा जाता था । पांचाल का व्यवहार भी सारे पंजाब के लिये किया जाता था । भाषा वैज्ञानिकों की खोजों से पता चलता है कि पंजाबी की उत्पत्ति कैकयी से हुई है ।[2]

---

१. संत साहित्य - हे. १२

२. पंजाबी और हिन्दी भाषा विज्ञान, पृ०-२५ : डुनिचंद :

पाणिनी के अष्टाध्यायी के एक सूत्र में कैकयी का नाम आता है । पाणिनी का समय ई०पू०चौथी या पांचवीं सदी माना जाता है । इससे यह प्रतीत होता है कि शौरसेनी के समान यह प्राकृत भी अति प्राचीन रही है । इसे शौरसेनी की बहिन कहा जा सकता है । इस कैकय का संबंध सीधा पालि से था । पालि का विकास स्थान मध्यदेश ही था । इससे यही प्रतीत होता है कि कैकयी दूसरी प्राकृतों के समान सीधे ही पालि से आई है । इसकी उत्पत्ति शौरसेनी या किसी अन्यकालीन बोली से नहीं हुई है । अपभ्रंश काल में इसका नाम कैकय अपभ्रंश पड़ गया होगा । कैकय भाषा का क्षेत्र समस्त आधुनिक पंजाब रहा होगा । इस कैकय पर शौरसेनी का प्रभाव पड़ता रहा होगा । इसके अपभ्रंश रूप को कैकय अपभ्रंश, उपनागर अपभ्रंश या टक्की अपभ्रंश कहा जाता रहा होगा ।[1]

पंजाबी भाषा का जन्म-स्थान वही है जो आज उहिंदा का प्रदेश माना जाता है । भारत में तुर्क और अफगान आक्रमणकारियों से प्रथम मुसलमान सूफी कवियों का भारत में आगमन प्रारम्भ हो गया था । उन्होंने अपने काव्य का माध्यम जनता की बोली को बनाया । यह वह भाषा थी जो कि ब्रज से पृथक जनता में बोली जाती थी । शेख फरीद, शाह हुसैन आदि पंजाबी सूफी कवियों ने इसी भाषा का व्यवहार किया था ।

तात्पर्य यह है कि पंजाबी की उत्पत्ति पैशाची से सिद्ध नहीं होती । पंजाबी की उत्पत्ति केवल शौरसेनी से हुई है । पंजाबी आभीर, गुर्जर आदि की बोली नहीं है । परन्तु पंजाबी पर आभीर, गुर्जर, पिशाच और ईरानी भाषाओं का प्रभाव अवश्य है । इसकी उत्पत्ति न वाल्हिक से हुई है और न वैदिक संस्कृत से । अपितु इसकी उत्पत्ति कैकय अपभ्रंश से ही सम्भव है । तथा इस पर शौरसेनी का प्रभाव पड़ा है । आधुनिक पंजाबी का उदय पश्चिमी पंजाब से हुआ ।[2]

---

१. संत-साहित्य - डा० सुदर्शनसिंह मजीठिया, पृ०-२६

२. " " "

पंजाबी भाषा की बोलियां -

ग्रियर्सन ने पंजाबी की निम्नलिखित बोलियों का उल्लेख किया है -

१- मलवई, २- माफी, ३- नोषा, ४- डोगरी, ५- यौवबी,
६- राठी, ७- भटिवानी ।

किंतु हमें पंजाबी भाषा में इन बोलियों का विवेचन नहीं करना है अपितु इससे पृथक् जो ` साहित्यिक ` या ` केन्द्रीय ` पंजाबी प्रचलित थी, जिसमें पंजाबी का साहित्य रचा जा रहा था, उसका विवेचन करना अभीष्ट है ।

` केन्द्रीय ` या ` साहित्यिक ` पंजाबी का अर्थ है, वह पंजाबी जो साहित्य की भाषा है और केन्द्र स्थित है । इसका आधार माफी ` बोली ही है । इसमें पंजाबी की अन्य बोलियों के अंश भी मिले हुए हैं । इसमें तत्सम शब्दों का व्यवहार किया जाता है जबकि पंजाबी की बोलियों में तत्सम की अपेक्षा तद्भव शब्दों की प्रधानता है । पंजाबी संतमत के पूर्व की पंजाबी का विकास ६०० ई० के आसपास से प्रारम्भ हो गया था । पंजाबी के विकास को हम ३ भागों में विभक्त कर सकते हैं -

१- प्राचीन काल, २- मध्य काल, ३- आधुनिक काल

प्राचीन काल - (ई०-६००-१४५०) ६वीं सदी से पंजाबी का विकास होने लगा था। इस समय पंजाब में राजनैतिक उपद्रव हो रहे थे । विदेशियों आक्रमणकारियों के अमानुषिक अत्याचारों द्वारा पंजाब इस समय कुचला जा रहा था । तुर्की सिपाही फारसी का उपयोग साधारण बोलचाल के लिये नहीं करते थे । बोलचाल की भाषा तुर्की ही थी । सर्वप्रथम आर्य भाषाओं में पंजाबी का ही फारसी भाषा से समागम हुआ । फारसी भारत में विजेताओं की भाषाओं के रूप में आई । इस कारण पंजाबी पर इसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। तुर्कों के आगमन के पूर्व पंजाबी की भाषा अपभ्रंश ही थी । वह साहित्यिक भाषा थी । यह वह समय था जबकि एक ओर तो हेमचन्द्र ने इस भाषा को ` अपभ्रंश ` की संज्ञा प्रदान की और दूसरी ओर इसे ` हिंदकी ` कहा जाता था।

पंजाबी के लिये उस समय ` हिंदकी ` शब्द का प्रयोग होता था । ` हिंदकी ` नाम भी विदेशियों का ही दिया हुआ था । इस समय की पंजाबी ने अपभ्रंश से अलग होकर अपना स्वतंत्र मार्ग अपना लिया था , परन्तु उसमें पूर्ण निखार नहीं आया है । इसके पश्चात गोरखनाथ, चरपटनाथ आदि की बानियों में पंजाबी के उदाहरण मिलते हैं । गोरखनाथ का समय १०वीं सदी है । पंजाब नाथपंथियों का केन्द्र है इसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी स्वीकार किया है ।[1] पंजाब का जालंधर शहर प्रसिद्ध नाथपंथी जालंधर का ही स्मारक है । सियालकोट जालंधर और बालनाथ दा टिब्बा नाथपंथियों के प्रसिद्ध केन्द्र होने के कारण इन्होंने अपने प्रचार के लिये लोकभाषा को अपनाया । अपनी बानियों को जनजीवन तक पहुंचाने के लिये लोकभाषा का व्यवहार आवश्यक था । पुरानी पंजाबी में वैसे तो अपभ्रंश का काफी प्रभाव है , चन्दर बरदाई की रासो में भी पंजाबी के शब्द मिलते हैं । इससे १२-१३ सदी की पंजाबी के रूप के दर्शन हो जाते हैं ।

इस समय पंजाबी को भारी योगदान बाबा फरीद से मिला । संतमत से पूर्व पंजाबी को साहित्यिक पराकाष्ठा तक पहुंचाने का सबसे अधिक श्रेय ` फरीद ` जी को ही है । फरीद जी का समय ई० ११७२ से १२६६ माना जाता है । फरीद की भाषा में काफी परिवर्तन है , अत: कई विद्वान इनकी भाषा मानने को तैयार नहीं है । किंतु इसमें आश्चर्य की कोई बात नहींहै। मुसलमान ही पंजाबी के पहले कवि थे । बहुत दिनों से वे उसमें रचना करते आ रहे थे । पंजाबी को अपनी रचना का माध्यम बनाकरउन्होंने जनता के निकट जाने का प्रयास किया । फरीदजी के पदों में अपभ्रंश का थोड़ा पुट अवश्य है ।[2]

पंजाबी भाषा में साहित्य रचने वालों में अमीर खुसरो ` का नाम भी उल्लेखनीय है । अमीर खुसरो ने बादशाहों का जमाना देखा था अत: वे कई भाषाओं के ज्ञाता थे । अमीर खुसरो द्वारा रचित ` अमीर खुसरो दीवार` अप्राप्य है ।[3]

- -

१. रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास , पृ०-१४
२. संत-साहित्य, डा० सुदर्शनसिंह मजीठिया, पृ०-२७
३. वही पृ०-२७

१५वीं सदी तक पंजाबी पूर्णरूप से अपभ्रंश के प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाई थी । इस समय की पंजाबी में एक नवीन प्रवृत्ति दिखाई पड़ने लग जाती है, वह है अरबी, फारसी, और तुर्की शब्दों का प्रवेश। इस समय पंजाब में साहित्य के लिए लोकभाषा के रूप या तो पंजाबी को अपनाया जाता था या परम्परागत रूप को ही अपना लिया जाता था । परम्परावादियों में हिन्दू कवि या योगी आते हैं । इनकी भाषा में हिन्दी विशेषकर "ब्रज" का प्रभाव अधिक दिखाई पड़ता है । फरीद, बुल्ले आदि ने लोकप्रणाली को अपनाया, अतः ये मुसलमान कवि इन नाथपंथियों या हिन्दू कवियों की अपेक्षा जनता के अधिक निकट थे । उस समय की पंजाबी में अपभ्रंश शब्दों का बाहुल्य है । साथ ही इसमें स्वर बाहुल्य भी मिलता है । बहुत से शब्दों संस्कृत का तत्सम रूप में प्राप्त नहीं होता । बहुत से शब्दों का अन्त उकार से होता है । 'य' के स्थान पर ज, 'न' के स्थान पर 'ण' का प्रयोग उपलब्ध होता है । अनुनासिकता की भी पर्याप्त बहुलता है । अपभ्रंश के ही समान इस समय की भी क्रिया में संश्लिष्टात्मक प्रवृत्ति पाई जाती है । क्रिया रूपों में अपभ्रंश का प्रभाव इस समय नया नहीं था । शब्दावली में भी तत्सम शब्दों का प्रायः अभाव ही पाया जाता है । इस युग की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि "वर्गीय महाप्राण घ, झ, ध, ढ, भ के प्राण या 'ह' उच्चारण के स्थानपूर्ति, कण्ठनालीय स्पर्श के साथ मिली हुई ध्वनि से की जाती है । इन्हें आरवलित ध्वनियां (Implosives Recursives) कहा जाता है ।" १

पंजाबी की ये ध्वनियां उसकी अपनी विशेषता है । रूप विचार की दृष्टि से भी पंजाबी में कुछ मुक्तता आ गई थी । इस समय पंजाबी संयोगात्मक अवस्था से वियोगात्मकअवस्था में आ रही थी । कारक और विभक्तियों के स्थान पर पंजाबी ने कुछ अपने उपसर्ग बना लिये थे । इसमें इतनी सफलता आ गई थी कि वह सहायक क्रिया से ही लिंग वचन,काल को व्यक्त कर सके ।

इस प्रकार संतमत के उद्भव के पूर्व की पंजाबी भाषा 'अपभ्रंश प्रधान' थी एवम् उसमें साहित्य अधिक नहीं रचा गया था।

- -

१. संत-साहित्य,डा०सुदर्शन सिंह मजीठिया,पृ०-२७

२. वही पृ०-२७

मध्यकाल-

१५वीं सदी से देश में भक्ति आन्दोलन फैल रहा था फलस्वरूप रामचरित मानस, सूरसागर और गुरु ग्रंथ साहिब जैसी रचनाएं सामने आईं। इस समय प्रान्तीय भाषाओं में निखार आ गया था, पंजाबी भी इसका अपवाद नहीं रह सकी । निकटवर्ती अन्य प्रान्तीय भाषाओं का उस पर प्रभाव पड़ा । पंजाबी इस समय स्वतंत्र रूप से विकसित हो चुकी थी और उसमें प्रौढ़ काव्य-रचना होने लगी थी । भक्त कवियों ने जनता तक अपनी वाणी को पहुंचाने के लिए ' लोकभाषा ' का व्यवहार तो किया, किंतु साथ ही साथ अनेक भाषाओं के विभिन्न शब्दों को भी ग्रहण किया । इसके परिणामस्वरूप पंजाबी भाषा ने कई शब्द बाहर से आत्मसात कर लिए ।

भक्ति आन्दोलन के कारण पूर्व के शब्द पश्चिम और पश्चिम के शब्द पूर्व की ओर गए । पंजाब अन्तः प्रान्तीय भाषाओं का संगम हो गया । उस समय पंजाबी में राजस्थानी, बृजभाषा, अवधी, मराठी, और सिंधी के शब्दों ने प्रवेश किया । परन्तु इन सब को पंजाबी ने अपना बनाने के बाद ही आत्मसात किया । पंजाबी में मिलकर उन शब्दों पर पंजाबीपन आ गया । दूसरी ओर सूफी कवियों ने इस भाषा को अरबी फारसी और तुर्की के शब्द दिए । पंजाबी भाषा का सूफी साहित्य भारत की अन्य भाषाओं से अधिक है । हिंदी की अपेक्षा पंजाबी में सूफी साहित्य अधिक उपलब्ध है । इस समय को पंजाबी में पूर्णरूप से पंजाबीपन आ गया था। पंजाबी अपने क्षेत्र से हटकर दूर-दूर प्रभाव डाल रही थी। उर्दू के जन्म में पंजाबी का बहुत योगदान है । कबीर आदि के पद तो शुद्ध पंजाबी में मिलते हैं । पंजाबी के इस समय चार रूप दिखाई पड़ते हैं -

१- संतभाषा प्रभावित पंजाबी
२- बृजभाषा प्रभावित पंजाबी
३- फारसी प्रभावित पंजाबी
४- देशी भाषा प्रभावित पंजाबी

सिख गुरुओं ने जिस भाषा का व्यवहार किया उसे ' संतभाषा ' की संज्ञा दी जा सकती है । जिस भाषा में सिख सिद्धांत लिखे गए वह ब्रज-भाषा प्रधान पंजाबी है । सूफी कवियों ने जिस भाषा का व्यवहार किया है, वह फारसी प्रधान पंजाबी है । भाई गुरुदासजी की रचनाओं में पाई जाने वाली भाषा को देशी पंजाबी कहा जा सकता है , उसमें साहित्यिक पुट अधिक है । इस समय तक पंजाबी का शब्द भंडार काफी विकसित हो गया । 1

आधुनिक काल में पंजाबी को सूफी कवि काव्य-भाषा बना चुके थे । मुसलमान होने के नाते फारसी का प्रयोग अधिक हुआ इन मुसलमान कवियों ने फारसी के किस्से कहानियों का पंजाबी भाषा में अनुवाद किया। फारसी मुसलमानों की भाषा के साथ राजभाषा भी थी । हिन्दी में साहित्यिक भाषा ब्रज भाषा ही प्रचलित थी । सिख और हिन्दू कवि पंजाबी की अपेक्षा ब्रज में ही कविता करते थे ।

पंजाबी को सन् १८०० के बाद भी रणजीतसिंह के समय तक राज्यभाषा का स्थान नहीं प्राप्त हो सका फारसी ही राज्यभाषा रही। पंजाबी लोकभाषा अवश्य थी, किंतु साहित्य और राजनीति में उसका महत्व गौण था । वारिसशाह और बुल्लेशाह की रचनाओं में पंजाबी पर पड़े हुए फारसी प्रभाव इसके उदाहरण हैं ।

१८६० ई० एजूकेशनल बोर्ड की स्थापना के साथ ही साथ उर्दू के साथ पंजाबी को ही पाठशालाओं की भाषा के रूप में स्वीकार किया गया। इस समय पंजाबी भाषा में राजनीतिक जागरूकता के दर्शन होते हैं । 2

साहित्यिक-पंजाबी तत्सम् शब्दों को अपने में आत्मसात करती रही है । अन्य भाषाओं के तत्सम् शब्द पंजाबी ने तद्भव बनाकर आत्मसात कर लिए थे उन्हें पुनः तत्सम् रूप में परिवर्तित किया जा रहा है ।

- -

१. संतसाहित्य - डा० सुदर्शनसिंह मजीठिया, पृ०-३६

2 " " "

पंजाबी अन्य भाषाओं के शब्द भी तत्सम् रूप में ही ग्रहण करने का प्रयत्न कर रही है । ` श ` ध्वनि दंतव्य ` स ` के रूप में पंजाबी में परिवर्तित हो गई थी । पुनः श ष स के स्थान पर ` श ` की स्थापना हो रही है । पंजाबी के रूप-परिवर्तन में भी सुधार हो रहा है ।

देवनागरी लिपि और गुरुमुखी लिपि -

गौरी शंकर हीराचंद ओझा के मतानुसार नागरी लिपि का प्रयोग उत्तर भारत में दसवीं सदी के प्रारम्भ में मिलता है ।[१] गुप्त लिपि के विकसित रूप का नाम (कल्पित) कुटिल लिपि रखा गया । उत्तर भारत में इसका प्रचार छठी शताब्दी से नवीं शताब्दी तक रहा । अक्षरों और स्वरों की कुटिलता के कारण इसे कुटिल लिपि बताया गया । इस समय शिलालेख, दानपत्र आदि इसी लिपि में लिखे गये थे । कुटिल लिपि से ही नागरी तथा काश्मीर की प्राचीन लिपि शारदा निकली । शारदा से वर्तमान टाकरी और काश्मीरी लिपियों की उत्पत्ति हुई । इन्हीं के मेल से कालान्तर में गुरुमुखी लिपि का विकास हुआ ।[२]

अं अः की पृथक योजना नहीं है । क्योंकि पंजाबी में विसर्ग तो होता ही नहीं । अनुनासिक स्वर अवश्य होते हैं । ख़, फ़, ज़, क़, ग़ आदि वर्णों का गुरुमुखी के मूलाक्षरों में अभाव है । इसके लिये फारसी का नुक्ता उपयोग में लाया जाता है । इस नुक्ते का प्रयोग पंजाबी भाषा में हिन्दी के समान ही होता है । ~~पंजाबी में घ, भ, ध, फ और ढ~~

स्वरों के लिए गुरुमुखी में मूल केवल तीन ही वर्ण हैं । उनमें मात्रा लगा कर अन्य स्वरों की रचना की जाती है । ऊ का उच्चारण ओंकार से होता है । गुरुमुखी का स (न) देवनागरी का ही म है । श और ष के लिए गुरुमुखी में केवल श और स का ही प्रयोग होता है। पंजाबी में घ, भ, ध, फ और ढ अपनी मूल ध्वनियां खो चुके हैं । इन स्वरों का उच्चारण पंजाबी की अपनी मौलिक विशेषता है। यह अन्य भारतीय भाषाओं में नहीं पाई जाती।

- -

१. भारतीय प्राचीन लिपिमाला(ओझा) १९१८ पृ०-६०
२. वही पृ०-६५

प्राचीन नागरी की पूर्वी शाखा से लगभग १० वीं सदी में बंगला निकली । उसका ही आधुनिक परिवर्तित रूप आधुनिक बंगला, मैथिली, उड़िया और नेपाली लिपियां है । देवनागरी से ही गुजराती, कैथी, महाजनी तथा उत्तरभारत की अन्य लिपियां सम्बद्ध है । ओझा जी के अनुसार दक्षिण में नागरी लिपि में कुछ शिलालेख आठवीं सदी के पाये जाते हैं । दक्षिणी की नागरी लिपि को " नंदि नागरी " की भी संज्ञा दी गई है । दक्षिण में संस्कृत पुस्तकें लिखने में उसका प्रचार है । राजस्थान उत्तर प्रदेश, बिहार मध्यभारत एवं विन्ध्य प्रदेश में पाए गए शिलालेख की भाषा नागरी ही है ।[1]

पंजाबी भाषा लिखने के लिये गुरुमुखी लिपि का व्यवहार होता है। मुसलमान पंजाबी लिखने के लिये फारसी लिपि का व्यवहार करते हैं । पंजाबी भाषा के समस्त उच्चारण देवनागरी लिपि में ठीक-ठीक नहीं आ सकते । गुरुमुखी से पहले " लंडा लिपि " का प्रयोग होता था । " लंडा " दुकानदारों या महाजनों द्वारा व्यवहृत होती थी । लंडा लिपि से स्वरों का उच्चारण पूरी तरह से नहीं हो सकता क्योंकि लंडा की स्वरध्वनियां सीमांत है। स्वरों के उच्चारण के लिये पर्याप्त वर्णन नहीं है । एक ही वर्ण से दो या तीन तरह की ध्वनि निकाली जा सकती है । इसका ज्ञान भाषा की प्रकृति सीखने से ही हो सकता है नियम विशेष से नहीं उच्चारण में स्वर तो अधिक है , किंतु लिखने में कम हैं । गुरु अंगदजी (द्वितीय गुरु) के समय लंडा का प्रयोग होता था।

प्रचलित सर्वसाधारण और ग्रियर्सन के मतानुसार गुरुमुखी लिपि की रचना गुरु अंगदजी ने की थी । वस्तुत: गुरुमुखी लिपि के ३५ अक्षर इतने प्राचीन है , जितने भारतीय भाषाओं के अन्य अक्षर। यह लिपि तो काश्मीर, चम्बा, कुल्लु प्रदेशों में प्रचलित उस समय की शारदा लिपि ही है । उसका वर्ण-क्रम ब्राह्मी से ही प्रारम्भ होता है ।[2] पंजाब में सिख गुरुओं से सदियों पहले लौकिक जीवन गतिहीन हो गया था । पंजाब में साक्षरता नाम मात्र की थी ।

---

१. भारतीय प्राचीन लिपिमाला(ओझा) १९१८ पृ०-७०
२. लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया भाग-६, ग्रियर्सन -पृ० ५३०

संस्कृत को देववाणी की संज्ञा देकर उसे शूद्रों और स्त्रियों से दूर ही रखा गया था । उस समय के अधिकांश ब्राह्मण उससे अपनी रोटी कमा रहे थे। महाजन और व्यापारी वर्ग शीघ्रलिपि लंडा का ही प्रयोग कर रहे थे । लंडा लिपि में उस समय तक सिखों की ` जन्मसाखी ` तथा ` ग्रामगीत ` ही साहित्य के नाम पर रचित थे । अतः पंजाब के बौद्धिक जीवन को पुनः जागृत करने के लिये गुरु अंगददेवजी ने पहाड़ी प्रदेश की लिपि को अपनाया और लगभग नागरी की सहायता से लंडा को सुधार को ` गुरुमुखी ` नाम रखा। इसका एक तर्क यह भी दिया जा सकता है कि सिक्खों ने (शिष्यों ने) यह भाषा एवं लिपि अपने गुरु के मुख से सुनी, सीखी इसलिये उसे ` गुरुमुखी ` की संज्ञा प्रदान की ।[1] वस्तुतः इस लिपि की रचना गुरु अंगदजी-पहले गुरु नानक जी के समय में हो चुकी थी इसका गुरुमुखी नामकरण नहीं हुआ था । क्योंकि लंडा और गुरुमुखी में काफी समानता है । लगभग १५ अक्षर दोनों लिपियों में एक से ही हैं । लंडा पर शिरोरेखा नहीं होती । गुरुमुखी के सात आठ अक्षर शारदा लिपि से मिलते हैं । नागरी अक्षरों के साथ भी कुछ अक्षरों की समानता है । युनानी का भी कुछ प्रभाव गुरुमुखी पर है । गुरुमुखी में मूल वर्ण ३५ होते हैं इसलिये इसे पैंती अखरी (पैंतिस अक्षरी) भी कहते हैं ।[2]

गुरुनानक एवं अन्य पंजाबी संतों के आगमन के पूर्व जितनी भी रचनाएं रची गईं वे मुलतानी या ब्रज भाषा में लिखी गईं । अरबी-फारसी युक्त शब्दों का भी विशेष प्रचलन था । ब्रजभाषा एवं अन्य भाषाओं से गृहीत शब्द भी पंजाबी में स्थान पा रहे थे । पंजाबी संत-साहित्य के प्रथम कवि ` फरीदजी ` की भाषा भी मुलतानी एवं नागरी-शब्दों से युक्त है । धीरे-धीरे संतों ने ब्रज भाषा छोड़कर पंजाबी शब्दों को अधिक स्थान देना शुरू कर दिया ।

- -

१. संतसाहित्य- डा० सुदर्शनसिंह मजीठिया, पृ०-३३
२. वही पृ०-३४

ख- समकालीन संत साहित्य का सामान्य परिचय -

संतों ने अपने युग की विषमताओं को दूर कर एक स्वस्थ और कल्याणकारी समाज-स्थापना का प्रयत्न किया । इन संतों में सर्वत्र भाव-साम्य विचार और चिन्तन ऐक्य उपलब्ध होता है, फिर भी उनमें मौलिकता सर्वत्र विद्यमान है । इन संतों की परम्परायें बड़ी महान, उच्च और बड़ी भव्य हैं । इनके साहित्य में लोक-कल्याण की भावना सर्वत्र दिखाई पड़ती है । समाज की सेवा इन्होंने निष्पक्ष और निस्वार्थ भावना से की । इनमें यह भावना थी -

कबीरा खड़ा बाजार में मांगत सबकी खैर,
ना काहू से दोस्ती न काहू से बैर ।

संतों का व्यक्तित्व अपने आप में अत्यन्त महान एवं अद्भुत है । कबीर, नानक, दादू, मलूकदास, सुन्दरदास, दरिया द्वै, बुल्ला साहब, यारी साहब, चरनदास, सहजोबाई आदि संत आत्मायें इसी महान व्यक्तित्व की परम्परा में अवतीर्ण हुईं और अपने युग की जनता को कल्याणकारी ज्योति के दर्शन कराए । इन्होंने ` कथनी ` और ` करनी ` के ऐक्य द्वारा नवीन जीवन दर्शन की स्थापना की ।

संत जयदेव -

हिन्दी के संत कवियों की परम्परा कोमलकान्त पदावली के गायक, गीतगोविन्द ` के अमर रचयिता ` संत जयदेव ` से प्रारम्भ होती है। इनका समय सन् ११७६ माना जाता है । [१] आपने बंगाल के सेन वंशी राजा लक्ष्मण सेन के दरबारी कवि के रूप में रहकर विशेष ख्याति प्राप्त की । इसका प्रमाण - ` श्री जयदेव सहचरेण महाराज लक्ष्मण सेन मंत्री वरेणोमापतिधरेण है। चंद बरदायी की यह पंक्ति - जयदेव अष्ट कवि कविरायं, जिनि केवल किय गोविन्द गाय से उनका पूर्ववर्ती या समसामयिक होना प्रमाणित होता है । अतः इनका जीवनकाल वि० संवत् की १२वीं शताब्दी रखा जा सकता है । [२]

---

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ०-६२
२. हिंदी संत साहित्य, पृ०-२८

जयदेव ने अपनी रचना के अन्त में पिता का नाम भोजदेव और माता का नाम राधारानी (देवी) दिया है । ' भक्तमाल ' में वर्णित अनेक चमत्कार पूर्ण घटनाओं के आधार पर कहा जाता है कि जगन्नाथजी की प्रेरणा से एक ब्राह्मण अपनी कन्या को इनकी पर्णकुटी में छोड़ गया, जिससे विवाह कर अपना सुखपूर्ण जीवन व्यतीत किया । इसी समय इन्होंने ' गीत गोविंद ' के पदों की रचना की और उन्हें प्रचुर प्रतिष्ठा मिली ।[१]

जयदेव का एक मात्र काव्य ग्रंथ ' गीत गोविंद ' अपने शब्द सौंदर्य पद लालित्य एवं संगीत माधुर्य के लिये संस्कृत साहित्य में अद्वितीय माना जाता है इसमें श्रृंगार के साथ भक्ति का पुट पाया जाता है ।[२]

सिक्खों के आदि ग्रंथ में संग्रहीत जयदेव के दो पदों में क्रमशः उपदेश तथा योग-साधना का उल्लेख हुआ है । प्रथम में राम-नाम , सदाचार के साथ-साथ मनसा वाचा कर्मणा से की जाने वाली ' हरि भगत निज-निहकेवला अर्थात् अनन्य भक्ति का महत्त्व बताते हुए योग यज्ञ एवं दानादि से भक्ति को श्रेष्ठ बतलाया है । इनकी भाषा पंडिताऊ कही जा सकती है। नाथपंथ तथा सिद्धों के बौद्धमत से प्रभावित शब्दावली की शैली संतों के शब्दों की भांति है ।

जयदेव निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी थे । कुछ व्यक्तियों का कथन है कि ये विष्णु स्वामी के सम्प्रदाय में दीक्षित थे । इसी का परिणाम आगे ' वारकरी सम्प्रदाय के अभंगों में स्पष्टतः लक्षित हुआ । आपने एक महत्वपूर्ण संधिकाल में उत्पन्न होकर ऐसे मार्ग का प्रदर्शन किया, जो संत मत के लिये आदर्श बना । गुरुनानक देवजी ने भी अपनी वाणी में इनसे मिलते भावों-विचारों के शब्द रचे हैं । इनके अनुसार मानव नाश्वान है और चार दिन का ही मेहमान है अतः उसे इसका सदुपयोग करना चाहिये।

---

१. हिन्दी संत साहित्य, त्रिलोकीनाथ दीक्षित, पृ०-२८
२. उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ०-६५

राम का नाम सिमरन से मुक्ति मिल सकती है, अतः लालच रहित होकर परमात्मा की भक्ति में लीन हो जाना चाहिये। उनके अनुसार -

क. लोभादि दिशट पर ग्रिहं जदि बिधि आचरणं ।।
तजि सकल दुहक्रित दुरमती भजु चक्रधर सरणं।।
हरि भगति निज निहकेवला रिद करमणा बचसा।।
जोगेन किं जगेण किं दानेन किं तपसा ।।
गोबिंदगोबिंद जपि नर सकल सिधि पदं ।।
जैदेव आइओ तस सफुटं भव भूत सरब गतं।। [१]

ख. चंद सत भेदिआ नादसत पूरिआ सूर सत खोड़सा दतुकीआ।।
अबल बल तोड़िआ अचल चलु थपिआ अघड़ु घड़िआ तहा अपिउ पीआ।।१।।
मन आदि गुण आदि वखाणिआ तेरी दुबिधा द्रिसटि संमानिआ।।
अरधि कउ अरधिआ सरधि कउ सरधिआ सलल कउ सललि संमानि आइआ।
बदति जैदेउ जैदेव कउ रंमिआ ब्रहमु निरबाणु लिवलीणु पाइआ।।२।। [२]

सदना -

सदना के जन्मस्थान का अभी ठीक पता नहीं है किंतु इनका जीवन-काल १४वीं शताब्दी का अन्तिम भाग माना जाता है। ये जाति के कसाई माने जाते थे, किंतु जीवहत्या से इन्हें घृणा थी। अपनी जीविका चलाने के लिए ये अन्य कसाइयों से मांस लेकर बेचा करते थे। इस प्रकार इन्होंने अन्य संतों की भांति अपने पैतृक व्यवसाय को त्यागा नहीं। इनके विषय में एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है, कि अज्ञानवश इनके तोल बाटों में एक बार शालिग्राम की एक मूर्ति मिल गई थी जिसे एक साधु ने फटकार कर छीन ली थी, और अपने पूजा घर में रख ली थी। रात में ब्राह्मण को स्वप्न हुआ कि शालिग्राम को पूजनगृह की अपेक्षा इनकी दुकान में ही रहना पसंद है। अतएव उसे विवश होकर उक्त मूर्ति इन्हें लौटा देनी पड़ी।

- -

१. श्री आदि ग्रंथ साहिब - राग गुजरी वाणी श्री जैदेवजी की पदाघर-४
२. वही राग मारु, पृ०-११०६

इसी प्रकार जगन्नाथ पुरी की यात्रा सम्बन्धी भी अनेक घटनाएं तथा चमत्कारपूर्ण कथाएं इनसे जुड़ी हुई है । [१]

' आदिग्रंथ ' (सिक्खों के धार्मिक ग्रंथ) में सदना जी की एक पद आया है जिसमें इनके आर्तभाव का आत्मनिवेदन तथा दैन्यभाव एवं एकान्तनिष्ठा प्रकट होती है । इनके छः पदों का संग्रह ' संत गाथा ' में मिलता है, जिसमें कृष्णावतार की भक्ति दिखाई पड़ती है । इनकी भाषा में अरबी फारसी के शब्द मिलते हैं ।

सदना जी भेषधारियों की निंदा करते हुए अपने एकमात्र पद में कहते हैं -

' नृप कंनिआ के कारनै इक भइआ भेखधारी ।।
कामारथी सुआरथी वा की पैज सवारी ।।
तव गुन कहा जगत गुरा जउ करमु न नासै ।।
सिंघ सरण कत जाईऐ जउ जंबुकु ग्रासै ।। रहाउ ।।
ऐक बूंद जल कारने चात्रिक दुखु पावै ।।
प्रान गए सागर मिलै फुनि कामि न आवै ।। [२]

संत वेणी -

वेणीजी का समय भी संदिग्ध है । ' आदिग्रंथ ' में संग्रहीत इनके एक पद द्वारा स्पष्ट होता है कि इन्हें सद्गुरु द्वारा ज्ञान का प्रकाश मिल गया था । आदि ग्रंथ के पद से इनकी भाषा कबीर से भी प्राचीन प्रतीत होती है । इनके पदों पर नाथयोगी सम्प्रदाय की छाप दिखाई पड़ती है । आदिग्रंथ में संग्रहीत तीन पदों में योग साधना की चर्चा है, जीवनमुक्त का आदर्श है तथा मुख्य उद्देश्य ' आतम तत्तु ' की अनुभूति है । इसी प्रकार अगम्य द्वारा तथा ' शून्य महलिया ' आदि का विस्तृत वर्णन भी इनके पदों में प्राप्त होता है ।

---

१. संत मत एवं संत साहित्य, त्रिलोकीनाथ दीक्षित, पृ०-२६
२. आदि ग्रंथ साहिब, पृ०-८५८

गुरुनानक जी इनके तीनों पदों से अत्याधिक प्रभावित थे । अलंकारों के कठिन होने के बावजूद भी इनके पद काव्य की दृष्टि से अत्यंत उच्च कोटि के हैं । इन्होंने हरि का नाम सुमिरन पर बहुत बल दिया है-

" रे नर गरभ कुंडल जब आछत उरध धिआन लिव लागा।।
मिरतक पिंड पद मदन अहिनिसि ऐकु अगिआन सुनागा।।
ते दिन संमलु कष्ट महा दुख अब चितु अधिक पसारिआ।।
गरभ छोडि मित्र मंडल आइआ तउ हरि मन हु बिसारिआ ।। [१]

संत नामदेव -

दक्षिण भारत के नामदेव नाम के अनेक संत हुए हैं अतः उक्त प्रमुख संत नामदेव के विषय में निश्चित रूप से जीवनी एवं रचना संबंधी तथ्यों को संग्रहीत कर प्रामाणिक परिचय देना कठिन ही नहीं संदेहास्पद कार्य भी है । उनकी कुछ रचनाएं मराठी अभंगों के बड़े-बड़े ग्रंथों में मिलती हैं और आदि ग्रंथ वाले नामदेव का भी अधिक परिचय नहीं मिलता है ।

" आदिग्रंथ " में संग्रहीत नामदेव की रचनाओं तथा महाराष्ट्र संत रचित अभंगों की तुलना दोनों के एक होने का प्रमाण देती हैं । दोनों ने " विट्ठल " को इष्टदेव मानकर भक्ति प्रदर्शित की है । दोनों में व्यक्तिगत प्रसंग, पदों के भावों पर नाथपंथियों के योग की छाप स्पष्ट दिखाई पड़ती है । [२]

" संत-पंचायतन " के प्रसिद्ध महापुरुष नामदेव उसी समुदाय के संत " तुकाराम " के आध्यात्मिक आदर्श भी थे । इससे उत्तर भारत के संत अत्याधिक प्रभावित हुए । अतः ये उत्तर भारत तथा महाराष्ट्र के संतों के पथ प्रदर्शक कहे जाते हैं । इनकी माता का नाम गोनाबाई तथा पिता का का नाम दामा शेट बताया जाता है । इनका जन्म कार्तिक सुदी ११ सं० १३२६ में हुआ था । इनकी पत्नी का नाम राजाबाई था। इनको चार संताने क्रमशः नारायण, महादेव, गोविन्द, विट्ठल तथा कन्या का नाम लिंबाबाई था । युवावस्था में ये डाकू थे ऐसा कहा जाता है किंतु एक स्त्री पर करुणा कर यह यह कार्य छोड़कर पण्ढरपुर चले गए।

---

१. ~~अनमन~~ आदिग्रंथ, पृ०-८५८
२. उत्तरी भारत पृ०-१०५

इनके गुरु विसोबा खेचर नाम संत थे । [1]कुछ विद्वान संत ज्ञानेश्वर को भी इनका गुरु मानते हैं । इन्होंने भक्त ज्ञानदेव के साथ तीर्थयात्राएं की , जिनका उल्लेख ` तीर्थावली ` में मिलता है । तीर्थयात्रा के पश्चात ही ज्ञानदेव का देहावसान हो जाने से दक्षिण से उदासीन हो पंजाब प्रान्त की ओर भ्रमण करते रहे तथा ` घोमन ` गांव में बस गए , यहीं पर इन्होंने अपनी रचनाएं प्रस्तुत की थी तथा यहीं पर इनका देहावसान हो गया ।[2] आचार्य सेन के मतानुसार वहीं उनके तथा उनके शिष्यों का मठ स्थापित हो गया तथा` बाबा नामदेव का सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ । विलियम कुक के अनुसार ये ` नामदेव पंथी ` कहे जाते हैं नामदेव भक्त की रचनाएं ` आदिग्रंथ ` में संग्रहीत हैं तथा इनकी विचार-धारा सिख धर्म के अनुकूल है । इनके अनुयायी विशेषकर जालन्धर, गुरुदासपुर और हिसार में आज भी हैं । [3]

भक्त नामदेव सदैव प्रभु भक्ति में तल्लीन रहा करते थे अत: इनका परिवार सदैव दरिद्रता से अभिशप्त रहा । अपने जीवन के अन्तिम काल तक इनकी पर्याप्त ख्याति प्राप्त हो गयी थी । यद्यपि नामदेव की मिस्त रचनाओं की प्रामाणिकता संदिग्ध है , किंतु उनके ` आदिग्रंथ ` में संग्रहीत पदों तथा मराठी संग्रहों में पाए जाने वाली कतिपय रचनाओं की प्रामाणिकता असंदिग्ध है , अत: इन्हीं पर अन्वेषण करना पड़ेगा । ` आदिग्रंथ ` के अन्तर्गत आये हुए उनके पदों की संख्या ६२ है और मराठी संग्रह में संग्रहीत हिन्दी पद प्राय: १०२ तक हैं । [4]आपके विचार महाराष्ट्र के ` वारकरी सम्प्रदाय ` से प्रभावित है । इस सम्प्रदाय के संतों में निर्गुण सर्वात्मस्वरूप, अद्वैतब्रह्म के प्रतिपूर्ण निष्ठा तथा साथ ही ऊंच-नीच का भेदभाव नहीं था ।

- -

१. लक्ष्मण रामचंद पांगारकर - श्री ज्ञानेश्वर चरित्र,गीता प्रेस गोरखपुर पृ०-१३१

२. संतमत एवं संत साहित्य,पृ०-३१

३. संतमत और संत साहित्य,पृ०-३२

४. उत्तरी भारत , पृ०-११६

संत नामदेव ने अपने ` गोविंद ` का व्यापक, पुरक मणियों के भीतर ओत-प्रोत धागे की भांति अन्तियामी भी माना है, तथा सर्वत्र ` विट्ठल ` का ही दर्शन कर पूर्ण आनंद की प्राप्ति की है। आपके पदों में राम के प्रति अनन्य भक्ति का प्रदर्शन है, तथा उस एक राम-भक्ति को अपनाकर अन्य की उपासना व्यर्थ कही है। उनके अनुसार ` सनेही राम ` के मिलते ही पारस के स्पर्श के समान सब कुछ कंचन हो जाता है। अहं-भाव का भ्रम जब दूर हो जाता है तो फिर ` ठाकुर ` एवं ` जन ` एक ही हो जाते हैं। इनकी भक्ति में ` नाम-साधना ` का विशेष महत्व है। उससे मानसिक दृढ़ता तथा फिर ` मुरारि ` की प्राप्ति और इस प्रकार संसार से पार जाना सरल हो जाता है।[1]

आपका सम्पूर्ण जीवन भक्ति-रस से आप्लावित रहा। सम्पूर्ण उत्तर भारत की संत परम्परा में आप उच्च कोटि के भक्त थे। इनका देहावसान संवत् १४०० पंढरपुर में हुआ था।[2]

इनमें एक ऊंचे कवि की प्रतिभा फलकती है। आत्मवाद में कौशल समाने का एक अद्वितीय सफल प्रयोग है। संतों के पास ` गोविंद ` एवं नामदेव के पास ` राम ` किस प्रकार रहता है, दैनन्दिन जीवन की ऐसी चीजें हैं जिन्हें नामदेव की सूक्ष्म दृष्टि ने देखा है जो, कुम्हार के घर हांडी, राजा के घर हाथी एवं ब्राह्मण के घर पत्रा को देखती हुई गोकुल में श्याम तक जा पहुंची है। यथा-

तीनि छंदे खेल आछे ।। रहाउ ।।
कुंभार के घर हांडी आछै राजा के घर सांडी गो ।।
बामन के घर रांडी आछै रांडी सांडी हांडी गो ।। १।।
बाणीए के घर हींग आछै भैसर माथै सींग गो ।।
देवल मधे लीगु आछै लीगु सींग हींग गो ।। २ ।।
तैली के घर तेल आछै जंगल मधे बेल गो।।
माली के घर केल आछै केल बेल तेल गो।। ३ ।।
संता मधे गोबिंद आछै गोकुल मधे सिआम गो ।।
नामे मधे रामु आछै,राम सिआम गोबिंद गो।। ४ ।।[3]

- -

१. आदि ग्रंथ, पृ०-११६७ २- उत्तरी भारत की संत परम्परा पृ-१२०
३. आदि ग्रंथ पृ० -७१८

संत त्रिलोचन -

संत त्रिलोचन भी नामदेवजी के समकालीन थे । प्रियदासजी के अनुसार ये वैश्य कुल से उत्पन्न साधु-भक्त थे । आपका नाम इनकेज्ञाता होने के अनुरूप ही है । ' आदिग्रंथ ' में संग्रहीत इनके चार पद तथा पदनोचर हैं। संतमत के अनुसार आदर्श जीवन का सारा रूप इनके नामदेव से किए प्रश्नोत्तरों में निहित है । इनके पदों में मराठी भाषा के भी चिन्ह उदित होते हैं। इनकी भाषा मुख्यः हिन्दी है । आपने मराठी में भी पद-रचना की है। कुछ पुरातन संग्रहों में भी इनकी रचनाएं मिलती हैं । किंतु उपलब्ध चार पद आदिग्रंथ में हैं । [1] प्रथम में इन्होंने माया-मोह का प्रभाव दिखाकर उसकी व्यर्थता दूसरे में झूठे सन्यासियों की आलोचना तथा उनको चेतावनी ,अन्तकाल के स्मरण तथा अंतिम कर्म की अमिट रेखा का प्रभाव दिखाया है तथा सर्वत्र भगवान का नाम-स्मरण का ही महत्त्व है । - यथा -

' अंत कालि जो लछमी सिमरै ऐसी चिंता महि जे मरै ।।
सरप जोनि वलि वलि अउतरै ।। १ ।।
अरी बाई गोबिंद नामु मति बीसरै ।। रहाउ ।।
अंति कालि जो स्त्री सिमरै ऐसी चिंता महि जे मरै ।।
बेसवा जोनि वलि वलि अउतरै ।। २ ।।
अंति कालि जो लड़िके सिमरै ऐसी चिंता महि जे मरै ।।
सूकर जोनि वलि वलि अउतरै ।। ३ ।।
अंति कालि जो मंदर सिमरै ऐसी चिंता महि जे मरै ।।
प्रेत जोनि वलि वलि अउतरै ।। ४ ।।
अंत कालि नाराइणु सिमरै ऐसी चिंता महि जे मरै ।।
बदति त्रिलोचन ते नर मुकता पीतांबर वाके रिदै बसै ।। ५ ।।
।।२।। [2]

कहा जाता है कि अन्तिम पद की रचना इन्होंने उस समय की थी जब ये भक्ति मार्ग में अधिक प्रवृत्त होकर सांसारिकता के प्रति विरक्त हो गए थे । और आर्थिक संकटों से गुजर रहे थे ।

---

१. आदिग्रंथ - सिरी राग, पद १, पृ०-९१
राग गुजरी -पद १-२, पृ०५२५,२६ तथा
राग धनासरी ,पद-१, पृ०- ६९४
२. आदिग्रंथ, पृ०-५२६

आपने पाखंडी , एवं आडंबरी साधुओं की निंदा कर उन्हें सच्चाई का ज्ञान कराया है एवं उन्हें मानव शरीर की अस्थिरता के विषय में बताया -

" अंतरु मलि निरमलु नहीं कीना बाहरी भेख उदासी ।।
हिरदै कमलु घरि ब्रह्मु न चीना काहे भइआ संनिआसी ।।
भरमे भूली रे जै चंदा , ।।
नहीं नहीं चीनिआ परमानंदा ।। रहाउ ।।
घरि घरि खाइआ पिंड बधाइआ खिंथा मुंदा माइआ ।।
भूमि मसाण की भसम लगाई गुरु बिन ततु न पाइआ ।। [१]

प्रभु के नाम-स्मरण के द्वारा ही नारायण की प्राप्ति एवं मोक्ष मिलता है । अतः उस सृष्टा को सदैव स्मरण रखना है । त्रिलोचनजी ने अपने पदों में यह ज्ञान दिया है कि बुरे कर्मों का परिणाम क्या होता है। आपकी भाषा अत्यन्त स्पष्ट और सरल है । किंतु इनकी हिंदी मराठी से प्रभावित है ।

रामानंद -

आपके जन्म के विषय में संदिग्धतापूर्ण विवरण मिलते हैं किंतु आपका जन्म १४वीं शताब्दी में माना जाता है । आप उत्तरी भारत में भक्ति ~~आन्दोलन~~ का प्रचार करने वाले राघवानंदजी के शिष्य थे । कहा जाता है कि भक्ति द्राविड़ उपजी लाए रामानंद -
किंतु आपके गुरु से विचार नहीं मिलते थे अतः वे अलग से प्रचार करने लगे। पहले इन्होंने संस्कृत में लिखना शुरु किया किंतु बाद में लोक बोली में ही लिखते रहे । निम्न वर्ग के कबीर जुलाहा, रविदास चमार, सेन नाई, धन्ना जाट के अतिरिक्त पीपा भी इनके शिष्यों में से था । संस्कृत के अतिरिक्त इनकी कुछ हिंदी रचनाएं भी मिलती हैं । आदिग्रंथ में इनका एक ही शब्द मिलता है -

---

१. आदिग्रंथ - पृ०-५२५

" कत जाइसे रे घरि लागी रंगु ।।
मेरा चितु न चलै मन भइऊ पंगु ।। रहाऊ ।।
ऐक दिवस मनि भई उमंग ।।
घसि चंदन चोआ बहु सुगंध ।।
पूजन चाली ब्रह्म ठाई ।।
सो ब्रह्म बतारेऊ गुर मन ही माहि ।। [1]

स्पष्ट एवं सरल शब्दों में आपने विचारों को प्रकाशित किया है। गुरु शब्द की कृपा से सब कुछ संभव हो सकता है। हमारे हृदय में ही सब कुछ वर्तमान है अतः बाहर जाकर पूजा-पाठ करने की आवश्यकता नहीं है।

संत कबीर -

हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा के प्रवर्तक कवि संत कबीर का जीवनवृत्त बड़ा ही विवादग्रस्त है। कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने तो कबीर के अस्तित्व पर ही संदेह किया है। किंतु इस प्रकार की धारणा भ्रान्तिमूलक है। महात्मा कबीर हमलोगों के मध्य उसी प्रकार अवतीर्ण हुए थे, जिस प्रकार राम, कृष्ण और बुद्ध हुए थे। भारत के महाकवियों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। कबीर की जन्मतिथि का निर्देश केवल " कबीर चरित बोध [2] में किया गया है। इसके अतिरिक्त गुलाम सरवर ने अपनी " खजीन अतुल असफिया [3] में भी कबीर की जन्मतिथि का निर्देश किया है। प्रथम ग्रंथ के अनुसार वे १४५५ में अवतरित हुए थे और दूसरी में उनका जन्म काल १५९४ बतलाया गया है, जो सर्वथा असंभव है। अन्तःसाक्ष्य में कहीं पर भी इनकी जन्मतिथि का उल्लेख नहीं मिलता है। एक बात में इतना अवश्य स्पष्ट होता है कि यह जयदेव और नामदेव के परवर्ती थे। जयदेव और नामदेव का समय क्रमशः बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी का अंतिम चरण माना जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि कबीर चौदहवीं शताब्दी के प्रथम चरण अथवा तेरहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में हुए थे। संत कबीर रामानंद और सिकन्दर लोदी के समकालीन थे। रामानंद का समय १३८५ से लेकर १५०५ के बीच तक का श्री गोविंद त्रिगुणायत मानते हैं। [4] कबीर की विचारधारा में वे अपने मत को प्रतिपादित करते हैं। सिकंदर लोदी का समय संवत् १५४६ से लेकर १५७४ के आसपास माना गया है। [5] यदि हम " कबीर चरित बोध " वाली तिथि को स्वीकार करें और कबीर की आयु १२० वर्ष मानलें तो वे दोनों ही के समकालीन सरलता से सिद्ध हो जाते हैं।

- -

१. आदिग्रंथ, पृ०-११९५ २. कबीर चरित बोध- पृ०- ६
३. खजीन अतुल असफिया - पृ० १२६
४. कबीर की विचारधारा - डा० गोविंद त्रिगुणायत - पृ०-३०-३१
५- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - डा० रामकुमार वर्मा-पृ०३३५

अनंत दास ने अपनी ' परचई ' में कबीर की आयु १२० वर्ष बतलाई है । [१] कबीर जैसे संयमी महात्मा के लिये इतनी आयु अधिक नहीं है । डा० गोविंद त्रिगुणायत भी इनकी आयु १२० वर्ष ही मानते हैं । [२] इस दृष्टि से उनकी निधन तिथि १५७५ निश्चित होती है ।

कबीर के जन्म-स्थान के बारे में अधिकांश लोगों का विश्वास है कि वे बनारस में उत्पन्न हुए थे । किंतु डा० त्रिगुणायत के अनुसार उनकी जन्मभूमि मगहर थी । उन्होंने एक स्थल पर लिखा है -

' सकल जन्म शिवपुरी गवाइया, मरती बार मगहर उठि आइया ।' [३]

किंतु दूसरे स्थल पर उन्होंने यह भी लिखा है कि -

' पहले दरसन मगहर पाया पुनि कासी बसे आई ।' [४]

वास्तव में यह मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि वह अपनी जन्मभूमि पर ही मरना चाहता है । संभवतः इसीलिए कबीर अन्त समय में मगहर चले गए थे, और वहीं पर ब्रह्मलोकवासी भी हुए थे ।

कबीर की जाति के संबंध में भी बहुत मतभेद हैं । सबसे अधिक प्रचलित और प्रामाणिक मत आचार्य हजारी प्रसादजी का माना जाता है । उन्होंने अनेक तर्कों के आधार पर कबीर को आश्रम भ्रष्ट जुगी जाति का रत्न सिद्ध करने की चेष्टा की है । [५] डा० गोविंद त्रिगुणायत उन्हें जुलाहा जाति का मानते हैं । [६]

कबीर के माता-पिता के संबंध में भी निश्चय नहीं है । कुछ लोग उन्हें दिव्य महापुरुष मानते थे । (कबीर-पंथी ऐसा मानते हैं) कुछ के अनुसार वह नीरू और नीमा के पोष्य पुत्र थे । कुछ लोग नीरू-नीमा को ही उनका वास्तविक माता-पिता मानते थे । एक जनश्रुति के अनुसार वे किसी विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हुए । लेकिन मेरे विचार से वे नीरू नीमा के पोष्य पुत्र थे क्योंकि उनका आचार जुलाहा जाति-विरुद्ध था ।

- -

१. अनंतदास की परचई - पृ०-
२. हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि - डा० गोविंद त्रिगुणायत पृ०-२७
३. संत कबीर राग गौड - पृ०-२५
४. वही रामकली- पृ०-३
५. कबीर - हजारी प्रसाद द्विवेदी-पृ०-५-११
६. कबीर की विचारधारा-डा० गोविंद त्रिगुणायत, पृ०-३७-४०

कबीर के गुरु के संबंध में भी तीन मत प्रचलित हैं -
कुछ लोग कबीर के किसी मानव गुरु होने के पक्षपाती नहीं है ।[1] कुछ दूसरे विद्वानों के अनुसार वे शेख तकी के मुरीद थे ।[2] अधिकांश विद्वान उन्हें रामानंद का शिष्य मानते हैं ।[3] अन्त:साक्ष्य और बहि:साक्ष्य से इसी मत की पुष्टि भी होती है ।

कबीर गृहस्थ थे । अन्तरसाक्ष्य से ऐसा प्रमाणित होता है कि उनकी दो स्त्रियां थीं एक का नाम लोई था और दूसरी का रमजनियां । कहते हैं कि इनके दो पुत्र और पुत्री भी थे । इनके एक पुत्र का नाम कमाल था जिससे संभवत कबीर बहुत प्रसन्न नहीं रहते थे । ये ही बाद में कबीर पंथ की एक शाखा के प्रवर्तक हुए ।[4]

कबीर कुछ पढ़े-लिखे न थे । यह बात विदिया न पढ़ऊं वाद नहीं जानऊं,[5] और मसि कागद न छूवौ नहि ` से प्रकट होती है । ऐसी अवस्था में उन्हें जीविकोपार्जन के लिए पैतृक व्यवसाय का ही आश्रय लेना पड़ा था । किंतु उनका मन नहीं लगता था । वे अपना अधिकांश समय सत्संग में ही व्यतीत करते थे । उन्होंने जगन्नाथपुरी, रतनपुर, बगदाद, समरकंद, गुजरात, पंढरपुर आदि स्थानों की यात्राएं की थीं । हज्ज और काबे तो वे कई बार गए थे - हज्ज काबे ह्वै ह्वै गया केती बार कबीर[6]

- -

१. कबीर लिज बायोग्राफी - डा० मोहनसिंह, पृ०-२२-२४
२. कबीर एण्ड द कबीर पंथ- पृ०-२५
३. हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ०-२८
४. संत कबीर-राग बिलावल-२
५. कबीर ग्रंथावली, पृ०-१३५
६. संत कबीर, पृ०-१६२

रचनाएं-

आजकल कबीर के नाम पर विस्तृत साहित्य उपलब्ध है। उनमें से यह निर्णय करना कठिन है कि वस्तुत: कौन-सी वाणी कबीर की है। उन्होंने समय-समय पर जो पद गाए उन्हें ही उनके भक्तों ने लिपिबद्ध कर लिया। कबीर पंथियों का तो कहना है कि सद्गुरु की वाणी अनंत है। किंतु इस इस कथन को उसी रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। स्व० रामदास गौड़ ने कबीर की पुस्तकों की एक लंबी सूची दी है। विल्सन साहब ने कबीर के आठ ग्रंथों का उल्लेख किया था। वेस्कट साहब ने उनके नाम पर बयासी ग्रंथों की सूची दी है। मिश्र बंधु ७५ ग्रंथों को कबीर के लिखे हुए बताते हैं। नागरी प्रचारिणी सभा के अप्रकाशित विवरणों के आधार पर कबीर १३० ग्रंथों के रचयिता माने जाते हैं।[१] इनके अतिरिक्त भी कबीर के नाम पर देश में सहस्त्रों बानियां प्रचलित हैं। कुछ बानियों का संग्रह आचार्य क्षिति मोहनसेन ने किया है।[२] इतने विशाल साहित्य में यह निश्चय करना कि कबीर की वास्तविक बानियां कौन सी हैं, बड़ा कठिन है। डा० बड़थ्वाल विशेषकर उन्हीं पुस्तकों पर विचार करते हैं जो श्री वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित हैं जो युगलानंद द्वारा संपादित ` कबीर सागर ` अथवा ` बोध सागर ` नामक ग्रंथ के ग्यारह भागों में संग्रहीत हैं।[३] श्री बड़थ्वाल ने ` बेलवेडियर प्रेस ` वाले चार संग्रहों की चर्चा की है। श्री वेंकटेश्वर प्रेस से छपी साखियों का नाम लिया है और ` आदिग्रंथ ` , बीजक, एवं ` कबीर ग्रंथावली ` नामक संग्रहों के विषय में विस्तार के साथ भी कहा है।[४] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने ग्रंथ ` कबीर ` की प्रस्तावना में इन सभी पुस्तकों के विषय में प्रश्न उठाया है।

- -

१. कबीर की विचारधारा - पृ०-५६
२. वही -पृ०-५५-६०
३. कबीर साहित्य की परख, ` परशुराम चतुर्वेदी, पृ-८२-८३
४. वही पृ०-८३

इसके साथ यह भी बतलाया है कि - " मैने महत्वपूर्ण सिद्धांतों के निर्णय के प्रसंग में यथासंगत मूलग्रंथों के उपयोग करने की चेष्टा की है । " किंतु वे भी मूलग्रंथों का स्पष्ट परिचय देते नहीं दीख पड़ते । [१] डा० रामरतन भटनागर का भी अनुमान है कि - " कुछ साहित्य ऐसा है जो निश्चित रूप से कबीर का है, या बहुत कुछ कबीर का है, वे इसके उदाहरण में क्रमश: बीजक, आदिग्रंथ तथा " कबीर ग्रंथावली " का नाम लेते हैं । [२] वास्तव में इन तीन ग्रंथों की ही रचनाओं का प्रामाणिक माना जा सकता है ।

कबीर साहब की जो रचनाएं हमें आज उपलब्ध हैं वे विभिन्न संग्रहों के रूप में हैं । अधिकतर पद, साखियां, रमैनियां, तथा कुछ अन्य प्रकार की हैं । इनमें से कुछ तो " पंचबानी " , सर्वंगी, " आदिग्रंथ " जैसे बड़े-बड़े संग्रह ग्रंथों में अन्य लोगों की भी रचनाओं के साथ संग्रहीत पाई जाती है, अथवा कतिपय गुटकों में मिलती है, नहीं तो " कबीर-बीजक " कबीर की बानी, " सत्य कबीर की साखी " जैसे स्वतंत्र संग्रह भी वर्तमान हैं। किंतु कबीरजी के ग्रंथों की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए हमारे पास सशक्त कसौटी नहीं है ।

कबीर की भक्ति का स्वरूप -

कबीर ने अपनी समस्त साधना अपने मौलिक और व्यक्तिगत रूप में ही की थी । उनकी भक्ति पर किसी ने रहस्यवाद का आवरण चढ़ाया है और किसी ने एकेश्वरवाद का । उनके विषय में यह भी कहा गया है कि वे अपने वाक-वैचित्र्य द्वारा लोगों को चकित कर देते थे - भ्रामक है।

---

१. कबीर साहित्य की परख, पृ-८३
२- वही पृ०-८३

सगुण भक्तों ने भक्ति के कई साधन बताए हैं। अनन्य भाव से भगवान की शरण ही भक्ति में आवश्यक होती है। कबीर का स्वर बाह्याचारों के खंडन में जितना तीखा है उतना ही भक्ति के क्षेत्र में विनयपूर्ण था। वे कहते हैं- कि स्वामी हमारी भी चिंता करो। हम भवजल में पड़े हुए हैं। यदि तुमने सहारा नहीं दिया तो हम बह जाएंगे। हम क्या मुख ऊपर विनती करें, हमें तो लाज आती है। मैं तो जन्म का अपराधी हूं। तुम मेरे अवगुण को देखो ही हो। मेरे नख-शिख में तो विकार ही भरे पड़े हैं। तुम ही मेरी रक्षा करो। मेरे अवगुणों को क्षमा कर दो। मैंने अवगुणों से बहुत से खराब काम किए हैं, चाहे दण्ड दो, चाहे क्षमा कर दो।" [१]

वे कहते हैं कि -" हे गोविंद मैं तुम्हारी शरण में आया हूं। क्यों नहीं मेरा उद्धार करते। मनुष्य वृक्ष के नीचे छाया ही की आशा से आता है। यदि उसमें से भी आग निकलने लगे तो फिर क्या उपाय है? हे स्वामी, कबीर तो केवल तुमको ही जानता है। वह तुम्हारी शरण में आया है। हे गोविंद सचमुच ही तुम डरने की वस्तु बन गए हो। कहां तो प्रेमरूपी अमृत देते थे, कहां वियोग की ज्वाला दे रहे हो।" [२]

प्रत्येक सम्प्रदाय में भक्ति के साधन और उपकरण निर्दिष्ट किए गए हैं। कबीर ने भक्ति के लिये इस तरह के किसी भी बाहरी सांप्रदायिक साधन की आवश्यकता को स्वीकार नहीं किया है। कबीर की भक्ति बिना शर्त आत्म समर्पण मांगती है। कबीर ने सहजावस्था को प्राप्त कर लिया है। भक्ति के लिए वे जाति पाति के बंधनों से रहित हैं।

---

१. कबीर ग्रंथावली, पृ०- १०६-१०
२. वही पृ०-१०६-१०

इसी भक्ति के लिए कबीर कहते हैं कि - " मैंने जाति और कुल दोनों का ही बंधन खुला दिया है । शून्य और सहज में मैं अपना कपड़ा बुनता हूं । स्वयं ही बुनकर उसे पहनता हूं । जहां अपने आपको नहीं पाता हूं वहां आकर गाने लगता हूं । अपने आपको गीतों के द्वारा पाने का प्रयास करता हूं । पंडित और मुल्लाओं ने जो कुछ भी लिखा है उसे हमने छोड़ दिया । देख लो हमारा हृदय पवित्र है । १

कबीर की भक्ति का मूलाधार ' प्रेम था ' । वे कहते हैं कि- " यह विरह की मारी वियोगिन पिउ-पिउ कर अपनी जान दे रही है । लेकिन उसका पिउ तो निर्गुण है । शून्य स्नेह राम के बिना वहां और किसी का महत्व नहीं है । " २

" विरह की मारी कबीर की आत्मा पिया मिलन की आस लेकर आखिर कब तक खड़ी रहे । पिया का स्थान ऊंचाई पर है । वह भला कैसे जाए । पांव ठहर नहीं पाते । बढ़-बढ़ कर गिर जाता है । सम्हल-सम्हल कर पांव रखती है । अंग-अंग कांप रहा है । पैर आगे नहीं चलते । भ्रम में पड़ी है । वह अनाड़ी है । उसे कभी मधुर मिलन का अनुभव नहीं हुआ । मार्ग संकीर्ण है । वाट अटपटी है मिलन कैसे हो ? अब तो सद्गुरु ही मार्ग दिखा सकते हैं । अन्तरपट खोलकर उन्हें ग्रहण करो ।" ३

कबीर ने भक्ति के लिए किसी बाहरी साम्प्रदायिक आवरण को न तो स्वीकार किया है, और न ही उस प्रकार के किसी विधान की व्याख्या ही की है । कबीर का व्यक्तित्व संसार के लिए भले ही बाहरी रूप से कठोर रहा हो, किन्तु उसके हृदय में तो प्रेम का निर्मल स्रोत ही बहता था । वहां तो अभिमान का स्थान है ही नहीं ।

---

१. कबीर" हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ०-३००
२. संत कबीर की साखी, वेंकटेश्वर, पृ०२६-२७
३. कबीर वचनावली, पृ०-१०२

वहां तो बलिदान देकर ही उसकी प्राप्ति होती है । वह तो प्रेम का घर है खाला का घर थोड़े ही है । पहले अपने अहंकार को मिटाना होता है तब कहीं ईश्वर की प्राप्ति होती है । वहां प्रेम को मिटाना नहीं पड़ता । उसे सुलगाना पड़ता है । प्रेम न तो खेत में ही उत्पन्न होता है और न बाजार में बिकता है । राजा हो या प्रजा जिसे उसकी आवश्यकता है, वह ले जा सकता है किंतु शर्त यह है कि उसे अपने सिर को कटवाना होगा और अपने अहंकार को दूर करना होगा । " [1]

" प्रेम की गली तो इतनी संकरी है कि उसमें दो, मनुष्य और उसका अहंकार नहीं आ सकते । जिस शरीर में प्रेम का संचार नहीं हुआ वह तो श्मशान के समान है । उसी प्रकार वह मनुष्य है जिसमें प्रेम का संचार नहीं हुआ ।" [2] प्रेम का बवंडर उठा और यह शरीर उसमें जाकर मिल गया। आखिर उसका ही तो अंश था । कबीर की भक्ति का ही केन्द्र बिन्दु ` प्रेम ` है ।

कबीर ने अपनी भक्ति में विरह के सुन्दर चित्र खींचे हैं । पिया के विरह में कबीर की भक्ति रूपी " प्रिया की आंखों में झाइंई पड़ गई है । नाम रटते रटते जीभ में छाले पड़ गए हैं । आंखों में आंसू बह रहे हैं । किंतु पपीहे के समान मुंह में रट लगी ही हुई है । वेदना से सारा शरीर म्लान हो गया है । राम कब मिलेंगे ? लोग सांसारिक पीड़ा ही समझ रहे हैं । [3]

कबीर की ` प्रेम पीड़ा ` भावजन्य है । लोग भले हो इसे दुख कहें किंतु यह उससे भिन्न है । प्रियतम के लिये रो-रोकर आंखे लाल हो गई हैं । प्रियतम का मार्ग यही है । पीड़ा और दुःख के पश्चात ही सुख की प्राप्ति होती है । वह हंसी और सुख नहीं चाहता । यदि हंसकर ही उसकी प्राप्ति हो जाती तो भला संसार में कोई दुखी ही क्यों रहता ? रोदन में ही भक्त के लिए उल्लास है ।

- -

१. कबीर वचनावली, पृ०-१०३
२. वही पृ०-१०६
३. वही पृ०-१०४

उनके अनुसार - " प्रिया से प्रेम रस लेकर कबीर ने अपने आपको मिटा दिया है । प्रिया के समक्ष उसने अपने अस्तित्व को भुला दिया है । एक म्यान में भला दो तलवारें कैसे रह सकती हैं । ? कबीर ने तो अब प्रेम का प्याला अपने अन्तर से लगा लिया है । रोम-रोम में वह प्रेम बस रहा है । कबीर ने गुरु-रस का पान किया है, छाँछ तक नहीं रही है। वह पक गया है । भव सागर से तर गया है । उसे संसार में आने की आवश्यकता नहीं है । पके घड़े को कुम्हार के चाक पर पुनः चढ़ाने की आवश्यकता नहीं होती ।" [१]

कबीर के ऐसे पद कम मिलेंगे जिनमें, भगवद् भक्ति संबंधी उदाहरणों की कमी हो । कबीर की साधना भक्ति की ही साधना है । कबीर के साहित्य के वास्तविक अध्ययन के लिए उनकी भक्ति को समझना आवश्यक है। कबीर साहित्य में भक्ति के अतिरिक्त जो अन्य बातें उपलब्ध होती है, उनका महत्व गौण ही है । भक्ति का महत्व सर्वोपरि है । इस असार संसार में भक्ति को ही सार माना है । जो लोग कबीर को केवल समाज सुधारक ही कहते हैं उनके भक्ति-पक्ष से आँख बंद किए रहते हैं । समाज-सुधारक कवि, निर्गुणियाँ या सहजिया होने से पहले कबीर एक भक्त हैं , यही उनका वास्तविक रूप है । उनकी वाणी में ज्ञान और भक्ति का अद्भुत समन्वय है। इसीलिए उन्होंने " प्रेम " पर ही अधिक बल दिया । कबीर वास्तव में ज्ञानी भक्त हैं । उनकी भक्ति में ज्ञान का मिश्रण है । ज्ञान और चिंतन करने के बाद भी ईश्वर से उन्होंने रागात्मक संबंध स्थापित किया था ।

कबीर नाथपंथियों के हठयोग के अच्छे जानकार होते हुए भी प्रेमाभक्ति की ओर अधिक बल देते हैं । साथ ही, वे स्मरण " (सिमरन)" एवं अभ्यास पर अटूट विश्वास रखते हैं । उनके अनुसार अपने " अहं " को त्याग कर इष्ट में लीन हो जाना एवं उसकी भक्ति करना ही सर्वोपरि साधना है।

- -

१, कबीर वचनावली, पृ०-१०४

कबीर जी के अनुसार समस्त सृष्टि एक ईश्वर की रचना है, अत: ऊँच-नीच का भेदभाव व्यर्थ है। सिमरन का मार्ग सभी के लिये खुला है। नर-नारी, ब्राह्मण-शूद्र का भेद इसमें मान्य नहीं। जो भी परमात्मा के सहचर्य का इच्छुक हो वह प्रेम-भक्ति द्वारा उसे प्राप्त कर सकता है। केवल भेष मनुष्य को सफलता नहीं दे सकता। सांसारिक वस्तुओं की कामना मन से उतार कर उसको अन्तर्मुखी करना है ताकि उस परम तत्व का, जो मन के भीतर व्याप्त है, ज्ञान प्राप्त हो सके। बिना अन्त: परिवर्तन के जप, तप, दान, पुण्य, होम-यज्ञ सब व्यर्थ है।

' बैकुंठ ' कोई स्थान नहीं है। वह तो आत्मा की एक ऐसी स्थिति है जिसमें मन के सारे दोष नष्ट हो जाते हैं और मन वचन कर्म में एकरसता आ जाती है - इसका नाम कबीरजी ने ' सहज ' रखा है। यह सतत आनंद की अवस्था है जहां पहुंचकर मनुष्य जन्म-मरण से रहित हो जाता है। मनुष्य की आत्मा जो अमर है वह जब तक इस अवस्था को प्राप्त न कर लें आवागमन में भटकती रहती है। ईश्वर के स्वरूप का वर्णन करते हुए कबीरजी कहते हैं -

" मैं आरंभ से ही केवल एक परमेश्वर को (जिसे ' ओम ' से जाना जाता है) मानता हूँ। जिसको वह उत्पन्न कर नष्ट कर देता है, उस पर विश्वास नहीं किया। जो कोई भी उस परम-तत्व से साक्षात कर लेता है, उसको जान कर, फिर नष्ट नहीं हो सकता, उसे सदा के लिए जीवन प्राप्त हो जाता है।" कबीरजी कहते हैं कि - " उनका मालिक एक है, दूसरा नहीं कहा जा सकता अगर वह दूसरा कह देते हैं तो उनका मालिक नाराज हो जायेगा।"

कबीरजी के अनुसार - ' उनका परमेश्वर वही है जो न जन्मता है न मरता है। वे उस प्यारे से बलिहार जाते हैं जिसने सारी रचना रच दी है।

कबीर जी `अवतारवाद` के विरोधी थे। फिर भी वे राम का जाप करते थे। उनके अनुसार -

" कबीर रामै राम कहो कहिबे माहि बिबेक।
ऐक अनेकहि मिलि गया ऐक समाना ऐक ।।[१]

पुनः कबीरजी कहते है-

राम कहन महि भेद है ता महि एकै बिचारु।
सोई राम सभै कहहि सोई कउतक हार ।।[२]

इस संबंध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के विचार वर्णन योग्य हैं-

" कबीरदास के राम पुराण-प्रतिपादित अवतार नहीं थे, यह निश्चित है वे न तो दशरथ के घर उतरे थे और न लंका के राजा का नाश करने वाले हुए, न तो देवकी की कोख से पैदा हुए थे और न यशोदा ने उन्हें गोद खेलाया था, न तो वे ग्वालों के संग घूमा करते थे और न उन्होंने गोवर्धन-पर्वत को धारण ही किया था, न तो उन्होंने वामन होकर बलि को छला था और न वेदोद्धार के लिए वराहरूप धारण करके धरती को अपने दांतों पर ही उठाया था, न वे गण्डक के शालिग्राम हैं, न वराह, मत्स्य,काच्छप आदि वेशधारी विष्णु के अवतार, न तो वे नर नारायण के रूप में बदरिका आश्रम में ध्यान लगाने बैठे थे और न परशुराम होकर क्षत्रियों का ध्वंस करने गये थे, और न तो उन्होंने द्वारिका में शरीर छोड़ा था और न वे जगन्नाथ धाम में बुद्ध-रूप में ही अवतरित हुए। कबीरदास ने बहुत विचार करके कहा है कि ये सब ऊपरी व्यवहार हैं। जो संसार में व्याप्त हो रहा है वह राम इनकी अपेक्षा कहीं अधिक काम अपार है - यथा -

---

१, आदिग्रंथ श्लोक-१८१
२, वही -१८०

" ता साहिब के लागी साथा। दुख सुख मेटि जो रह्यौ अनाथा।
नां दसरथि घर औतरि आव। नां लंका का रांव सतावा।
देवैं कूख न औतरि आवा। गोवरधन लै न कर धरिया।
बांवन होय नहीं बलि छलिया। धरनी वेद लै उधारिया।
गंडक सालिगराम न कोला। मच्छ कच्छ ह्वै जलहि न डोला।
बद्री बैठा ध्यान नहिं लावा। परसराम ह्वै खत्री न सतावा।
द्वारमती सरीर न छांडा। जगन्नाथ ले प्यंड न गाड़ा।
कहै कबीर विचार करि, ये ऊलै व्यवहार।
याही थैं जे अगम है, सो बरति रह्या संसार ।। [१]

उसे दूर खोजने की आवश्यकता नहीं है। वह सारे शरीर में भरपूर हो रहा है, लोहू झूठ है, चाम झूठ है, सत्य है वह राम जो इस सारे शरीर में रम रहा है

" कहै कबीर विचारि करि, जिनि कोई खोजै दूरि।
ध्यान धरौ मन सुद्ध करि, राम रह्या भरपूरि।।
कहै कबीर विचार करि झूठा लोही चांम।
जा या देहि रहित है, सो है रमिता राम ।। [२]

यह कहना कि " कबीरदास कभी तो अद्वैतवाद की ओर झुकते दिखाई देते हैं और कभी एकेश्वरवाद की ओर, कभी वे पौराणिक सगुणभाव से भगवान को पुकारते हैं और कभी निर्गुणभाव से, असल में उनका कोई स्थिर तात्त्विक सिद्धांत नहीं था, - " केवल अश्रद्धा सूचक है। ऐसी बातें वही लोग कहते हैं जो प्रारंभ से यह मान बैठे हैं कि कबीरजी एक अशिक्षित जुलाहे थे और उल्टी सीधी अटपटी बानियों से साधारण जनता पर प्रभाव जमाना चाहते थे। ऐसे कथनों का उत्तर देना व्यर्थ है। क्योंकि बिना श्रद्धा भक्ति के इस प्रकार के निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। वस्तुत: कबीरदास का एकेश्वरवाद इस प्रकार का था ही नहीं जैसा इस्लाम धर्म में बताया जाता है।

- -

१. कबीर ग्रंथावली, पृ०-२४२-३
२. वही पृ०-२४३

इस मत के अनुसार ईश्वर समस्त स्थान और जीवों से भिन्न , परम समर्थ है। कबीरदास की स्पष्ट शब्दों में लोगों को सावधान किया है कि वह ब्रह्म व्यापक है, सब में एक भाव से व्याप्त है, पंडित हो या योगी, राजा हो या प्रजा, वैद्य हो या रोगी, वह सब में आप रम रहे हैं । यहा जो नाना भांति का प्रपंच दिखाई दे रहा है । अनेक घर और अनेक भाडडे दिख रहे हैं, सब-कुछ उसी का रूप है। [१] यथा-

" जब मै आतम तत विचारा।
तब निरबैर भया सबहिन थै काम क्रोध गहि डारा।
व्यापक ब्रह्म सबनि मैं एकै, को पंडित को जोगी।
रावण राव कवन सूं कहिये, कवन वैद को रोगी।
इनमैं आप आप सबहिन मैं आप आपसूं खेलै।
नाना भांति घड़े सब भांडे रूप धरि धरि मेलै।
सोचि-विचारि सबै जग देखा, निर्गुण कोई न बतावै।
कहै कबीर गुणी अरु पंडित मिलि लीला जस गावै । [२]

वस्तुत: कबीरदास निर्गुण भगवान का स्मरण करते हैं तो उनका उद्देश्य यह होता है कि भगवान के गुणमय शरीर की जो कल्पना की गई है वह रूप उन्हें मान्य नहीं है । वस्तुत: वे भगवान के सत्व रज और तमोगुणों से अतीत मानते हैं और इसी गुणातीत रूप को निर्गुण शब्द से प्रकट करते हैं । " हे सन्तों , मैं धोखे की बात किससे कहूं । गुण ही में निर्गुण है और निर्गुण में गुण: इस सीधे रास्ते को छोड़कर कहां बहका फिरू ? लोग उसे अजर कहते हैं, अमर कहते हैं, पर असल बात कोई कहता नहीं वस्तुत: वह अलख है, अगम्य है : निषेधात्मक विशेषण केवल धोखे हैं । यह तो ठीक है कि उसका कोई स्वरूप नहीं, कोई वर्ण नहीं है, परन्तु यह और भी अधिक ठीक है कि वह सब घट में समाया हुआ है ।

---

१. कबीर - हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ०-१३१
२. कबीर ग्रंथावली, पद-१८६

(और इसीलिए सभी रूप उसके रूप हैं, और सभी वर्ण उसके वर्ण हैं, फिर उसे अरूप या अवर्ण कैसे कहें) पिंड और ब्रह्मांड की बातें कही जाती है, चाहे वपिंड हो और चाहे ब्रह्मांड, सभी देश और काल में सीमित हैं पर उसका न तो आदि है और न अन्त। फिर उसे पिंड और ब्रह्मांड में व्याप्त क्यों कहा जाये? सही बात यह है कि वह पिंड और ब्रह्मांड से भी परे है। कबीर-दास कहते हैं कि उनका हरि इन सबसे परे है। वह अगुण और सगुण दोनों के ऊपर है, अजर और अमर दोनों से अतीत है, अरूप और अवर्ण दोनों के परे हैं, पिंड और ब्रह्मांड दोनों से अगम्य है। यही कबीरदास का निर्गुण राम है। [1] यथा-

" संतों, धोखा कासूं कहिये।
गुन मैं निरगुन, निरगुन मैं गुन, बाट छांडि क्यूं बहिये।
अजर-अमर कथै सब कोई अलख न कथणां जाई।
नाति-स्वरूप-वरण नहि जाके घटि-घटि रह्यौ समाई।
प्यंड-ब्रह्मांड कथै सब कोई वाके आदि अरु अन्त न होई।
प्यंड ब्रह्मांड छांडि जे कहिये कहै कबीर हरि सोई।। [2]

कबीरदास ने त्रिगुणातीत, द्वैता-द्वैत विलक्षण, भावा भाव-विनुर्मुक्त अलख, अगोचर, अगम्य, प्रेमपारावार भगवान को कबीरजी ने ' निर्गु निर्गुण राम ' कहकर सम्बोधित किया है। वह समस्त ज्ञान तत्वों से भिन्न है फिर भी सर्वमय है। वह, केवल अनुभव से ही जाना जा सकता है। इसी भाव को बताने के लिए कबीरदास ने बार-बार ' गूंगे का गुड़ ' कह कर याद किया है। [3]

" अविगत अकथ अनूपम देख्या कहतां कह्या न जाई। "
सैन करै मन ही मन रहसै गूंगै जानि मिठाई।।

कहने का तात्पर्य यह है कि ' राजाराम ', रघुनाथ ' आदि शब्द कबीरजी की वाणी में प्रयुक्त देखकर जो यह सोच लेते हैं कि वह ' दशरथसुत ' रामचन्द्र को ही राम-राम कहकर जपा करते हैं, उनको यह स्पष्ट ही जाना चाहिये है कि उनकी धारणा भ्रामक है।

- -

१. कबीर - हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ०-१३३
२. कबीर ग्रंथावली- पद-१८०
३. कबीर - पृ ०-१३६

वह निरंकार, सिरजनहार अपनी सभी रचनाओं में व्याप्त है ।

कबीरजी ने ' स्मरण ' (सिमरन) द्वारा परमात्मा में लीन होना एवं आवागमन के चक्रों से छुटकारा दिलाना कहा है । जब तक अन्य वस्तुओं से प्रेम हृदय में है, जप,तप संयम व्यर्थ हैं । उसे से दूर रहना मोक्ष नहीं है यथा -

उदक समुंद सलल की साखिआ नदी तरंग समावहिगे।
सुंनहि सुंनु मिलिआ समदरसी पवन रूप होइ जावहिगे।। १ ।।
बहुरि हम काहे आवहिगे ।
आवन जाना हुकमु तिसैका हुकमै बुझि समावहिगे ।। १।।रहाउ।
जब चूकै पंच धातु की रचना ऐसे भरमु चुकावहिगे।
दरसन छोडि भए समदरसी एको नामु धिआवहिगे।।२।।
जितु हम लाए तित ही लागे तैसे करम कमावहिगे।
हरिजी क्रिपा करे जउ अपनी तौ गुर के सबदि समावहिगे।। ३ ।।
जीवत मरहु मरहु फुनि जीवहु पुनरपि जनमु न होई।
कहो कबीर जो नामि समाने सुंन रहिआ लिव सोई।। ४ ।। [१]

कबीर जी के अनुसार आन्तरिक निर्मलता के लिए ' बाह्याचार ' की आवश्यकता नहीं होती । नग्न फिरने से परम ज्योति से मिलन संभव नहीं है और न ही सिर मुंडाने से ही मुक्ति मिलती है। न ही जनेऊ पहनने से परमात्मा मिल जाता है अपितु नाम सिमरन से ही मोक्ष की प्राप्ति संभव होती है।

कबीरजी हिन्दू-मुसलमान दोनों के बाह्याचारों का खंडन करते हैं । मुसलमानों से वे कहते हैं-

रोजा धरै मनावै अलहु सुआदति जीअ संघारै।।
आपा देखि अवर नहीं देखै काहे कउ मुख मारै।। १ ।।
काजी साहिबु ऐकु तोही महि तेरा सोचि बिचारि न देखै।
खबरि न करहि दीन के बउरे ताते जनमु अलेखै ।।१।।रहाउ।।
साचु कतेब बखानै अलहु नारि पुरखु नहीं कोई।
पढे गुने नाही कछु बउरे जउ दिल महि खबरि न होई ।।२।।
अलहु गैबु सगल घट भीतरि हिरदै लेहु बिचारी।
हिन्दु तुरक दुहुं महि ऐकै कहै कबीर पुकारी।। ३।७।।२९।। [२]

---

१. आदिग्रंथ, राग मारू, -११०४
२. वही राग आसा, - ४८३

इसी प्रकार तीर्थों में जाकर स्नान करना, घर बार त्याग कर जंगल में भटकना व्यर्थ है । अगर मन में विकार भरे हुए हैं तो कहीं भी जाने से लाभ नहीं हो सकता है और परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती । इसके लिए तो अपने अवगुणों को समाप्त करना चाहिए। निर्मल मन में ही " नाम " का वास हो सकता है । चतुराई छोड़ कर परमेश्वर का सिमरन करना चाहिये । लोभ, काम , क्रोध ,अहंकार को दूर करना चाहिए । करमकांडों में लगने से अहंकार बढ़ जाता है। तब सारे कार्य निष्फल हैं । निरंकार से मेल तभी हो सकता है जो निष्काम भक्ति करे ।

सदाचार की नींव पर ही आत्मिक जीवन का निर्माण होता है। स्तुति और निंदा दोनों को त्याग कर मान एवं अहंकार को छोड़ो । तभी परम तत्व के दर्शन संभव हैं । करमकांडों से मन को वश में नहीं किया जा सकता। मन को एकाग्र करने के लिये संयम की आवश्यकता है । तभी आत्मिक उन्नति हो सकती है । मन के द्वारा ही सारे कार्य होते हैं , अत: इसे ही साधने की आवश्यकता है ।

कर्मकांडों से मन वश में नहीं आता । मन को वश में करना अर्थात एकाग्र करना, यह राजयोग, हठयोग, एवं भक्तिमार्ग में आवश्यक माना गया है। अगर मन विषयों में डोलता रहे तो सुरति नाम में नहीं टिकती। कबीरजी भी मन को वश में करना आत्मिक उन्नति के लिए आवश्यक समझते हैं । किंतु मन को वश में करने के लिए घर त्यागने की आवश्यकता नहीं है। उनके अनुसार शरीर एक नगरी का है जिसमें मन एक महल राजा है। ईश्वरका ज्ञान अंकुश है एवं कोई एक वान ऐसा महावत का कार्य करता है ।

कबीरजी संसार की निस्सारता को बताते हुए कहते हैं कि इस संसार में सब कुछ नश्वर है, ये मालमाल चीजें मनुष्य के साथ नहीं जायेंगी। अत: नाम को अपने हृदय में धारण करो , वही हर स्थान पर सहायता करेगा। कबीर जी उन साधनों के विषय में प्रकाश डालते हैं जिनके द्वारा राम-नाम से प्यार हो जाता है -

सत्संग, एवं साधु संग ये परम प्रमुख साधन हैं। सत्संग के साथ मनमुख भी मुक्ति पा लेते हैं। उसके अवगुण समाप्त हो जाते हैं एवं सुगुण आ जाते हैं। यथा -

* गंगा के संग सलिता बिगरी। सो सलिता गंगा होई निबरी।।
बिगरिऊ कबीरा राम दुहाई।
साचु भइऊ अन कतहि ना जाई ।।१।।रहाऊ।।
चंदन के संगि तरवर बिगरिऊ । सो तरवरु चंदनु होई निबरिउ।।२।।
पारस के संगि तांबा बिगरिऊ। सो तांबा कंचनु होई निबरिउ।।३।।
संतन संग कबीरा बिगरिऊ। सो कबीरु रामै होई निबरिउ।।४।।

साधु की संगत करनी चाहिए जो अंत तक निभती है। मनमुख का संग नहीं करना चाहिए, उसके द्वारा नाश हो जाता है। किंतु साधु की संगत बड़े पुण्य भाग्य से प्राप्त होती है, फिर मोक्ष की प्राप्ति होती है एवं कठिन कष्टों में कोई बाधा नहीं मिलती।

सबसे बड़ी विशेषता कबीर जी की यह है कि वे अनपढ़ होते हुए भी सारतत्व की वह अनोखी बात कहते हैं जो कई ग्रंथों का निचोड़ है। इतना होते हुए भी वे स्वयं को सबसे अल्प बुद्धि मानते हुए कहते हैं-

न मैंने विद्या पढ़ी न मैं वाद करना जानता हूं। मैं तो हरि के गुण कहता सुनता ही बउरा हो गया हूं। हे बाबा मैं बौरा हूं और सारा जगत बुद्धिमान है। यथा -

* बिदिआ न परऊ बाद नहीं जानऊ।
हरिगुन कथत सुनत बौरानूं।।
मेरे बाबा मैं बौरा सब खलक सिआनी मैं बौरा।
मैं बिगरिऊ बिगरै मति औरा ।।१।।रहाऊ।।
आपि न बौरा राम कीऊ बौरा ।
सतिगुरु जारि गयौ भ्रम मोरा ।।२।। [2]
मैं बिगरे अपनी मत खोई। मेरे भ्रम भूलो मति कोई।। [3] ।।
से बौरा जो आप न पहचानै। आपु पहचानै त ऐकै जानै।।४।।
अबहि न माता सु कबहु न माता। कहि कबीर रामै रंग रात ।।५।। [2]

---

१. आदिग्रंथ - राग भैरऊ - ११५८
२. वही - राग बिलावल ८५५

धन्ना -

धन्ना भक्त का जन्म १४७२ ई० में हुआ था ।[१] ये रामानंदजी की शिष्य परम्परा में थे । ये खेती-बाड़ी का कार्य करते थे एवं अत्यन्त सरल जीवन व्यतीत करते थे । इनका स्वभाव बड़ा मधुर एवं निष्कपट व्यक्तित्व था। आदिग्रंथ में इनके तीन पद मिलते हैं, जिनमें दो राग ' आसा' में एवं एक पद राग धनासरी ' में है । इनके पद भक्ति की ओर प्रेरित करने वाले हैं । पहले दो पदों में इन्होंने यह बताया है कि उन्होंने भक्ति मार्ग को क्यों अपनाया । वे लिखते हैं-

" भ्रमत फिरत बहु जनम बिलाने तनु मनु धनु नहीं धीरे ।
लालच बिखु काम लुबुध राता मनि बिसरे प्रभु हीरे।।
बिखु फलु मीठ लगै मन बउरे चार बिचार न जानिआ ।।
गुन ते प्रीति बढ़ी अन भांति जनम मरन फिरि तानिआ ।।
जुगति जानि नहीं रिदै निवासी जलत जाल जम फंध परे ।।[२]
बिखु फल संचि भरे मन ऐसे परम पुरख प्रभ मन बिसरे ।।

धन्नाजी के अनुसार मनुष्य काम, क्रोध, मोह एवं लोभ के जाल में फंसकर प्रभु को विस्मृत कर देता है , एवं सांसारिक मोह-माया में लीन रहता है, किंतु मोक्ष प्राप्त करने का मार्ग भक्ति ही है । अतः वे प्रभु भक्ति को ही प्रमुख स्थान देते हैं । अपने पदों में उन्होंने अपनी कमियों को प्रकट किया है एवं भगत बन जाने के पश्चात उन्होंने निराकार ब्रह्म की आरती की है, जिसमें भक्तों के कार्य सिद्ध करने वाले भगवान से सांसारिक जीवन व्यतीत करने के लिये आवश्यक वस्तुओं को प्राप्त करने की प्रार्थना की गई है । इनकी भाषा अत्यन्त सरल एवं शैली अति सादी है ।

---

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा,पृ-५०
२. आदि ग्रंथ, पृ०-४८७

उन्होंने अपनी आरती में ईश्वर से जिन साधारण वस्तुओं की याचना की है उससे इनके सरल-हृदय का परिचय मिलता है-

* गोपाल तेरा आरता ।।

जो जन तुमरी भगति करंदे तिनके काज सवारता।। १।।रहाउ

दालि सीधा मागउ घीउ।।
हमरा खुसी करै नित जीउ।।
पन्हीआ छादनु नीका अनाजु।।
मगउ सत सी का ।। १ ।।

गऊ भैस मगउ लावेरी।।

इक ताजनि तुरी चंगेरी।।

घर की गीहनि चंगी।।

जनु धंन्ना लेवै मंगी।। २।।१।। [1]

पीपा -

भक्त पीपा जी का जन्म १४८२ ई० में हुआ था । [2] परशुराम चतुर्वेदी जी ने इनका जन्मकाल सं० १४६५-७५ के लगभग माना है । [3] बाल्यावस्था से ही आप हरिभजन करने लगे । कहा जाता है कि ये गागरौनगढ़ के राजकुमार थे, जब आप राजगद्दी पर विराजमान हुए, तो भी भक्ति-भावना को न त्याग सके, अपितु समय पाकर यही भक्ति भावना और भी पुष्ट होती गई । इनकी बारह रानियां बताई जाती हैं । [4] जब रामानंदजी से प्रभावित होकर इन्होंने राजपाट त्याग दिया तो उन बारह रानियों में से एक रानी सीता देवी को अपने साथ लिया । सीता देवी सबसे छोटी रानी थी । सीता देवी ने इनके साथ रहकर सभी कष्टों को सहन किया , दुखों का सामना किया, अंत समय तक साथ निबाहा। राजपाट छोड़ते समय ये अपने साथ कुछ भी धन दौलत नहीं ली । अतः जीवन यापन करने के लिये इन्हें कई बार सारंगी बजानी पड़ी एवं सीता देवी को नाचना पड़ा । [5] एक बार जब धर्म का मार्ग अपना लिया तो उससे पीछे हटने का कोई उपाय नहीं किया । कष्ट भेलकर इनका विश्वास और भी अटूट होता गया ।

- -

१. आदिग्रंथ-वाणी धन्ना -पृ०-६९५
२. क्षितिमोहन सेन, मिडिवियल मिस्टीसिज्म, पृ०-८४
३. उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ०-२३५
४. संतसाहित्य, पृ०-२५२
५. क्षितिमोहन सेन, मिडिवियल मिस्टीसिज्म, पृ०-८४

" पीपाजी की वाणी " नामक संग्रह कुछ पुराने अप्रकाशित गुटकों में मिलता है, परन्तु आदिग्रंथ में इनका केवल एक ही शब्द है, जो उनके जीवन-दर्शन को स्पष्ट करता है ।

" कायउ देवा काइअउ देवल काइअउ जंगम जाती ।।
काइआ धुप दीप नईवेदा काइअउ पुजउ पाती ।।
काइअउ बहु खंड खोजते नव निधि पाई ।।
ना कछु आइबो ना कछु जाइबो राम की दुहाई ।। रहाउ ।।
जो ब्रह्मंडे सोई पिंडे जो खोजै सो पावै ।
पीपा प्रणवै परमतत्तु है सतिगुरु होई लखावै ।। [१]

पीपाजी का जीवन-दर्शन जो ब्रह्मंडे सोई पिंडे स्पष्ट हो जाता है कि सब कुछ शरीर में ही वर्तमान है । बाहर भटकने की आवश्यकता नहीं है । उन्होंने शरीर में ही ब्रह्म को अनुभव करने की प्रेरणा दी है ।

सैनजी-

सैन भक्तजी का जन्म संवत् निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है । प्रो० रानड़े के अनुसार संवत् १५०५३ ई० में आपने भक्ति मार्ग अपनाया । [२] सैनजी रीवा के बांधवगढ़ राजा के सेवक एवं नाई जाति से संबंधित थे । रामानंदजी से प्रभावित होकर उन्हें अपना गुरु मान लिया । इनकी भक्ति से प्रभावित होकर स्वयं राजाने इन्हें गुरु स्वीकार कर लिया । [३] आप महाराष्ट्र के निवासी थे । अतः भगवद् भक्ति में लीन होकर ये मराठी में पद गाते थे । इन्होंने कुछ हिंदी के पद भी रचे हैं । आदिग्रंथ में इनका एक " आरती " का पद ही मिलता है । इसमें सरल भाषा एवं उद्वेलित भावाभिव्यक्ति दिखाई पड़ती है । गोबिंद की आरती गाते हुए ये अत्यन्त आनंद का अनुभव करते हैं।

---

१. आदि ग्रंथ ,राग धनासरी ,पृ-०६६५
२. उत्तरी भारत की संत परंपरा,पृ०-२३३
३. संतसाहित्य,पृ०-२६०

धूप दीप घृत साजि आरती।
वारने जाऊँ कमलापती।।
मंगला हरि मंगला।।
नित मंगल राजाराम राइ को ।। रहाऊ।।
ऊतम दीअरा निरमल बाती।।
तु ही निरंजनु कमलापती।।
रामा भगति रामानंद जानै ।।
पूरन रामानंद बखानै।।
मदन मुरत मुरति भै तारि गोबिंदे।।
सैनु भणै भज परमानंदे ।।[1]

उनके अनुसार ईश्वर की भक्ति धूप दीप आदि सजा कर करना उत्तम है। सैन भक्ति में पूर्ण विश्वास रखते थे। इनके अनुसार मानव भक्ति के द्वारा ही सुख प्राप्त कर सकता है। मानव को सदैव नम्र होना चाहिये। उनकी कथनी एवं करनी में पूर्णता है। इनके नाम पर 'सैन पंथ' का प्रचलित होना भी प्रसिद्ध है।

भीखन -

भीखनजी मुसलमान संत थे, परन्तु इनकी रचनाओं को दृष्टि में रखकर कई विद्वानों ने इन्हें हिन्दू संत कहा है। इनकी सरल-भाषा के प्रवाह को देखकर इनमें मुसलमान होने का कोई चिन्ह नहीं मिलता, अपितु उनके सहृदय होने का ही पता चलता है। जन्म से ये भले ही मुसलमान हों किंतु वे सारी उम्र हिन्दू का सा जीवन व्यतीत करते रहे। इनका जन्म संवत् १७७७ में खानपुर बोहना ग्राम में हुआ था।[2] आदिग्रंथ में इनके केवल दो शब्द मिले हैं। एक में 'नाम' के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है एवं दूसरे में सतिगुरु की शरण में जाकर मोक्ष-प्राप्ति का मार्ग बताया गया है।

---

१. आदिग्रंथ,पृ०-६६५ २. संतसाहित्य,पृ०-२७४

` नाम ` के महत्व को बताते हुए भीखनजी कहते हैं -

हरि का नाम अमृत जलु निरमलु इहु अउखधु जगि सारा।।
गुरु परसादि कहै जनु भीखनु पावउ मोख दुआरा ।। १ ।।
ऐसा नाम रतनु निरमोलु पुंनि पदारथु पाइआ।।
अनिक जतन करि हिरदै राखिआ रतनु न छपै छपाइआ।।
हरि गुन कहते कहनु न जाई जैसे गूंगे की मिठिआई ।। रहाउ।।
रसना रमत सुनत सुखु स्रवना चित चेते सुखु होई।।
कहु भीखन दुइ नैन संतोखे जह देखा तह सोई ।। २ ।। [१]

इस पद में भीखन ने हरि के नाम को निर्मल अमृत-जल कहा है। गुरु का नाम-स्मरण से मानव मुक्ति मार्ग पा सकता है । इसमें भीखन जी ने नाम के महत्व पर पूर्ण प्रकाश डाला है । मानव को गुरु शरण में जाकर ही ज्ञान प्राप्त हो सकता है ।

इनकी वाणी में साखी, पद, रेखते, कवित्त और कुण्डलियाँ आदि विभिन्न छंदों पर उपलब्ध होती है । ` राम जहाज ` नामक उनका बड़ा ग्रंथ बताया जाता है । बेलवेडियर प्रेस प्रयाग से ` भीखा साहब की बानी ` नामक पुस्तक प्रकाशित हुई है । [२]

भाषा

संत भीखनजी की भाषा सीधी सरल किंतु मुहावरेदार है । इनकी वर्णन-शैली भावपूर्ण होते हुए भी प्रसाद गुण के कारण अत्यन्त सुन्दर तथा आकर्षक है ।

---

१. आदिग्रंथ, पृ०-६५६
२. संतसाहित्य,पृ०-२७४

सुन्दरदास -

सुन्दरजी गांव बूसर के खण्डेलवाल वैश्य थे । इनका जन्म संवत् १६५१ जयपुर की पुरातन राजधानी दौसा नगर में हुआ था ।[1] इनके पिता का नाम परमानंद एवं माता का नाम सती था। दादूजी इनके गुरु थे । इन्होंने काशी में साहित्य एवं दर्शन का गंभीर अध्ययन किया । तीस वर्षों की आयु तक ये काशी में ही रहे, इसके बाद आकर गुफा में रहकर योगाभ्यास करते रहे । दादूजी की वाणी का पूरा अध्ययन किया । आपने दूर-दूर की यात्राएं की । आप रज्जबजी से प्रभावित थे । ये रज्जबजी से मिलने सांगानेर गए, परन्तु रज्जबजी पहले ही स्वर्गवासी हो चुके थे । उनका वियोग सह न सके एवं इन्होंने भी शरीर त्याग दिया ।[2] आपकी ख्याति दूर दूर तक फैली हुई थी अतः लोग आपके दर्शन हेतु आते थे ।

साहित्यिक दृष्टि से विचार करें तो पता चलता है कि आपका ज्ञान-सागर अत्यन्त गहरा था। आपकी वाणी छोटे बड़े ४२ ग्रंथों में संकलित है । भक्ति-मार्ग के कवियों में इन्हें गुरु गोविंद के बाद दूसरे नम्बर का कवि माना जाता है।[3] कला-पक्ष की दृष्टि से भी इनका साहित्य उत्तम कोटि का है । आप भ्रमणशील व्यक्ति थे अतः इनकी रचनाओं में व्यक्तिगत प्रभाव मिलता है। इनकी सम्पूर्ण रचना ब्रज भाषा में है । इनकी रचनाएं भाई गुरुदासजी की रचनाओं से मिलती जुलती है ।[4]

इनकी वृत्ति ईश्वर से जुड़ी हुई थी अतः घर-बार त्याग दिया था । इन्हें अपने शरीर तक की कोई चिंता नहीं थी, रोम-रोम से प्रेममयी रागिनी निकल रही है । आंसू बह रहे हैं - परन्तु आप प्रभु भक्ति में लीन रहते। आपके अनुसार भक्ति में ज्ञान के साथ `प्रेम' का होना भी अत्यन्त आवश्यक है । अगर प्रेम नहीं है तो भक्ति का कोई मूल्य नहीं है । प्रेम हो तो भक्ति है। जहां भक्ति के लिए ज्ञान का होना आवश्यक है, वहां प्रेम भी कोई कम महत्व नहीं रखता। सुन्दरजी प्रेम को मूलाधार मानते हैं ।

- -

१. संतसाहित्य-पृ०-२५४
२. वही
३. वही -२५६
४. वही

प्रेम के बिना मानव की दशा ' जल बिना मछली ' सी हो जाती है ।
पांच इन्द्रियों के विषय में सुन्दरजी कहते हैं ।

इन पंचों जगत नचाया,
इन पंचों सबनि को खाया।
ये पंच प्रबल अतिभारी,
कोई सके न पंच प्रहारी ।।६।। [1]

सुन्दरदासजी ने जिस पीर का उल्लेख किया है, उसकी विह्वलता
सूर के विरह-वर्णन से अभिन्न प्रतीत होती है । सुन्दरदासजी की अधिकांश
रचनाएं गुरुमुखी लिपि में लिखी हुई पंजाब में देखने को मिलती है । पुरोहित
हरनारायण ने सुन्दर ग्रंथावली में इनके कुछ पंजाबी पदों को ' पंजाबी भाषा
अष्टक ' में रखा है । [2]

रैदास -

सन्त रैदासजी कबीरदास के गुरु भाई थे क्योंकि, रामानंदजी के शिष्य
थे भक्तमाल में वर्णित इनकी कथा अनेक चमत्कारों से भरी हुई है । कहा
जाता है कि इनकी जाति चमार थी और ये काशी के रहने वाले थे । रैदासजी
ने स्वयं ही अपने को काशीवासी चमार कुल का कहा है -

' जाके कुटुंब सब ढोर ढोंवत फिरहि अजहु बनारसी आसपास
आचार सहित विप्र करहिं डंडउति तिन तनै रैदास दासानुदासा ।।
चमार कुल में जन्म लेने की कथा भी बड़ी विचित्र है, नाभाजी के मूल छप्पय
में यद्यपि ऐसा कोई उल्लेख नहीं । टीका में लिखा है कि स्वामी रामानंद
जी का एक शिष्य एक ऐसे बनिये के घर से भिक्षा ले आया था , जिसका
कारबार एक चमार के साथ था । स्वामीजी के ठाकुर ने उस दिन थाल
स्वीकार नहीं किया । पूंछने पर जब पता चला कि उनका ब्रह्मचारी शिष्य
उस बनिये के यहां से सीधा लाया था, तब स्वामीजी ने शाप दिया कि-
जा चमार के यहां जन्म ले । बेचारे ब्रह्मचारी ने चमारिन के गर्भ से जन्म तो
ले लिया पर उसने अछूत के स्तनों का दूध नहीं पिया ।

- -

१. सुंदर ग्रंथावली, पंचेन्द्रिय निर्णय-साखी-६
२. पुरोहित हरनारायणजी, पृ०-५६
३. आदि ग्रंथ राग मलार, पद-१

जब रामानंद ने पूर्वजन्म के ब्राह्मण ब्रह्मचारी को राममंत्र का उपदेश दिया, तब कहीं जाकर उसने माता के स्तनों का दूध पिया। पूर्वजन्म में की हुई अपनी महान भूल का स्मरण कर शिशु रैदासको बड़ा पश्चाताप हुआ। [1] इस विचित्र कथा के पीछे जो कल्पना है, उसका इतना ही अर्थ समझा जाये कि चमार - कुलोत्पन्न जीव भी भगवान का भक्त हो सकता है। भक्ति पर द्विजाति का ही एक मात्र अधिकार नहीं है। अंत्यजों के प्रति द्वेषभाव किस सीमा तक पहुंचा था, इसका स्पष्ट प्रमाण इस विचित्र कल्पित कथा में मिलता है। एक ऐसी ही कथा के अनुसार रैदासजी ने एक दिन अपने पूर्वजन्म का ब्राह्मण सिद्ध करने के लिये अपने शरीर की त्वचा उधेड़कर " स्वर्ण-यज्ञोपवीत " सबको दिखलाया था। [2]

रैदासजी गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी उच्च-कोटि के विरक्त संत थे। जूते सीते ही उन्होंने ज्ञान भक्ति का ऊंचा पद प्राप्त किया था।

प्रसिद्ध है कि चित्तौर की झाली नाम की एक रानी ने काशी में जाकर रैदास से गुरु-मंत्र लिया था। उसकी प्रार्थना पर वे चित्तौर भी गये थे। कहते हैं - कि झाली महाराणा सांगा की रानी थी, ~~उपलब्ध नहीं~~ है। [3]

रैदास के समसामयिक तथा परवर्ती संतों ने रैदास को एक बहुत बड़े हरिभक्त के रूप में स्वीकार किया था। स्वामी दादू दयाल के शिष्य रज्जब जी ने भगवद्भक्ति के संबंध में तो यहां तक कहा है -

" आदि मिली जयदेव रैदास समानी ।।

संत रैदास की शिक्षा आदि के विषय में कुछ भी पता नहीं चलता, ऐसा लगता है कि वे अप्रशिक्षित रहे होंगे। इनकी वाणी बड़े ऊंचे घाट की है। कहा जाता है कि इनकी बहुत सी रचनाएं राजस्थान की ओर अभी तक हस्तलिखित रूप में पड़ी हुई हैं और उनकी संख्या कम नहीं है। किन्तु उसको प्रामाणिक संग्रह के रूप में प्रकाशित करने का अभी कोई प्रयास नहीं किया गया है।

---

१. नाभादास,भक्तमाल,कवित्त, २५६-५७ प्रियादास
२. उत्तरी भारत की संत परंपरा,पृ०-२४२
३. रज्जबजी की वाणी-राग बिलावल,पृ०

इनकी कुछ फुटकर रचनाओं का एक संग्रह प्रयाग के ' बेलवेडियर प्रेस ' से ' रैदास की बानी ' के नाम से प्रकाशित हुआ है जो संभवत: अधूरा है । इसमें संग्रहीत अनेक पद ' गुरु ग्रंथ साहब ' में आये हुए पदों से मिलते हैं । संत रैदास की एक रचना ' प्रह्लाद-लीला ' नाम से प्रसिद्ध है , किंतु अभी तक अप्रकाशित रूपमें ही है ।[1]

संत रैदास के विचार अत्यन्त उदात्त एवं उदार थे । वे हृदय के सच्चे थे और इसके कारण इन्हें तर्क-वितर्क द्वारा उपलब्ध कोरे ज्ञान से कहीं अधिक सत्य की पूर्ण अनुभूति में ही आस्था थी । वे यह कहा करते थे कि ~~इस प्रकार मन को~~ ' राम ' का परिचय पाने पर ' दुविधा ' नष्ट होती है। पिंड का रहस्य जान लेने पर मनुष्य जल के ऊपर तुंबे की भांति संसार में सदा विचरण करता है । जब तक वह परम वैरागी की स्थिति प्राप्त नहीं होती , तब तक ' भगति ' के नाम पर की जाने वाली सभी भावनाएं छलावा मात्र है । हमारे भीतर ' सत्य ' निहित है जिसे हमें पहचानना है। नदी की विकलता तब तक है जब तक वह नदी रूप में है, जब वही समुद्र में मिल एकाकार हो जाती है तो उसकी बेचैनी समाप्त हो जाती है और शान्ति प्राप्त हो जाती है ।[2]

संत रविदास के अनुसार हरि अनुपम एवं अनिर्वचनीय है । वह आदि-अंत में एक रस रहता है तथा चर-अचर सभी में मणिमाला में पिरोए हुए सूत की भांति ओत-प्रोत है । वास्तव में वही एक मात्र है और सारा दृश्यमान संसार उसके भीतर वैसा ही दिखाई पड़ता है जैसा जलराशि में उसकी तरंगे समक पड़ती हैं । वह न तो उत्पन्न होता है, न नष्ट होता है, अपितु नित्य तथा निराकार बना हुआ सबके भीतर अलक्षित तथा निर्विकार की दशा में वर्तमान रहता है । वही एक मात्र अमर तथा अविनाशी है , और हमारे भीतर वही जीवात्मा के रूप में स्थित है, किंतु अज्ञान के कारण हमें उसका बोध नहीं होता।[3]

रैदासजी की भक्ति का मूलाधार अहंकार की निवृत्ति है । वे अभिमान का साधारण मान तथा ' बड़ाई ' तक को भक्ति का एक प्रबल बाधक मानते हैं।

- -

१. उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ०-२४२
२. वही पृ०-२४५
३. वही

दोनों एक साथ कदापि नहीं रह सकते । अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति के लिये अपनी सारी वृत्तियों को केन्द्रित कर उसे प्राप्त करने के लिये ही लगा दें । संत रैदासजी के अनुसार - ' वास्तविक परिचय प्राप्त करने का रहस्य केवल सच्ची ' सोहागिन ' ही जानती है जो अपना तन-मन सभी कुछ न्योछावर कर देती है और अभिमान का कुछ भी अंश अपने भीतर नहीं रखती, न भेद-भाव को ही कभी प्रश्रय देती है अपने पति के साथ निरंतर एक भाव से प्रेम न करने वाली स्त्री सदा दुःखिनी तथा दुहागिन हुआ करती है । यथा -

' सहकारि सार सुहागिन जानै ।
तजि अभिमान सुख रलिया मानै।।
तनु-मनु देई न सुरै अंतर राखै ।।
अवरा देखि न सुनै न भाखै ।।
सो कत जानै पीर पराई ।।
जाकै अंतर दरद न पाई ।।
दुखि दुहागनि दुई पख हीनी।।
जिनि-नाहै निरंतरि भगति न कीनी ।। [1]

संत रैदास जी एक दीर्घ जीवन की भक्ति का अनुभव प्राप्त था और इन्होंने अनेक प्रकार की चेष्टाएं करके अपने जीवन का मार्ग निश्चित किया था । अत्यन्त खेद है कि इनकी शिष्य परम्परा में अब कोई वैसा श्रेष्ठ साधक नहीं निकला है ।

' भक्तमाल ' के रचयिता नाभादास ने संत रैदास के विषय में लिखते हुए कहा है कि इन्होंने सदाचार के जिन नियमों के उपदेश दिये थे, वे वेद-शास्त्रादि के विरुद्ध न थे । उन्हें विद्वतजन भी अपनाते थे । उनकी साधना में ' अष्टांग साधन ' प्रमुख हैं , जो संभवतय: गुरु-परम्परा-क्रम से प्रचलित हैं । वे आठ अंग हैं १- गुरु, २- सेवा, ३- संत, ४-नाम, ५-ध्यान, ६- प्रणति, ७- प्रेम, ८- विलय(समाधि) इसमें लीन होकर साधक ब्रह्म में लीन होकर पूर्ण संत बनजाता है । इन्होंने भगवत् कृपा के प्रसाद अपने जीवनकाल में ही परमगति प्राप्त कर ली थी । इनके चरणों की रज की वंदना लोग अपने वर्ण तथा आश्रम का अभिमान त्याग कर भी किया करते थे । रविदासजी की वाणी संदेह की गुत्थियों को सुलझाने में परम सहायक है । [2]

संत रविदास के नाम पर एक ' रैदासी सम्प्रदाय ' का भी प्रचलित होना बतलाया जाता है और कहा जाता है कि उसके अनुयायियों की संख्या बहुत अधिक है । परन्तु प्रमाणिक विवरण अनुपलब्ध है।

१. आदिग्रंथ वाणी श्री रैदास राग सूही, पदे-१, पृ०-७९३ --- 18-5-83
२. नाभादास-भक्तमाल, छप्पय, पृ०-५६

:- चतुर्थ अध्याय -:

" पंजाबी संत-साहित्य (१५वीं-१९वीं शताब्दी) "

गुरु नानक -

मध्यकाल की राजनीतिक उथल-पुथल आर्थिक वैषम्य, सामाजिक रूढ़ियों और धार्मिक अंधविश्वासों ने क्रांतिकारी समाज - सुधारक रूढ़ियों के विध्वंसक, स्पष्टवक्ता, तत्ववेत्ता, सच्चरित्र एवं उदारमना विभूतियों को जन्म दिया । उन्होंने तत्कालीन जनता का नैतिक उत्थान करने में, उनमें नव-आशा का संचार करके अध्यात्म-मार्ग पर अग्रसर करने में विशेष प्रोत्साहन दिया । इस्लामी आक्रमण द्वारा राजनैतिक रूप से पद दलित तथा निराश जनता को आध्यात्मिकता के संदेश से उत्साहित किया । अंधविश्वासों में लीन तथा रूढ़ि-ग्रस्त लोगों को ज्ञान की ज्योति प्रदान की । समाज के एक बहुत बड़े वर्ग पर इनका गहन प्रभाव पड़ा । इनके आदर्श चरित्र, सौम्य स्वभाव एवं स्पष्ट कथनों से जनता प्रभावित हुई । यही अमर विभूतियां आगे चलकर संत कहलाईं ।

" संत " शब्द की व्युत्पत्ति भी विद्वत समाज की एक गहन समस्या रही है । इसका कारण यह है कि प्रचलित अर्थ की संगति खोजने के लिए भी शब्द विशेष की व्युत्पत्ति खोजी जाती है । इस स्थिति में एक शब्द की कई-कई व्युत्पत्तियां सामने आती हैं । " संत " शब्द के साथ ठीक यही स्थिति है । कहीं विद्वानों ने संस्कृत के सत् , शम् शान्त आदि शब्दों की व्याकरणिक समीक्षा की और कहीं महाभारत में प्रयुक्त " सदाचारी " के अर्थ में , भागवत् में यह पवित्रात्मा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

भर्तृहरि ने " संत " शब्द का प्रयोग " परोपकारी " के अर्थ में किया है तो कालिदास ने " बुद्धिमान " के अर्थ में । धम्मपद में " संत " शब्द शान्त के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । ईसा की चौदहवीं शताब्दी में वारकरी या बिट्ठल सम्प्रदाय के भक्तों के लिये " संत " शब्द का प्रयोग साम्प्रदायिक अर्थ में, संभवत: इसका सबसे पहला प्रयोग है । इसी कारण संत शब्द का यह साम्प्रदायिक प्रयोग ज्ञानेश्वर आदि दक्षिण भारतीय निर्गुण भक्तों के लिए प्रयुक्त होते हुए भी आगे चलकर पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी के उत्तर-भारतीय निर्गुण भक्त कबीर एवं उनके सम-कालीन तथा परवर्ती भक्तों के लिये प्रयुक्त होने पर रूढ़ हुआ । [1]
कबीर से पूर्व ज्ञानेश्वर आदि के साथ जिस निर्गुण संत परम्परा का उद्भव हुआ, उसके लिए आठवीं शताब्दी के सरहपाद एवं शंकराचार्य से लेकर दसवीं शताब्दी के गोरखनाथ तप भूमि तैयार होती रही थी, परंतु उसको व्यवस्थित रूप सबसे पहले कबीर के हाथों मिला। यद्यपि उसका श्रेय उस काल और वातावरण में प्रचलित प्राय: सभी धार्मिक और दार्शनिक विचारधाराओं से प्रभावित व्यापक पृष्ठभूमि को दिया जा जा सकता है।इन्हीं संतों ने उपनिषदों से अद्वैतवाद, शंकर से मायावाद, वैष्णवों से भक्ति, अहिंसा और प्रपत्ति के सिद्धांत, तांत्रिक शैवों व्रज यानी बौद्धों और नाथपंथी योगियों से हठयोग और रहस्यवाद तथा जातपात एवं कर्मकाण्ड के विरुद्ध पैनी युक्तियां, वैष्णव भक्तों और सूफी संतों से माधुर्यमय भक्तिवाद, इस्लाम से एकेश्वरवाद और बंधुत्व की दृढ़तर भावना आदि मकरन्द बिन्दुओं का संचय कर उन सभी के मेल से आचार, दर्शन एवं आस्तिकता का एक ऐसा विचित्र एवं मौलिक समन्वय प्रस्तुत किया जिसे सामान्यत: संत परम्परा का मूल मंत्र कह सकते हैं । [2]

- -

१. गुरुनानक और उनका काव्य(सं०डा०महीपसिंह,डा०वासुदेव शर्मा डा०नरेन्द्रसिंह - पृ०- १३२

२. वही पृ०- १३३

संत मत की परम्परा का प्रवर्तन कबीर ने किया । उसमें गुरुनानक दादू, रैदास, धरमदास, लालदास, हरिदास, प्राणनाथ, रज्जब, सुन्दरदास, धरनीदास, यारी साहब, दरियासाहब, बुल्ला, साहब भीखा, दयाबाई, सहजोबाई आदि अनेक पहुंचे हुए संतों का उदय हुआ। किंतु कबीर के पश्चात गुरुनानक देव का भारतीय धर्म-साधना के साहित्य में अतीव महत्वपूर्ण स्थान है । ईसा की पंद्रहवीं शती में लोकभाषा के माध्यम से इस साधना को बलवती अभिव्यक्ति देने वाले गुरुनानक देव एक ऐतिहासिक व्यक्ति हैं । उनके द्वारा प्रवर्तित मत, सुव्यवस्थित तथा सुसंगठित सम्प्रदाय का प्रवर्तन संत परम्परा में अद्वितीय योगदान है ।

गुरुनानक का जीवनकाल युगांतकारी था । उस समय भारत तथा युरोप दोनों देशों में अत्यन्त महत्वपूर्ण घटनाएं हुईं। युरोप यह पुनर्जागरण (रैनासां) , साहित्यिक कृत्यों तथा खोजों और धार्मिक सुधार का काल था । भारत में भी यह धार्मिक रैनासां का युग था । भक्ति आन्दोलन अपने उत्कर्ष पर था । उत्तर भारत में रामानंद तथा कबीर, महाराष्ट्र में नामदेव तथा एकनाथ जैसे प्रमुख नायकों ने ईश्वर की एकता, प्रेम तथा शांति का संदेश प्रसारित कर देश के विभिन्न भागों में सराहनीय कार्य किए थे ।

गुरुनानकजी के समसामयिकों में वल्लभाचार्य, चैतन्य महाप्रभु, मीराबाई और तुलसीदास के नाम उल्लेखनीय हैं । तत्कालीन भारत की अवस्था :-

१४६९ में जब गुरुनानक देव का जन्म हुआ, उत्तर भारत का शासक बहलोल लोदी था । इसके बाद उत्तराधिकारी का नाम क्रमशः सिकन्दर लोदी, इब्राहीम लोदी था ।

गुरुनानक के समय बाबर ने मुगल साम्राज्य की नींव रखी, बाद में उन्हीं के समय बाबर का पुत्र हुमायुं गद्दी पर बैठा । [१]

दसवीं शताब्दी के साथ ही एशिया से मुसलमान आक्रमणकारियों के लगातार धावे होने लगे । दिल्ली का मुख्य मार्ग पंजाब से गुजरता था, इसलिए इसी प्रान्त के लोगों को सबसे अधिक कष्ट भोगने पड़े । अफगानों तथा तुर्कों ने अपने राज्य स्थापित किए तथा विभिन्न मुस्लिम देशों ने उत्तरी भारत पर राज्य किया। उन्होंने जनता को शोषण किया तथा उन्हें लूट लिया। उन्होंने अगणित अत्याचार किए तथा गैरमुसलमानों पर जज़िया नामक व्यक्तिगत टैक्स लगाया । छोटे पदों के अतिरिक्त अन्य सभी ऊंचे पदों पर हिन्दुओं की नियुक्तियों के मार्ग बंद थे । हिन्दु मंदिरों को ध्वस्त कर बड़ी संख्या में मस्जिदों का निर्माण हो रहा था । हिन्दू विद्यालयों को बंद किया जा रहा था और हिन्दू सभ्यता तथा संस्कृति को नष्ट करने का हर उपाय किया जा रहा था । [२]

तलवार के जोर पर बहुत से हिन्दुओं को मुसलमान बनाया गया, तथा जनता के विश्वास को तोड़ा गया । शासकों और शासितों के बीच बड़ी खाई थी । जनता साहस खो बैठी थी तथा पुंसत्वहीन थी । विगत पांच सदियों से एक भी उच्च कोटि का हिन्दु नेता सामने नहीं आया था । इस अवधि में हिन्दुओं का बहुत निम्न स्थान था । प्रो० आर्नल्ड टायन्बी ने लिखा है - " हिन्दु धर्म तथा इस्लाम का मुख्य मिलन-स्थान भारत है, जहां इस्लाम ने हिन्दु धर्म पर हिंसात्मक प्रहार किये हैं ।

- -

१. गुरुनानक और उनका काव्य - पृ०-२
२. द जेसुईट्स एण्ड द ग्रेट मुगल्स-सर एडवर्ड मैक्लागन, पृ०-२८

कुल मिलाकर भारतीय भूमि में इन दो महान धर्मों का पारस्परिक संबंध संशय तथा शत्रुता की एक दुःखद कहानी है । [1]

सिकंदर लोदी के गद्दी पर बैठने के समय गुरुनानक २० वर्ष के थे । शाहजादा के रूप में भी सिकंदर एक धर्मान्ध मुसलमान था । उसने सभी हिन्दुओं को मार देना चाहा था। जो थानेश्वर के पवित्र सरोवर में स्नान के लिए एकत्र हुए थे । [2]

गुरुनानक के आगमन के समय हिन्दू तथा इस्लाम, ये दोनों धर्म भ्रष्ट तथा अवनत हो चुके थे । वे अपनी पुरानी मर्यादा तथा पवित्रता खो चुके थे । गुरुनानक ने स्थितियों पर दुःख प्रकट करते हुए कहा है -

> गऊ बिराहमण कउ करु , गोबरि तरणु न जाइ।
> धोती टिका ते जपमाली धानु मलेछा खाई।।
> अंतरि पूजा पड़हि कतेबा संजमु तुरका भाई।
> छोडीले पाखंडा । नामि लइए जाहि तरंदा ।। [3]

राजनैतिक स्थितियां -

राजनीतिक अवस्था तो और भी बुरी थी । गुरुनानकजी ने लिखा है - " यह काल तलवार सा है । शासक तथा राजे बूचड़ों के समान है । अच्छाई पर लगाकर उड़ चुकी है । [4] १५२१ ई० में मुगल आक्रमणकारियों ने लोगों के साथ जो व्यवहार किया उसे भी गुरुनानकजी ने देखा। मुसलमान देशों की यात्रा से गुरुनानक वापस आ रहे थे । उन्हें अफगानिस्तान में ही पंजाब के ऊपर किए जाने वाले आक्रमण का पता चल गया था ।

- -

१. द सेक्रेड राइटिंग्स आफ द सिक्ख(यूने स्को प्रकाशन), पृ०-१०
२. तारीखे दाऊदी - अब्दुल्ला - पृ०-४३६-४०
३. नानकवाणी - आसा दी वार - सलोक -३३
४. माझ की वार, महला-१ सलोक-३५

जब भाई लालो (उनके शिष्य) ने अफगान अधिकारियों और सैनिकों के अत्याचारों की बात कही तो नानकजी ने उत्तर दिया -

पाप की जंञु लै काबुलहु धाइआ जोरी मंगै दानवे लालो।
सरमु धरमु दोइ छपि खलोए कूड़ु फिरै परधानु वे लालो।
काजीआ बामणा की गलि थकी अगदु पड़ै सैतानु वे लालो ।। [1]

बाबर का सैयदपुर का आक्रमण मानवता की बर्बरता का प्रमाण है। उसने वहां कत्ले आम करवा दिया । युवा स्त्रियां दासी बना ली गईं अन्य स्त्रियों को कैद में डाल अन्न पिसवाया गया । नगर को लूट कर आग लगा दी गई । स्वयं नानकजी और लालो को लूट में ली गई सम्पत्ति के भारी बोझों को उठाकर सैनिक शिविरों में लाना पड़ा तथा उन्हें अन्न पीसने के लिए मजबूर किया गया । [2]
शिविर में बंदियों पर विशेष रूप से स्त्रियों पर किए गए अमानुषिक अत्याचार ने गुरुनानक का दिल तोड़ दिया। इस कठिन पीड़ा तथा चोट को वह न सह पाए इसी वेदना में उन्होंने ईश्वर की भी आलोचना की और कहा -

खुरासान खसमाना कीआ हिन्दुस्तान डराइआ।
आपै दोसु न देई करता जमु करि मुगल चड़ाइआ।
एती मार पई करलाणे तैं कि दरदु न आइआ।। १ ।। [3]

इन्हीं परिस्थितियों में भक्ति पद्धति के भारतीय सुधारकों ने हिन्दू धर्म तथा इस्लाम के अनुयायियों के बीच कटुता को दूर करने के लिए आन्दोलन चलाया । मुसलमान हिन्दुओं को उनकी मूर्ति पूजा तथा जाति व्यवस्था के कारण पीड़ित करते थे ।

- -

१. तिलंग महला पहला- सबद - ५
२. दबिस्ताने मजाहिब- मोहसिन फानी,पृ०-२२३
३. राग आसा महला-१, सबद -३५

भक्ति उपासक संतों ने इन दोनों के विरुद्ध उपदेश दिए। उन्होंने ईश्वर के पितृत्व तथा मानव के भ्रातृत्व पर बल दिया। इन्होंने कहा कि इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि ईश्वर को मुसलमान अल्लाह या खुदा कहकर पुकारें और हिन्दु परमेश्वर और भगवान कहें। वास्तविक कसौटी यह नहीं है कि कोई किसमें विश्वास करता है, अपितु कोई काम किस प्रकार से करता है। कुरान और पुराण दोनों ही मानव-प्रेम की सीख देते हैं। मुसलमान सूफी संतों ने भी लोगों को इसी प्रकार के सिद्धांत समझाये तथा शान्ति का प्रचार किया।

गुरुनानक देव का जीवन वृत्त -

गुरुनानक देवजी का जन्म सन् १४६६ की पन्द्रह अप्रैल को वेदी परिवार में लाहौर के तलवंडी नामक गांव में हुआ था [१] जो आज ननकाना साहब के नाम से प्रसिद्ध है। उनके जीवन को तीन खण्डों में विभक्त कर सकते हैं -

(१) १४६६ - १४९६ अर्थात २७ वर्षों का गार्हस्थ जीवन अथवा आत्म बोध और ज्ञान का काल

(२) १४९७ से १५२१ अर्थात २५ वर्षों का पर्यटन काल अथवा दूसरे धर्मों का अध्ययन तथा अपने विचारों की व्याख्या का काल

(३) १५२२ से १५३९ अर्थात १८ वर्षों तक रावी नदी के किनारे करतारपुर में अवकाश का जीवनकाल, जब सिख धर्म की नींव डाली गई।

गुरुनानक देवजी के पिता ग्राम पटवारी मेहता कालूचंद थे। नानकजी ने एक ब्राह्मण शिक्षक से बहीखाते का काम और महाजनी में सीखा तथा एक मौलवी से फारसी तथा अरबी सीखी।

- -

१. चार जन्म साखियाँ - विलायत वाली, मेहरबान वाली, भाई मनी सिंह वाली, तथा खालसा समाचार अमृतसर साथ ही महिमा प्रकाश के अनुसार.

चिंतनशील प्रकृति के कारण गुरुनानक हिन्दु तथा मुसलमान, दोनों जातियों के संतों की संगति में अत्याधिक प्रसन्न होते । उन्हें हर प्रकार के अंधविश्वास तथा मिथ्या विचारों से तीव्र घृणा हो गई । उन्हें अपने पिता की नौकरी या पारिवारिक व्यापारिक व्यवसाय से भी लगाव न था । वे ईश्वर के आज्ञाकारी दास तथा सच्चे भक्त के रूप में मानवता की सेवा करना चाहते थे । उनकी प्रकृति, उनके पिता को जो एक व्यावहारिक व्यक्ति थे, न रुचि । उनका ध्यान संसार की ओर लगाने के लिए नानकजी का अल्पायु में बटाला में विवाह कर दिया गया , और उनके दो पुत्र हुए - श्रीचंद और लक्ष्मीदास । किंतु विवाह से भी नानकजी की प्रकृति न बदली। नानकजी की बड़ी बहन नानकी जिसकी शादी कपूरथला के पास सुल्तानपुर में हुई थी, अपने भाई को वहाँ ले गई । वहाँ नानक के बहनोई जयराम ने दौलत खाँ लोदी के सरकारी मोचीखाना में नानक को भंडारी की जगह दिला दी । गुरुनानक ने ईमानदारी और विश्वास से काम किया तथा शीघ्र ही जनप्रिय भंडारी हो गये, किंतु उनका मन ईश्वर में रमा हुआ था । तलवंडी का मुसलमान मिरासी जिसका नाम मर्दाना था, उसे सुल्तानपुर भेजा गया कि वह नानककी लौकिक जीवन की ओर उन्मुख करे । किंतु उस पर नानक जी की भक्ति का रंग चढ़ गया और जब नानकजी भजन गाते तो वह उनके साथ रबाब बजाता । [१]

ज्ञान प्राप्ति के पश्चात गुरु नानक देवजी ने जो उपदेश दिया वह था - " न कोई हिन्दु है न कोई मुसलमान । " अर्थात मानवमात्र उस महान शक्ति की संतान है । इस प्रकार उन्होंने सार्वभौम बंधुत्व पर बल दिया ।

- -

१. देविस्तान - पृ०-२२३ (मोहसिन फानी)

चिंतनशील प्रकृति के कारण गुरुनानक हिन्दु तथा मुसलमान, दोनों जातियों के संतों की संगति में अत्याधिक प्रसन्न होते। उन्हें हर प्रकार के अंधविश्वास तथा मिथ्या विचारों से तीव्र घृणा हो गई। उन्हें अपने पिता की नौकरी या पारिवारिक व्यापारिक व्यवसाय से भी लगाव न था। वे ईश्वर के आज्ञाकारी दास तथा सच्चे भक्त के रूप में मानवता की सेवा करना चाहते थे। उनकी प्रकृति, उनके पिता को जो एक व्यावहारिक व्यक्ति थे, न रुचि। उनका ध्यान संसार की ओर लगाने के लिए नानकजी का अल्पायु में बटाला में विवाह कर दिया गया, और उनके दो पुत्र हुए - श्रीचंद और लक्ष्मीदास। किंतु विवाह से भी नानकजी की प्रकृति न बदली। नानकजी की बड़ी बहन नानकी जिसकी शादी कपूरथला के पास सुल्तानपुर में हुई थी, अपने भाई को वहाँ ले गई। वहाँ नानक के बहनोई जयराम ने दौलत खाँ लोदी के सरकारी मोदीखाना में नानक को भंडारी की जगह दिला दी। गुरुनानक ने ईमानदारी और विश्वास से काम किया तथा शीघ्र ही जनप्रिय भंडारी हो गये, किंतु उनका मन ईश्वर में रमा हुआ था। तलवंडी का मुसलमान मिरासी जिसका नाम मर्दाना था, उसे सुल्तानपुर भेजा गया कि वह नानकको लौकिक जीवन की ओर उन्मुख करे। किंतु उस पर नानक जी की भक्ति का रंग चढ़ गया और जब नानकजी भजन गाते तो वह उनके साथ रबाब बजाता।[१]

ज्ञान प्राप्ति के पश्चात गुरु नानक देवजी ने जो उपदेश दिया वह था - " न कोई हिन्दु है न कोई मुसलमान। " अर्थात मानवमात्र उस महान शक्ति की संतान है। इस प्रकार उन्होंने सार्वभौम बंधुत्व पर बल दिया।

- -

१. देबिस्तान - पृ०-२२३ (मोहसिन फानी)

गुरुनानकजीने पांच बातों पर बल दिया -

(१) नाम-स्मरण (२) दान (३) स्नान (४) सेवा
(५) स्मरण.

ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् गुरुनानकजी ने भंडारी की नौकरी छोड़ दी एवं पवित्र उद्देश्य के प्रचार प्रसार के लिए यात्रा आरम्भ कर दी । उनकी प्रचार यात्राओं में उनके दो साथी थे भाई मर्दाना तथा भाई बाला । उन्होंने ईश्वर या किसी दैविक शक्ति के दावे नहीं किए अपितु सभी से प्रेम किया किसी के प्रति बुराई की भावना नहीं रखी ।

गुरुनानकजी ने बताया कि सच्चा मुसलमान वही है जो सच्चे, नेक कार्य करता है, बाकी सब गलत है। उन्होंने मुसलमानो की पांच प्रार्थनाओं का महत्व बताते हुए कहा -

पंजि निवाजा वखत पंजि पंजा पंजि नाउ।
पहला सचु हलाल दुइ तीजा खैर खुदाइ।।
चउथी नीअति रासि मनु पंजवी सिफति सनाइ।
करणी कलमा आखि कै ता मुसलमाणु सदाइ ।
नानक जेते कूड़िआर कूड़ै कूड़ी पाइ ।। [१]

इसी प्रकार गुरुनानकजी ने कहा सच्चा मुसलमान कहलाना बड़ा कठिन है । सच्चा मुसलमान वह है जो जीवन-मरण के भ्रम को समाप्त कर दे। परमात्मा की इच्छा को शिरोधार्य करे । सभी प्राणियों पर दया करे ।

---

१. श्री आदि गुरु ग्रंथ साहब- माफ की वार महला-१ सलोक-१२

यथा -

मुसलमान कहावणु मुस्कुल जा होइ ता मुसलमान कहावै ।
अवलि अउलि दीन करि मिठा मसकलाना माल्हु मुसावै।
होइ मुसलिमु दीन मुहाणै मरण जीवण का भरमु चुकावै।।
रब की रजाइ मने सिर उपरि करता मने आपु गवावै ।।
तउ नानक सरब जीआ मिहरमति होइ ते मुसलमान कहावै ।। [1]

हिन्दुओं को भी गुरुनानकजी ने उपदेश तथा उदाहरण देकर मूर्ति पूजा तथा जाति भेद के विरुद्ध शिक्षा दी । ब्राह्मणों को अपने कर्तव्य से परिचित कराते हुए उन्होंने कहा -

सो ब्राह्मणु जो ब्रह्मु बीचारै ।
आपि तरै सगले कुल तारै । [2]

इस प्रकार गुरुनानक की उदार दृष्टि एवं व्यापक विचारधारा का परिचय मिलता है । उन्होंने कहीं भी स्वयं को जाति धर्म या साम्प्रदायिकता के कटघरे में बांधे रखने का प्रयत्न नहीं किया, व्यापक मानवता का प्रचार किया । उन्होंने निम्न वर्गों और जातियों के लोगों के साथ खाना पसंद कर उनमें जाति भेद को समाप्त किया । उन्होंने लंगर प्रथा चलाकर इस भेदभावना को नष्ट कर दिया । उनके अनुयायियों में, जो " शिष्य " अथवा " सिख " कहलाने लगे , वे लंगर बराबरी और भाई चारे के प्रतीक बन गये ।[3]

गुरुनानकजी की रचनाएं -

श्री गुरनानक देव मध्यकालीन भारतीय संत कवियों की विशिष्ट परम्परा में आते हैं । उनका काव्य बहुविध है ।

- -

१. श्री आदि गुरु ग्रंथ साहिब मा भ की वार महला-१,सलोक-१३
२. वही राग आसरी। महला-१ सलोक-७
३.

इसका अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी द्विविध रूप मिलता है अर्थात् वे जहां आत्म प्रतिबद्ध एवं आत्म सम्बोधित है वहां जन-जीवन प्रतिबद्ध और सम्बोधित भी है। मूलतः उनका ` आत्म ` ही एक उदात्त धरातल पर जन-जीवन से तादात्म्य संबंध स्थापित कर लेता है। उनकी व्यष्टि परकता समाष्टिपरकता के उदात्त धरातल पर प्रतिष्ठित होती है। जब वे साधु समुदाय से सम्बोधित होते हैं तो वे प्रकारान्तर से स्वयं को ही सम्बोधित करते हैं। उनका विश्व सम्बोधन एक प्रकार से विशद प्रकार का ` आत्म सम्बोधन ` है। इस प्रकार भी गुरुनानक का समस्त काव्य-प्रणयन आत्म से विश्व तक फैले आयाम के साक्षात्कार का परिणाम है।

सभी संतों और भक्त कवियों का उदात्त ` आत्म ` व्यापक सम्पर्क में प्रतिष्ठा पाने के लिए ऐसे जनव्यापी माध्यमों का आयोजन करता है जो उनकी विशुद्ध अनुभूति को जन-जन तक सम्प्रेषित कर सकें। भक्त कवियों के निकट एक विशद स्तर पर की गई अभिव्यक्ति एक प्रकार आत्म मुक्ति थी - ऐसी मुक्ति जिसके सहज स्पर्श से ही जन-मन का कलुष धुल जाता था और जन मन कुंठा एवं दुविधा मुक्त होकर सहजावस्था में पहुंच जाता था। इसलिए आत्म-मुक्ति और जन-मुक्ति के लिए संत भक्त कवियों ने काव्य, संगीत जप, कीर्तन आदि को माध्यम रूप में स्वीकार किया। इस दृष्टि से गुरुनानक देव संगीत के साथ-साथ काव्य को संदेश का परिवहन का माध्यम मानते हैं।[1] उनकी न तो पिंगल में आस्था थी और न ही रीतिशास्त्र में। उन्होंने जन-जीवन में परिचित अलंकारों और छंदों को अपने काव्य में प्रतिष्ठित किया।

- -

१. गुरुनानक और उनका काव्य (सं० डा०महीपसिंह) मोहनसपरा डा०नरेन्द्रसिंह पृ०-२४४

जपुजी -

गुरु नानक देवजी सबसे महत्वपूर्ण कृति जपुजी है। यह आदि गुरु ग्रंथ साहिब के आरम्भ में संग्रहीत है । उसमें जपुजी शीर्षक कहीं भी अंकित नहीं है, किंतु उसमें ' गुरु प्रसादि ' के पश्चात ' जपु ' लिखा होने के कारण इसे जपुजी - शीर्षक से सम्बोधित किया जाने लगा। ' जी ' ' जपु ' के साथ सम्मानार्थ प्रयुक्त किया जाता है । [१]

' जपुजी ' में ३८ छंद हैं जिन्हें पौड़ियों की संज्ञा दी जाती है। इनहीं में जपुजी के वास्तविक विषय की अभिव्यक्ति निहित है । प्रथम पौड़ी में ही प्रश्न हैं : परमात्मा और मानव के संबंध को जपुजी की ३८ पौड़ियों में विस्तृत रूप में विश्लेषित किया गया है। इसके अतिरिक्त ' जपुजी ' में दो श्लोक भी उपलब्ध हैं - प्रथम मंगलाचरण के रूप में दूसरा समाहार के रूप में -

प्रथम - ओंकार सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु ।।
अकाल मूरति अजूनि सैभं गुरु प्रसादि ।। [२]

दूसरा -

पवणु गुरु पाणी पिता माता धरति महतु
दिवसु राति दुई दाई दाइआ खेल सगल जगतु।।
चंग आई आ बुरि आईआ वाचै धर्म हदुरि ।।
करनि आपो आपणी के नेड़ै के दूरि ।।
जिनी नामु धिआइआ गये मसकति घालि।
नानक ते मुख उज्जले केती छुटिटी नालि ।। [३]

---

१. गुरु नानक और उनका काव्य-पृ०-२४७
२. श्री आदि गुरु ग्रंथ साहिब, पृ०-१
३. वही पृ०-

प्रथम श्लोक जपुजी का मूल मंत्र है जिसका अभिप्राय उस गुरु की कृपा से है जो एक है , जिसका नाम सत्य है अर्थात् जो चिर स्मरण रहता है, जो सबका स्रष्टा है, जो समर्थ पुरुष है, जिसे किसी का भय नहीं है, न किसी से उसका वैर है, जिसका अस्तित्व काल की पहुंच से परे है, जिसका जन्म नहीं है जो स्वयंभू है ।

दूसरा श्लोक, जिसका अभिप्राय है - पवन गुरु है, जल हमारा पिता है और इतनी बड़ी पृथ्वी हमारी माता है दिन और रात ये हमारे धायें हैं , जिनकी गोद में सारा जगत खेलता है । धर्म हमारा न्यायाधीश है जो अच्छे और बुरे कर्मों का अपने आगे बांचता है। हमारे कर्म हममें से किसी को तो परमात्मा के निकट ले जाते हैं , और किसी को उससे दूर फेंक देते हैं । जिन्होंने नाम का अभ्यास किया है वे अपना श्रम सफल कर गये हैं । उनके मुख प्रकाशमान हैं, उनके सत्संग से कितने लोग मुक्त हो (भवबंधन से) हो गये ।

उपर्युक्त मूलमंत्र का जपुजी की वाणी से प्रत्यक्ष कोई संबंध नहीं है अपितु मंगलाचरण की परिपाटी के समानान्तर ही इसका प्रयोग हुआ है । ' जपु ' का शाब्दिक अर्थ ' जाप ' करने से है । गुरुनानकजी के अनुसार -

अमृत वेला सचु नाउ वडिआई वीचारु ।[१]

अभिप्राय यह है कि साधक के लिए प्रतिदिन प्रातः सत्यनाम (सतिनाम) का उच्चारण करने में ही जीवन की सार्थकता है । अतः स्पष्ट है कि जपुजी ' गुरु ग्रंथ साहिब के भावों का सारतत्व है जिसमें मर्यादा साधन, और आदर्शों का विशुद्ध निरूपण किया गया है । इतना ही नहीं इसमें गुरुनानकजी ने इस तथ्य को उद्घाटित किया है परमात्मा एक है , वह अलख है, अपार है अगम है, इन्द्रियातीत है, जाति

- -

१. श्री आदि गुरु ग्रंथ साहिब - पृ०-२

अजाति से परे है, अयोनी है और स्वयंभु है। उसीकी इच्छा-शक्ति का परिणाम वर्तमान विश्व संरचना है। [1]

सिद्ध गोष्ठ -

गुरुनानकजी की सिद्ध गोष्ठ रामकली राग में है। इसमें ७३ छंद हैं। आकार में यह एक लम्बी रचना है, जिसमें जन-जन के लिए कर्मकांडों और आडम्बरों के प्रति वितृष्णा एवं त्याज्यनीय वृत्ति अपनाने की प्रेरणा है। गोरखनाथ के अनुयायी साधुओं के प्रश्नों के उत्तर के रूप में जो कुछ भी गुरुनानकजी ने उच्चारित किया - उसे " सिद्ध गोष्ठ " में कविताबद्ध कर दिया गया है। इसमें योग के सिद्धांतों का विस्तार से वर्णन मिलता है। यह एक दार्शनिक कविता है। जिसमें गुरुनानक ने जीवन में पलायन-वृत्ति का खंडन करते हुए संघर्ष पर बल दिया है। अतः उनके अनुसार आध्यात्मिक जीवन की प्राप्ति कर्मठ भौतिक संसार से पलायन नहीं बल्कि उसमें रहकर उसके मोह से निर्लिप्त रहना है। इसके अतिरिक्त गुरुनानक देवजी ने सिद्ध गोष्ठ में सिद्धों के इस प्रश्न -

सिद्ध - किंतु बिधि जगु उपजै पुरखा, किंतु किंतु दुखि बिनसि जाई [2]

का उत्तर इन शब्दों में दिया है -

हउ मैं बिचि जगु उपजै पुरखा, नामि विसारिऐ दुखु पाई। [3]

अर्थात अहंकार से सृष्टि की उत्पत्ति होती है और " नाम की विस्मृति से दुख कष्ट भोगने पड़ते हैं। " हउमैं और " नाम " परस्पर विरोधी तत्वों के पोषक हैं, जहां हउमैं व्यक्ति को एकता से पृथकता और अद्वैत से द्वैतभाव की ओर प्रेरित करता है वहां " नाम " अद्वैत सत्य तथा सर्वव्यापी सत्ता का प्रतीक है।

१. गुरुनानक और उनका काव्य

- - - - - - - - - - - - - - - - - - -

१. श्री आदि गुरु ग्रंथ साहिब सिद्ध गोष्ठ, पउड़ी-[illegible]

२. वही पउड़ी-[illegible]

नाम ही ऐसा सहज मार्ग है जो जीव को आनंदावस्था तक पहुंचने में सहायक सिद्ध हो सकता है। ` नाम ` ही ऐसा रथ चक्र है जो मानवता - अमानवता के युद्ध में अवास्तविक योग खोजकर और उसका नाश करने में समर्थ होगा । इसलिए गुरु नानक देव ने वास्तविक मानवता की खोज के लिए सिद्धों को प्रेरणा दी ।

दक्षिणी ओंकार -

गुरुनानक देवजी की यह रचना भी रामकली राग में है । ऐसा कहा जाता है कि गुरुनानक देव ने इस वाणी की संरचना अपनी दक्षिण यात्रा के दिनों नर्मदा नदी के तट पर ओंकार को ओंकार नामक महादेव के पवित्र स्थान पर की है । संभवतया इसका नाम दक्षिणी ओं कार पड़ा है । [1] यह एक उपदेशात्मक रचना है। इसमें गुरुनानक देव ने अपनी इस धारणा को पुष्ट किया है कि ईश्वर एक है । वह ब्रह्म रूप है । यह सृष्टि उसी का कृपा-फल है । वह जन्म मरण रहित और क्रिया अक्रिया से निर्लेप है। वह अजर अमर है। इस भौतिक नश्वर प्रकृति में जो कुछ भी दृष्टिगत है- वह स्वयं ही है अर्थात् वह इन्द्रियान्तर है । केवल उसका नाम ` मात्र ही सांसारिक जीव की मुक्ति का भेंट हो सकता है। उसे पाने के लिये विषय विकारों को त्यागना होगा । मानव के लिए यह भी आवश्यक है कि वह इस विराट में विश्व में रहकर निष्काम कर्म करे ताकि काठ की तरह हल्का होकर उस अथाह समुद्र में पार उतर सके - जैसे

` ढंढोलत ढूंढत हउ फिरी ढहि ढहि पवन करारि।
भारे ढहते ढहि पये, हउले निकसे पारि ।। [2]

और विराट से साक्षात्कार होने पर बिन्दु से सिंधु हो जाये। गुरुजी ने ` गुरु ` का जीव का धर्म बताया है और नाम-स्मरण पर बल दिया है।

- -

१. गुरुनानक और उनका काव्य-पृ०-२४६
२. श्री आदि गुरु ग्रंथ साहिब दक्षिणी ओंकार-पउड़ी-३१

पट्टी -

गुरु नानक देवजी ने पट्टी राग आसा में लिखी है । यह प्रथम कविता है, जिसके अन्त में गुरुजी ने अपने आप को ' नानक शायर ' के रूप में लिखा है। इसमें पंजाबी वर्णमाला के ३५ अक्षरों के माध्यम से ३५ छंदों में उस अजर-अमर और अगाध परमात्मा के अस्तित्व की निरवयवात्मकता एवं सर्वव्यापकता का वर्णन किया है। उसे प्रकृति का मुख्य संचालक मानकर उसी की प्राप्ति का अध्ययन ही गुरुनानक देव ने श्रेयस्कर समझा है। उनकी दृष्टि में उस विराट रूप के दर्शनार्थ सांसारिक अध्ययन के अतिरिक्त आध्यात्मिक चिंतन अनिवार्य है। इसी के परिणाम स्वरूप मानव सांसारिक मोह माया, अहंकार आदि से विरमुक्ति प्राप्त कर सकता है। अतः स्पष्ट ही इस वाणी में गुरुनानक देव का जीवनानुभव आत्यन्तिक भाषा में बड़े विराट फलक पर चित्रित हुआ है ।

वार आसा, वार माझ, वार मलार -

तीनों गुरनानक देव द्वारा उच्चरित वाणियां हैं । इनमें से वार आसा अपने आप में सर्वोत्कृष्ट वाणी है । इसकी अधिकतर वाणी राग आसा में ही रचित है । २४ पौड़ियों और ४४ श्लोकों की इस वाणी में गुरनानक देव ने आसुरी वृत्ति पर दैवी-वृत्ति की विजय दिखाने का प्रयास किया है, साथ ही मानव बने रहने की प्रेरणा दी है । इसमें गुरुनानक देव ने किसी धर्म विशेष का खंडन नहीं किया है और न ही उसका निरादर किया है, अपितु धर्म कर्मियों को अपने वास्तविक धर्म की पहचान करने की ओर प्रेरित किया है, क्योंकि मानव के लिए आत्मज्ञान की प्राप्ति अनिवार्य है । १

- -

१. गुरुनानक और उनका काव्य- पृ०-२५१

' वार माझ ' गुरुजी की १४ पौड़ियों की वाणी है, जिसमें १० पौड़ियों के साथ दो-दो श्लोक हैं और शेष ४ पौड़ियों - १ के साथ ३ श्लोक, ७ के साथ ३ श्लोक, ६ के साथ ४ श्लोक, १२ के साथ ७ श्लोक है । ' वार माझ ' का सार तत्व यह है कि सांसारिक मानव को गुरु की शरण में आना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि मानव इस बहुरंगी विश्व में मोह माया से निर्लिप्त नहीं रह सकता । इसके अतिरिक्त इसमें गुरुजी ने ऊँच-नीच, धार्मिक भेदभाव , कर्मकांड, सांसारिक विभूति आदि का विरोध किया है ।

' वार मलार ' में २० पौड़िया है और २४ श्लोक हैं । वार आसा और वार मलार की विषय वस्तु बहुत कुछ सामान्य है । इसमें सामाजिक कुरीतियों और बहुदेव पूजा का खंडन किया गया है ।

बारामाह-

प्रकृति चिरकाल से ही मानवीय अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम रही है। प्रकृति चित्रण में बारह महीनों का वर्णन अति प्राचीन परम्परा है। उसी परम्परा में गुरुनानक देवने भी ' बारामाह ' के अन्तर्गत तुखारी राग में १७ पदों की रचना की है।

गुरुनानकजी के बारामाह में प्रकृति अपने विराट रूप में चित्रित हुई है। प्रत्येक पद प्रकृति के कलात्मक सौंदर्य को अभिव्यक्त करता है। उनकी प्राकृतिक अवधारणा अति विशाल एवं आध्यात्मिक है। इसलिए उन्हें सभी ओर से -

' कुदरति दीसै कुदरति सुणीये, कुदरति भओ सुख सारु ।[1]

---

१. श्री आदि गुरु ग्रंथ साहिब बारामाह, पृ०-१३३

बारहमासा - वाणी में गुरुजी ने प्रकृति के उपमानों द्वारा उस अजर अमर, एकाकार हरि के प्रेम में लिप्त होने की अपने मन को प्रेरणा दी है ताकि सहज ही अवगुणों , सांसारिक प्रपंचों , बंधनों आदि से निवृत्ति मिल सके और सच्चे ज्ञान की प्राप्ति हो सके। निःसंदेह बारहमासा वाणी गुरुनानक देवजी की श्रेष्ठ रचना है ।

गुरुनानक काव्य का साहित्यिक मूल्यांकन -

गुरुनानक देवजी उन अध्यात्म गुरुओं में से हैं जिन्हें कविगुरु ` कहा जा सकता है। इनकी आध्यात्मिक वाणी में जहां चिंतन-दर्शन विषयक विशद विचार हैं, वहीं आत्मा के उद्गार भी । इस दृष्टि से नानकजी का आध्यात्मिक चिंतन तथा काव्य सर्जन परस्पर अन्योन्याश्रित हैं । काव्य यद्यपि उनका साध्य न होकर साधन मात्र है, फिर भी उनकी कविता में पर्याप्त प्रभविष्णुता है। नानक वाणी एक सच्चे संत के हृदय की वाणी है अतः उसमें अनुभूति की सघनता है, काव्य की सरलता है, और अद्भुत संप्रेषण शक्ति है । इस दृष्टि से नानक वाणी श्रेष्ठ है। धार्मिक महत्व के साथ इसका अपना रचनात्मक वैशिष्ट्य है। नानकजी मुख्यतः , विचारक और सुधारक हैं । फिर भी उनका कवि रूप अक्षुण्ण है। भारतीय काव्य परम्परा में कवि को मनीषी स्वीकार किया गया है,। नानकजी ऐसे ही तत्ववेत्ता तथा आत्मवेत्ता कवि हैं। उन्होंने स्वयं को " शायर " अर्थात् कवि घोषित भी किया है । यथा - " करे सरार का सिफु जाणी, नानक साइर इव कहिया । " १

नानकजी यद्यपि काव्यशास्त्र के प्रणेता नहीं थे न चमत्कारवादी कवि ही थे, फिर भी उनकी वाणी में काव्य के विविध रूपों - रस, अलंकार, ध्वनि वक्रोक्ति आदि का सम्यक् समाहार हुआ है।

- -

१. नानक वाणी (स. जयराम मिश्र) - पृ०-३११

नानक काव्य, काव्य और कला के विभिन्न मापदंडों पर सफलता पूर्वक घटित किया जा सकता है। नानक वाणी में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक प्रतीक और बिम्बों की बहुलता है। यह कवित्वपूर्ण भावों से ओतप्रोत होकर भी कृत्रिम कलाकारिता से दूर है। साहित्य के विविध उपादानों का आश्रय लेकर भी नानकजी किसी वाद विशेष से सम्बद्ध नहीं है। वे तो अपनी वाणी द्वारा सत्य की अनुभूति कराना चाहते थे। यही उनका परम साध्य है और यही उनकी परम सिद्धि है।

नानकजी की वाणी सम्पूर्ण रूप से गीतोन्मुख धार्मिक काव्य है। इसे मुक्तक काव्य की कोटि में रखा जा सकता है। श्री गुरु ग्रंथ साहिब में संकलित नानकजी की वाणी राग रागनियों में उपलब्ध है। इससे इनके संगीत ज्ञान का पता चलता है। काव्य सौष्ठव की दृष्टि से नानकजी की वाणी में अत्यन्त सुन्दर उद्भावनाएं दृष्टिगोचर होती है। कल्पना का विस्तृत विस्तार दिखाई देता है। इनके कथन बड़े गूढ़ार्थ व्यंजक है। एक श्लोक में गुरुजी उस कौवे का वर्णन करते हैं जो एक गंदी तलैया में मल मल कर स्नान करता है, फिर भी उस अवगुणी का तन मन गंदा ही बना रहता है।[1] इस श्लोक में विषयासक्त प्राणी की दशा का चित्रण है।

नानकजी की वाणी में ' रस ' का सफल परिपाक हुआ है। उन्होंने ' हरि ' को ही रस माना है और उन्हें ही रसिया। यथा -

' आपे रसिया आपि रसु। (नानकवाणी पृ०-२२४) उनकी वाणियों में शृंगार, करुण। शान्त, भक्ति आदि रसों का प्राचुर्य है किंतु रस में शम तथा निर्वेद की अनुगूंज है। शृंगार के संयोग-वियोग दोनों पक्षों में उनका सौंदर्य बोध जागृत हुआ है।

- -

१. नानकवाणी (सं जयराम मिश्र) पृ०-८०७ (कलर कैरी कापड़ी)

उन्होंने मानव जीवन में भक्ति को ही परम सार्थक विषय माना है और ईश्वरीय महिमा के वर्णन में समर्पण तथा तल्लीनता को आवश्यक मानकर भक्ति से इतर लौकिक विषयों के प्रति झुकाव नहीं रखा है । यथा -

" हरि रसु चाखिआ तउ मनु भीजा, प्रणवति नानकु अवरन दूजी [1]

स्पष्ट है कि उन्होंने हरि रस " अमृत रस " से युक्त काव्य को ही सार्थक माना है जो इस दृष्टि से स्वाभाविक है कि रस, काव्य प्रयोजन आदि के संदर्भ में उनका बल विशेषतः भक्ति तत्व पर रहा है इसके गुणगान से ही अलक्ष्य प्रभु के दर्शन संभव माने हैं । अतः कहा जा सकता है कि उन्होंने आत्म प्रेरणा, भावुकता, आस्था, मनन आदि की पृष्ठभूमि में भक्ति-भाव के प्रतिपादन को काव्य का मूल वर्ण्य विषय माना है ।

काव्य शिल्प की दृष्टि से नानकजी के काव्य में छंदों और अलंकारों का प्रचुर प्रयोग हुआ है । उनके मतानुसार-

सोरठि तदा सुहावणी जो तदा मनि होय।[2]

अर्थात् सोरठा (छंद विशेष) तभी सुहावना माना जायेगा जब उसमें मन सच्चा हो जाए । नानकजी ने विविध राग रागनियों के अनुसार अनेक काव्य रूपों - श्लोक, पउड़ी, (पंचपदी) शब्द, चउपदे, अष्टपदी, छतकीआं, आरती, अलाहणीआं (एक प्रकार का शोक गीत) का प्रयोग किया है । गुरुजी ने " छंत " नाम भी दिया है । " वार " नाम आख्यानक छंद में जन प्रचलित वीरों की शौर्य गाथाएं अंकित की है ।

- -

१. नानक वाणी भूमिका डा० जयराम मिश्र, पृ०-७६६।५
२. वही पृ०-४०६

' पहरे ' में बनजारे मानव जीवन रात्रि के चार प्रहर (गर्भ-यौवन कैशोर्य - बाल्यकाल) की चार अवस्थाओं से संबंधित प्रबोधपूर्ण उक्तियां हैं। ' पटी ' छंद भी नानकदेवजी का प्रथम प्रयोग है, ३५ अक्षरों की उपदेशपूर्ण पट्टिका है। ' थिति ' में १५ तिथियों की रूपकात्मक गणना कराई गई है। इसी प्रकार ' सोलहे ', जपुजी, सुचजी, सोदरु और लहंदा भाषा का कुचजी आदि छंद प्रयुक्त हुए हैं ।

गुरुजी ने अपने काव्य में पूर्वी पंजाबी का प्रयोग किया है साथ ही ब्रज, खड़ी बोली, रेख्ता, सिंधी राजस्थानी, गुजराती लहंदा आदि की शब्दावली भी प्राप्य है। लहंदा भाषा का प्रयोग अपेक्षाकृत दुरूह है -

मंञु कुचजी अमावणि डोसड़े हउ किउ सहु रावणि जाउ जीउ । '[1]

कुछ प्रयोग पुरानी पंजाबी के हैं जैसे - काना, वीना, दुष्टा आता[2]

मुहावरे सूक्तियां एवं लोकोक्तियां आदि का भी इनकी वाणी में बाहुल्य है। यथा -

' आपि बीजि आपे ही खाहि । [3]
हीरे जैसा जनमु है कउड़ी बदले जाइ ।। [4]

गुरुनानक के काव्य में प्रकृति एक सजीव अनुभूति के रूप में चित्रित हुई है । उनका प्रकृति विषयक अनुभव बड़ा व्यापक एवं समुन्नत है। उसमें अखिल सृष्टि का भाव व्याप्त है।

- -

१. नानक वाणी पृ०-४५०
२. वही पृ०-८००
३. जपुजी पृ०-२
४. नानक वाणी, पृ० गउड़ी बैती सबदु १८

पुरुष प्रकृति की औपनिषदिक चेतना उनके काव्य में दिखलाई पड़ती है। एक ओंकार, वाहिगुरु, पुरुष, प्रकृति का कर्ता है। वह एक ओंकार, निर्भय, सतिगुरु कर्ता है और शेष सब प्रकृति है। प्रकृति के रूप में उसी का प्रसार है -

कुदरति दिसै कुदरति सुनिए, कुदरति भउ सुख सार ।। [१]

उन्होंने परमात्मा के प्रेम को अनेक रूपों में अभिव्यक्त किया है। उस हरि द्वारा निर्मित प्रकृति जब इतनी मोहक है तो उसका निर्माता कितना सुन्दर होगा । यही कारण है कि विस्तृत नीलाकाश, उन्हें प्रभु की आरती का थाल, चन्द्रमा सूर्य दीपक एवं तारागण मोती प्रतीत होते हैं। मलय पवन आरती की धूप तथा समस्त पुष्प-राशि उस आरती के निमित्त पुष्प हैं । यथा -

गगन मैं थालु रवि चंदु दीपक बने, तारिका मंडल जनक मोती
धूपु मलआनलो, पवणु चवरो करे, सगल बनराइ फूलंत जोती
कैसी आरती होइ भवखंडना तेरी आरती।
अनहता सबद वाजंत भेरी ।। १ ।। रहाउ ।। [२]

गुरुनानक देवजी ने तुखारी राग में बारहमाहा में वर्ष के बारह मासों का हृदयग्राही चित्रण किया है। सावन माह का चित्रण अत्यन्त आकर्षक है -

सावणि सरस मना घण वरसहि रुति आए।
मै मनि तनि सहु भावै पिर परदेसि सिधाए।।
पिउ घरि नहिं आवै मरीऐ हावै दामनि चमकि डराए।
सेज इकेली खरी दुहेली मरणु भइआ दुखु माए।।
हरि बिनु नींद भूख कहु कैसी कापड़ि तनि सुखावए।
नानक सा सोहागणि कंती पिऊ कै अंकि समावए।। [३]

---

१ नानकवाणी पृष्ठ-३२५।६
२ नानक वाणी , राग धनासरी , सबद-६
३ वही राग तुसारी पउड़ी-६

इसी प्रकार वैशाख , जेठ एवं भादों माह का चित्रण भी अत्यन्त सरस रूप में किया है। प्रकृति के बाह्य पक्ष के चित्रण के साथ साथ नानकजी ने मानवी प्रवृत्ति का भी सफल चित्रण किया है। उन्होंने साकुला पतिवृत धर्म और अपार प्रेम, दुहागिनी स्त्रियों के दुर्गुणों का पंडितों मुल्लाओं के आडंबर भाव, राजाओं की नृशंसता का बड़ा मनोवैज्ञानिक हृदयग्राही चित्रण किया है। इस प्रकार नानक-काव्य का विषय-विस्तार अत्यन्त व्यापक है एवं उन्होंने सच्चे कवि के रूप में काव्य का सृजन किया । इस दृष्टि से गुरुनानक एक विशुद्ध धर्मकवि थे ।

विचारधारा-

गुरुनानकजी युग-पुरुष थे । जो व्यक्ति समय की गति को पहचान कर उसे बदल देते हैं वे युग-चेतना की गहरी पहचान रखते हैं । उनके समक्ष परम्पराओं-रूढ़ियों से भरा हुआ एक ऐसा समय होता है जो वर्तमान को स्पर्श करता हुआ विशाल अतीत में फैला होता है । उसके संघर्ष, उसके राजनीतिक दबाव, उसके विचार और जीवन पद्धति के प्रभाव से उत्पन्न परिवेश होता है। इस परिस्थिति से भविष्य के बनाते हुए समाज के उभरे हुए संकेत उसके सम्मुख होते हैं । युग-पुरुष इन सभी के मध्य से अपने जीवन दर्शन का निर्माण करता है।

गुरुनानकजी ने बड़ी गहराई से पहचाना कि उनके समसामयिक समाज को अतीत की परम्परा के रूप में जो कुछ भी प्राप्त हुआ है उसका उचित उपयोग नहीं किया गया है। गुरुनानक जी ने ऐसे समय में विरोधी भाव ग्रहण किया। साथ ही सुझाव दिया कि अपनी सांस्कृतिक सम्पदा के रूप जो उपयोग तत्व हैं उसकी रक्षा करनी चाहिए ।

ऐसा जनेऊ न टूटता है , न इसे मल लगता है, न यह जलता है और न ही यह नष्ट होता है।[1]

संत ' कथनी और करनी ' की एकता पर बल देते है । किंतु यह अंतर मिट नहीं पाता । गुरुनानकजी ने इस तथ्य को गहराई से अनुभव किया था । उन्होंने अनुभव किया था कि करनी के विषय में कहा तो जाता है परन्तु उसे सत्य की प्राप्ति का एक साधना मात्र ही माना जाता है इसलिए अधिक आग्रह सत्य की व्याख्या पर ही लगा रखा है। उन्होंने कहा-
' सत्य सबसे ऊपर है, परन्तु उससे भी ऊपर है सत्याचार ।[2]

गुरुनानकजी का आग्रह इस उद्घोषण तक ही सीमित नहीं रहा, उनकी वाणी ने तदनुसार इसका अनुशीलन किया है। उन्होंने कहा - ' पढ़ना ही पर्याप्त नहीं है उसे इतनी गहराई से आत्मसात करना भी आवश्यक है ।[3]

गुरुनानक साधक के ज्ञान में रूढ़ियों अंधविश्वासों, बिना समझे बूझे शास्त्र वचनों की ओर नहीं धकेलते हैं । अपितु वे उसके हाथ में ज्ञान का दीपक देते हैं जिसके प्रकाश में वह सत्यासत्य का निर्णय कर ले । उनके अनुसार ' पहले तथ्य को भलीभांति समझ लो , फिर उसका अनुसरण करो ।[4] गुरुनानकजी तत्कालीन समाज में घटित हो रही घटनाओं के प्रति पूर्णतया सचेत थे । वे जागरूक समीक्षक के समान अत्याचारों के प्रति स्वर निनादित करते हैं । बाबर की क्रूर और नृशंस अत्याचारों को उन्होंने अपने शब्दों में व्यक्त किया है -

- -

१. आदि श्री गुरुग्रंथ साहब आसा दी वार पृ०-४७१
२. आदि गुरु ग्रंथ साहब,महला-१,सिरी राग , पृ०-६२
३. वही राग धनासरी, पृ० -६६२
४. वही सिरी राग पद-१७

जिन सिर सोहनि पटटीआ मांगी पाइ संधुर।
से सिर काती मुनी अन्हि गल विचि आवे धुड़ि।।
महला अंदरि होंदीआ हुणि बहणि न मिलन हदुरी।।१।। [1]

चारों ओर की भयावह और करुणाजनक स्थिति को देखकर गुरुनानक अत्यन्त क्षुब्ध हो जाते हैं और ईश्वर को संबोधित करते हुए कहते हैं-

खुरासान खसमाना किआ हिन्दुसतानु डराइआ।
आपै दोसु न देई करता जमु करि मुगलु चड़ाइआ।।
एती मार पई कुरलाणे तैं कि दरदु न आइआ।। [2]

अपने देश पर विदेशियों द्वारा हुए अत्याचारों से विक्षुब्ध होकर ईश्वर के प्रति ऐसी ताड़ना भरी शिकायत सम्पूर्ण भक्ति साहित्य में निश्चय ही अद्वितीय है ।

गुरुनानकजी ने मानव चेतना को कुंठित करने वाली 'कूपमंडूकता' का डटकर विरोध किया। यदि कोई धर्म ईश्वर की बनाई प्रकृति के सम्पर्क में आने से संसार में फैले हुए विभिन्न धर्मों, मतों सम्प्रदायों के व्यक्तियों से मिलने और उनसे विचार विमर्श करने से भ्रष्ट हो जाता है तो वह स्वयं भ्रष्ट हो चुका है उसे छोड़ देना ही श्रेयस्कर है। गुरुनानक ने अपने जीवन के लगभग २५ वर्ष यात्राओं में व्यतीत किए। भारत के कोने-कोने में पहुंचकर उपदेश किया । लंका तिब्बत, मक्का, मदीना बगदाद अफगानिस्तान कुरुक्षेत्र वे कहां नहीं पहुंचे उन्होंने सभी स्थानों पर मानव चेतना को जागृत किया ।

अंधविश्वासों पर गुरुजी ने कभी विश्वास नहीं किया । भारतवासी अपने अंधविश्वासों के कारण ही पतन के गर्त में गिरते रहे हैं ।

---

१. आदि श्री गुरु ग्रंथ साहब राग आसा असटपदी-११
२. वही महला-१ राग आसा पृ०-३६०

सोमनाथ के मंदिर पर महमूद गजनवी ने आक्रमण किया तो मंदिर के पुजारियों ने बड़े विश्वास के साथ कहा - भगवान सोमनाथ अपना तीसरा नेत्र खोलकर इस अधर्मी को भस्म कर देंगे । किंतु अंधविश्वास की सदैव पराजय होती है । उसी प्रकार जब मुगलों ने भारत पर आक्रमण किया तो यहां के पठान शासक भी टोने टोटके करवा कर आक्रमणकारियों को नष्ट करना चाहते थे । गुरु नानकजी ने ऐसे अंधविश्वासियों से बड़े व्यंग से पूछा है-

बाबर ने तो तुम पर चढ़ाई कर दी, किंतु तुम्हारे टोने-टोटके से क्या हुआ ? तुम्हारे वज्र के समान सशक्त किले और महल जलकर राख हो गये । राजपुत्रों को मिट्टी में मिला दिया गया । तुम समझते थे कि टोने टोटके वाली पत्रों से मुगल सिपाही अंधे हो जाएंगे परन्तु वहां तो एक भी मुगल अंधा नहीं हुआ ।[1]

गुरुनानक ऐसे झूठे पाखंडों से जनता को सदैव सचेत करते हैं । उनके अनुसार अंधविश्वास जनता को विवेकहीन एवं पंगु बना देता है । ईश्वर ने सभी जीवों को समान उत्पन्न किया है अतः छुआछूत के भेद को भूल कर नीची समझने वाली जाति का उत्थान करना चाहिये। उनके अनुसार -

> नीचा अंदरि नीच जाति नीची हु अति नीचु।
> नानकु तिनै के संगि साथि वड़िआ सिउं किआ रीस।।
> जिथै नीचे संभालिअन तिथै नदरि तेरी बखसीस।।[2]

अर्थात् नीचों में भी जो नीची जाति के हैं, उनमें भी जो नीचे हैं, मैं सदैव उनके साथ हूं। अपने आपको बड़ा कहने वालों से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है । गुरुजी की यह घोषणा मानो भावी भारत के समाजवादी समाज के निर्माण का प्रथम घोषणा पत्र था।

- -

१. आदि गुरु ग्रंथ साहब महला-१, राग आसा पउड़ी-४
२. वही राग माझ

गुरुजी के अनुसार समाजवाद का होना परम आवश्यक है।

गुरुजी ने तत्कालीन समाज को, जो सम्मानहीन लज्जाहीन होकर अपना जीवन व्यतीत कर रहा था, झकझोर कर कहा - " अपना सम्मान खोकर जीना व्यर्थ है, उस जीवन को जीवित रखने के लिए जो कुछ खाया-पीया जाता है सब व्यर्थ है। [1]

गुरुनानकजी ने आध्यात्मिक उपलब्धि का मार्ग तो बताया ही, परन्तु उन्होंने अपने समय के समाज की ज्वलन्त समस्याओं की किसी प्रकार उपेक्षा नहीं की जो समाज अपने सांसारिक जीवन में पीड़ित और पददलित है वह आध्यात्मिक उन्नति को भला क्या प्राप्त कर सकेगा । गुरुनानक की वाणी अपने समाज की सुप्त आत्मा को जागृत करने वाली सिद्ध हुई ।

गुरुनानक जी ने अपने युग की बुराइयों का चित्रण कर भलाई का मार्ग सुझाया । उस ' कूड़ ' (झूठ) की अमावस में उन्होंने सच (सत्य) का चन्द्रमा ढूंढ निकाला। उनका यह सफल प्रयास देश के जीवन में समन्वय और सौहार्द्र की स्थापना में योगदान दिया। हिन्दु-मुसलमान वैमनस्य ने देश के जीवन को अभिशप्त कर रखा था । गुरुनानक ने कट्टर मुसलमान को भी सच्चे मनुष्य रूप मुसलमान बनने का उपदेश दिया और कट्टर ब्राह्मण को भी मनुष्यता का मार्ग बताया । उनके अनुसार मुसलमान बनने की विधि बताई -

" मिहर मसीत सिदकु मुसला हकु हलालु कुराण ।
सरम सुनति सीलु रोजा होउ मुसलमान ।। [2]

- -

१. आदि गुरु ग्रंथ साहब महला-१ राग माझ
२. वही [illegible] माझ की वार महला-१ श्लोक-१०

अर्थात् ' दयाभाव ' को मस्जिद बनाओ, श्रद्धा को नमाज़, सत्य की कमाई को कुरान समझो और लज्जा को सुन्नत मानो। शील सदाचार को रोजा बनाओ । इस प्रकार सच्चे मुसलमान बनो ।

ब्राह्मण को उन्होंने सच्चे ब्राह्मण बनने की युक्ति बताई -

" सो ब्राह्मणु जो ब्रह्म बिचारै । आपि तरै सगले कुल तारै ।।[१]

इस प्रकार गुरुनानक देवजी ने न केवल अपनी भक्ति साधना को सब उपयोगी तत्वों से समन्वित किया, अपितु युग के राजनीतिक धार्मिक, जातिगत, सामाजिक अविचारों को खण्डित कर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समन्वय और सौहार्द्र उत्पन्न करने की चेष्टा की ।

गुरुनानक ने अच्छे कर्मों को ही भक्ति के अनुकूल माना है। शील सदाचार और नैतिकता का भी उनकी भक्ति साधना से समन्वय स्थापित हुआ है। वस्तुतः गुरुनानक देवजी ने सभी धार समाज के सभी तत्वों विचारों और जनता प्रवृत्तियों को प्रभु भक्ति साधना में समन्वित कर सभी क्षेत्रों के अतिरेकों को दूर किया, अविचार और मिथ्यात्व को समाप्त कर उन्हें भक्ति के समन्वित मार्ग की ओर प्रेरित किया ।

" आर्थिक विषमता " भी उस युग के समाज को बहुतायत से विश्रृंखलित किए हुए थी । गुरुनानक देवजी ने न केवल इसका विरोध किया, अपितु मानव, मानव की समता में धन को कोई स्थान नहीं दिया । राजसी ठाठ से रहने वाले मलिक भागों के पकवान को अस्वीकार करके उन्होंने अपने परिश्रम से अर्जित करने वाले भाई लालो के सादे भोजन को अपनाकर कई संदेश दिए। आर्थिक विषमता के कारण धन की दृष्टि से समृद्ध मानव की अपेक्षा उन्होंने निर्धन को अपनाने का प्रयत्न किया साथ ही कर्मण्य जीवन-व्यतीत करने का भी प्रयत्न किया ।

---

१ आदि गुरु ग्रंथ साहब धनासरी, महला१ श्लोक-७

वेशधारी अकर्मण्य साधुओं का उन्होंने विरोध किया। अपने परिश्रम से अर्जित सादे भोजन को अपनाकर गुरुनानक जी ने जहां अकर्मण्यता का विरोध कर कर्मण्यता का महत्व प्रतिपादित किया, वहां सच्चाई और ईमानदारी से आजीविका अर्जित करने का भी संदेश दिया।

गुरुनानकजी ने समाज में ' गृहस्थ जीवन ' को सम्मानजनक स्थान एवं नारी को गौरवपूर्ण स्थान प्रदत्त किया। सिद्धों नाथों की गुह्य तांत्रिक साधनाओं के कारण समाज में जो विकार उत्पन्न हुए थे, उनके कारण नारी अपना महत्व खो चुकी थी। नारी को वासना पूर्ति का साधन मात्र समझने वाले विदेशी आक्रमणकारियों को भी संतों एवं गुरुनानक ने सतर्क किया। गुरुनानक जी ने निवृत्ति पर आधारित प्रवृत्ति ' का क्रियात्मक संदेश दिया। स्वयं गृहस्थ जीवन व्यतीत किया किंतु उसमें लिप्त नहीं हुए। यह उनके जीवन का अद्भुत संतुलन था। उन्होंने स्वस्थ समाज का निर्माण करने का उत्तरदायित्व ग्रहण किया और स्त्री को गौरवशालिनी माँ बनाकर उसे पूर्णतया निबाहा नारी को पुरुष की सहयोगिनी बनाकर उसका पुनरुद्धार किया।

भंडि जमीऐ भंडि निमीऐ भंड मंगणु वीआहु।
भंडहु होवै दोसती भंडहु चलै राहु।
भंड मुआ भंड भालीऐ भंड होवै बंधान।
सो किउ मंदा आखीऐ जितु जमहि राजान।।[1]

गुरुनानकजी ने अपनी वाणी के द्वारा दार्शनिक मतवादों की स्थापना नहीं की है अपितु ऐसे विचारों को प्रस्तुत किया है जो सर्वसाधारण के लिए सुलभ है। यह एक शुद्ध व्यावहारिक धर्म है, जिसका पूर्ण अनुसरण समाज में रहकर ही किया जा सकता है।

- -

१. आदि गुरु ग्रंथ साहब- राग आसा दीवार महला-१, सलोक ४१, पृ०-३५२

इसीलिए गुरुनानक देवजी ने समाज में रहकर अपने विचार अभिव्यक्त किया, उपदेश दिए एवं अपने व्यक्तिगत जीवन के आदर्श भी सबके सामने रखे। उन्होंने चरित्र पर बल दिया जिसके द्वारा व्यक्ति समाज के भीतर अपने कर्तव्यों का पालन कर सके। गुरुनानक देव का वर्ण-व्यवस्था को दूर करने का मुख्य उद्देश्य यही था कि प्रत्येक व्यक्ति में आध्यात्मिकता आत्म रक्षा- भावना व्यवहार कुशलता तथा लोकसेवा पनपे। यही कारण है आदर्श तथा व्यवहार दोनों के बीच सामंजस्य स्थापित कर उन्होंने सभी संतों से अपने को अलग ला खड़ा किया।

व्यावहारिक जीवन के लिए गुरुनानक देवजी ने चरित्र निर्माण एवं सांसारिक झगड़ों की जड़ कामिनी कंचन, धन-वैभव, पुत्र- कलत्र सब माया का रूप मानकर उपेक्षा की है-

माइआ मोहि जगत सबाइआ।
कामनि देखि कामि लोभाइआ।।
सुत कंचन सिउ हेतु वधाइआ ।। १

जीवन को उन्नत बनाने के लिए 'साधना' की बहुत आवश्यकता है, जो नाम-जाप से ही संभव है। गुरुनानक जी ने 'नामस्मरण' को साधना और साध्य माना है। गुरु नानक समस्त जीवों के लिए आश्रय स्वरूप है। इसी नाम के आधार पर समस्त विश्व का अस्तित्व है नाम का कथन, गान मनन करना परम साधना है। यथा -

' नानक नामु नवीसरै छूटे सबदु कमाई। २

- -

१. नानक वाणी - प्रभाती विभास, असटपदीआ २ पृ०-७६२
२. वही पृ०-३८६

नाम-साधना गुरु के ज्ञान से ही संभव है, गुरु के शब्दों में अद्भुत शान्ति है तभी सद्गति एवं ईश्वर प्राप्ति सम्भव है। यथा -

" नदरि करहि जे आपणी ता नदरी सतिगुरु पाइआ।।
एहु जीउ बहुते जनम भरंमिआ ता सतिगुरु सबदु सुणाइआ। [1]

सत्संगति से ही गुरु-प्राप्ति होती है अत: सत्संग को गुरुजी ने आवश्यक माना है। गुरुनानकजी ने परमात्मा का साक्षात्कार किया और प्रत्यक्षानुभूति प्राप्त की। उसी अनुभूति को उन्होंने अव्यक्त, निर्गुण स्वरूप में प्रतिष्ठित किया और लोकभाषा के माध्यम से उसे सर्वग्राह्य बनाया। उन्होंने अवतारवाद का खंडन किया और एकेश्वरवाद का स्वरूप प्रतिष्ठित किया। ब्रह्म के एकत्व का वर्णन करते हुए नानकजी स्पष्ट शब्दों में उल्लेख करते हैं -

" साहिबु मेरा एकु है अवरु नहीं भाई ।। [2]

" एकोंकार तो नानक वाणी का मूल अथवा बीजमंत्र है, जिससे स्पष्ट है कि नानकजी एकेश्वरवादी थे, किन्तु साधारण जनता में बहु देवपूजा प्रचलित थी। उसका खंडन करते हुए गुरुनानकजी कहते हैं- वह एक है। वह सत्य स्वरूप है, कर्ता स्रष्टा परम समर्थ, निर्भय, अजन्मा, स्वयंभू, तथा कालातीत है -

१ ओंकार सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु।
अकाल मूरति, अजूनी सैभं गुर प्रसादि ।। [3]

परमात्मा के स्वरूप-निर्धारण के संबंध में गुरुनानक देव के विचार उपनिषदों की विचारधारा से साम्य रखते हैं। जीवन,आत्मा मनुष्य के संबंध में उनके निजी विचार है। जीवन परमात्मा से उत्पन्न होते हैं और उन जीवों में परमात्मा का निवास है।

आतमु महि रामु, राम महि आतमु। [4]

- -

१ नानक वाणी-आसादी वार,पृ०-३३० २ वही पृ०-३०२

गुरुनानक देवजी ने कबीर के समान यह स्वीकार किया है कि आत्म साक्षात्कार हो जाने पर जीव स्वयं ब्रह्म हो जाता है -

आतमुचिह्नि भए निरंकारी ।[१]

गुरुनानकजी का सृष्टिक्रम विषयक विचार नाथपंथी विचारधारा के अनुरूप हठयोग से प्रभावित है । उनके अनुसार आदि में शून्य (आकाश (था, शून्य से पवन उत्पन्न हुआ और पवन से जल । सबसे पहले जब और कुछ भी अस्तित्व में नहीं था, केवल सत्यरूप परमात्मा था। उस परमेश्वर की आज्ञा से सृष्टि के समस्त आकार बनते हैं, उसी का अनिर्वचनीय आज्ञा से जीवों का सृजन होता है, मनुष्य के कर्म विधानों का निरूपण होता है -

ओ अंकारि ब्रहमा उतपति, ओ अंकारि कीआ जिनि चिति
ओ अंकारि सैल जुग भए। ओ अंकारि बेद निरमए।
ओ अंकारि सबदि उधरे। ओ अंकारि गुरमुखि तरे।
ओ नम अखर सुणहु बीचारु। ओनम अखरु त्रिभवना सारु ।[२]

गुरुजी ने सृष्टि प्रारंभ के इस परमतत्व को ' ओंकार ' की संज्ञा से विभूषित किया है। गुरुजी उसी परमतत्व परमात्मा को सृष्टि का निमित्त और उपादान कारण मानते हैं -

आपीन्है आपु साजिओ आपीन्है रचिओ नाउ ।।[३]

गुरुनानकजी ने वेदान्तियों की भांति जगत् को मिथ्या नहीं माना है और न इसे भ्रम कहा है। उन्होंने जगत को सत्य माना है।

" सचे तेरे खंड सचे ब्रहमंड । सचे तेरे लोअ सचे ।[४]

वस्तुत: गुरुनानक देव अपूर्व सुधारक, महान देशभक्त अद्भुत युग-पुरुष थे । उनके हृदय में सम्पूर्ण सृष्टि के लिये प्रेम था ।

---

१. नानक वाणी राग आसा, असटपदीआ -८ पृ०-२८८
२. वही राग रामकली पृ ०-५१६-१७
३. वही राग आसा महला-१ पृ०- ३२४
४. वही पृ०-३२५

उनके अनुसार आदर्श मानव वही है ।, जिसमें ब्राह्मणों की सी साधना, सत्यप्रियता और चरित्र बल हो, क्षत्रियों जैसी आत्म-रक्षा एवं स्वाभिमान की भावना हो, वैश्य जैसी व्यावहारिक बुद्धि और शूद्रों जैसी सेवा भावना । वे अपूर्वदर्शी थे, उनका संदेश समाज के लिये अमृतधारा है ।

गुरु अंगददेवजी -

फिरोजपुर जिले के अन्तर्गत मुक्तसर से लगभग छह मील दूर मत्ते दी सराय गांव में फेरु नाम का एक व्यापारी रहता था । बाद में वह " हरिके " गांव में जाकर बस गया । फेरु ने यहां दया कौर (कुंवरी) के साथ अपना दूसरा विवाह कर लिया । इन्हीं दया कौर के गर्भ से संवत् १५६१ वि० सन् १५०४ वैशाख ११ को अंगद का जन्म हुआ और इनका नाम " लहणा " रखा गया ।[१]

लहणा ने भी मत्ते दी सराय की खीवी नाम की स्त्री के साथ अपना व्याह किया और ये दोनों परिवार फिर अपने उस पहले वाले गांव को ही वापस चले आए। इसी गांव में रहते समय लहिना को दातू और दासू नाम दो पुत्र और अमरो नाम की एक पुत्री उत्पन्न हुई । परन्तु मुगलों के आक्रमण से मत्ते दी सराय नष्ट हो गई और फेरु के उक्त दोनों परिवार वहां से विवश होकर अमृतसर जिले के तरणतारण तहसील के खडूर गांव में चले आए।

---

१. गुरुनानक और निर्गुणधारा - डा० प्रेमप्रकाशसिंह- पृ०२७

लहिणा जी पहले दुर्गा की उपासक थे, किंतु खडूर में एक बार जोधा नामक सिक्ख के द्वारा ' आसा दी वार ' की निम्नलिखितपंक्तियां सुनी -

" जितु सेविए सुख पाइए सो साहिबु सदा समालिए।
जितु कीता पाइए आपणा सा धाल बुरी किउ घालीए।।
मंदा मूलि न कीचई दे लंमी नदरि निहालीए।।
जिऊ साहिब नालि न हारीए तेवे हा पासा ढालीए।।
किछु लाहे उप्परि घालीए ।। " [1]

अर्थात - तू उस मालिक को सदैव याद रख, जिसकी सेवा करने से ही तुझे सच्चा सुख मिलेगा । ऐसे बुरे कार्य तूने क्यों किए, जिसके कारण तुझे ये दुख भोगने पड़े । तू बुरा काम बिल्कुल न कर, अपनी ओर तू अच्छी तरह दृष्टि डाल, ऐसा पांसा फेंक, जिससे तू मालिक के साथ बाजी न हारे , बल्कि तुझे कुछ लाभ हो । इस वाणी से लहिणाजी इतने प्रभावित हुए कि इन्होंने उसके पास जाकर उसके रचयिता के विषय में पूछताछ की। जब इन्हें पता चला कि वे रावी नदी के किनारे बसे हुए करतारपुर में रहते हैं, तब लहिणाजी बाबा नानक के दर्शन के लिए व्यग्र हो उठे । अपने गांव वालों के साथ ज्वालामुखी भगवती की तीर्थयात्रा के लिए निकले, मार्ग में करतारपुर पड़ता था वहां से बाबा नानक के दर्शन करने के लिए ठहर गए। गुरुजीने कहा अभी घर जाओ कुछ दिनों बाद आ जाना तुझे मैं अंगीकार कर लूंगा। घर लौटे परन्तु मन न लगा । घरवाली को समझा बुझा कर फिर करतारपुर आ गए। सांझ का समय था । बाबा नानक तब खेत पर थे । गांय-भैंसों के लिए घास लाने गये थे ।

- -

१. आदि ग्रंथ महला-२ पृ०- ३०३

लहणाजी भी वहीं पहुंच गए और घास के तीन बड़े-बड़े गट्ठरों को एक ही साथ सिर पर लाद कर गुरु के घर ले आए । पानी और गीली मिट्टी से सारे कपड़े खराब हो गये । उस समय लहणा जी नए कपड़े पहने हुए थे । माता सुलक्खनी (नानकजी की पत्नी) ने यह देखा तो नानकजी से कहा कि क्या मेहमान से यही बर्ताव किया जाता है ? बेचारे के सारे कपड़े खराब हो गए । नानकजी ने कहा घास के इन गट्ठरों का उसी ने उठाया है जोकि इनके योग्य है। इनके कपड़ों पर तो केसर लगा है । गुरुनानकजी के पुत्र एवं अन्य शिष्य गट्ठरों को उठाने के लिए तैयार नहीं हुए थे । गुरु-सेवा की लहणाजी की यह पहली परीक्षा थी ।[१]

लहणा जी सूर्योदय के एक पहर पहले उठकर रावी स्नान करने जाते थे । लहणाजी की गुरु-सेवा देखकर अन्य शिष्य भी सेवा करने लगे किंतु उनसे लहणाजी के समान सेवा करते नहीं बनी ।

एक बार गुरु नानक देव के घर की कच्ची दीवार अति वर्षा के कारण गिर पड़ी थी । गुरु की आज्ञा से उस दीवार को तीन बार गिरा-गिराकर इन्होंने अकेले ही उठाया था। किंतु लहणाजी की आज्ञा पालन करते रहे । यह देखकर नानकजी के पुत्र लहणाजी पर हंसने लगे । लहणाजी ने कहा - सेवक का काम केवल सेवा करना है । तब गुरु नानकजीने अपने परिवार के सदस्यों और शिष्यों को सम्बोधित करते हुए कहा -

" जिनी कीती सो मनणा को सालु जिवाहे साली ।[२]

अर्थात् लहणा ने गुरु नानक की प्रत्येक आज्ञा का पालन किया, चाहे वह आज्ञा आवश्यक हो या अनावश्यक ।

- -

१. संतसुधासार - वियोगी हरि - पृ०-२५६

२. वही पृ०-२५६

गुरुनानक देव ने अच्छी तरह परख लिया था कि लहणा ही एक ऐसा शिष्य है जो उनकी गद्दी का अधिकारी हो सकता है। अतः इन्हें ही अपनी जगह बिठलाकर भाई बुढ्ढाजी के हाथों तिलक कर दिया और कहा - तुमने असीम सेवा का परिचय दिया । तुमसे अधिक कोई शिष्य मुझे प्रिय नहीं । तुम्हारा और मेरा स्वरूप मिटकर एक हो चुका है । तुम्हारी रचना मेरे अंग से हुई है । इसलिए आज से तुम्हारा नाम अंगद हुआ । " उस दिन से लहणाजी ' अंगद गुरु ' के नाम से ख्यात हो गए । [1]

गुरुनानक देव का शरीर छूट जाने पर गुरु अंगद को उनके वियोग का दुख इतना असह्य हुआ कि वे एक बंद कोठरी कर बैठ गये और वहां एकांत में गुरु के ध्यान में लीलीन रहने लगे । गुरुजी के शिष्य भाई बुढ्ढाजी ने बड़ी कठिनाई से इन्हें बाहर निकाला । शोकविव्हल अंगदजी ने भाई बुढ्ढा को छाती से लगाकर यह श्लोक कहा -

" जिसु पियारे सिउ नेहु तिस आगै मरि चलिए।
ध्रिगु जीवणु संसार ताकै पाछै जीवणा।।
जि सिरु सांइ न निवै सो सिरु दीजै डारि।
नानक जिसु पिंजर महि बिरहा नहीं, सो पिंजर लै जारि।। [2]

गुरु अंगद का नित्य कार्यक्रम था - बड़े सवेरे उठकर ठंडे पानी से स्नान करना, कुछ समय तक आत्म चिंतन जपुजी का पाठ करना, आसा दी वार का गायन सुनना और फिर दुखियों-रोगियों , खासकर कोढ़ियों की सेवा-शुश्रुषा करना, गुरु नानक की शिक्षाओं का संगत को उपदेश देना और लंगर में सबको बिना भेद-भाव के प्रेम के साथ भोजन कराना तथा छोटे-छोटे बच्चों का खेल देखना ।

- -

१. संतसाहित्य-सुदर्शनसिंह मजीठिया, पृ०-१४१
२. संत सुधासार - वियोगी हरि - पृ०-२५७

शेरशाह द्वारा परास्त हुमायूं बंगाल से जब पश्चिम की तरफ विवश होकर भागा, तब उसे रास्ते में मालूम हुआ है कि गुरु नानक की गद्दी पर गुरु अंगद जो पहुंचेहुए एक फकिर हैं, उपदेश दे रहे हैं। तो उसने खडूर जाकर गुरुनानक साहब के दर्शन किए और उनसे आशीर्वाद लिया। [1]

गुरु अंगद ने सबसे पहले गुरुनानक देव के पदों, पौड़िया और सलोकों का संग्रह कराकर- ' गुरुमुखी ' नाम की नई लिपि में लिखाया। इस लिपि का आविष्कार गुरु अंगदजी ने स्वयं किया। इस लिपि में केवल ३५ ~~एक्षर~~ अक्षर हैं।

परम गुरु भक्त ' अमरु ' को गुरु गद्दी पर बिठाकर और पांच पैसे और एक नारियल उसके आगे भेंट रख कर गुरु अंगद ने उसे अपना उत्तराधिकारी बना दिया। अमरु उस दिन से ' गुरु अमर दास ' के नाम से प्रख्यात हो गए। [2]

चैत सुदी ३, संवत् १६०६ को गुरु अंगदने अपने शिष्यों को बहुत बड़ा भंडारा दिया और सिक्ख धर्म के सिद्धांतों पर दृढ़ रहने के लिए उन्हें अच्छी तरह समझाया। दूसरे दिन चौथ को बड़े सवेरे स्नान करके जपुजी का पाठ किया। और ' वाहिगुरु - वाहिगुरु ' कहते हुए चोला छोड़ दिया। [3]

16-3-85

- -

१. संत सुधासागर - वियोगी हरि - पृ०-२५७
२. वही पृ०-२५७
३. वही पृ०-२५७

साहित्य -

गुरु अंगद ने बहुत अधिक रचनाएं नहीं लिखी। गुरुनानक की सेवा बंदगी करते और और उनकी वाणी का अपूर्व आनंद लेते लेते ही उनका सारा समय बीता । जो थोड़ी सी बानी गुरु अंगद की ग्रंथ साहब में महला-२ के अन्तर्गत संग्रहीत है वह भिन्न-भिन्न रागों की " वारों " के रूप में है । " आसा दी वार " में तो इनके सलोक हैं ही, रामकली, सारंग, मलार, सूहा, सोरठ और माफ की भी वारों में इनके कई सलोक और पौड़िया हैं । इनकी कुल रचना ६२ सलोक हैं । [१]

गुरु अंगदजी ने गुरुमुखी लिपि का अविष्कार कर गुरुओं की जन्म साखी लिखाने की परिपाटी सर्वप्रथम आरंभ की। गुरु अंगदजी ने ही गुरु नानक के पदों को पहली बार सुनिश्चित रूप से लिखवाना प्रारंभ किया। गुरुनानक की जीवनी को भी पहले पहल उन्होंने ही लिखाया। सं० १६०१ में " जन्म साखी भाइ बाले " की रचना गुरुमुखी लिपि में हुई। गुरुमुखी लिपि में पंजाबी साहित्य की यह पहली पुस्तक है । [२] हरि नाम का आकंठ अमृत पीकर सारंग की वार में यह सलोक वस्तुतः इन्होंने परमातृप्ति की उच्चावस्था में कहा है -

" जिन वडिआइ तेरे नाम की यह रते मन माहि।
नानक अमृत एक है दूजा अमृत नाहि ।।
नानक अमृत मनै माहि पाइए गुरुपरसादि।
तिनी पीता रंग सिउ जिन कउ लिखिआ आदि ।। [३]

- -

१. गुरुनानक की निर्गुण धारा-डा० प्रेमप्रकाशसिंह,पृ०-२८
२. संत साहित्य , पृ०-१४५
३. संतसुधासार पृ०-२५८

गुरु अंगद ने सीधी-सादी मगर चुभती भाषा में प्रेम और विरह- वैराग्य का बड़ा सुन्दर निरूपण किया है। गुरु-भक्ति की महिमा के कुछ श्लोक तो अनूठे हैं ।

पद- पद में आत्मानुभूति झलकती है। कुछ रचना तो इनकी ऐसी हैं, जो गुरु नानक की वाणी से बिल्कुल मिल जाती है। माँझ और सारंग की वारें तो बहुत ही मधुर हैं। कहते हैं कि गुरुमुखी लिपि का अविष्कार कर चुकने पर आनंद-विव्हल होकर गुरु अंगद ने सारंग की वार की रचना की थी ।

गुरु अंगद देवजी के द्वारा गुरु वाणी का संकलन हुआ- जिन्हें आज-कल " पोथिकाएं " कहा जाता है। आगे चलकर गुरु अर्जुन देव की आज्ञा पाकर भाई गुरुदासजी ने इन्हीं पोथिकाओं के आधार पर गुरु ग्रंथ साहब का संकलन किया ।

रचना - सवैये -

सवैय-१ सोई पुरख धनु करता कारण करतारन करण समरथो।
सतिगुरु धनि नानकु मसतकि तुम धरयो जिनि ह्थो।
त धरिय मसतकि हथु सहजि अमिउ वुठउ छजि सुरनर गण मुनि बोहिय अगाजि।
मरियो कंटक कालु गरजि धावतु लिओ बरजि पंजभूत एक घरि राखिले समजि।
जगु जीतउ गुर दुआरि खेलहि समत सारि रथु उनमनि लिवराखि निरंकारि।
कहु कीरति कल सहार सपत दीप मझार " लहणा " जगत गुरु परसि मुरारि।।

सवैये-२ जाकी द्रिसटि अम्रितधार कालुख खनि उतार तिमिर अग्यान जाहि दरस दुआर ।
ओइ जु सेवहि सबदु सारु गाखड़ी बिखम कारते नर भव उतारि किए निरभार।
सतसंगति सहज सारि जागीले गुरु बिचारि निंमरीभूत सदीव परमपिआरि।
कहु कीरति कल सहार सपत दीप मझार लहणा जगत गुरु परसि मुरारि।।

१-२ सवैये - आदिग्रंथ महला-२ सवैये, पृ०-१३९१

सवैये-३ ते तउ ढढ़ियौ नाम अपार बिमल जासु बिथारु साधिक सिध
सुजन जिआ कौ आधारु।
तु ताँ जनिक राजा वउतारु सबदु संसारि सारु रहहि जगत जल पदम बीचार।
कलिपतरु रोग बिदारु संसार ताप निवारु आतमा त्रिविध तेरै एक लिवातार
कहु कीरति कल सहार सपत दीप मझार लहणा गुरु परसि मुरार।।

विचारधारा -

गुरु अंगदजी गुरुनानकजी के साधक थे, जो जागरूक चेतना का मार्ग प्रशस्त करने के लिए अत्यन्त परिपक्व विचारधारा का भार वहन कर रहे थे। अंगदजी ने गुरुनानक की ही विचारधारा को आत्मसात् कर आगे बढ़ाने का कार्य किया। गुरु महिमा गाते हुए अंगदजी कहते हैं -

" कि मन मणियों की कोठरी की तरह है और तन उसकी छत है। इस पर अज्ञान का ताला लगा हुआ है। इसकी कुंजी गुरु के पास ही है और ज्ञानोदय केवल गुरु से ही हो सकता है।

" गुरु, कुंजी, पाहु निवलु, मनु कोठा तनु छति।
नानक गुरु बिन मन का ताकु न उघड़ै, अवरन कुंजी हथि।। [१]

गुरु के महत्व से वे परिचित थे। गुरु की महिमा करते हुए वे कहते हैं - " घड़े में जल बँधा सा रहता है। इधर-उधर बह नहीं सकता। लेकिन घड़े का निर्माण जल से ही होता है। इस ज्ञान के लिए गुरु की ही आवश्यकता होती है।

" कुम्भे बध्या जल रहै, जल बिन कुम्भ न होई।
ज्ञान का बध्या मन रहै, गुर बिन ज्ञान न होई।। [२]

---

१. राग सारंग सलोक महला-२, आदि ग्रंथ साहब पृ०-१२३७
२. वार आसा वही पृ०-४६६

गुरु अंगदजी ने नानक की ही विचारधारा को आत्मसात कर संसार के समक्ष रखा । खंडन-मंडन की प्रवृत्ति उनमें पाई तो जाती है किंतु अंगद का भक्त निरीह और सरल हृदय का था । सत्य पर नम्रता का आवरण चढ़ा कर ही जगत के समक्ष उसे उन्होंने प्रस्तुत किया। इसी कारण इनके पदों में कई स्थलों पर साहित्यिकता और काव्यात्मकता के सुन्दर स्थल मिलते हैं ।

" नामस्मरण " की आसक्ति अंगद जी की रचनाओं में महत्वपूर्ण है । नामस्मरण में सिर्फ नाम का ही जाप नहीं होता। उसमें हृदय की शुद्धता भी अपेक्षित है। इनके अनुसार - " लोग तो दिन-रात संसारिक कामों में ही लगे रहते हैं । तृष्णा की भूख मिटती नहीं । नाम का बीज जब मन में पड़ता है, उस समय सच्चे शब्द की उत्पत्ति होती है । " यथा -

" मण गुरु सोती, वणाजु न कारि थाके तृसा भुख न जाई।
नानक नाम बीजि मन अन्दरि, सचै सबद सुफाई ।। [१]

भारतीय दर्शन में दुःखवाद प्रधान है। आनंदवाद की प्रेरणा कहीं-कहीं मिलती है किंतु उस पर दुखवाद का आवरण किसी न किसी रूप में डाल दिया जाता है। सिख गुरुओं की रचनाओं में दुःख और निराशा वाले प्रसंग आते हैं किंतु मूल रूप से उनका दर्शन दुखवादी नहीं है। गुरु अंगदजी के अधिक पद ईश्वर की स्तुति से पूर्ण है। उनके पदों में लय है। संगीतात्मकता कीपूरी रक्षा की गई है। इनकी वाणी में शांत रस प्रमुख है। भावात्मकता से पूर्ण इनकी रचनाएं मधुर हैं ।
इनकी दार्शनिक दृष्टि प्रभु की एकता को दर्शाने वाली है । यथा-

सभना साहिबु एकु है" । [२]

- -

१. आदिग्रंथ वडहंस महला-२, पृ०-५५
२. आदि ग्रंथ महला-२, पृ०-१२३८

प्रभु परिपूर्ण है , जो इस पूरे को प्राप्त कर लेता है, वह स्वयं भी पूर्ण हो जाता है । यथा -

" सेई पूरे साह जिनीं पूरा पाइआ । [1]

" प्रभु मिलाप " के लिए स्वअन्वेषणता आवश्यक है। इसके लिए वे कहते हैं -

" नानक परखे आप कउ त पारखु जाण।। [2]

गुरु अंगदजी की वाणी का मुख्य स्वर " आध्यात्मिक विरह " है उनकी गुरु भक्ति और " भाऊ भक्ति " (भाव-भक्ति) का आत्मिक प्रतीक है। गुरु अंगदजी की वाणी का कलात्मक रूप, वस्तु के अनुकूल रसात्मक और प्रतीकात्मक है। भले ही छंदों की विभिन्नता इनमें नहीं मिलती परन्तु केवल " श्लोक " छंद में गहन भावों को सरल और सूत्रात्मक शैली द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। इनकी पंजाबी भाषा का साहित्यिक रूप गुरुनानक की शब्दावली और शैली के अनुसार है। कुल मिलाकर गुरु अंगद देव की वाणी " नानक-वाणी को आगे बढ़ाने में सक्षम है ।

---

1. आदिग्रंथ महला-2 पृ०-146
2. वही पृ०-148

गुरु अमरदास - जीवनवृत्त -

गुरु अमरदास ' तृतीय नानक ' की पदवी पर आसीन सिखों के तीसरे गुरु हैं । ~~आयु की दृष्टि से~~ गुरु अमरदास का पूर्व नाम ' अमरु ' था और इनका जन्म वैशाख सुदि १४ सं० १५३६ को अमृतसर के निकट बसरका गांव में हुआ था ।[१] इनके पिता का नाम तेजभान भल्ला और माता का नाम भक्त कौर था । ये भारत के वंशज बताए जाते हैं । इनके पिता गांव के प्रतिष्ठित जमींदार थे । ये भी अपनी पैतृक वृत्ति करते थे । ये पक्के वैष्णव थे और नित्यशः शालिग्राम की पूजा किया करते थे ।[२] किंतु उन्हें इससे पूर्ण शान्ति का अनुभव नहीं होता था। २३ वर्ष की अवस्था में इनका विवाह मनसादेवी के साथ हुआ । इनकी दो कन्याएं हुईं जिनके नाम दानी और भानीजी हैं और दो लड़के थे मोहरीजी और मोहनजी । अमरदास भल्ला तीर्थ-यात्रा में विश्वास रखते थे । कहते हैं कि एक बार इन्होंने नंगे पाव हरिद्वार की यात्रा की थी ।[३]

गुरुनानक और अंगदजी की भेंट की तरह गुरु अंगददेव और अमरदासजी की भेंट भी कम मनोरंजक नहीं है । इनके भतीजे का विवाह गुरु अंगददेव की पुत्री बीबी अमर कौर से हुआ था। एक बार अमरदासजी ने अपनी भतीजे की पत्नी से गुरु नानक ' का पद सुना।[४] एक तो स्त्री-सुलभ कलकंठ, दूसरे भक्तिभाव की गहराई - सुनकर अमरदासजी इतने प्रभावित हुए कि वह पद कई बार सुना - और स्वयं पद-स्मरण कर लिया । गुरु अमरदास खंडूर का पता पूछकर गुरु अंगददेवजी से मिलने गए।

- -

१. गुरुनानक की निर्गुणधारा, पृ०-२६
२. संतसुधार, पृ०-२७८
३. पंजाब प्रान्तीय हि०सा०का इतिहास-पृ०-२३१
४. आदि ग्रंथ महला-१ राग मारु पद-२ पृ०-९९१-२
। करणी कागदु मनु मसवाणी-बुरा भला दुइलेख पए।।

गुरु अमरदास - जीवनवृत्त -

गुरु अमरदास ' तृतीय नानक ' की पदवी पर आसीन सिखों के तीसरे गुरु हैं । ~~आयु की दृष्टि से~~ गुरु अमरदास का पूर्व नाम ' अमरु ' था और इनका जन्म वैशाख सुदि १४ सं० १५३६ को अमृतसर के निकट बसरका गांव में हुआ था ।[१] इनके पिता का नाम तेजभान भल्ला और माता का नाम भक्त कौर था । ये भारत के वंशज बताए जाते हैं । इनके पिता गांव के प्रतिष्ठित जमींदार थे । ये भी अपनी पैतृक वृत्ति करते थे । ये पक्के वैष्णव थे और नित्यशः शालिग्राम की पूजा किया करते थे ।[२] किंतु उन्हें इससे पूर्ण शान्ति का अनुभव नहीं होता था। २३ वर्ष की अवस्था में इनका विवाह मनसादेवी के साथ हुआ । इनकी दो कन्याएं हुईं जिनके नाम रानी और भानीजी हैं और दो लड़के थे मोहरीजी और मोहनजी। अमरदास भल्ला तीर्थ-यात्रा में विश्वास रखते थे । कहते हैं कि एक बार इन्होंने नंगे पाव हरिद्वार की यात्रा की थी ।[३]

गुरुनानक और अंगदजी की भेंट की तरह गुरु अंगददेव और अमरदासजी की भेंट भी कम मनोरंजक नहीं है । इनके भतीजे का विवाह गुरु अंगददेव की पुत्री बीबी अमर कौर से हुआ था। एक बार अमरदासजी ने अपनी भतीजे की पत्नी से गुरु नानक ' का पद सुना।[४] एक तो स्त्री-सुलभ कलकंठ, दूसरे भक्तिभाव की गहराई - सुनकर अमरदासजी इतने प्रभावित हुए कि वह पद कई बार सुना - और स्वयं पद-स्मरण कर लिया । गुरु अमरदास खंडूर का पता पूछकर गुरु अंगददेवजी से मिले गए।

- -

१. गुरुनानक की निर्गुणधारा, पृ०-२६
२. संतसुधासार, पृ०-२७८
३. पंजाब प्रान्तीय हि०सा०का इतिहास-पृ०-२३१
४. आदि ग्रंथ महला-१ राग मारु पद-२ पृ०-९९१-२
 । करणी कागदु मनु मसवाणी-बुरा भला दुइलेख पए।।

अमरदासजी घोड़े पर सवार थे । रास्ते में किसी अज्ञात व्यक्ति से गुरु-घर का पता पूछा, उस व्यक्ति ने घोड़े की लगाम थामकर गुरु-घर पहुँचा दिया । गुरु अमरदास को देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि लगाम थामने वाला व्यक्ति स्वयं गुरु अंगददेवजी ही थे । [१]

गुरु अमरदासजी ने भी गुरु अंगददेवजी के समान अपने इष्ट गुरु की सेवा प्राण-प्रण से की । यद्यपि वे वृद्ध थे, किंतु भक्ति और सेवा के साक्षात रूप थे । दिन-प्रतिदिन उनमें गुरु अंगदजी के प्रति भक्ति और सेवा बढ़ती जा रही थी। व्यासा नदी से वे खडूर तक गुरु अंगदजी के स्नान के लिये जल लाया करते थे । रास्ते में जपुजी और आसा दीवार का पाठ भी करते जाते थे । गोइंदवाल और खडूर के मध्यस्थ जहाँ पर जपुजी साहब का पाठ समाप्त हो जाता और आसा दीवार का प्रारंभ होता वहाँ पर एक गुरु द्वारा बना हुआ है, उसे " दमादमा साहब " कहा जाता है । [२]

एक समय की बात है कि गुरु अमरदास प्रभात के अन्धकार में गुरु अंगदजी के स्नान के लिए जल ला रहे थे। रास्ते में जुलाहों का एक गांव था। उसके आसपास कपड़े बुनने के लिये जमीन के गड्ढे बने हुए थे । गुरु अमरदास का पैर अंधेरे के कारण गड्ढे में आ गया और वे गिर पड़े । आवाज सुन जुलाहे चोर-चोर चिल्लाते हुए आ गए उन्होंने अमरदासजी को गिरा हुआ तथा जपुजी का पाठ करते हुए देखा तो कहा - अरे यह तो " अमरु निथावां " है (जिसका आश्रम नहीं होता) जब इस घटना का गुरु अंगददेवजी को पता चला तो उन्होंने अपने शिष्य अमरदास को वरदान दिया कि- गुरु अमरदास

- -

१. पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ०-२३१
२. वही पृ०-२३१

निथावें दा थाव, निओटों की ओट, निगतिओं की गत्, निआसरों के आसरा - धन्य धन्य गुरु अमरदास ।[1] (अर्थात गुरु अमरदास उस व्यक्ति को स्थान देंगे जिसका कोई स्थान नहीं । उस व्यक्ति को सहारा देंगे जो बेसहारा है, उस व्यक्ति को गति करेंगे जिसकी गति नहीं होती । उस व्यक्ति को आश्रय देंगे जो निराश्रय है । इसलिए गुरु अमरदास धन्य हैं ।

गुरु अमरदास गुरु अंगददेवजी के साथ रहा करते थे । गुरु अंगददेव अपने पुत्रों दासु और दातु की अपेक्षा अमरदासजी से प्रसन्न रहा करते थे । एक बार बिवाई फटने से गुरु अंगदजी को अत्यन्त कष्ट हो रहा था। उन्हें नींद नहीं आ रही थी । अमरदासजी ने गंदा खून चूस चूस कर फेंक दिया जिससे उन्हें तत्काल आराम मिल गया । अमरदास की दृढ़ता और उनकी सेवा भावना को देख कर गुरु अंगदजी का हृदय द्रवित हो गया। विशेषकर खुलहों वाली घटना ने तो गुरु अंगदजी का ध्यान अमरदासजीने खींच लिया था । संवत् १६०६ (७२ वर्ष की आयु) में इन्हें गुरु गद्दी मिली ।[2]

गुरु अमरदास अत्यन्त विनीत स्वभाव के थे जब गुरु अंगद देवजी ने अमरदासजी को गुरु पद दे दिया गुरु अंगददेवजी के पुत्र भाई दातुजी ने गुरु अमरदासजी को गालियां दी और उन्हें लात मारने की धृष्टता भी की। लात सहन कर गुरु अमरदास ने विनीत शब्दों में कहा - " मेरा कठोर शरीर से कहीं आपके मृदु चरण को चोट तो नहीं लगी ? " यह कह कर दातुजी के चरण दबाने लगे ।[3]

---

१. संतसाहित्य- पृ०-१४३
२. पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास,पृ०-२३१
३. संत साहित्य-सुदर्शन सिंह मजीठिया,पृ०-१४८

विनम्रता का ऐसा उदाहरण भृगु और विष्णु के अतिरिक्त कहाँ मिल सकता है ?

गुरु अंगदजी की आज्ञा से अमरदास गोइंदवाल जाकर रहने लगे। गोविंद नाम के एक व्यक्ति ने जो मुकदमें में फंसा हुआ था गुरु अंगददेवजी के समक्ष यह संकल्प किया था, कि यदि वह मुकदमें को जीत गया तो एक नगर बसायेगा। भाग्य से वह मुकदमा जीत गया तो उसने व्यास नदी के तट पर नगर बसाया और उसके नाम पर गुरुजी ने उसका नाम रखा गोइन्दवाल[1]। अमरदासजी रात को राज गोइन्दवाल में रहा करते और दिन में खडूर जाया करते थे। बाद में बासरका छोड़कर स्थाई रूप से गोइंदवाल जाकर बस गये। पीछे गोइंदवाल का महत्व बहुत बढ़ गया।

एक समय गुरु अमरदास कसूर गए। वहाँ पर उस समय भयानक गर्मी पड़ रही थी। उन्होंने नगर अधिकारी से उसके बाग में ठहरने की अनुमति मांगी, किंतु अनुमति न मिली। अमरदास जी एक गरीब पठान के यहाँ ठहरे। उसके सौहार्द से बड़े प्रभावित हुए। गुरुजी ने उसे अपना आशीर्वाद देते हुए कहा- ईश्वर का चिंतन किया करो। एक दिन तुम कसूर के अधिकारी हो जाओगे। कालान्तर में वही पठान कसूर का अधिकारी बना।[2]

गुरु अमरदासजी के शिष्यों की निरंतर वृद्धि होने लगी तो शिष्यों ने गुरुजी से अनुरोध किया कि वर्ष में एक बार सबके एकत्रित होने के लिए कोई स्थल और समय होना चाहिये। गुरु अमरदासजी ने बैसाख और माघ के प्रथम दिवस और दिवाली पर सबको एकत्रित होने का आदेश दिया।

---

१. संतसाहित्य, पृ०-१४८

२. पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ०-२३२

हुमायूं के संकेतानुसार अकबर बादशाह बराबर गुरु घर से संबंध बनाए रहा । अकबर ने गुरु अमरदास के कहने पर हरिद्वार यात्रा से कर उठा लिया था। [1]

गुरु अमरदासने सिख धर्म के प्रचार के लिए २२ मंजे अर्थात केन्द्र खोले थे । [2]

अपने दामाद शिष्य जेठा को, जो इनकी सेवा संबंधी कार्यों पहर रहा करते थे, वरदान के रूप में अपनी गद्दी देकर संवत् १५३४-१६३१ ई० के भादों की पूर्णिमा के दिन ९५ वर्ष की अवस्था में वाहिगुरु सत्नाम का उच्चारण करते हुए गुरु अमरदास ने इहलीला- संवरण कर गुरुलोक सिधार गए[3] ।

यहां से गुरु गोविंदसिंह तक क्रमशः जो सात गुरु हुए उनकी परम्परा गुरु अमरदास की पुत्री बीबी भानी और उनके पति जेठा के वंश से चली । [4]

गुरु अमरदास के स्वर्गवास का वर्णन उनके पौत्र आनंद के पुत्र सुन्दरदास ने पांचवे गुरु अर्जुनदेवजी के अनुरोध पर लिखा था । इस रचना का नाम ' सद्दु ' है और यह रामकली राग में गाई जाती है । [5]

यहां लक्ष्य करने की बात है कि गुरु अंगददेवजी शाक्त सम्प्रदाय से आये थे । ज्ञान प्रधान एवं सहज-समाधि की जो साधना गुरुनानक देवजी बता गए थे, इन दो गुरुओं ने उसे न केवल अक्षुण्ण रखा, अपितु किसी सीमा तक संपुष्ट भी किया ।

- -

१. संत साहित्य पृ-१५२
२. वही पृ०-१५१
३. संतसुधासार, पृ०-१८१
४. वही पृ०-१८१

साहित्य -

गुरु ग्रंथ साहिब में महला ३ के अन्तर्गत जितनी भी रचनाएं पद सबद तथा सलोक हैं व सब गुरु अमरदास के रचित हैं। गुरु गद्दी पर बैठने के बाद ७२ वर्ष की उम्र के पश्चात २२वर्षों में सारी वाणी की रचना की। इन्होंने १७ रागों में रचना की और ९०७ बन्द पउड़ियाँ सहित रचे ।[१] ' आनंदु ' इनकी सबसे प्रख्यात और सुन्दर रचना है। ' आनंदु ' को उन्होंने अपने एक पौत्र के जन्म पर रचा था, और उस पौत्र का नाम भी ' आनंदु ' रखा था। ' आनंदु ' का आज भी सिक्ख सम्प्रदाय में बड़ा महत्व है और यह प्रत्येक उत्सव पर गाया जाता है । यह बड़ी आनंद प्रदायिनी रचना है ।[२]

गुरु अमरदास की भक्ति निष्प्रतीक निर्गुण-वादी है । इनकी वाणी में कान्तभाव की मधुर उपासना विद्यमान है। कहीं कहीं इनकी वाणी में मुसलमानी प्रभाव अत्यन्त अल्प है। इनके भक्ति रस पूर्ण पद सैकड़ों है और वारें भी अनेक रागों में है । वे सरस और उच्चकोटि की है- भाषा तथा भाव दोनों दृष्टियों से।

रचना-

' आनंदु ', राग रामकली महला ३
आनंदु भइआ मेरी माए सतिगुरू मैं पाइआ।
सतिगुरु त पाइआ सहज सेती मनि वजीआ वाधाईआ
राग रतन परवार परीआ सबद गावण आईआ
सबदो त गावहु हरी केरा मनि जिनी वसाइआ
कहै नानकु आनंद होआ सतिगुरु मैं पाइआ।।

- -

१. गुरुनानक और निर्गुण धारा, पृ०-२८
२. संत सुधासार , पृ०-२८१
३. पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास,पृ०-२३२
४. आदिग्रंथ महला पृ०-४०

साहित्य -

गुरु ग्रं थ साहिब में महला ३ के अन्तर्गत जितनी भी रचनाएं पद सबद तथा सलोक हैं व सब गुरु अमरदास के रचित हैं। गुरु गद्दी पर बैठने के बाद ७२ वर्ष की उम्र के पश्चात २२वर्षों में सारी वाणी की रचना की। इन्होंने १७ रागों में रचना की और ६०७ बब्द पऊड़ियाँ सहित रचे ।[१] ` आनंदु ` इनकी सबसे प्रख्यात और सुन्दर रचना है। ` आनंदु ` को उन्होंने अपने एक पौत्र के जन्म पर रचा था, और उस पौत्र का नाम भी ` आनंदु ` रखा था। ` आनंदु ` का आज भी सिक्ख सम्प्रदाय में बड़ा महत्व है और यह प्रत्येक उत्सव पर गाया जाता है । यह बड़ी आनंद प्रदायिनी रचना है ।[२]

गुरु अमरदास की भक्ति निष्प्रतीक निर्गुण-वादी है । इनकी वाणी में कान्तभाव की मधुर उपासना विद्यमान है। कहीं कहीं इनकी वाणी में मुल्तानी प्रभाव अत्यन्त अल्प है। इनके भक्ति रस पूर्ण पद सैकड़ों है और वारें भी अनेक रागों में है । वे सरस और उच्चकोटि को है- भाषा तथा भाव दोनों दृष्टियों से ।[३]

रचना-

` आनंदु `, राग रामकली महला ३
आनंदु भइआ मेरी माए सतिगुरु मैं पाइआ।
सतिगुरु त पाइआ सहज सेती मनि वजीआ वधाइआ।।
राग रतन परवार परीआ सबद गावण आइआ।।
सबदो त गावहु हरी केरा मनि जिनी वसाइआ।।
कहै नानकु आनंद होआ सतिगुरु मैं पाइआ।। ४

- -

१. गुरुनानक अतै निर्गुण धारा, पृ०-२८
२. संत सुधासार , पृ ०-२८१
३. पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास,पृ०-२३२
४. आदिग्रंथ महला पृ०-४०

' आनंदु ' को गाने से सभी प्रकार मनोरथ सफल हो जाते हैं । उपनिषदों में भी जीवन का परम लक्ष्य आनंद ही माना गया है। सृष्टि के विचित्र जीव किसी न किसी रूप में अपनी विभिन्न अवस्थाओं में इस आनंद की प्राप्ति में ही लगे रहते हैं । प्रसाद का कवि कामायनी में श्रद्धामूलक आनंदवाद की स्थापना करता है। गुरु अमरदास का साधक कहता है - हे माता मेरे चारों और आनंद ही आनंद है। क्योंकि मुझे सतिगुरु की प्राप्ति हो गई है ।[1] ईश्वर की ही प्राप्ति के लिए विभिन्न साधकों, भक्तों और तपस्वियों ने विभिन्न प्रकार की साधनाओं का प्रयोग किया है। इसलिए वे अपने मन से कहते हैं -

हे मन, तु सदा ईश्वर के साथ रहा कर। हरि के साथ रहकर तु हर प्रकार के भौतिक सुखों का विस्मरण कर दे। तुझे वह स्वीकार कर तेरा सारा कार्य कर देगा। तेरा स्वामी सब बातों में समर्थ है। ईश्वर को भला क्यों विस्मृत किया जाए ।[2] गुरुनानक की भांति गुरु अमरदासजी ने भी मानव के गुरु के लिये ' गुरु ' और ईश्वर के लिए ' सतिगुरु ' शब्द का व्यवहार किया है । जिस प्रकार ईश्वर की प्राप्ति सच्चे गुरु की ही सहायता से होती है उसी प्रकार आनंद की प्राप्ति सच्चे गुरु के अभाव में नहीं हो सकती। गुरु अमरदासजी कहते हैं - कि आनंद आनंद तो सब कहते हैं किंतु वास्तविक आनंद तो गुरु की सहायता से प्राप्त होता है ।[3]

गुरु अमरदास की वाणी में नाम्भिकता और मधुरता पूर्णरूपेण मिलती है। व्यापक हृदय के साथ-साथ विनयपूर्ण हृदय के उद्गार मिलते हैं ।

- -

१. आदिग्रंथ महला-३, पृ०-४०
२. वही पृ०४०
३. आदि ग्रंथ महला-३ आनंद,पृ०-४०

ईश्वर को उन्होंने पतिरूप में संबोधित किया है। गुरुनानकदेवजी ने भ्रमण बहुत किया था अतः उनकी भाषा में जो विविधता पाई जाती है वैसी गुरु अमरदासजी की भाषा में नहीं मिलती। इनमें भाषा की एकरूपता पाई जाती है, उसमें प्रभावात्मकता और सरलता है। क्लिष्ट भाषा का व्यवहार उन्होंने नहीं किया है। उनकी भाषा प्राचीन पंजाबी की अपेक्षा ब्रज के निकट है । गुरुनानक और अंगदजी के ही समान जीवित भाषा में ही उन्होंने अपनी वाणी की रचना की । भाषा में अक्खड़ता और साधुक्कड़ीपन नहीं है । [१]

रचनाओं में शान्त रस की ही योजना हुई है। वैराग्य और अध्यात्मप्रधान भावों का बाहुल्य है। उनकी वाणी केवल सैद्धांतिक विचारों का ही भार वहन नहीं करती, भावों को व्यक्त करनेमेंभी पूर्णतया सक्षम हैं । छंद और अलंकारों के विषय में अमरदासजी का कवि सचेत रहा है। उनकी वाणी में प्रचुर संगीतात्मकता है । [२]

---

१. संतसाहित्य - पृ०-१५५
२. वही पृ०-१५५

विचारधारा -

गुरु अमरदास की विचारधारा भी गुरुनानक के समान भक्तिमूलक है। इनके अनुसार - " तुम एक प्रभु का ही नाम सदा सिमरन करो, हमेशा नम्र रहो, और अहंकार को त्याग दो, दान-पुण्य और सारे जप-तप को यह अहंकार अग्नि की तरह जलाकर भस्म कर देता है। संसार के विषय में इनके विचार हैं - यह संसार स्वप्न अथवा छाया की तरह है। पुत्र कलत्र और धन संपदा सब अनित्य है। सपने में रंक हो जाता है राजा, और राजा हो जाता रंक, पर जागने पर वह वस्तुत: जो होता है वही रहता है फिर मनुष्य किसके लिए आनंद मनायें और किसके लिए शोक करे। [१]

लोक-कल्याण और मानव मात्र भलाई चाहने वाले गुरु अमरदासजी कहते हैं - " हमेशा तुम दूसरों का भला करते रहो, यह तीन प्रकार से किया जा सकता है - अच्छी सलाह देकर, सामने अच्छा उदाहरण देकर और हृदय में सदैव लोक-कल्याण की कामना रखकर "

गुरु अमरदास नम्रता और क्षमाशीलता की साक्षात प्रतिमा थे। उनके अनुसार - " नम्रता और क्षमाशीलता का अभ्यास करो। किसी के भी प्रति अपने मन में द्वेष भावना न आने दो। यदि कोई तुम्हें कटु या अनादर सूचक शब्द कह जाए, तो उस पर नाराज न होओ, अपितु उसके साथ नम्रता का व्यवहार करो [२]

सेवाभाव और परोपकार के विषय में वे कहते हैं - " साधुजनों की सेवा करो, भूखे को भोजन और नंगे को वस्त्र दो। बड़े सवेरे उठकर जपुजी का पाठ करो।

- -

१. संतसुधासार वियोगी हरि, पृ०-२८०
२. वही पृ०-२८०

अपना कुछ समय जरूर परमात्मा की सेवा बंदगी में खर्च करो । किसी का मन न दुखाओ । नम्र बनो और अहंकार छोड़ दो। और केवल उस सिरजनहार को ही अपना मालिक मानो । १

गुरु अमरदास ऊँच-नीच का भेदभाव नहीं मानते थे । अतः समता भाव लाने के लिए उन्होंने ' लंगर ' की प्रथा चलाई। गुरु अमरदास का लंगर उनके भक्त और शिष्यों की सहायता से ही चलता है। जो भी उनके दर्शनार्थ आता वह भूखे पेट वापस नहीं जा सकता था। लंगर की प्रथा का मुख्य उद्देश्य सब में समानता की भावना लाना ही था। जाति-पांति के गर्व से रहित होकर क्या ब्राह्मण और क्या शूद्र एक ही पंक्ति में भोजन करते थे। लंगर का उद्देश्य यही था कि लोग जाति-पांति को भूलकर पृथक् भोजन न बनाते हुए एक ही स्थान पर खाने बैठे । वे समानता के पक्षपाती थे । इसलिए उन्होंने पुरुषों के साथ स्त्री शिक्षा को निमित्त भी केन्द्र खोले । उस युग के लिए यह एक क्रान्तिकारी चरण था ।

गुरु अमरदास पहले वैष्णव थे। अतः ये संस्कार इनकी रचनाओं में कहीं कहीं मिल जाते हैं । ईश्वर की स्तुति से गुरु अमरदास के पद भरे पड़े हैं । ईश्वर को उन्होंने अगम अगोचर कहा है-

' अगम अगोचरा तेरा अंत न पाइआ । २

इसकी प्राप्ति का सच्चा आधार है गुरुनानकजी द्वारा निर्धारित ' नाम सिमरन ' । ये कहते हैं कि तेरा नाम तो सच्चा आधार है। उस सच्चे नाम से मेरी सारी भूख जाती रही है ।

' साचा नामु मेरा आधारो ।।
साचु नामु अधारु, मेरा जिनि भुखा सभि गवाइआ । ३

- -

१. संतसुधासार , पृ०-२८०
२. रामकली महला-३, गुरु ग्रंथ साहिब-आनंदु, पृ०-४०
३. वही पृ०-४०

भक्तों के लक्षण बताते हुए वे कहते हैं - कि भक्तों की चाल निराली होती है। उन्हें कठिन मार्ग से जाना होता ।

* भगता की चाल निराली ।।

चाल निराली भगताह केरी बिखम मारगि चालणा।। [१]

गुरु अमरदासजी को गुरु अंगदजी जैसा योग्य गुरु प्राप्त हुआ था । अतः गुरु अमरदास गुरु के विषय में कहते हैं - * जो गुरु से विमुख रहते हैं उन्हें ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। वह विद्वतजनों के पास कई उपाय पूछता है। अनेक योनियों में भटकता रहता है, किंतु गुरु के बिना उसकी मुक्ति संभव नहीं होती। जब वह गुरु की चरणों लग जाता तो मुक्त हो जाता है । * ।

* जे को गुरु ते वे मुखु होवै बिनु सतिगुरु मुकति न पाए।
पावै मुकति न होर थै कोई पुछहु बिबेकिआ जाए।।
अनेक जूनी भरमि आवै विणु सतिगुरु मुकति न पाए।
फिरि मुकति पाए लागि चरणी सतिगुरु सबदु सुणाए।।
कहै नानकु वीचारि देखहु विणु सतिगुरु मुकति न पाए।। [२]

वे पुनः गुरु के विषय में कहते हैं - कि जब गुरु का शब्द मन में वास करता, उस समय तन मन निर्मल हो जाता है। बिनु गुरु के ईश्वर को प्राप्त नहीं किया जा सकता । गुरु की स्तुति से गुरु अमरदासजी के पद भरे पड़े हैं जिनसे उनके सच्चे निर्मल हृदय की झलक मिलती हैं।

गुरु अमरदास निर्गुण धारा के पोषक थे अतः उनका दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक था । वे किसी जाति, कुल, धर्म आदि में सीमित होकर कोई बात नहीं कहते थे । अपने युग की तत्कालीन भ्रष्टाचार पर दो एक शब्द उन्होंने कहे तो है परन्तु उसमें बौद्धिक सहानुभूति मात्र है, अनुभूति की गहराई उसमें नहीं है ।

---

१. रामकली महला-३, गुरु ग्रंथ साहिब- आनंदु, पृ०-४२

२. वही पृ०-४२

गुरु अमरदासजी कहते हैं कि - पंडित और ज्योतिषी पढ़-पढ़ शास्त्रार्थ करते फिरते हैं, परन्तु इन विद्वानों की बुद्धि तो वास्तविक रहस्य का पता नहीं लगा पाती। अन्दर से लोभ रूपी विकार ही मन में भरा पड़ा है । यथा-

पढ़ि पढ़ि पंडित जोत की वाद करहिं बिचारु,
मति बुधि भई न बूझ के अंतरि लोभ विकार ।। [१]

गुरु अमरदासजी कहते हैं - योग साधना द्वारा शरीर को कष्ट देकर योगी तप करते हैं । परन्तु उनका अहं तो मरता ही नहीं आध्यात्मिकता के नाम पर वे मौज करते हैं । उन्हें ईश्वर का नाम कभी उपलब्ध नहीं हो पाता । यथा -

काइआ साधि ऊरध तप करै विचहु हउ मैं न जाइ।
अधिआतम करम जे करे, नाम न कबहु पाइ।। [२]

गुरु अमरदासजी की वाणी में भावुकता और मधुरता पूर्ण रूप से मिलती है । उनकी रचनाओं में व्यापक हृदय के साथ-साथ विनयपूर्ण उद्गार अधिक मिलते हैं । उन्होंने ईश्वर को अपने पति के रूप में संबोधित किया है।

गुरु अमरदास की " आनंदु " रचना आनंदवाद की व्यंजक है। यह उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। उन्होंने जीवन का परम लक्ष्य आनंद ही माना है ।

इनकी रचनाओं में शान्त रस की ही योजना हुई है। वैराग्य और आध्यात्म प्रधान स्थल ही अधिक आए हैं । उनकी वाणी केवल सैद्धांतिक विचारों का ही भार वहन नहीं करती, अपितु भावों को भी व्यक्त करने में सक्षम है।

---

१. सिरी राग महला-३ घट१-आदि ग्रंथ साहिब पउड़ी-२
२. वही - पउड़ी-१

गुरु अमरदासजी की काव्यवाणी के अध्ययन से उनके दार्शनिक सिद्धांतों और कलात्मक रुचियों के दर्शन होते हैं। वस्तुतः इनकी वाणी गुरुनानक वाणी का ही व्याख्यात्मक विकास है, जिसे नए रहस्य अनुभव के आवेश में नयी कला-पद्धति पर पुनः प्रस्तुत किया गया है। गुरु अमरदास अपने परम तत्व को बौद्ध-सिद्ध शब्दावली के ' सहज ' शब्द द्वारा वर्णन करते हैं। यह ' सहज ' ही है जिसकी प्राप्ति की वमी आकांक्षा करते हैं। यथा-

" सहजै नु सम लोचदी बिनु गुरु पाइआ न जाई। [1]

इस सहज को उन्होंने भक्ति, नाम, व्यवहार के क्षेत्रों तक विस्तृत किया है। अपने प्रभु को उन्होंने निर्गुणवादी शैली के अधीन ' निरंकार ' कहा है यथा-

" निरमउ जोति निरंकार [2] जो ' सत्य स्वरूप (सचा) है। यथा - ' सो बहु तेरे नामि है। ' [3] और जो स्वयंभु है यथा- आपे आपु उपाई उपंना। ' [4] साधना पक्ष में शब्द ' साधना ', यथा - ' बिणु नावै नाति न कसो ' [5], नाम भक्ति ' यथा - गुरु के सबदि मनु तनु रमै [6] और ' गुरु भक्ति ' पर अधिक बल है भक्ति की महिमा का वर्णन पग-पग पर हुआ है। रहस्यवादी शैली में उन्होंने अपने प्रभु को ' रंगला सहु ' कहा है यथा- सो सहु मेरा रंगला ' । [7] गुरु अमरदासजी धार्मिक और सामाजिक रूप से सचेतन थे। अतः उन्होंने बाह्याडम्बर और कर्मकांडों की तीव्र आलोचना की है - ' बहु भेस करि भरमाइदे मनि हिरदै कपट कमाहे। [8]

गुरुजी की काव्यशैली बड़ी स्पष्ट, और प्रभावजनक है।

- -

१. आदि ग्रंथ महला-३ पृ०-६८
२. वही पृ०-६६
३. वही पृ०-७५५
४. वही पृ०-१०५१, ७५६
५. वही पृ०-७५६
६. वही पृ०-७५६
७. वही पृ०-७५६
८. वही पृ०-२६

प्रत्येक पद में विषय की महत्ता के अनुकूल कला प्रसाधनों का सुन्दर उपयोग किया गया है। रागों में रचित वाणी में रागात्मक स्पर्श, और स्वर-व्यंजना की सुन्दर योजना मिलती है । गुरु अमरदासजी की वाणी उनकी कोमलकान्त वृत्ति के अनुकूल है।

राम
गुरु अमरदास -

जीवनवृत्त -

गुरु रामदास का जन्म मिति कार्तिक १, संवत् १५८१ को हुआ था । इनके पिता का नाम हरिदास और माता का नाम दया कौर (अनूप देवी) था ।[१] इनका जन्म स्थान चूनियां मण्डी जिला लाहौर था । इनका वंश 'सोढ़ी' के रूप में प्रसिद्ध था । पहले इनका नाम जेठा था । कालान्तर में ये गुरु रामदास के रूप में विख्यात हुए । आप स्वभावतः साधु, मिलनसार, हंसमुख, सुन्दर एवं प्रभावशाली थे ।[२] आपका मन संगीत एवं साधु सेवा में रमा रहता था । परन्तु घर की परिस्थितियों के कारण बालक जेठा को निरंतर निर्धनता से युद्ध भी करना पड़ता है। इन्हें उबले चने बेचकर जीवन-निर्वाह भी करना पड़ता था ।[३]

भाई जेठा का विवाह गुरु अमरदास की पुत्री बीबी भानीजी से हुआ था । यह संबंध भी बड़ा नाटकीय ढंग से हुआ था । कहा जाता है कि जिस रास्ते में छोटे भाई जेठाजी उबले चने बेच रहे थे , उसी रास्ते में बीबी भानीजी के विवाह की मंत्रणा करते हुए सपत्नीक गुरु अमरदासजी आ रहे थे । गुरु पत्नी ने भाई जेठाजी की ओर इशारा करते हुए कहा -

- -

१. संत साहित्य पृ०-१५६
२. गुरुनानक और निर्गुण धारा- पृ०-८०
३. पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ०-२४६

" इस बालक जैसा सुन्दर डील-डौल वाला तथा इतनी ही आयु वाला वर बीबी भानी के अनुरूप हो सकता है । बस गुरु अमरदासजी ने दैवी प्रेरणा समझ कर झट कह दिया -

" इसके जैसा वर तो बस यही हो सकता है - और दूसरा नहीं" । और भाई जेठा के पिता हरिदासजी को पत्र लिख दिया और जेठा जी से अपनी सुपुत्री का संबंध करने की सूचना कर दी बाद में यही जेठाजी " चतुर्थ नानक " के रूप गुरु गद्दी के अधिकारी हुए ।[1]

गुरु गद्दी पर बैठते ही गुरु रामदास अपने महान चरित्र एवं दयालु स्वभाव के कारण शीघ्र ही सिख संगत के परम प्रिय बन गए । गुरु नानक देवजी के आत्मज एवं उदासी सम्प्रदाय के आदि आचार्य श्रीचंदजी गुरु गद्दी पर विराजमान गुरु अंगदजी तथा गुरु अमरदासजी से मिलने नहीं गए थे, परन्तु गुरु रामदासजी से मिलने गए । इसी से गुरु रामदासजी के मृदु एवं शिष्ट स्वभाव का पता चलता है। इस भेंट का एक रोचक संस्मरण भी है । श्रीचंद जी ने गुरुजी से कहा -" आपकी दाढ़ी बहुत बढ़ी हुई है ।" गुरुजी ने उत्तर -" आपके चरणों को पखारने के लिए बढ़ा रखी है" और किया भी उन्होंने यही । श्रीचंदजी अपने पैर हटा लिए और कहा -" आप यह क्या कर रहे हैं । आप तो गुरु हैं, मेरे पिताजी के आसन पर आसीन हैं । निश्चय ही आप सिक्खों का उद्धार करेंगे ।[2] इस वार्तालाप से सारी संगत गद्गद् हो उठी । ऐसा ही संस्मरण इनकी पत्नी बीबी भानीजी का है। एक बार जिस चौकी पर तृतीय गुरु अमरदासजी समाधि लगाए हुए थे, उसका एक पाया टूट गया था गुरुजी का ध्यान भंग न हो, इस संकल्प से बीबी भानीजी ने अपना एक पांव पाए के स्थान पर लगा दिया।

- -

१. पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्यस का इतिहास , पृ०-२४६
२. वही पृ०-२४६

चौकी की कील से पैर जख्मी हो गया । ध्याननिवृत्त गुरुजीने जब पुत्री का घायल पांव देखा तो उसे वर मांगने के लिये कहा । बीबी भानीजी ने " गुरु गद्दी घर में ही बनी रहे - वर मांगा । गुरुजी ने खिन्न होकर कहा " गुरु परम्परा जैसी बहती नदी को बांधने का यत्न किया है, अतः भावी गुरु संकट-ग्रस्त रहेंगे । गुरुजी का यह कथन सत्य सिद्ध हुआ । [1]

गुरु रामदासजी एक अमरदासजी के अनन्य भक्त और शिष्य भी थे । आज्ञा पालक थे भी वैसे ही थे जैसे गुरु अमरदास और गुरु अंगदजी।

एक दिन गुरु अमरदासजी के कुछ शिष्यों ने पूछा कि दामाद तो आपका रामा भी है (जिसके साथबड़ी पुत्री बीबी दानीजी का विवाह हुआ था) और आपकी वह सेवा भी करता है, पर जेठा को ही आप इतना अधिक क्यों चाहते है ? तब गुरुजी ने जेठा जी के अनेक गुणों का वर्णन करते हुए कहा कि इसमें नम्रता, भक्ति और श्रद्धा रामा से कहीं अधिक है, इसीलिए मुझे अधिक प्रिय है। परीक्षा के लिए गुरु अमरदासजी ने रामा से कहा कि वह उनके बैठने के लिए बावली के पास एक सुन्दर चबुतरा बना दे । रामा ने बड़ी मेहनत से चबुतरा तैयार किया, पर गुरुजी को वह पसंद नहीं आया। गिराकर फिर से बनाने के लिए कहा । रामा ने उसे फिर बनाया । फिर भी पसंद नहीं आया । रामा ने उसे फिर गिरा तो दिया, पर तीसरी बार बनाने को वह राजी नहीं हुआ । बोला - " गुरुजी बहुत बुड्ढे हो गए हैं , इसी से उनकी बुद्धि काम नहीं दे रही है । [2]

- -

१. सात पीढ़ी के गुरु -१ गुरु रामदासजी २ गुरु अर्जुनदेवजी ३ गुरु हरिकिशनजी, ४ गुरु हरगोविंदजी,५ गुरु हरिरायजी, ६ गुरु तेग बहादुरजी ७ गुरु गोविंदसिंहजी इन गुरुओं को मुगल बादशाहों से लोहा लेना पड़ा एवं बलिदान देना पड़ा ।

२. संत सुधासार - पृ०-३१४

अब जेठाजी की बारी थी। उन्होंने चबूतरे को गुरुजी की आज्ञा से सात बार बनाया और सातों बार गिरा दिया, पर मुंह से एक शब्द भी नहीं निकाला। अंत में गुरुजी के चरणों को पकड़कर बड़ी नम्रता से कहा - मैं तो मूर्ख हूं, क्या मुझसे कहां बन सकती है। मुझसे भूलें ही होंगी। आप कृपा कर मेरी भूलों को क्षमा कर दिया करें, जैसे पिता अपने मूर्ख पुत्र की भूलों को क्षमा कर देता है। गुरु अमरदासजी बहुत प्रसन्न हुए और जेठाजी को छाती से लगा कर बोले - ' मेरी आज्ञा को मानकर तूने सात बार इस चबूतरे को गिरा-गिराकर बनाया, इसलिए तेरी सात पीढ़ियां गुरु की गद्दी पर बैठेंगी। [1]

चतुर्थ गुरु रामदासजी जीवन पर्यन्त गुरु अमरदास जी के सिद्धांतों और पद-चिन्हों पर चले। गुरुनानक, गुरु अंगद और गुरु अमरदासजी के सारे गुण उनमें पाए जाते थे। ' टिक्के दी वार ' की सातवीं पउड़ी में कवि ने कहा है -

' नानक तू लहणा तू है, गुरु अमर तू वीचारिआ।'
गुरु डीठा ता मनु साधारिआ ।। [2]

अर्थात तू नानक है, तू लहणा है, तू अमरदास है, मैंने तुझे ऐसा ही समझा है। जब मैंने तुझ गुरु को देखा, तब मेरे मन को ऐसा ही आश्वासन मिला।

गुरु अमरदासजी की आज्ञा से गुरु रामदासजी ने एक महान चिरस्थायी कार्य किया - वह था सिक्खों के महान तीर्थ स्थान ' अमृतसर का निर्माण '। इस सरोवर को उन्होंने बड़ी निष्ठा और परिश्रम से खुदवाया। सरोवर के आसपास धीरे धीरे रामदासपुर नाम का एक सुन्दरनगर भी बसने लगा।

---

१. संतसुधासार - पृ०-३१५
२. आदि ग्रंथ महला- पृ०-९६८ ' टिक्के दी वार '

बाद में सरोवर के नाम पर इस शहर का नाम भी ' अमृतसर ' पड़ गया । कहना न होगा कि भारतीय शिल्पकला की यह एक अमोल कृति है। अमृतसर का सरोवर भाई बुड्ढाजी की देख-रेख में हजारों सिखों और मजदूरों ने तैयार किया । उन दिनों गुरु रामदासजी जिस कुटिया में रहा करते थे , वह आज भी ' गुरु का महल ' के नाम से प्रसिद्ध है । [१]

गुरु रामदासजीने धर्म प्रचार के लिए अनेकसुयोग्य व्यक्तियों की नियुक्ति की। उन्होंने अनेक स्थानों पर जाकर सिक्ख धर्म का प्रचार किया । द्रव्य संग्रह के लिये गुरुजी ने मंसदों का नियुक्त किया, जो बहुत योग्य थे । गुरु अमरदासजी के तीन पुत्र थे , पृथ्वीचंद, महादेव और अर्जुनजी । दोनों बड़े पुत्र अभिमानी थे ।

गुरु अर्जुनदेव गुरु रामदास के परम भक्त थे । गुरु रामदासजी ने अर्जुनदेव की पूरी तरह परीक्षा ली और उसे ही अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। गुरु रामदासजी ने अपनी गद्दी पर अर्जुनदेवजी को बिठाते हुए कहा - ' गुरु अमरदास ने स्पष्ट कहा था कि गुरु का स्थान ऊंचे सद्गुणों से ही मिलता है। जो सच्चा, सदाचारी और विनीत है वही इस ऊंचे स्थान को प्राप्त कर सकता है। मैं तुझे यह स्थान देता हूं । ' पांच पैसे और नारियल रखकर गुरु रामदासजीने अर्जुनदेवजी को नमस्कार किया । भाई बुड्ढाजी ने परम्परा के अनुसार तिलक लगाया । समस्त शिष्यों को बुलाकर गुरु रामदासजी ने आदेश दिया कि अब अर्जुनदेव को ही माने । गुरु अर्जुनदेव पांचवे सिख गुरु बन गए । दीपक ने जैसे अपनी लौ से दूसरे दीपक को जला दिया । [२]

- -

१. संतसुधासार - पृ०-३१५
२. संतसुधासार - पृ०-३१५

गद्दी न मिलने के कारण दुष्ट प्रिथिया क्रोधित हो उठा। गुरु रामदास के प्रति उसने अपशब्दों का प्रयोग किया। प्रिथिया ने कहा कि ज्येष्ठ पुत्र के नाते गुरु गद्दी पर उसका अधिकार था और वह गुरु गद्दी से गुरु अर्जुनजी को हटा कर ही छोड़ेगा। अपना न्याय वह बादशाह से करवाएगा। गुरु रामदास ने उसे बहुत समझाया परन्तु वह न माना। रामदासजी को प्रिथिया के लिए

"मीन" शब्द का प्रयोग करना पड़ा।[1]

गुरु रामदासजी को गुरु अमरदासजी के शब्द याद आये कि -

"तुमने बहते हुए स्त्रोत को बांधने का प्रयास किया है। जिसका परिणाम कांटों से रहित न होगा।[2]

इसके बाद गुरु रामदासजी अन्य सिखों और परिवार के सदस्यों को लेकर गोइंदवाल आए गए। बावली में स्नान करने के पश्चात सबने एक साथ भोजन किया। गुरु रामदासजी आसा दी वार का पाठ करते हुए ध्यान मग्न हो गए। अन्त समय गुरु अर्जुनदेव को श्री अमृतसर का सरोवर पूरा करने का उन्होंने आदेश दिया। संवत् १६३८ की भादों सुदी ३ को गुरु रामदास ज्योतिज्योत समा गए।[3]

कवि मथुरा ने गुरु रामदास के निर्वाण पर यह छप्पय रचा। "देवपुरी महि गयउ आपि परमेस्वर भाइउ।
हरि सिंघासण दिअउ सिरी गुरु तह बैठाइउ।।
रहसु कीअउ सुरदेव तोहि जसु जय जय जंपहि।
असुर गए ते भागि पाप तिन भीतर कंपहि।।
काटे सु पाप तिन नरहु के गुरु रामदासु जिन्ह पाइआ।
छत्रु सिंघासनु पिरथमी गुरु अरजुन कउ दे आइअउ।।[4]

---

१. संतसुधासार - पृ०-१५७
२. वही पृ०-१५७
३. संत साहित्य - पृ०-१५७
४. आदि ग्रंथ -पृ०-१४०९

गुरु रामदासजी की वाणी मुलतानी मिश्रित हिन्दी है, अत: इसे साधुक्कड़ी भाषा भी कह सकते हैं। गुरुनानक ने उपासना-पक्ष और लोकपक्ष को सर्वथा संतुलित रखा, परन्तु गुरु अंगदजी की वाणी में तथा गुरु अमरदासजी की वाणी में 'उपासना' पक्ष अधिक पुष्ट है और गुरु रामदासजी की वाणी में 'लोकपक्ष' अधिक सुन्दर है। अत: गुरुवाणी को एकांगी नहीं कहा जा सकता। यथा -

पंडितु सासत सिमृति पड़िआ। जोगी गोरख गोरखु करिआ।
मैं मूरख हरि हरि जपु पड़िआ।
ना जाना किआ गति राम हमारी। हरि भज मन मेरे
तरु भवजल तू तारी।
सन्यासी बिभूत लाइ देह सवारी। पर त्रिय त्यागु करी ब्रह्मचारी।।
मैं मूरख हरि आस तुमारी।
खत्री करम करे सूरतनु पावै। सूद वैसु पर किरति कमावै।
मै मूरख हरि नाम छडावै।।
सभ तेरी सृष्टि हूं आपि रहिया समायी। गुरुमुख
नानक दे वडियाई।।
मैं अंधुले हरि टेक टिकाई।। १

---

१. आदि ग्रंथ, राग गउड़ी - महला-४ पद-३६

साहित्य -

गुरु रामदासजी की वाणी गुरुग्रंथ साहब में ' महला-४ के अन्तर्गत संगृहीत है। इनका आसा राग का ' सुपुरख ' पद बहुत प्रसिद्ध है । इसे ' रहिरास ' में भी लिया गया है । गुरु रामदास रचित ' सूही राग ' की छंत के चार पदोंका उपयोग सिक्ख लोग अपने विवाह-संस्कार में करते हैं । (लांवा) इन्हीं गुरु मंत्रों से फेरे कराए जाते हैं । ३० रागों में इनके अनेक पद मिलते हैं ।[१] प्रेम व विरह के अंगों का निरूपण गुरु रामदासजी ने बड़ा विशद् और सुन्दर किया है । इनकी वाणी मधुर और अत्यन्त कमनीय है। गुरु के प्रति ऊँची श्रद्धा गुरु अंगद देव और गुरु अमरदास के ही सदृश इन्होंने प्रकट की है। इनके अनेक सलोक अत्यन्त हृदयस्पर्शी है । इनके पदों में अधिकतर शान्त रस की योजना हुई है। अमृत के निकट काफी समय तक रहने के कारण इन्हें इच्छित शान्ति प्राप्त हो गयी थी - अत: यहां रहकर अपनी वाणी रच सके थे । इनकी वाणी में पंजाबी का पुट है, पर अत्यात्म और सरल भी है । गुरु रामदास के काव्य में भावात्मकता सुन्दर रुप इन पदों में देखे जा सकते हैं -

रागु देवगंधारी -

अब हम चली ठाकुर पहि हारि
जब हम सरणि प्रभु की आई राखु प्रभु भावै मारि।।
लोकन की चतुराई उपमा है बैसंतरि जारि।
कोई भला कहउ भावै बुरा कहउ हम तनु दीओ है ढारि।
जो आवत सरणि ठाकुर प्रभु तुमरी तिसु राखहु किरपा धारि।।
जन नानक सरणि तुमारी हरिजीउ राखहु लाज मुरारी।। [२]

- -

१. गुरुनानक और निर्गुण धारा- पृ०- ८०
२. आदिग्रंथ महला-४, राग देवगंधारी-१६

गुरु ग्रंथ साहब के लगभग प्रत्येक काव्य रूप में इन्होंने रचना की है, परन्तु प्रमुख रूप से ये ` वारकार ` (वारों के रचयिता) थे । आपकी आठ सम्पूर्ण वारें प्राप्त है कुल मिलाकर इनके ६७९ पद है । [१]

विचारधारा -

गुरु राम दास की मधुर कोमल कान्त भावना उनके पदों में अभिव्यक्त हुई है । कहीं कहीं कान्ताभाव और साख्य भाव व्यंजक पद भी मिले हैं । गुरु ग्रंथ साहब में इनके पदों की संख्या काफी है । इन्होंने अपने विचारों को अत्यन्त सरल शब्दों में व्यक्त किया है । इनके साधक ने चेतना को कहीं क्लिष्ट ढंग से व्यक्त नहीं होने दिया है । इन्होंने अपनी रचनाओं में पूर्व के गुरुओं - गुरुनानक गुरु अंगददेव और गुरु अमरदास की विचारों को ही अपने ढंग से व्यक्त किया है ।

गुरु रामदास को गुरु अमरदासजी का सफल मार्गदर्शन प्राप्त हुआ था । अतः उनके समान ही गुरु रामदास जी ने गुरु महिमा का गुणगान मुक्त कंठ से अपनी रचनाओं में किया है। गुरु माहात्म्य का वर्णन करते हुए वे कहते हैं -
" गुरु ही भवसागर का जहाज है, वही केवट है, गुरु कृपा से ही ईश्वर की प्राप्ति होती है । गुरु के बिना किसी को भी मुक्ति प्राप्त नहीं हुई - यथा -

" गुरु जहाज खेवट गुरु, गुर बिना तरिया न कोई।
गुरु प्रसाद प्रभु पाइये, गुरु बिन मुक्त न होई ।। [२]

- -

१. गुरु नानक अतै निर्गुण धारा- पृ०-८०
२. सवैये महले -४ के गुरु ग्रंथ साहिब - पृ०-१४०१

" इतना ही नहीं गुरु के बिना ज्ञान भी प्राप्त नहीं होता । न ही गुरु बिना आत्मि आनंद की प्राप्ति हो सकती है । इसलिए नाम के अभाव में बहुमुल्य मनुष्य जीवन को एक तरह से व्यर्थ ही खोना है ।"

यथा-

गुरु बिन ज्ञान न होवई, न सुख बसै मनि आई ।
नानक नाम विहूनी मनमुखी, जासनि जनमु गंवाइ ।। [१]

गुरु की सच्ची वाणी को गुर रामदासजी ने गुरु के व्यक्तित्व से कम महत्व नहीं दिया है । इसी भावना के आधार पर मानव गुरु के अभाव में भी गुरु ग्रंथ साहिब को सिख धर्म में गुरुवत् मान्यता ही प्राप्त हुई है। गुरु रामदासजी के अनुसार - " गुरु ही वाणी है, और वाणी ही गुरु है । वाणी में ही सब प्रकार के अमृत हैं । गुरु जिस वाणी का उच्चारण करता है यदि सेवक उसका अनुगमन करें तो गुरु प्रत्यक्ष रूप से उसे मुक्ति दिला देता है । यथा-

" वाणी गुरु, गुरु है वाणी, विच वाणी अम्रित सारे।
गुरु वाणी कहै सेवकु जनु मानै, परतखि गुरु निसतारे।। [२]

गुरु के महत्व को और भी बढ़ाते हुए वे कहते हैं कि गुरु आवश्यक है। यही ज्ञान का प्रकाश देता है और अज्ञान रूपी अंधकार का विनाश करता है ।

' ईश्वर ' को रामदास गुरुजी ने ' सात गुरु ' की संज्ञा दी है। इसके अतिरिक्त ईश्वर के अतिरिक्त उन्होंने हरि, नारायण, जो पुरुखु न तो कुरान के अनुसार सातवे आसमान पर रहता है और न ही स्वर्ग में ।

- -

१. सवैये महले-४ के गुरु ग्रंथ साहिब-पृ०-१४०१
२. सोरठ की वार , महला-४, आदि ग्रंथ साहिब पृ०-६५०

वह निरंजन है, अगम है, अपार है, सब उसकी स्तुति करते हैं। स्तुति करते करते थे थकते नहीं। सबका वह सिरजनहार है। यथा-

" सो पुरखु निरंजनु हरि पुरखु निरंजनु हरि अगमा अगम अपारा।
सभि धिआवहि, सभि धिआवहि, तुधु जी हरि सचे सिरजणहारा।[१]

गुरु रामदासजी के पद अधिकांशत: ईश्वर की वंदना के ही है। उनका सम्पूर्ण साहित्य गुरु और सतिगुरु की महिमा से ही भरा पड़ा है। नीति संबंधी पद भी उनके साहित्य में उपलब्ध होते हैं। ईश्वर की प्राप्ति के लिए रामदास गुरुजी ने नैतिक और चारित्रिक शुद्धता को आवश्यक माना है। हृदय की शुद्धता और चरित्र की उच्चता ईश्वर प्राप्ति के लिए अत्यन्त आवश्यक है। वे कहते हैं - " हे ईश्वर यह संसार तेरी ही रचना है। तू जल, थल, आकाश में चारों ओर व्याप्त है। अमृत के समान तेरे मीठे वचन हैं। यथा -

" कीआ खेल बड़ मेलु तमासा वाहि गुरु तेरी सब रचना
तू जलि थलि गगनि पयालि पूरि रहिआ अम्रित ते मीठे
जाके बचना। [२]

उनके अनुसार सारी प्रकृति उस परमात्मा का ही गुण गा रही है।

पंजाबी संत साहित्य के विकास में गुरु रामदासजी की वाणी उल्लेखनीय है। गुर साहिबजी के सर्व वसुधैव कुटुम्बकम दृष्टिकोण को रूपायित करने के अतिरिक्त " अद्वैतवाद " - यथा-

" आपे अंडज जेरज सेतज उतभुज आपे खंड आपे सभलोई। [३]

त गुरु वडिआई। [४]

" वैराग्य भावना " यथा - " कोई आणि मिलावै मेरा प्रीतमु
पिआरा हउतिसु आपु वेचाई।। [५]

- -

१. नट महला-४ आदि ग्रंथ पृ०-९८२
२. राग आसा महला-४ पृ०-३४८
३. सवैये महले-४ आ०ग्र०साहिब पृ०-१४०३
४. [illegible] पृ०-३०३ " आदि ग्रंथ साहिब [illegible]

और ' आध्यात्मिक प्रेम ' पर बल दिया है । काव्य राग की ध्वनि स्वरों के प्रवाह में गुरु रामदास ने लोक-ध्वनियों की शैली में ' राम राजे ' यथा -

" हरि अमृति भिने लोइणा मनु प्रेम
रतंना राम राज । " १

आदि संगीत-पूर्ण तुकांत प्रयुक्त किये हैं, जो भक्ति साधना और गेयता के कारण सिख सम्प्रदाय में अत्यन्त लोकप्रिय हैं ।

18-3-83

- -

१. आदि-ग्रंथ महला-४ पृष्ठ - ४४८

गुरु अर्जुनदेवजी -

जीवनवृत -

गुरु अर्जुनदेवजी का जन्म बीबी भानीजी के गर्भ से मिति वैशाख कृष्ण ७ मंगल में संवत् १६२० को हुआ था ।[१] इनका जन्म-स्थान गोइंदवाल है । आप गुरु अमरदासजी के दौहित्र एवं गुरु रामदासजी के आत्मज थे । पंचम नानक के पद पर आसीन गुरु अर्जुनदेवजी धार्मिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक दृष्टि से क्रान्तिकारी गुरु सिद्ध हुए । गुरु अर्जुनदेव बचपन से ही बड़े होनहार दिखते थे । इनके नाना गुरु अमरदासजी की यह भविष्यवाणी सर्वथा सत्य हुई कि -

" यह मेरा दोहितबानी का बोहित होगा ।।"

इन्होंने अपनी ऊंची रहनी और गहरी वाणी के द्वारा भक्तों को पार लगाया ।[२]

इनका विवाह जालंधर जिले के कृपाचंद्र की पुत्री गंगादेवी के साथ हुआ था ।[३]

सर्व-प्रथम गुरु अर्जुनदेवजी ने अपने पिता गुरु रामदासजी के अधूरे अमृतसर के स्वर्ण-मंदिर का कार्य पूरा किया । संतोखसर और अमृतसर इन दोनों सरोवर के घाट बंधवाये और रामदासपुर शहर को भी विस्तृत किया । रामदाससर (अमृतसर) की महिमा इन्होंने अपने इस पद में वर्णित की है ।

---

१. संत-साहित्य पृष्ठ-१६१
२. संत सुधा सार - पृ०-३३६
३. आदि ग्रंथ महला- ५ पृष्ठ- ६२५

रामदास सरोवरि नाते । सभि उतर पाप कमाते ।।
निरमल होए करि इसनाना । गरि पूरै कीने दाना।।
सभि कुसल खेम प्रभ धारे।
सही सलामत सभि थोक उबारे गुरु का सबद्ु बीचारे
साध संग मल लाथी । पार ब्रह्म भइओ साथी ।
नानक नामु धिआइआ । आदि पुरख प्रभु पाइआ ।।[1]

गुरु अर्जुनदेवजी ने अमृतसर में एक सुन्दर मन्दिर भी बनवाया, जिसे ' स्वर्ण मंदर ' या ' दरबार साहिब ' भी कहते हैं । इस मंदिर में गुरु ग्रंथ साहिब की सेवा - प्रार्थना भक्ति की जाती है । यह मंदिर सिख संगत की एकता का केन्द्र बन गया । पंजाब में उदय हो रही नई संस्कृति को जिस स्फूर्तिप्रद केन्द्र की अपेक्षा थी , वह स्वर्ण मंदिर से पूरी हुई । इससे बढ़कर एक बात और हुई । स्वयं गुरु अर्जुनदेवजी धर्म और राजनीति के संधि स्थल बन गए । गुरु अर्जुनदेव के पूर्ववर्ती चार गुरु विशुद्ध धर्मात्मा और ईश्वर-मूर्ति थे, और परवर्ती गुरु धर्मात्मा तो थे ही, साथ में शक्ति के पुजारी भी बन गए । गुरु-परिवार में शक्ति का अभ्युदय गुरु अर्जुनदेवजी से माना जाता है । इस भक्ति जन्मा शक्ति का पूर्ण प्रभाव गुरु गोबिंदसिंह के जीवन में देखा जा सकता है । इस पूर्ण परिणित शक्ति का युगारम्भ गुरु अर्जुनदेव के तपस्वी जीवन से संबंधित है - यह देखकर संतोष होता है ।[2]

गुरु अर्जुनदेवजी ने तरनतारन का भी निर्माण किया और वहां भी एक सरोवर खुदवाया । इसी प्रकार व्यास और सतलुज नदियों के बीच एक दूसरा शहर भी इन्होंने बसाया, जिसे करतारपुर कहते हैं ।

- -

१. पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास- पृ०- २५५
२. संत सुधा सार - पृ०-३४०

सबसे महत्वपूर्ण कार्य जो गुरु अर्जुनदेव ने किया वह था - श्री "गुरु आदि ग्रंथ साहब" का संपादन। वे एक सफल भक्त और कवि तो थे ही, साथ ही एक सफल संपादक भी थे। उन्होंने अपने से पहले सिख गुरुओं और निर्गुण-भक्तों की वाणी का संपादन कर संकलन किया। उन्हें इस बात की आवश्यकता प्रतीत हुई कि भविष्य में उनके अनुयायियों में धार्मिक मतभेद न हो, इस कारण नियमों का बना देना अत्यन्त आवश्यक है।[१] उसी प्रकार सिख गुरुओं द्वारा समय-समय पर कही गई वाणी का एकत्र करना उन्होंने अत्यन्त आवश्यक समझा। इसके लिये उन्होंने अन्य निर्गुण भक्तों की श्रेष्ठ रचनाओं का भी संकलन किया। ग्रंथ-साहब में उन्होंने केवल उन्हीं पदों का संकलन किया जो ज्ञानाश्रयी निर्गुण धारा के थे। इसकी आवश्यकता इन्हें इसलिए पड़ी, क्योंकि प्रिथिआ (गुरु का भाई) कुछ पद लिखकर गुरु नानक देव के नाम से प्रचलित कर रहा था। उन्होंने बिना किसी जाति-पांति और छोटे बड़े का भेद-भाव रखते हुए वाणियों को एकत्र कर संपादित किया। इससे पहले गुरु अमरदासजी भी यह आदेश दे गए थे कि गुरु की वास्तविक "सच्ची वाणी" की ओर ध्यान देना चाहिये।[२] श्री आदि ग्रंथ में "कच्ची" और "सच्ची" वाणी का अन्तर स्पष्टकिया गया है। आदि ग्रंथ से पूर्व गुरु की वाणी संचिकाओं के रूप में विद्यमान थी। और गुरु अमरदासजी के वंशवर श्री मोहनजी के पास सुरक्षित थी। गुरु अर्जुनदेवजी स्वयं इन संचिकाओं को प्राप्त करने के लिये गोइंदवाल गये थे।[३]

- -

१. संत-साहित्य पृष्ठ-१६५
२. संत-साहित्य पृष्ठ-१६५
३. राग गौड़ी महला-५ आदि ग्रंथ साहिब -पृष्ठ-२४८

उनके कतिपय पदों यथा -

क- मोहन तेरे ऊँचे महल अपार।
मोहन तेरे सोहनि दुआर जीउ संत धरमसाल ।[1]

ख- मोहन तेरे बचन अनूप चाल निराली
मोहन तू मानहि एक जी अवर सभ राली ।[2]

ग- मोहन तूं सफल फलिआ सणु परिवारे।
मोहन पुत्र मीत भाई कुटुम्ब सभि तारे ।।[3]

से प्रभावित होकर बाबा मोहनजी ने संचिकाएं गुरुजी को भेंट दे दीं । संचिकाओं के सभी पद गुरु आदि ग्रंथ साहब में संग्रहीत नहीं है । जो पद ठेठ निर्गुण भक्ति से संबंध रखने वाले थे, केवल उन्हीं को आदि ग्रंथ साहब में संचित किया गया । संचिकाए " हरमण्डल " अमृतसर साहिब में विद्यमान हैं ।[क] श्री आदि ग्रंथ साहिब में ७ गुरुओं तथा १६ अन्य संतों की वाणियां संकलित हैं ।[४] इनकी पद संख्या इस प्रकार है - गुरुनानक देवजी - ६४७ , गुरु अंगद देवजी - ६३ , गुरु अमरदासजी-६[illegible] गुरु रामदासजी - ६३८, गुरु अर्जुनदेवजी - २३१२, गुरु तेगबहादुरजी-११५, गुरु गोविंदसिंहजी - १ पद हैं । जिनकी कुल संख्या - ३६६५ हैं । इनके अतिरिक्त सत्ता बलवंड के पद- ११ , सधना-१, सुन्दर-६, सूरदास-२ सैना-१, कबीर-५३४, जयदेव-२, त्रिलोचन-५, धन्ना-४, नामदेव - ६२ परमानंद-१, पीपा -१ , फरीद - १२३, बेनी - ३ , भीखन - २ मरदाना - ३, रविदास - ४०, तथा रामानंद - १ हैं । कुल मिलाकर ९२५ पद हैं । भाटों के पद - १२३ हैं , जिसके परस्पर मिश्रित होने से उनकी गणना एक समस्या हैं ।[५]

गुरु ग्रंथ-साहिब के पदों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जिस रूपों में उनको संपादित और संकलित किया गया था, उसी रूप में वे आज तक चले आ रहे हैं ।

क. संत साहित्य -पृ० -१६५

---

१. राग गौड़ी महला-५ " आदि ग्रंथ साहिब - पृ०-२४८
२. वही पृ०-२४८
३. पंजाब प्रांतीय हिन्दी साहित्य का इतिहास- पृ०- १८५
४. महान कोश - भाई काह्नसिंह - प्रथम संस्करण पृष्ठ-१३०[illegible]
५. पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास -पृ०-१८६

पदों का चुनाव करने के पश्चात गुरु अर्जुनदेवजी ने उन्हें भाई गुरदास जी से लिखवाया । इस प्रकार मिति भादों सुदी १, संवत् १६६१ विक्रमी " श्री आदि ग्रंथ " का शुभ संकल्प एवं पवित्र संकलन सम्पन्न हुआ ।[१] संपादन हो जाने पर उसकी प्रति भाई बुड्ढाजी को सुरक्षित रखने के के लिए दे दी गई ।[२] गुरु ग्रंथ साहिब का संकलन विभिन्न राग-रागनियों में किया गया है ।

ये पद क्रमानुसार विभिन्न " महला " में रखे गए हैं। जैसे गुरु नानक देवजी के पद महला-१, गुरु अंगद देवजी के पद -महला-२, गुरु अमरदासजी के पद - महला-३, गुरु रामदासजी के पद, महला-४ के अन्तर्गत रखे गए हैं । इनके पश्चात भक्तों के पद आते हैं । सबसे अंत में " रागमाला " दी गई है जिसमें विभिन्न राग-रागनियों की चर्चा है ।[३] यथा - सिरी राग, माफ, गउड़ी, आसा, गुजरी, देवगंधारी, बिहागड़ा, वड़हंस, सोरठ, धनासरी, जैतसिरी, टोड़ी, बैराड़ी, तिलंग, सुही, बिलावल, गौड़, रामकली, नट-नारायन, माली गउड़ा, मारु, तुखारी, केदार, भैरउ, बसंत, सारंग, मलार, कानड़ा, कलियान, प्रभाती, जैजैवन्ती (छंद) सलोक, गाथा, फुनहे , चउबोले, सवैये, मुंदावणी, असटपदीजा आदि हैं ।[४] इनमें से १९ राग गुरु नानक देवजी ने गाये हैं , १७ राग गुरु अमरदासजी ने और भक्तों ने २२ के लगभग राग गाये हैं ।[५] गुरु अर्जुनदेवजी का योगदान इस संकलन की दृष्टि से अभूतपूर्व है और चिरस्मरणीय हैं ।

गुरु अर्जुनदेवजी का सम्पूर्ण जीवन ही संघर्षों में बीता । इनके प्रति एक न एक कारण से ये तीन व्यक्ति द्वेष रखते थे । क- बादशाह अकबर का मंत्री बीरबल

ख- गुरु अर्जुन देव का बड़ा भाई प्रिथिया

ग- बादशाह का अर्थ मंत्री चंदूशाह

- -

१. संत साहित्य - पृ०-१६५
२. वही पृ०-१६५
३. संत साहित्य - पृ०-१६५
४. पंजाब प्रांतीय हिन्दी साहित्य का इतिहास -पृ०-१६७
५. वही

बीरबल का गुरु अर्जुनदेव से मतभेद केवल धार्मिक था। उसने कई बार गुरुजी को अपमानित करना चाहा, पर वह सफल न हो सका।[1]

प्रिथिआ को गुरु गद्दी नहीं मिली थी, इसलिए वह गुरु अर्जुनदेव का शत्रु बन बैठा था। उनके विरुद्ध वह अनेक षड्यंत्र रचने लगा। इनके पुत्र हरगोबिंदजी को विष दिलाने तक का प्रयत्न किया। बादशाह को भी इनके विरुद्ध कई बार उकसाया जितनी भी दुष्टता और नीचता हो सकती थी प्रिथिआ ने उन सबका प्रयोग किया। उसकी पत्नी भी उसके साथ सर्वनाश कराने में सहयोग करती थी।[2]

चंदूशाह भी गुरु अर्जुनदेवजी का जानी दुश्मन था। वह दिल्ली में रहता था। उसको अपनी लड़की के लिए सुयोग्य वर की आवश्यकता थी। उसके समक्ष गुरु अर्जुनदेवजी के सुपुत्र श्री हरगोबिंदजी का प्रस्ताव रखा गया। पहले तो उसे यह प्रस्ताव पसंद नहीं आया और यह कहकर गुरु का घोर अपमान किया कि - " राजमहल की सुन्दर ईंट नाली में नहीं लगायी जा सकती।" किंतु अंत में अपनी स्त्री के आग्रह पर उसने उक्त बात को मान लिया। पर अब गुरु के सिक्ख राजी नहीं हुए। गुरु का अपमान उन्हें सह्य नहीं हुआ। परिणामत: चंदू का प्रस्ताव ठुकरा दिया गया। इस घटना से वह गुरु अर्जुनदेव का घोर शत्रु बन बैठा। उसने गुरुजी से प्रतिशोध लेने की सोच ली। चंदू ने कितने ही षड्यंत्र गुरुजी के विरुद्ध रचे, और दुष्ट प्रिथिआ ने भी उसका इन कुकृत्यों में साथ दिया।[3]

एक और घटना ने गुरुजी का जीवन यातनापूर्ण बना दिया। जहांगीर का पुत्र खुसरो अत्यन्त योग्य एवं क्रान्तिकारी था। उस ने पंजाब और अफगानिस्तान पर अधिकार कर लेना चाहा। इस कारण जहांगीर उससे नाराज हो गया। उसे पकड़ने के लिये शाही फौजें भेजी गईं।

- -

१ संत सुधा सार - पृ०-३४०
२ वही - पृ०-३४०
३ वही - पृ०-३४०

आगरे से भागता हुआ वह तरनतारन गुरुजी की शरण में आया । अत्यन्त दीनता से उसने गुरुजी से आर्थिक सहायता मांगी। गुरुजी ने दयावश पांच सहस्त्र रुपये दिए । इस घटना को प्रिथिआ और चंदु ने जहांगीर बादशाह तक बढ़ा-चढा कर पहुंचाया कि गुरुजी इस्लाम विरोधी प्रचार कर रहे हैं । गुरुजी को छल-बल से पकड़वा कर बादशाह के आगे पेश किया गया और उन्हें इस्लाम विरोधी ठहराया गया । यह निर्णय दिया गया कि गुरुजी दण्ड स्वरूप दो लाख रुपये दें, और गुरु ग्रंथ साहिब में से कुछ अपने विचार से अनुचित समझी जानवे वाली पंक्तियों को निकाल दें । दोनों ही बातों को गुरु अर्जुनदेवजी ने अस्वीकार कर दिया । उन्होंने कहा कि - गुरु ग्रंथ साहिब में ऐसी एक भी पंक्ति नहीं , जिसमें हिन्दू अवतारों और मुस्लिम पैगम्बरों की निंदा की गई हो । हां - यह अवश्य उसमें कहा गया है कि पैगम्बर पीर और अवतार सब उसी अकाल परमात्मा की सृष्टि है जिसका अंत आज तक किसी को भी नहीं मिला। मेरा मुख्य उद्देश्य है सत्य का प्रचार और असत्य का निवारण, इसमें अगर मेरा यह नाशवान शरीर भी चला जाये, तो उसे मैं अपना अहो-भाग्य मानूंगा ।[१] बादशाह इस पर बहुत बिगड़ा । गुरु अर्जुनदेव को बंदीगृह में डाल दिया गया , और वहां उन्हें अनेक अमानुषिक यातनाएं दी गईं । दुष्ट आततायी से समझते रहे कि भौतिक कष्टों से भयभीत होकर ये अपना मार्ग बदल देंगे । किंतु " धर्म के बोहिथ " नाम के जहाज " को अपनी वाणी पर विश्वास था, उन्हें यह भी पता था कि यह उनकी परीक्षा की घड़ी है। ये सारी यातनाएं सहते हुए नाम-स्मरण करते रहे ।[२] गुरु अर्जुनदेवजी ने उस कष्टमय स्थिति में भी हंसते हुए आततायी चंदु से दृढ़ता से कहा कि - अरे मूर्ख - " फुटो अंडा भरम का, मनहि भइउ परगासु।
काटी बेड़ी पगह ते, गुरि कीता बंदि खलासु।[३]

- -

१. संत सुधा सार - पृ०- ३४२
२. वही - पृ० ३४२
३. आदि ग्रंथ महला-५, पृ०-१००२

अर्थात जन्म-जन्म की बेड़ी कट चुकी है , सतगुरु ने माया के बंदीगृह से मुक्त कर दिया है। भ्रम का परदा हट चुका है, और अब मन के अन्दर दिव्य प्रकाश जगमग हो रहा है ।

पांच दिन कारागार में व्यतीत हो गए । छठे दिन उन्होंने रावी नदी में स्नान करने की अनुमति माँगी । अपने साथ अपने पांच प्यारे सिक्खों को लेकर वे हथियार बंद सिपाहियों की देख-रेख में स्नान के लिए बंदीगृह से निकले । सारे बदन पर फफोले पड़े हुए थे । सेवक परीना के कंधे का सहारा लेकर ये रावी पहुंचे । लेकिन चेहरे पर वही अलौकिक प्रेम की धारा फूट रही थी, मानो बंदीगृह से छूटकर अपने प्यारे प्रभु से मिलने जा रहे हों । ध्यान में मग्न थे मुख नामधुन की रट थी ।

रावी में उतर कर स्नान किया, और फिर " जपुजी " की मंगल पाठ । हरगोबिंदजी को गुरु बनने का आदेश देकर शुक्रवार जेठ सुदी चौथ संवत् १६६३ को हुकमि रजाई चलणा, के नियम की पालना करते हुए ।[1] तेरा कीआ मीठा लागै। हरि नाम पदारथ नानक मांगै " ।। की धुनि में मस्त रावी नदी की लहरों में - " सूरज किरणि मिले जल का जलु हुआ राम ।। जोति जोत रली संपूरन थीआ राम ।।[2] सदैव के लिए अपना सगुण स्वरूप सौंप कर गए और गुरु ग्रंथ साहब की निर्गुण स्वरूप वाणी में सांसारिक जीवों के उद्धार के लिए स्थापना करके ४३ वर्षों की आयु में अटल अमर हो गए ।

- -

१. आदि ग्रंथ महला-१ पृ ०-१

२. आदि ग्रंथ महला-५ पृ०-८४६

साहित्य -

गुरु अर्जुनदेवजी की वाणी बहुत विस्तृत है। गुरु ग्रंथ साहिब में २२१८ से भी अधिक इनके पद और सलोक हैं। महला-५ के अन्तर्गत जितने भी पद और सलोक मिलते हैं वे सब इनके रचित हैं। सुखमनी ' बावन अखरी ', ' सवैये ', ' छंद ' थिति गउड़ी, ' फुनहे ', अनेक रागों में वारें तथा ' सहसीकृति के सलोक इनके प्रसिद्ध हैं।

डा० गोकुलचंद नारंग ने गुरु अर्जुनदेवजी को जन्मजात कवि, दार्शनिक, शक्तिशाली प्रबंधक और महान राजनीति वेत्ता कहा है।[1] इसका प्रमाण गुरु अर्जुनदेवजी के गतिशील और क्रान्तिकारी जीवन और गंभीर अनुभवमयी काव्य अभिव्यक्ति है।

गुरु अर्जुनदेवजी का तत्त्व चिंतन और जीवन-दर्शन गुरु नानक दर्शन का ही विकसित रूप है। गुरु अर्जुनदेव का प्रभु निरंकार हैं, निर्गुण है यथा -

' हे संगी हे निरंकार हे निरगुण सभ टेक '[2] -

एक है जो रम रहा है यथा - नानक एको रवि रहिआ दूसर होवा न होगु।[3] गुरुजी की ' सुखमनी ' में दार्शनिक सिद्धांतों का भली प्रकार निरूपण हुआ है। इसमें प्रकृति, त्रिगुण ब्रह्मांड विज्ञान आदि का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। ' भक्ति ' नाम के साथ - साथ ज्ञान योग का महत्त्व भी दर्शाया गया है। गुरु अर्जुनदेव ' ज्ञान ' को ' प्रकाश ' के प्रतीक के द्वारा इस प्रकार अंकित करते हैं -

' फूटो आंडा भरम का मनहि भइओ परगासु।'[४]

---

१. ट्रांसफारमेशन ऑफ सिक्खिज़्म - पृ०-६२
२. आदि ग्रंथ महला-५ पृ०-२६१
३. वही पृ०-२५०
४- वही -५ पृ०-११०२

' सुखमनी साहिब ' में सत्संग और संतों की महिमा का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है । साधु संग से ज्योति प्रकट होती है -

' तिउ साधु संग मिलि जोति प्रगटावै । [1]

ऐसे महान संतों की पग धुलि को पाने की कामना प्रगट की गई है । तिन संतन की बाछउ धूरि' [2] । डॉ० जोधसिंह का यह कथन अक्षरशः सत्य है कि गुरु अर्जुनदेवजी नहीं मानते हैं कि संसार मिथ्या है - आप सति कीआ सभ सति ।[3] इसके साथ ही शंकर के मायावाद का खंडन हो जाता है। गुरुजी का ' रहस्यवादी ' पक्ष भी दर्शनीय है । ' जहां गुरु साहिब का रहस्यवाद अनुभव-वेदांत के दर्शनवाद से भिन्न है, योग मार्ग के खोखले और अधूरे शुन्यवाद से अलग है , वहीं ईसाई और इस्लामी मतों के हठ कर्म और तपवाद से भी भिन्न है ।[4] इनका रहस्यवाद सहज स्वाभाविक शीतल और प्रकाशमय है ।

गुरु अर्जुनजी की अभिव्यक्ति कला और भी महत्वपूर्ण है । कई प्रकार के छंद विन्यास और काव्य-पद्धतियों के अतिरिक्त घरेलू रूपक और प्रतीक प्रयुक्त कर जन मन को धर्म और भक्ति की ओर प्रेरित किया है। काव्य भाषा पुष्ट और सम्पन्न हैं । उनकी भाषा की पृष्ठभूमि में फरीद, कबीर, गुरुनानक, जयदेव, नामदेवरविदास आदि संतों की भाषा की निर्मल धारा प्रवाहित हो रही था । गुरु अर्जुनजी ने संस्कृत, अपभ्रंश, फारसी ब्रज भाषा, ठहिंदा, सिंधी, मुल्तानी, राजस्थानी की शब्दावली निःसंकोच प्रयुक्त का भारतवर्ष के लिये माध्यम का आदर्श प्रस्तुत किया ।

---

१. आदि ग्रंथ महला-५ पृ०-२८२
२. वही पृ०-२८२
३. गुरु अर्जुन अते वेदांत-पृ०- ६४(जलाकी अध्ययन सीरीज-५)
४. प्रो० दीवान सिंह,गुरु अर्जुनजी की कविता पृ०-६६

विचारधारा -

यदि गुरु अमरदास की आनंदवादी प्रवृत्ति के समर्थक हैं तो गुरु अर्जुनदेवजी सुखवादी प्रवृत्ति के। अगर दोनों की प्रवृत्तियों का मिलान किया जाये तो दोनों एक सी प्रतीत होंगी। गुरु अमरदासजी कहते हैं कि - आनंदु भया मेरी माए,
सतिगुरु मैं पाया।[1]

और गुरु अर्जुनदेवजी कहते हैं - " सुखमनी अम्रित प्रभ नामु।[2]
गुरु अर्जुनदेवजी का जीवन भौतिक रूप से तो सुखी नहीं था। जीवन-पर्यंत उन्हें अपने सभी संबंधी तंग करते रहे, किंतु उनके साधक का भौतिक साधनों में नहीं था। अतएव सदैव उन्होंने यही कहा कि चारों ओर दुख नहीं सुख ही है। यथा -

" दुख नहीं सब सुख ही है रे।
बुरा नहीं सब भला ही है रे।।

प्रभु नाम के महत्व की चर्चा करते हुए अर्जुनदेव कहते हैं कि " प्रभु स्मरण से गर्व नहीं जाता, प्रभु के स्मरण से ही यम का दुख भाग जाता है। मृत्यु भी नाम के कारण भयभीत हो जाती है। मनुष्य अमर हो जाता है और दुश्मन टल जाते हैं। आशय यह है कि प्रभु स्मरण से ही यह चिंता मुक्त हो जाता है उसे आत्मिक संतोष मिलता है वह दुःखों से बच जाता है। यथा -

प्रभ के सिमरन गर्व न बसै, प्रभ के सिमरन दुख जम नसै।।
प्रभ के सिमरन काल परहरै, प्रभ के सिमरन दुसमन टरै।
प्रभ सिमरन बिघन न लागै, प्रभ के सिमरन अनदिन जागै।[3]

गुरु अर्जुनदेवजी कहते है कि हरि का नाम सिमरन सभी कार्यों से श्रेष्ठ है। यह नाम ही पारिजात वृक्ष है, कामधेनु है। नाम सिमरन से सभी दैहिकताप मिट जाते हैं।

---

१. आदि ग्रंथ महला-३ पृ०-९१७
२. वही -५ पृ०-२६२
३. सुखमनी साहिब - असटपदी -सलोक-१ पृ०-२६२

नाम की महिमा संतों के हृदय में ही बसती है। और संतों की संगत बड़े भाग्य से प्राप्त होती है। नाम के बराबर और कई वस्तु नहीं। गुरुजी कहते हैं कि वे विरले व्यक्ति ही हैं जो नाम धन की प्राप्ति करते हैं। यथा -

" पारजात इह हरि को नाम।
कामधेनु हरि हरि गुणगान।।
सभ ते ऊतम हरि की कथा।।
नाम सुनत दरद दुख लथा।।
नाम की महिमा संत रिद बसै।।
संत प्रतापि दुरतु सभ नसै।।
संत का संग वडभागी पाईऐ ।।
संत की सेवा नामु धिआईऐ।।
नाम तुलि कछु अवरु न होइ ।।[1]
नानक गुरमुखि नामु पावै जनु कोइ ।।

ब्रह्मज्ञानी के विषय में गुरु अर्जुनदेव के विचार अत्यन्त उदात्त एवं महान हैं। वे कहते हैं - " जो व्यक्ति मन तन करके परमात्मा का नाम सिमरन करता है और उस एक व्यापक के अतिरिक्त अन्य किसी की आराधना नहीं करता, वह पुरुष परमेश्वर को जानने वाला तत्ववेत्ता अर्थात् ब्रह्मज्ञानी है। यथा -

" मन साचा मुख साचा सोइ।
अवर न पेखै एकसु बिनु कोइ
नानक इह लछण ब्रहम गिआनी होइ।[2]

अर्जुनदेवजी कहते हैं - " ब्रह्मज्ञानी सब जड़ चेतन में एक परमात्मा को व्यापक जानता और दुश्मन मित्र, एवं दुख सुख को एक सार जानता है। वैरी से घृणा नहीं करता।

---

1. आदि ग्रंथ सुखमनी साहिब - पृ०-२६५
2. वही पृ०-२७२

एवं मित्र से प्यार नहीं करता । दुख को बुरा नहीं मानता एवं सुख को अच्छा नहीं समझता । परमात्मा के नियमों में अग्नि एवं वायु के समान एक सार चलता है ।* यथा -

* ब्रह्म गिआनी सदा निरलेप।।
जैसे जल महि कमल अलेप।।
ब्रह्म गिआनी निरदोख।।
जैसे सूर सरब कउ सोख।।
ब्रह्म गिआनी के द्रिसटि समानि।।
जैसे राज रंक कउ लागै तुलि पवान।।
ब्रह्म गिआनी के धीरजु एक।।
जिउ बसुधा कोऊ खोदै कोऊ चंदन लेप।।
ब्रह्म गिआनी का इहै गुनाउ।।
नानक जिउ पावक का सहज सुभाउ।। [१]

गुरु अर्जुनदेवजी कहते हैं कि मनुष्य को सदैव अपने इष्टदेव परमात्मा पर निश्चय, विश्वास रखना चाहिए । वही सभी निधियाँ सिद्धियाँ को देने वाला है। उनके अनुसार - वे अपने मन को संबोधित करते हुए प्राणी मात्र को उपदेश देते हैं कि अपने सारे शरीर के अंगों को सद्मार्ग पर लगाना चाहिए । जिव्हा से हरि का गुणगान करो। कानों से हरि कथा सुनो, नेत्रों से उसको दृष्टि में उसके दर्शन करो , चरणों से चलकर सत्संग में जाओ । इस प्रकार अपने सभी अंगों एवं मन को सफल कर प्रभु के दरबार में मान के साथ जाओ । यथा -

* उसतति मन महि करि निरंकार।।
कर मन मेरे सति बिउहार ।।

- -

१. आदि ग्रंथ सुखमनी साहिब - पृ०-२७२

* निरमल रसना अम्रित पीउ।।
सदा सुहेला करि लेहि जीउ।।
नैनहु पेखि ठाकुर का रंग
साध संग बिनसै सभ संग।।
चरन चलउ मारगि गोबिंद।।
मिटहि पाप जपीऐ हरि बिंद।।
कर हरि करम स्रवनि हरि कथा।।
हरि दरगह नानक ऊजल मथा ।। [१]

सृष्टि के विषय में गुरु अर्जुन देवजी के विचार बड़े सुलझे हुए एवं उदात्त हैं। उनके अनुसार - " वह परमात्मा सुनने एवं सुनाने वही एक अकाल पुरुष वाहिगुरु आप ही है। वह एक एवं अनेक रूपों में वही है। अपनी इच्छानुसार वह सृष्टि की रचना करता है और इच्छानुसार समेट लेता है। पूरी सृष्टि को उसने अपने हुकुम के अन्दर समेटा हुआ है, जिसे कृपा पूर्वक वह समझाता है। वही उसकी इस शक्ति को समझता है। ऐसा पुरुष अपने सत्य के बल पर सारी सृष्टि को जीत लेता है एवं वह सब को एक समान देखता है। यथा -

आपि कथै आपि सुननै हारु ।।
आपहि एकु आपि बिसथारु।।
जा तिसु भावै ता स्रिसटि उपाए।।
आपनै भाणै लए समाए।।
तुम ते भिन्न नहीं किछु होइ।।
आपन सूति सभु जगत परोइ।।

जा कउ प्रभु जीउ आपि बुझाए।।
सचु नामु सोइ जनु पाए।।
सो समदरसी तत का बेता।।
नानक सगल स्रिसटि का जेता ।[२]

---

१. आदि ग्रंथ सुखमनी साहिब - पृ०२८१
२. वही महला-५ सुखमनी पृ०-२९२

पंचम अध्याय

गुरु तेगबहादुर जी :-

सिख गुरुओं में पंचम गुरु अर्जुन देव के पश्चात् क्रमश: छठे गुरु हरगोविंद, सातवें गुरु हरराय जी औ आठवें गुरु श्री हरिकृष्ण जी गुरुगद्दी पर विराजमान हुए। परन्तु इन गुरुओं ने कोई पद रचना नहीं की। ६ वें गुरु तेगबहादुर जी छठे गुरु हरगोविंदजी के पांच पुत्रों (गुरुदित्ता जी, सुरजमान, अनीराय, बाबा अटल और तेगबहादुर) में से सबसे छोटे थे। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि अपने पिता छठे गुरु हरिगोविंद जी के पश्चात् गुरुगद्दी पर इनका भतीजा (बड़े भाई गुरुदित्ता जी का पुत्र) बैठा। जो सातवें गुरु श्री 'हरराय' जी के नाम से जाने जाते हैं। आठवें गुरु के रूप में श्री हरराय जी के छोटे पुत्र श्री हरिकृष्ण जी बैठे, जिनकी मृत्यु केवल ८ वर्ष की अवस्था में ही हो गयी थी। अर्थात् अपने भतीजे एवं पौत्र के पश्चात् गुरु तेगबहादुर जी गुरुगद्दी पर बैठे। [१]

गुरु तेगबहादुर जी का जन्म अमृतसर में वैशाख सुदी ५ संवत् १६७८ को नानकी जी के गर्भ से हुआ था। आपका विवाह जालंधर जिले के करतारपुर नगर की गुजरी से हुआ था।

गुरु हरगोविंद जी की मृत्यु के पश्चात् गुरु तेगबहादुर जी अपनी माता तथा पत्नी गुजरी जी के साथ बकाला गांव में रहने लगे थे। आठवें गुरु श्री हरिकृष्ण जी से जब लगभग बेहोशी की अवस्था में उत्तराधिकारी का नाम पूछा गया, तब उन्होंने 'बाबा बकाले' कह कर तीन बार हाथ हिलाया। इस बात की सूचना पाकर २२ सोढ़ी क्षत्रियों ने अपने आपको गुरु घोषित कर दिया।

---

१. संत साहित्य - डा०सुदर्शनसिंह मजीठिया, पृ०: १७०

अंत में जब लबाना परिवार में एक सिख जिसका नाम मक्खन शाह था , अपने डूबते हुए जहाज के बच जाने के उपलक्ष में ५०० मुहरें लेकर आया, तब उसे यह देखकर घबराहट हुई कि एक साथ ही गुरुगद्दी पर २२ गुरु बैठे हुए हैं। सच्चे गुरु तेगबहादुर जी इनमें से कौन से हैं (जिनका नाम स्मरण कर अपना जहाज बचाने के लिये प्रार्थना की थी एवं भेंटस्वरूप ५०० मुहरों को चढ़ाने की मनौती मानी थी)। उसने प्रत्येक गुरु बने संत की परीक्षा दो-दो मुहरें देकर करनी प्रारंभ की । उन २२ सोढ़ी गुरुओं को मक्खन शाह की ५०० मुहरों का पता नहीं था । मक्खन शाह उदास हो गया कि ये सब कपटी गुरु हैं । सच्चा गुरु इनमें नहीं है । मक्खन शाह ने ' धन्ना भगत ' की भांति अन्न जल छोड़ दिया। उसने सबसे पूछना शुरू किया - कि यहां कोई और सोढ़ी बाबा हैं ? तब एक लड़के ने बताया - कि एक बाबा और हैं , जो अपने ध्यान में लीन एकांत वास कर रहे हैं । उन्हें लोग - ' बाबा तेगा ' कहते हैं । यह सुनकर मक्खन शाह वहां पहुंचा । गुरु तेगबहादुर जी ध्यानावस्था में लीन थे । उसने दो मुहरें रखकर झुककर प्रणाम किया । तभी उसे गुरु तेगबहादुर का मधुर संगीत भरा स्वर सुनाई दिया कि - " हे भक्त । भगवान का आशीर्वाद तुम्हें प्राप्त हुआ , परन्तु पांच सौ मुहरों की प्रतिज्ञा करने के पश्चात् भेंट में दो मुहरें क्यों रखीं ? गुरुदेव को किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है , परन्तु एक सिख से यह आशा नहीं की जा सकती कि वह अपनी प्रतिज्ञा भंग करे । [१]

इतनी बात सुनते ही मक्खन शाह नवम् गुरु के चरणों में लोट गया । उसने पूरी संगत को बताया कि ' गुरु लाधोरे '; गुरु लाधोरे ' मैंने सच्चे गुरु, नवम् गुरु को पा लिया है । इन बाईस झूठ कपटियों को भगाकर, मक्खन शाह ने अपनी प्रतिज्ञा और सच्चे गुरु को ढूंढने की अपनी योजना भी बता दी । सिख संगत के अनुरोध पर गुरु तेगबहादुर जी चैत्र शुक्ल १४ संवत् १७७२ में गुरुगद्दी पर विराजमान हुए ।२

---

१. गुरु लाधोरे - लेखक : ' मनमोहन सहगल '

२. संत साहित्य - गजीठिया - पृ. १७१

गुरु तेगबहादुर जी पांच वर्ष की अवस्था से ही एकांत में प्राय: विचारमग्न रहा करते थे, कम बोलना इनकी आदत थी । इनके पिता श्री हरगोविंद जी ने इनकी साधु प्रवृत्ति दृढ़ता देखकर भविष्यवाणी की थी कि- ` तेगबहादुर अवश्य किसी दिन `हिन्द की चादर` बनेगा और धर्म की वेदी पर अपने प्राणों का बलिदान करेगा` । [१]

इनके बड़े भाई गुरुदित्ता जी का पुत्र धीरमल इनसे अत्यंत द्वेश रखता था। इन्हें मार डालने के लिये कुछ मर्दों को उसने भेजा, पर वह सफल नहीं हुआ । साधु प्रवृत्ति गुरु तेगबहादुर जी ने कीरतपुर को छोड़ कर वहां से छैह मील दूर आनंदपुर नामक नये शहर की नींव डाली , और वहीं पर रहने का निश्चय किया । किंतु वहां भी धीरमल और रामराय के षड्यंत्रों के कारण चैन से नहीं बैठ सके । वह स्थान भी उन्होंने छोड़ दिया और सिक्ख धर्म के प्रचार के लिये लम्बी लम्बी यात्राओं पर निकल पड़ । गुरु तेगबहादुर पंजाब के कई स्थानों का भ्रमण करते हुए कड़ा मानिकपुर (जहां प्रसिद्ध संत बाबा मलूकदास रहते थे), प्रयाग और काशी , गया भी गये । काशी में जिस स्थान में यह रहे थे , उसे `शब्द का कोठा` कहते हैं । [२]

जयपुर के महाराज जयसिंह के पुत्र रामसिंह के प्रस्ताव पर उसके साथ औरंगजेब बादशाह की ओर से शाही फौज के साथ गुरु तेगबहादुर बंगाल होते हुए कामरूप (आसाम) भी गये । राजा रामसिंह ने कामरूप के विरुद्ध चढ़ाई में इनकी मदद मांगी । किन्तु चढ़ाई करने का अवसर ही नहीं आया । गुरु के आत्मबल के सनदा कामरूप के राजा की एक नहीं चली । उन्होंने बिना रक्तपात के कामरूप राज्य को शांतिपूर्वक दो हिस्सों में बंटवा दिया और कहा कि, बादशाह और कामरूप का राजा इन दोनो भागों में अपना अपना राज करे और पुरानी शत्रुता भूल जाये ।

---

१. संत-सुधासार,लेखक: `वियोगी हरि` पृ. ३८२

२. संतसाहित्य,लेखक: डा०सुदर्शनसिंह मजीठिया, पृ०-२७१

कामरूप का राजा इनसे बहुत प्रभावित हुआ । धुबरी में आज भी गुरु तेगबहादुर जी के अनुयायी सिक्खों के कुछ वंशज पाये जाते हैं ।

पटना में ये अपनी पत्नी और माता को छोड़ गये थे । आसाम में पटना से इन्हें शुभ-समाचार मिला कि इनकी पत्नी गुजरी ने एक सुंदर पुत्र को जन्म दिया है । राजा रामसिंह ने इस मंगल समाचार को सुनकर वहां भारी उत्सव मनाया । गुरु तेगबहादुर जी पटना लौट आए और वहां अपने परिवार के साथ शांति से रहने लगे । पंजाब की याद इन्हें रह रह कर व्याकुल करने लगी । अतः परिवार को पटना में ही छोड़कर ये पंजाब आ गये । कुछ दिनों के बाद आनंदपुर में अपनी पत्नी एवं माता जी को भी बुला लिया ।

औरंगजेब तत्कालीन शासक था । धर्मान्धता उसकी भारत के इतिहास में प्रसिद्ध है । धर्मान्तरित करने का आन्दोलन उसका कई प्रांतो में चल रहा था। काश्मीर भी नहीं बचा । वहां के पंडितों ने छह महीने की अवधि मांगी । काश्मीर के सूबेदार शेर अफगान खां ने औरंगजेब की आज्ञा से काश्मीरी पंडितों के आगे यह प्रस्ताव रखा कि या तो वे सब के सब इस्लाम धर्म को ग्रहण कर लें या बलिदान के लिये प्रस्तुत हो जायें । यह सुनकर कि गुरु तेगबहादुर ही एक ऐसे महान वीरपुरुष हैं, जो इनके शिखा-सूत्र और तिलक की रक्षा कर सकते हैं , उनके प्रतिनिधि पंडित कृपाराम आदि आनंदपुर पहुंचे । उनकी करुण कहानी सुनकर गुरु साहब इस निश्चय पर पहुंचे कि धर्म के रक्षार्थ मुझे अपने प्राणों की बलि अब देनी ही होगी । प्रकट में गुरु तेगबहादुर जी ने पंडितों से कहा - कि " किसी महापुरुष के बलिदान के बिना हिन्दू धर्म की रक्षा कठिन है " । गोविंदराय उस समय बालक ही थे । सुनकर उन्होंने कहा कि- इस पुण्य कार्य के लिये आपसे बढ़कर भला कौन महापुरुष हो सकता है " । [1] गुरु तेगबहादुर ने उन पंडितों से कहा - " आप लोग दिल्ली जाकर बादशाह से कहें - " गुरु नानक की गद्दी पर आसीन तेगबहादुर को पहले तुम मुसलमान बना लो , उसके बाद हम सब के सब अपने आप इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेंगे " [2]

---

१. गुरविलास - अध्याय ५ , सुखासिंह
२. संतसुधासार - वियोगी हरि, पृ०-३८४

औरंगजेब फूला न समाया । गुरू साहब के पास उसने संदेश पहुंचाया। गुरू तेगबहादुर जी ने अपने निकट सहयोगियों भाई मतिदास, सतिदास, दयालदास और पूज्यनीय माई गुरदित्ता जी से परामर्श किया । उन्होंने भी नवम् गुरू के साथ दिल्ली जाने की इच्छा प्रकट की । नवम् गुरू ने इनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली ~~और दिल्ली की ओर चल पड़े~~ । उधर संदेहशील औरंगजेब ने उन्हें बंदी बनाकर दिल्ली लाने का आदेश जारी कर दिया । गुरू साहब दिल्ली के लिये चल पड़े । रास्ते में सैफाबाद में अपने परम मित्र सैफुद्दीन से मिले , जिसने गुरू साहब से प्रभावित होकर सिक्ख धर्म - स्वीकार कर लिया था तीन महीने वे उसके अनुरोध पर सैफाबाद में ही रहे ।

रास्ते में कई स्थानों पर ठहरते और धर्मोपदेश करते हुए वे दिल्ली पहुंचे , और उन्हें बंदी बना लिया गया , इस अपराध पर कि वे इतने दिनों तक कहीं छिपे हुए थे । इनकी गिरफ्तारी से बादशाह को अपार प्रसन्नता हुई ।

उनके समक्ष इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेने का प्रस्ताव रखा गया । गुरू तेगबहादुर ने बादशाह को यह उत्तर दिया - " ईश्वर की इच्छा से कोई बाहर नहीं जा सकता । अगर उसकी यही इच्छा होती कि संसार में एक ही धर्म होना चाहिये तो एक ही समय में साथ-साथ इस्लाम और हिन्दु धर्म को वह न रहने देता । उसकी इच्छा के विरूद्ध न मैं जा सकता हूं, न तुम । मैं इस्लाम को कभी स्वीकार करने वाला नहीं । दुनिया पर एक ही धर्म आरोपित करने का जो काम तुम्हारे मक्का के पैगंबर से भी नहीं हो सका , तब तुम्हारी तो क्या बिसात है ? ईश्वर के समक्ष हम सब समान हैं, नाचीज हैं । उससे डरो, बहुत जुल्म न करो " । १

यह सुनकर औरंगजेब आगबबूला हो गया । गुरू साहब को उसने जेल खाने में डाल दिया । बाद में कितने ही भय दिखाये गये , कितने ही प्रलोभन दिये गये, परन्तु गुरू तेगबहादुर अपने सत्य पर वज्र की तरह अडिग रहे ।

---

१. संतसुधासार - " वियोगी हरि " पृ०-३८५

पीछे उन्हें लोहे के पिंजड़े में बंद कर दिया गया । रक्षक सदैव नंगी तलवार लिये पहरे पर खड़ा रहता था ।

आनंदपुर से जब एक दूत उनकी पत्नी और पुत्र का पत्र लेकर मिलने आया , तो उत्तर में उसके पास गुरू साहब ने अपनी चिंताग्रस्त पत्नी गुजरी को यह श्लोक लिख भेजा -

" राम गइओ रावनु गइओ जाको बहु परिवार ।
कहु नानक थिरु कछु नही सुपने जिउ संसार ।। ५० ।।
चिंता ताकी कीजिये जो अनहोनी होइ ।
इहु मारगु संसार को नानक थिरु नहि कोई ।। ५१ ।। [२]

गुरू जी ने ऐसे अनेक वैराग्यपूर्ण श्लोक बंदीगृह में कष्ट झेलते हुए लिखे। अंत में औरंगजेब ने पुनः एक बार उन्हें धर्मान्तरित करने का प्रयत्न किया। परन्तु गुरू साहब तो वैसे ही अपने धर्म पर अटल थे । उनका एक ही उत्तर था - " प्राण रहते मैं कभी अपने धर्म को नहीं छोड़ सकता । मृत्यु के भय से मैं कांपने वाला नहीं । मैं जानता हूं कि एक न एक दिन तो देह छूटना ही है । मृत्यु का वरण करने के लिये मैं सहर्ष प्रस्तुत हूं " । [३]

दुष्ट औरंगजेब ने गुरूजी के शिष्य भाई मतिदास को आरे से चीर कर दो टुकड़े कर दिये । भाई दयाल जी को उबलती देग में बिठा दिया गया । पुनः नवम् गुरू से इस्लाम स्वीकार करने को कहा और यह भी कहा कि आपके साथ भी ऐसा ही व्यवहार किया जायेगा । इस पर गुरू साहब ने कहा - " सच्चाई को किसी मूल्य पर भी नहीं छोड़ा जा सकता , आखिर यह देही का ठीकर ही तो फोड़ना है । और कहा -

---

२. आदि ग्रंथ श्लोक महल्ला ९, पृ०-१४२८

३. संतसुधासार, वियोगी हरि, पृ०-३८५

" चित चरन कंवल का आसरा चित चरन कंवल संग जोड़िए,
मन लोचै बुरिआइआं गुर सबदी इन मन होडिए ।
बांहि जिन्हा दी पकड़िए, सिर दीजै बांह न छोडिए,
गुरु तेगबहादुर बोलिआ , धरि पईए धर्म न छोडिए ।। [1]

तब आपको दण्डस्वरूप धन देने और चमत्कार दिखाने के लिये कहा गया । इस पर नवम् गुरु जी ने स्पष्ट उत्तर दिया - " धन अमीरों के पास है और करामात मीरों के पास, हम तो प्रभु के फकीर हैं, और हमें उसी के नाम का आश्रय है । हां । बिना किसी अधिकार की सच्चाई के लिये मर मिटना सबसे बड़ी करामात है । उसकी बहादुरी के आगे जबर-जुल्म की तेग हार जायेगी "। [2] गुरु तेगबहादुर स्वयं इस बात पर विश्वास करते थे कि -

" साधो इहु तन मिथ्या मानउ ।
या भीतर जो राम बसत है साचउ ताहि पछानउ ।। [3]

यह उनका सबसे बड़ा मूल मंत्र था ।

गुरु तेगबहादुर जी को पिंजड़े से बाहर निकाला गया । उन्होंने स्नान किया और एक बरगद के पेड़ के नीचे बैठ कर ' जपुजी ' का पाठ किया। वे शांत थे । काले बादल छा रहे थे । नवम् गुरु ने रोती हुई जनता को शांत किया एवं स्वयं ध्यानमग्न हो गए । काजी अब्दुल वहम ने फ़तवा पढ़ा। सैयद आदम शाह, जिसके पास कत्ल का शाही हुक्म था, अपनी तलवार से उनका सिर धड़ से अलग कर दिया । यह भारतीय जीवन का भयंकर काल दिन, धर्म का महान बलिदान संवत् १७३२ की अगहन सुदी ५ को दिन हुआ ।

---

१. सरदार लालसिंह पद्य - वाणी गुरु तेगबहादुर - (भाषा विभाग पंजाब) पृ० -६१

२. - वही - पृ०-६८

३. आदि ग्रंथ श्लोक महला ९ राग बसंत हिंडोल -१

एक प्रत्यक्षदर्शी मुसलमान संत ने कहा , - " सुल्तान ने यह उचित नहीं किया । इन घटनाओं से क्रांति हो जायेगी । दिल्ली वीरान हो जायेगी " । रंगरेटा भाई जैता ही नवम् गुरू की बलिदानी शीश लेकर कीरतपुर पहुंचा । वहां से माता नानकी, माता गुजरी और गुरू गोविंदसिंह जी उसे पालकी में आनंदपुर ले आये । तब से वह रंगरेटा भी गुरू का बेटा सिद्ध हो गया । [१]

नवम् गुरू के बलिदान का दशम् गुरू गोविंदसिंह जी ने अत्यन्त मार्मिक शब्दों में काव्यमय वर्णन किया है :-

" तेगबहादुर के चलत गयो जगत महिं शोक ।
हैं है है सब जग भयो जै जै जै सुर लोक ।।
ठीकर फोरि दिलीस सिर प्रभु पुरि किया पयान ।
तेग बहादुर सी क्रिया, करी न किन्हु आन ।। [२]

आज भी प्रतिदिन प्रतिक्षण सीस गंज चांदनी चौक दिल्ली से गुरू तेग बहादुर के बलिदान का स्वर गूंजता है जो भारतीय जनता को उस त्यागी वैरागी धीर, वीरात्मा नवम् गुरू की स्मृति दिलाता हैं । इस बलिदानी नवम् गुरू की जाति-भेदभाव-रहित उच्च मानवीय वृत्ति का समाचार दिग दिगंतर फैल गया । हिंसा पर अहिंसा की, अत्याचार पर दया की एवं क्रूरता पर दया की विजय हुई । भावी युगों में भी अजर अमर रूप से भारतीय जनता को यह बलिदान स्मरण रहेगा । [३]

१, गुरू तेग बहादुर की वाणी, डा०ओमप्रकाश शर्मा शास्त्री, पृ०-२७
२, गुरू गोविंदसिंह, विचित्र नाटक दोहरा, १५-१६
३, गुरू तेग बहादुर की वाणी, डा० ओम प्रकाश शर्मा, पृ० २७

साहित्य :-

गुरु ग्रंथ साहिब में महला ९ के अन्तर्गत जितने पद और श्लोक संग्रहीत हैं वे सब गुरु तेगबहादुर के रचे हुए हैं । उनका साहित्य मात्रा में अधिक नहीं है। इन्होंने किसी प्रबंध की रचना नहीं की है , न किसी खण्ड काव्य का निर्माण किया है । इन्होंने जितना भी रचा वह अपने आप में उदात्त है । भक्ति और वैराग्य, त्याग-प्रेम का जितना सुन्दर रूप हो सकता है, इन्होंने इसका विवेचन अपनी वाणी में किया है । [१]

नवम् गुरु की वाणी-निधि विविध रागों में है । वार्णिक छंद की अपेक्षा मात्रिक छंदों में इनका साहित्य अधिक है । इस वाणी में गउड़ी, आसा, देवगंधारी, बिहागड़ा, सोरठ, धनासरी (धनाश्री) जैतसरी, टोड़ी तिलंग, बिलावल, रामकली, मारू, बसंत, सारंग, तथा जैजैवन्ती नामक १५ रागों का वर्णन है । इनका जैजैवन्ती का प्रयोग पूर्ववर्ती साहित्य से नवीन दिशा का बोधक है । छंदों में ये नवम् गुरु को शेष संतों भक्तों एवं साधकों की भांति शब्द और श्लोक अधिक प्रिय है । श्लोक का छंद, विधान तो प्रायशः दोहरे सा ही होता है । परन्तु शब्दों की रचना में कई प्रकार के छंदों का प्रयोग किया गया है। अन्य गुरुओं ने भी श्लोक-साहित्य लिखा है, परन्तु गुरु तेगबहादुर प्रयुक्त जैजैवन्ती राग का प्रयोग अद्भुत है [२] यथा :-

राम सिमर राम सिमर इहै तेरै काजि है ।
माइआ को संगु तिआगि प्रभुजू की सरनि लागु ।।
जगत सुख मानु मिथिआ झूठो सभ साजु है ।। १ ।। रहाउ ।।
सुपने जिउ धनु पछानु।
काहे पर करत मानु।
बारू की भीति जैसे बसुधा को राजु है ।। १ ।।
नानक जन कहत बात बिनसि जै है तेरो गात ।
छिनु छिनु करि गइओ कालु तैसे जातु आजु है ।।२।। [३]

---

१. संत साहित्य-डा०सुदर्शनसिंह मजीठिया,पृ०-१७४
२. गुरु तेग बहादुर की वाणी, डा०ओमप्रकाश शास्त्री, पृ०-३१
३. आदि ग्रंथ महला ९ -राग जैजैवंती-१

इनकी वाणी सरल, प्रसाद गुणमयी और अति मधुर है। आपकी भाषा साहित्यिक परिनिष्ठित रूप है । गुरु अर्जुनदेव जैसी कोमल भावुक वृत्ति के भंडारी नवम् नानक की रचनाएं उत्कृष्ट हैं । इनमें गुरु नानक निरंकारी की सी मस्ती, दादा अर्जुनदेव जैसी सहनशीलता, त्याग, पिता हरगोविंदजी जैसी तेजस्विता - सब मिलाकर अद्भुत व्यक्तित्व वाले गुरु तेग बहादुर जी ने इन सब का सम्मिश्रण अपनी वाणियों में किया है । आपकी रचनाएं अलौकिक अनुभूतियों का महान कोश हैं, भक्ति का उन्मुक्त स्त्रोत है , ज्ञान का विमल प्रकाश है और है वाक्शक्ति का मधुर प्रयोग। गुरुजी ने अपनी वाणी में संसार को अनित्य मानकर स्वं निरभिमान, सत्यपरायण रहकर सेवक जैसा जीवन व्यतीत करने का उपदेश दिया । संसार की आशा-निराशा की लड़ाई में बराबर परास्त होते हुए मानव को गुरु जी ने ललकारा है और कहा है -

" न हरि भजे न तीरथ सेए, चोटी काल गही ।" [१]

दु:ख को दु:ख मानने में वह अधिक कष्टदायक सिद्ध होता है, अत: मनोविज्ञान का अवलम्बन लेकर दृष्टा गुरुजी ने कहा है -

" जो नर दुख में दुख नहीं माने ।।

सुख सनेह अरु भय नहिं जाके कंचन माटी जाने " [२] - उसकी सभी कठिनाइयां सरल हो जाती हैं । गुरु अर्जुन देव जैसी कोमल, भावुक वृत्ति के भंडारी नवम् गुरु की रचनाएं उच्च कोटि की हैं ।

गुरु तेग बहादुर की कविता तो उनकी साधना का साधन मात्र थी उस कविता का स्त्रोत तो अनजाने में ही फुटकर निकल पड़ा था । ऐसे साधक की वाणी अनुभूति शून्य नहीं हो सकती । [३]

---

१. आदि ग्रंथ महला ९ - राग सोरठि, पद-७

२. आदि ग्रंथ महला ९ - राग सोरठि (सोरठ) शब्द-१०

३. संतसाहित्य - डा०सुदर्शनसिंह मजीठिया

विचारधारा :-

गुरु नानक देव की शिष्य परम्परा में जितने संत महापुरुष आते हैं उन्होंने पूर्ववर्ती गुरुओं तथा उनके समकालीन निर्गुण संतों की वाणी को ही अपना जीवनादर्श माना है । ऐसा प्रतीत होता है मानो गुरु नानक देवजी की वाणी ही जनवाणी थी, जो तत्कालीन युग जीवन के परिष्कार एवं उद्धार के लिये प्रकाशस्तंभ बन गयी । गुरु साहिब में प्रदत्त विचार भारतीय धर्म-दर्शन के साक्षात् प्रमाणभूत अमोघ शब्द हैं, जिनको पढ़कर तात्कालिक तथा परवर्ती जीवन में आत्म विश्वास और निर्भय की भावना जागृत हुई । इतना ही नहीं, इस वाणी से एक ऐसा वर्ग उभर कर सामने आया, जो अपने नैतिक, धार्मिक विश्वास के साथ ही वीरता के दर्प से उद्दीप्त होने लगा । यह साहित्य का ही अद्भुत प्रभाव था कि कलम की करामात खड्ग की सौगात बन गयी । [१]

गुरु नानक देव की वाणी साहित्य की परम्परा सिक्ख गुरुकुल में प्रौढ़ होने लगी । गुरु अर्जुन देव तथा अन्य सिक्ख गुरुओं ने वाणी साहित्य लिखा । गुरु तेग बहादुर की वाणी का विषय लोक जीवन में त्याग और वैराग्य की भावना को जागृत करना है । तत्कालीन लोक जीवन में जिस प्रकार का लोभ और विलास घर कर गया था , सामंतीय एवं राजसी जीवन में जिस प्रकार का शृंगार उमड़ रहा था, उससे सामाजिक जीवन को विरक्त कर ईश्वर विश्वासी बनाना और अनंत शक्ति में उसका उदम्य विश्वास जागृत करना इस वाणी का मूल विषय है । इनके सभी पदों और श्लोकों में वैराग्य का भाव सर्वत्र ध्वनित होता है । लोक सम्पत्ति एवं राजसी सत्ता की विनश्वरता का स्वर प्रत्येक उक्ति में घोषित है । संसार की झूठी प्रीति एवं असत्यता और असारिता की ओर विशिष्ट संदेश निहित है । उसका कारण यह नहीं है कि गुरु तेग बहादुर जी ने लौकिक जीवन का निषेध किया था । अपितु उसका अर्थ है कि सांसारिक असारता के यथार्थ कथन द्वारा वे विलासी एवं सत्ता लोलुप राजाओं एवं बादशाहों को सचेत कर रहे थे कि लौकिक ऐश्वर्य के भ्रम में मानवता को मत विस्मृत कर बैठो। मानव के हृदय के प्रेम एवं उदारता का त्याग मत करो ।

---

१. गुरु तेग बहादुर की वाणी , डा० ओमप्रकाश शर्मा शास्त्री, पृ०-२६

नारी सम्मान की अपेक्षा नारी-अपमान की ओर प्रवृत्ति उचित नहीं, धार्मिक सहिष्णुता की अपेक्षा धार्मिक कट्टरता या धर्मान्धता से स्वार्थपूर्ति करना अपने को धोखा देना है । विनश्वर जगत के ऐश्वर्य के लिये जनजीवन को त्रस्त करना किसी प्रकार मानवीय नहीं है । इन सभी कथनों से एक ही बात उभर कर सामने आती है कि असार जगत् के लिये अमुल्य मानवता को भ्रष्ट मत करो । वैराग्य त्याग और वैराग्य की भावना से संसार में जीवन व्यतीत करो । वैराग्य की भावना इनकी वाणी में सर्वत्र ध्वनित होती है । [१] यथा-

* काहे रे बन खोजन जाई ।।
सरब निवासी सदा अलेपा तो ही संग समाई ।।१।। रहाउ।।
पहुप माधि जिउ बासु बसतु है मुकर माहि जैसे छाई ।।
तैसे ही हरि बसे निरंतरि घट ही खोजहु भाई ।।१।।
बाहरि भीतरि एको जानहु इहु गुरु गिआनु बताई ।।
जन नानक बिनु आपा चीनै मिटै भ्रम की काई ।।२।। [२]

वस्तुत: अपने युग के सामाजिक जीवन में त्याग की भावना के साथ ही बलिदान की अदम्य प्रवृत्ति जागृत करना भी नवम् गुरु को अभीष्ट था , इसलिये वाणी साहित्य में उन्होंने दैहिक नश्वरता की यथार्थता को प्रकट कर आत्मा की अनश्वरता का संदेश दिया है । यथा -

* जग रचना सम झूठ है, जानि लेहु रे मीत,
कहु नानक थिरु न रहै, जिउ बालू की भीत । ४९
जिउ सुपना अरु पेखना, ऐसे जग कउ जानि,
इनमें कछु साचो नहीं, नानक बिनु भगवान । [३] २३

---

१. गुरु तेग बहादुर की वाणी, डा० ओमप्रकाश शर्मा,शास्त्री,पृ०-३१
२. धनासरी महला ६ - आदि ग्रंथ, पद-१
३. श्लोक महला ६ आदि ग्रंथ , पृ०-१४२८

गुरु तेग बहादुर जी के सम्पूर्ण काव्य में वैराग्यभाव स्थायी रूप में मिलता है । इनमें शांत रस का असीम सागर लहराता है । सागर विश्व का प्रतिनिधि है । मन भी सागर है । उसका निर्माता भी सागरवत् है । रसो वैस:के कारण वह अनंत रूप भगवान भी सागरोपमेय है । शांत रस का ऐसा काव्य अत्यन्त दुर्लभ है । यथा :-

* साधि कुछ जीवन को बिवहार ।।
मात-पिता भाई सुत बंधपि अरु पुनि गृह की नारि।।१।। रहाउ।।
तन ते प्रान होत जब बिआरे टेरत प्रेति पुकार।।
आध घरी कोऊ नहि राखे घरि ते देत निकारि ।।१।।
मृग तृसना जिउ जग रचना यह देखहु रिदै बिचारि।।
कहु नानक भजु रामनाम नित जा ते होत उधार।।६।। २२।।[1]

इतना ही नहीं वे संसार उसके रिश्ते-नाते सभी को मोहग्रस्त बताते हैं । जगत् का प्रेम भी झूठा है मिथ्या है । सभी स्वार्थवश एक दुसरे से प्रेम प्रदर्शित करते हैं । प्रभु-प्रेम ही सच्चा और सार्थक है जो सभी कष्टों से मुक्ति प्रदान कर सकता है । यथा :-

* जगत में झूठी देखी प्रीति ।।
अपने ही सुख सिउ सभ लागे किआ दारा किआ मीत ।।१।।
मेरउ मेरउ सभै कहत हैं हित सिउ बाधिओ चीत ।।
अंत काल संगी नह कोऊ इह अचरज है रीति ।।१।।
मन मूरख अजहू नह समझत सिख दे हारिओ नीत ।।
नानक भउजलु पारि परै जउ गावै प्रभु के गीत ।।२।।३।।६।।३८।४६।।[2]

का स्मरण गुरुजी के अनुसार वैसे जीव करुणा के पात्र हैं जो प्रभु क नाम का का स्मरण नहीं करते हैं । वे पशुवत् उदर भरते हैं । इतना ही नहीं पशु से भी निम्न स्थिति उनकी है । सुख के लिये वह भटकता रहता है । सत्य परमात्मा के नाम को छोड़ असत्य जगत् में लीन रहता है । विविध प्रकार के छल कपट करके वह अपने उदर को भरता है एवं पशुवत् जीवन व्यतीत करता है।

---

१. राग देवगंधारी महला ६, आदि ग्रंथ पद-२
२. राग देवगंधारी महला ६ आदि ग्रंथ, पद- ३

जगत् में निहित उस काव्य तत्व को देखने की शक्ति इस में नहीं रहती है, जिसके मर्म के ज्ञात होने पर भी मानसिक शांति की उपलब्धि होती है। इतना ही नहीं मानसिक एवं आत्मिक वैराग्य भाव से ही बाह्य दृश्यमान जगत् से युद्ध किया जा सकता है और अन्तत: आत्म तत्व की ही विजय होती है। यथा :-

* सुख के हेति बहुत दुखु पावत सेव करत जन जन की ।।
दुआरहि दुआरि सुआन जिउ डोलत नहि सुध राम भजन की ।। [1]

पुन: इनके अनुसार :-

* साच छाड़ि के झूठह लागिओ जनमु अकारथु खोइओ।।
करि परपंच उदर निज पोखिओ पसु की निआई सोइओ ।।१।। [2]

गुरु तेगबहादुर जी ने अपने 'वैराग्य भाव' को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करने के लिये कहीं कहीं वक्रोक्ति का भी सहारा लिया है। गुरुजी ने शासक और शासित वर्ग को जीवन की अनित्यता का तथ्य अवगत कराके, जीवन को शांत, उदार, त्यागमय और भक्तिपूर्ण बनाने की जो बात कही है वह वक्रोक्ति के द्वारा अत्यन्त हृदयस्पर्शी बन गई है। यथा -

* नर चाहत कछु अउर, अउरै की अउरै भई ।।
चितवित रहिओ ठगउर नानक फासी गलि परी।।३८।। [3]

तथा-

* मन की मन ही माहि रही ।।
न हरि भजे न तीरथ सेवे चोटी कालि गही ।।१।। रहाउ।। [4]

---

१. राग आसा आदि ग्रंथ महला ६, पद-१
२. राग सोरठि महला ६, आदि ग्रंथ, पद-१०
३. आदि ग्रंथ श्लोक महला ६, पृ०-१४२८
४. आदि ग्रंथ सोरठि महला ६, पद-३

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में क्रमशः ' फासी गलि परी ' तथा ' चोटी काल गही ' उक्तियों में वक्रता स्पष्ट है । गले में फांसी पड़ी हुई है । यह फांसी जन्म लेते ही मानव के गले में पड़ जाती है । भक्त जनों की तो यह फांसी भगवत् भजन से टूट या कट जाती है परन्तु कुकर्मी या माया मोह में लिप्त जनों की फांसी कई जन्मों तक नहीं कटती । यम ने मानव को चोटी (सिर) से पकड़ रखा है । वह कैसे छूट सकता है । उसे कर्म का फल भोगना ही पड़ेगा । वह काल के चंगुल से तभी छूट सकता है, जब वह हरिनाम का स्मरण करे । दोनों पद मृत्यु बोधक हैं । इन पदों से जन्म, जीवन, जाति, माया, मोह , रक्त के संबंध और इन सब से ऊपर सांसारिक और इनमें जीवित जल कमलवत् मानवता का चमत्कार कितना हृदयस्पर्शी सौंदर्यजनक है । इस अर्थ को सहृदय तत्काल ही समझ लेते हैं । इस प्रकार के अनेक पद गुरुजी की वाणी में हैं जिनके द्वारा उन्होंने समाज का उद्बोधन किया है । [1]

गुरुजी ने मनुष्य को अपने व्रत एवं ईश्वर-प्रेम की प्रतिज्ञा में स्थिर रहने पर भी बल दिया है । वे कहते हैं :-

" रे मन राम सिउ करि प्रीति ।।
स्रवन गोबिंद गुनु सुनउ,अरु गाउ रसन गीति।।१।।रहाउ।।
करि साध संगति सिमरु माधो होहि पतित पुनीत।।
कालु बिआलु जिउ परिओ डोलै मुखु पसारे मीत ।।१।।
आजु कालि फुनि तोहि ग्रसि है समझि राखउ चीति।।
कहै नानक रामु भजि लै जात अवसरु बीति।। २।।१।। " [2]

---

१. गुरु तेगबहादुर की वाणी, डा० ओम प्रकाश शर्मा,शास्त्री, पृ०-४०
२. आदि ग्रंथ महला ९ , राग सोरठि, पद-१ पृ०-६३१

काव्य शास्त्रीय पक्ष :-

नवम् गुरु ने अपनी वाणी में शान्त रस का प्रयोग किया है। सभी पद वैराग्य और संसार की असारता को प्रकट करने वाले हैं। इन्होंने विविध छंदों गउडी, आसा, देवगंधारी, सोरठि, रामकली बिलावली में वाणी रची। अनेक अलंकार - दीपक, रुपक, उपमा, दृष्टांत, विभ्रम स्वतः मुखरित होते गए हैं। अभिधा, लक्षणा, व्यंजना शक्तियां भी दिखाई पड़ती हैं। रुपक और प्रतीकों का प्रयोग सुंदर बन पड़ा है। इनकी भाषा गूढ़ दार्शनिक एवं सरल बोधगम्य है।

दार्शनिक पक्ष :-

गुरु तेगबहादुरजी के आध्यात्मिक भावों से पूरित वाणी में सांसारिक मोह-माया एवं ममता को त्यागने का शान्तिमय उपदेश सभी शब्दों और श्लोकों में प्राप्त होता है। तन का मोह त्यागने का उपदेश उनके अनेक पदों में मिलता है, क्योंकि तन ही मोह-माया का प्रमुख कारण है। तन के कारण ही संसार का प्रसार और विस्तार होता है। गुरुजी के शब्दों में ही -

साधो इहु तनु मिथ्या मानउ।
या भीतर जो राम बसत है, साचउ ताहि पछानउ। [1]

साधो रचना राम बनाई
इकि बिनसै इक असथिर मानै अचरजु लखिओ न जाई ॥१॥
काम क्रोध मोह बसि प्रानी हरि मूरति बिसराई ॥रहाउ॥
झूठा तन साचा करि मानिउ जिउ सुपना रैनाई ॥१॥ [2]

---

१. आदि ग्रंथ -महला ६, पृ०२१६
२. आदि ग्रंथ -महला ६, पृ०-२१६

यह जगत् मिथ्या है । इसके सभी संबंध मिथ्या है । भारतीय वेदान्त वादियों का भी यही मत रहा है कि - " ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या "। गुरुजी ने इसी तथ्य को बार-बार अनेक प्रकार से अभिव्यक्त किया है - उनके अनुसार जगत् असत्य है, अतः जगत् के सभी संबंध भी मिथ्या हैं :-

जगत् मिथ्या -

जगत् में झूठी देखी प्रीति ।
अपने ही सुख सिउ सम लागे किवा दारा किवा मीत ।।१।।
मेरउ मेरउ सभै कहत हैं हित सिउ बंधिओ चीत ।।
अंतिकाल संगी नही कोऊ इह अचरज हैं रीत ।।२।।
मन मूरख अजहू न समझत सिख दै हारिओनीत ।।
नानक भउ जलु पारि परै जउ गावै प्रभ के गीत ।।२।।३।।६[1]

ईश्वर ,संसार का स्वामी सर्वव्यापक , घट घट के अन्तर की जानने वाला पूर्ण ब्रह्म है । अन्य संतों की तरह इनके अनुसार भी सर्वशक्तिमान परमात्मा संसार के कण-कण में व्याप्त है । उसका चमत्कार सभी पदार्थों में दृष्टिगत होता है । प्रकृति का सारा परिवेश उसी से सौंदर्यमय बना हुआ है। उस परमात्मा को पाने के लिये बाहर कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है , उसे तो स्वयं अपने हृदय में ही पाना चाहिए । यथा -
सर्वव्यापकता का उदाहरण उनके शब्दों में :-

" काहे रे बन खोजन जाई।
सरब निवासी सदा अलेपा तो ही संग समाई ।।१।।रहाउ।।
पुहप मधि जिउ बासु बसतु है मुकर मांहि जैसे छाई ।
तैसे ही हरि बसे निरंतरि घट ही खोजहु भाई।।१।।
बाहरि भीतरि एको जानहु इह गुरु गिआनु बताई।
जन नानक बिनु आपा चीनै मिटै न भ्रम की काई।।२।।१।।[2]

---

१. आदि-ग्रंथ महला ९ पृ०-५३६
२. आदि-ग्रंथ महला ९ धनासरी पद-१

' मन ' अत्यन्त चंचल होता है । मन ही सब बंधनों और मोक्ष का कारण है । जब मन वश में है, तो सब जग भी वश में है । इसके विपरीत मन के सब विषयों में दौड़ने से मनुष्य का कल्याण ही नहीं हो पाता है । मन के वश में होने से मिथ्या माया-मोह का ज्ञान हो जाता है । मन के संबंध में नवम् गुरुजी के विचार दर्शनीय हैं :-

मन:-

' मन रे कउनु कुमति तै लीनी
पर दारा निंदिआ रस रचिओ राम भगति नहीं कीनि।।१।।रहाउ।।
मुकति पंथु जानिओ तै नाहनि धन जोबन कउ धाइआ।
अंत संग काहू नहीं दीना बिरथा आपु बंधाइआ।।१।। [१]

' माया ' महा ठगनि हम जानी ' कह कर माया को अत्यन्त प्रपंच वाली माना गया है । माया संसार में व्याप्त है । उसी का आवरण अज्ञान के रूप में सभी प्राणियों पर चढ़ा रहता है । इस माया से छुटकारा पाना अत्यन्त कठिन है । तब भी ज्ञानी प्रबुद्ध जन माया से छूटने का उपदेश लोगों को देते आए हैं । गुरुजी ने भी अपनी वाणी में माया के विस्तार की चर्चा की है साथ ही उस माया मोह से मुक्त होने का आग्रह किया है -

माया का मद :-

मदि माइआ कै भइओ बावरो सूझत नह कछु गिआना।
घट ही भीतर बसत निरंजनु ता को मरमु न जाना।।२।। [२]

प्रानि हरि जसु मनि नहीं आवैं।
अहिनिसि मगनु रहै माइआ मैं कहु कैसे गुन गावैं ।।१।। [३]

---

१. आदि-ग्रंथ महला-९ सोरठि पद-३
२. आदि-ग्रंथ महला-९राग सोरठि पद-१
३. आदि-ग्रंथ महला-९ राग गउडी पद-२२

परमात्मा के सर्वव्यापक होने की महिमा गाने के साथ ही उसके निरंजन, हरि, राम आदि नामों की चर्चा गुरुजी की वाणी में सर्वत्र मिलती है । वेद-पुराण एवं स्मृति आदि ग्रंथों को पढ़ने पर भी जिस व्यक्ति को आत्म तत्व का वास्तविक ज्ञान प्राप्त नहीं है , उसको मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती । वह अलख, निरंजन ही एक मात्र ऐसा सर्वशक्तिमान है जिसने सारे संसार को वश में बांधा हुआ है । उसने सम्पूर्ण माया का विस्तार किया है । उस ' ब्रह्म ' का जानना ही मनुष्य का कर्म है। उसकी गति को कोई नहीं जानता । जो जान लेता है , वही जीवन्मुक्त हो जाता है ।[1] इस संबंध में गुरुजी कहते हैं :-

ब्रह्म की गति -

हरि की गति नहिं कोऊ जानै ।
जोगी जती तपी पचि हारे बहु लोग सिआने ।।१।।रहाउ।।
छिन महि राउ रंक कउ करई राउ रंक करि डारे ।
रीत भरे ,भरे सखनावै यह ता को बिवहारे ।।२।।
अपनी माइआ आप पसारी आपहि देखन हारा।
नाना रूप धरे बहुरंगी सम ते रहै निआरा ।।३।।
अगनत अपारु अलख निरंजन जिह सभु जगु भरमाइओ।
सगल भरम तजि नानक प्राणी चेरनि ताहि चितु लाइओ।।[2]

गुरु तेगबहादुरजी ने अपने परम्परागत गुरुओं के समान जगत् में लौकिक संसार को त्यागने का उपदेश कभी नहीं दिया । कबीर आदि निर्गुण संतों की भी यही विचारधारा थी । स्वयं प्रथम गुरु नानक देवजी ने भी लोक-त्याग की अपेक्षा लोक कल्याण की कार्यविधि पर विशेष बल दिया।

---

१. गुरु तेगबहादुर की वाणी -पृ०-५१
२. आदि-ग्रंथ महला ६, राग बिहागड़ा ,पद-१

इसी प्रकार गुरु तेगबहादुरजी ने जटा धारण करने और मुंड मुंडाने का विरोध किया, भगवे वस्त्र धारण करने के प्रति भी उनका दृष्टिकोण नकारात्मक ही था । जप, माला, छापा और तिलक का भी उन्होंने कभी समर्थन नहीं किया उन्होंने इस प्रकार के सभी बाह्याडम्बरों का पूरा विरोध किया । यथा -

मन रे गह्यिौं न गुर उपदेस
कहा भयौ जउ मुड मुंडाइयो, भगवउ कीनउ भेषु ।। [1]

प्रभु परमात्मा का नाम स्मरण करना निर्गुणवादी संत काव्य परम्परा के दर्शन का प्रमुख अंश है । इसी नाम स्मरण की महिमा को गुरु-परमात्मा परम्परा के साहित्य ने अत्याधिक महत्ता दी । प्रथम गुरु, गुरुनानकजी से लेकर अष्टम गुरु हरिकृष्ण तक ने नाम स्मरण को जगत् के मिथ्या बंधनों से मुक्ति का आधार माना था । उसी परम्परा को आगे बढ़ाने का कार्य गुरु तेगबहादुरजी ने किया । इनके सम्पूर्ण साहित्य में नाम स्मरण को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है । भक्ति का अमोघ अस्त्र ही नाम स्मरण है। इसकी महिमा का वर्णन करते हुए गुरुजी कहते हैं :-

नाम स्मरण :-

कहु नानक सोइ नर सुखीआ, रामनाम गुन गावैं।
अउर सगलि जगु माइआ मोहिआ, निरभै पद नहीं पावैं ।। [2]

बाल जुआनी अरु बिरध फुनि तीनि अवस्था जानि।
कहु नानक हरि भजन बिना बिरथा सब ही मानि ।। [3]

---

१. आदि ग्रंथ महला ६, पृ०-६३३
२. आदि-ग्रंथ महला ६ गउडी राग पद-८
३. आदि-ग्रंथ महला ६ पृ०-१४२८

कर्म क्षेत्र में निर्गुणवादी साहित्य में ' निष्कर्म ' के प्रति आस्था अवश्य व्यक्त की गई है , परन्तु लोक में रहते हुए पुण्य कर्मों के महत्व पर बहुत बल दिया है । नवम् गुरु ने ऐसा कर्म करने की चर्चा की है जिससे मुक्ति मिले । आत्मा को परमात्मा का प्रकाश मिले, जोति में जोति मिल जाने की सी स्थिति मिले । जगत् से माया मोह का अंधकार मिट जाए। उनके अधिकांश पदों में ऐसे कर्मों के त्याग का स्पष्ट संकेत है , जिनसे हरि भजन में बाधा पड़ती है - यथा -

बल छुटिओ बंधन परे कछू न होत उपाइ ।
कहु नानक अब ओट हरि गजि जिउ होउ सहाई।।१।।५३।।[१]

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि भारतीय निर्गुणवादी धारा की दार्शनिक पद्धति का विवेचनात्मक उद्बोधन नवम् गुरु की वाणी में अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से हुआ है । भारतीय दर्शन निरूपण अत्यन्त जटिल रहा है। किन्तु नवम् गुरु ने अपने कथ्य को अत्यन्त सरल भाषा एवं सरल विवेचन द्वारा अभिव्यक्त किया है । इससे सामान्य जनता को उदाहरण सहित समझने में अत्यन्त सुगमता प्रतीत हुई । इस दार्शनिक भावना ने ही तत्कालीन संघर्षमयी स्थिति में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को संरक्षण प्रदान किया और भारतीय जनता के मन में धर्म साधना की अजेय शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ ।

गुरु तेगबहादुरजी का सम्पूर्ण जीवन ही त्याग और तपस्या से परिपूर्ण था । संसार के कल्याण के लिए ही उन्होंने अपना सर्वस्व होम दिया। लोक जीवन का विकास ' शान्ति ' और त्याग के बिना संभव नहीं है । ये दोनों तत्व मूलमंत्र के रूप में नवम् गुरु की वाणी में मिलते हैं । उनकी वाणी में लोक भावना का प्रबल परिचय मिलता है । उन्होंने इन्हीं के बल पर मानव जाति के कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया ।[२]

---

१. आदि-ग्रंथ ,श्लोक महला ६, पृ०-१४२६
२. गुरु तेगबहादुर की वाणी पृ०-५७

व्यक्ति को सबसे अधिक मोहग्रस्त रखने वाला तत्व है - ' लोभ ' यही सभी अनर्थों की जड़ है । इससे विरक्त होकर ही मनुष्य लोक कल्याण की बात सोच सकता है । गुरुजी ने अपनी वाणी में इस भाव को इस प्रकार प्रकट किया है -

करणो हुती सुन कीओ परिओ लोभ के फंध ।।
नानक समियो रमि गइओ अब किउ रोवत अंध ।।३६।। [१]

गुरुजी ने मानव को ' अभिमान ' से सदैव बचने के लिए उपदेश दिया । ' अहंकार ' अभिमान का ही विकृत रूप है । इसी से अभीभूत होकर व्यक्ति अनर्थ करता है , और उसे अन्त में पश्चाताप करना पड़ता है । व्यक्ति पश्चाताप की अग्नि में जलता हुआ अपने विगत कर्मों पर पछताता है और आगे से वैसा कार्य न करने के लिये अपने मन को तैयार करता है । यही अभिमान कल्याण की भावना का सबसे बड़ा अवरोधक बन जाता है । गुरुजी ने अभिमान को त्याग कर मानव जीवन को सफल बनाने की विधि हरि के स्मरण को माना है। उनके सम्पूर्ण पदों में निरभिमानी, दान एवं निरहंकारी जीवन व्यतीत करने की गूंज स्पष्ट सुनाई पड़ती है -

जो प्रानी ममता तजै लोभ मोह अहंकार ।
कहु नानक आपन तरै अउरन लेत उधार ।।२२।। [२]

तीरथ-बरत अरु दान करि मन मैं धरै गुमानु ।
नानक निहफलु जात तेहि जिउ कुंजर इसनानु ।।४६।। [३]

गुरुजी ने मानव-मन में घुसे हुए अनेक ऐसे विघ्न तत्वों को नाश करने को प्रेरणा दी है , जो लोक कल्याण की भावना को ही विषपूर्ण बना देते हैं । ' धन ' एक ऐसा तत्व है, जो व्यक्ति को सांसारिक बनाता है,

- -

१. आदि ग्रंथ श्लोक महला ६, पृ०-१४२७
२. आदि-ग्रंथ श्लोक महला ६, पृ०-१४२८

साथ ही उसकी अत्याधिक आकांक्षा उसे चरित्रहीन भी बना देती है। दारा और धन के कारण ही अनेक अनर्थ होते हैं। गुरु देवजी ने भी इसी लौकिक धन को 'माया' के रूप में वर्णित किया है, एवं उसके दुरुपयोग की निंदा की है। गुरु तेगबहादुरजी ने भी कहा है कि धन के मद से अन्धा हुआ मानव मानवता को त्याग बैठता है, उसके सामने सभी प्राणी तुच्छ हो जाते हैं। धन के महत्व को नकारते हुए गुरुजी कहते हैं:-

> धन दारा संपति सगल जिनि अपुनी करि मानि।
> इनमें कछु संगी नहीं नानक सांची जानि ।।५।। [१]

> माइआ कारनि धावही मूरख लोग अजान
> कहु नानक बिनु हरि भजनि बिरथा जनम सिरान ।।२८।। [२]

संतों ने मानव मात्र से 'प्रेम की भावना' को बल दिया है। यही प्रेम भावना, लोक कल्याण का केन्द्र बिन्दु है। प्रेम पूर्वक व्यवहार से शत्रुओं को भी वश में किया जा सकता है, इसके विपरीत क्रोधपूर्ण व्यवहार से मित्र भी शत्रु बन सकते हैं। लोक जीवन में जितने युद्ध, विवाद एवं कलह के प्रसंग दिखाई पड़ते हैं, उनके मूल में यही बात है। उदार भावना की हीनता एवं प्रेम भावना की न्यूनता के कारण आज का जीवन विषम हो गया है। इसी वैषम्य भाव को दूर करने के लिये मानव मात्र से प्रेम करना आवश्यक है, पशु-पक्षी तक भी प्रेम की सद्भावना से वशीभूत हो जाते हैं, फिर मानव तो ज्ञान, विवेक सम्पन्न प्रबुद्ध जीव है। परस्पर सद्भाव से लोक जीवन में शान्ति का सागर लहराने लगता है और सारा संसार ही आत्मीय परिवार बन जाता है। गुरुजी की वाणी इसी भावना को और भी पुष्ट करती है। घट-घट में भगवान की विद्यमानता समझने से तथा मानव मात्र के प्रति प्रेम और उदारता की भावना रखने से लोक भावना तो परिष्कृत होती है वैमनस्य से हित जीवन शान्ति का प्रतीक बन जाता है।

---

१. आदि-ग्रंथ, श्लोक महला पृ०-१४२६
२. आदि-ग्रंथ, श्लोक महला, पृ०-१४२७

' स्वार्थ की भावना ' भी मानव के कल्याण में बाधक बन जाती है । अतः यह भी मानव का घोर शत्रु है । स्वार्थ के वशीभूत होकर मनुष्य निंदा के गर्त में डूबता जाता है । इस रोग से मुक्ति प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है । स्वार्थ के कारण मानव कल्याण की भावना समाप्त हो जाती है । इस भावना से बचने के लिए गुरुजी ने ' भक्ति ' को प्रधानता दी है । उनके अनुसार -

सम सुख दाता रामु है दूसर नाहिन कोइ ।
कहु नानक सुनि रे मना तिह सिमरत गति होइ ।।६।। [१]

जउ सुख को चाहै सदा सरनि राम की लेह ।
कहु नानक सुन रे मना, दुरलभ मानुष देह ।।२७।। [२]

गुरुजी ने ' मन को त्यागमय ' बनाने का उपदेश ही नहीं दिया अपितु त्यागपूर्ण जीवन का आदर्श भी सामने रखा , जिसका उदाहरण विश्व में कहीं नहीं मिलता । त्याग और बलिदान के द्वारा ही मानव की हितैषणा बलवती होती । बलिदान की नींव पर ही मानवता का महल खड़ा होता है। इसके लिए व्यक्ति को उद्बोधित करना आवश्यक है । वे कहते हैं -

जाग लेहु रे मना जाग लेहु ।।
कहा गाफल सोइआ ।।
जो तन उपजिआ संग ही सो भी संग न होइआ ।। [३]

इस प्रकार नवम गुरु की वाणी लोक जीवन को प्रेरित करने वाली एवं मानव को मानवता का पाठ पढ़ाने वाली है ।

- -

१. आदि-ग्रंथ महला ९, पृ०-१४२६
२. आदि-ग्रंथ महला ९, पृ०-१४२७
३. तिलंग महला ९ आदि-ग्रंथ पृ०-७२६

गुरु गोविंद सिंह :-

<u>जीवनवृत्त-</u>

सोढ़ी वंशभूषण, गुरु परम्परा की दशम ज्योति गुरु गोविंद सिंहजी का जन्म १७ पौष, संवत् १७२३ विक्रमी, पटना में हुआ था । उस समय गुरु तेगबहादुरजी आसाम की यात्रा पर गए हुए थे, और माताजी अपने भाई कृपालचंदजी के पास ठहरी हुई थी । इसकी पुष्टि अन्य ग्रंथों से भी होती है । उन्होंने स्वरचित ग्रंथ - ' विचित्र नाटक में अपने जन्म-स्थान और जन्म-समय की घटनाओं का सविस्तार उल्लेख किया है । [१]

गुरुजी की जन्मभूमि पटना में शिरोमणि गुरुद्वारा के तहखाने में अंकित स्मारक - प्रस्तर पर उनकी जन्म-तिथि का स्पष्ट उल्लेख किया गया है । इसके अतिरिक्त उसी गुरुद्वारे में प्राप्त सर्व प्राचीन हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथ में गुरुजी की उक्त जन्म-तिथि दी हुई है । [२] गुरुजी ने अपने विचित्र नाटक में वंश का विस्तार पूर्वक परिचय दिया है ।

- -

१, क- ' मुर पित पूरब कीयसि पयाना ।। भांति भांति के तीरथ नाना ।।
जब ही जात त्रिबेणी भये । पुन्य दान दिन करत बितये ।। १ ।।
ताहि प्रकाश हमारा भयो । पटना सहर बिखै भव ल्यो ।।
-विचित्र नाटक,अध्याय ७ पृ०-४५

ख- ' संवत् सत्रह सहस मनीजै। बीस तीन संग बरख गनीजै ।।
महि पोख पुन अधिक सुबीनै । जगत प्रवेस कृपानिधि कीनै ।।
- गुरु बिलास ,पृ०४६

२, इस पवित्र स्थान से ही मिति पौष सुदी सप्तमी संवत् १७२३ में श्री गुरु गोविंदसिंह महाराज का जन्म हो गया । ' पटना के गुरुद्वारे में स्मारक प्रस्तर पर अंकित '

अब मैं अपनी कथा बखानो ।। तप साधत जिह विधि मुहि आनो
हेमकूट पर्वत है जहां ।। सप्तश्रृंग सोभित है तहां ।।१।।
सप्तश्रृंग तिह नाम कहावा ।। पन्डु राज जह जोग कमावा ।।
तहं हम अधिक तपस्या साधी ।।महाकाल कालका आराधी।।२।।
इह विधि करत तपस्या भयो ।। द्वय ते एक रूप ह्वै गयो ।।
तातिक मात मुर अलख अराधा ।। बहु विधि जोग साधना साधा ।। ३।।
तिन जो करी अलख की सेवा ।। तातें भये प्रसन्न गुरु देवा।।
तिन प्रभ जब आयस मुहि दिया ।। तब हम जन्म कलू महि लिया।।४।।
चित न भयो हमरो आवन कह ।। चुभी रही श्रुति प्रभु चरनन मह।।
जिउं तिउं प्रभ हमको समझायो ।। हम कलिकै इह लोक पठायो ।।५।।[1]

गुरुजी विचित्र नाटक में अपने विषय में और भी लिखते हैं :-
कि पूर्व जन्म में मैं दुष्ट दमन नामक राजा था । मैं प्रजा पर धर्मपूर्वक राज्य करता था । मंडल ऋषि से उपदेश ग्रहण कर अपनी वृद्धावस्था में अपने पुत्र विजयराव को गद्दी दे हेमकूट पर्वत पर तपस्या करने चला गया । कुछ काल के पश्चात् महाकाल पुरुष ने मुझे अपना दर्शन देकर अपना पुत्र कहकर संबोधित किया और कहा कि मेरे अन्य अवतारों को तो ईश्वर की संज्ञा प्राप्त हुई है, किंतु तुम अपने आपको " ईश्वर का सेवक कहकर प्रसिद्ध करना।" इसी के पश्चात् गुरु तेगबहादुर के गृह जन्म हुआ ।[2]

गुरुजी की बाल्यावस्था पटना में ही व्यतीत हुई । इनका लालन पालन उत्साहपूर्वक किया गया । उनकी माता के प्रेमपूर्ण व्यवहार ने उनके जीवन में मधुरता और मृदुता भर दी । बाल्यकाल से ही उनकी वीरता धर्म-प्रेम और कुशाग्र बुद्धि का परिचय मिल जाता है । बचपन में ही वे ऐसे खेल खेला करते थे, जिन्हें बड़े होने पर उन्होंने अपने जीवन में चरितार्थ किया

---

१. विचित्र नाटक , गुरु गोविंदसिंह पृ०-२०,२३
२. हिस्ट्री आफ दी सिक्ख -कनिंघम पृ०-६६

बालक गोविंद की युद्ध प्रिय प्रवृत्ति देखकर पिता ने इनके लिये समुचित शस्त्र विद्या का प्रबंध कर दिया था। जिस समय गुरु तेगबहादुरजी शहीद हुए, उस समय इनकी अवस्था केवल १० वर्ष की ही थी। इसकी पुष्टि उन्होंने अपने 'विचित्र नाटक' में की है :-

> ' कीनी अनिक भान्ति तन रच्छा, दीनी भांत भांत की सिच्छा।।
> जब हम धर्म कर्म मो आये, देवलोक तब पिता सिधाये ।। ३ ।। [१]

गुरुजी के 'विचित्र नाटक' से ही ज्ञात होता है कि पिता के वध के पश्चात छोटी अवस्था में ही ये गुरु-गद्दी पर बैठे। पिता का निर्दयता से वध किये जाने का उन पर गहरा प्रभाव पड़ा था। उनके हृदय में तभी से ऐसे अत्याचारी क्रूर शासक के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न हो गया। उन्होंने मुगल शासक से लोहा लेने का दृढ़ निश्चय कर लिया। गुरुजी को शस्त्र विद्या से प्रेम था। उन्होंने प्रतिदिन शस्त्र चलाने का अभ्यास करते एवं शस्त्र तथा सेना बढ़ाने में प्रयत्नशील रहते। धीरे-धीरे बहुत लोग उनकी सेना में सम्मिलित हो गए। प्रो० करतारसिंह ने अपनी पुस्तक में लिखा है - कि वे मनुष्य जिन्होंने कभी कृपाण को छुआ तक नहीं था और न बंदूक को कभी कंधे पर रखा था, वीर सैनिक बन गए। उन्होंने ऐसे लोगों को वीर योद्धा बना दिया जो कभी औरंगजेब का नाम सुनकर कांप जाया करते थे। उनकी सेना में सभी जाति और वर्ग के लोग सम्मिलित थे। [२] दर्शनार्थी उपहारों के बदले शस्त्रों के साथ गुरुजी के दरबार में उपस्थित होने लगे। हृष्ट-पुष्ट घोड़े तथा अन्य युद्ध का सामान एकत्र होने लगा। इसके अतिरिक्त काबुल, कंधार, बलख और गजनी के लोग भी बहुमूल्य दुशाले भेंट में लाते थे। उन्होने गुरु गोविंदसिंह को एक अमूल्य तम्बू भेंट किया जिसमें सोने और चांदी के तारों से कशीदाकारी और नक्काशी का काम किया हुआ था। वह तम्बु काबुल के एक सिक्ख दुनीचंद ने भेंट किया था ऐसा तम्बु दिल्ली के बादशाह के पास भी नहीं था। [३]

- -

१. विचित्र नाटक - पृ०४५ अध्याय-७
२. जीवन कथा - गुरु गोविंदसिंह, प्रो० करतारसिंह पृ०-७६
३. दी सिक्ख रिलिजन - वोलुम ५, पृ०-२

आसाम के राजा रत्नराय ने एक सुंदर हाथी जिसे सब प्रकार का काम करना सिखाया गया था, और एक ऐसा शस्त्र जिसे दबाने से बर्छी, बल्लम, पिस्तौल और बंदूक आदि पांच अलग-अलग शस्त्र बन जाते थे, भेंट किये। उस हाथी का नाम ' प्रसादी ' रखा गया। उन्होंने एक ऐसी चौकी दी जिसमें चार पुतलियां थी जो कल दबाने से पासा खेलती थीं। बहुत से घोड़े भी भेंट किये। [1]

गुरुजी ने सेना वृद्धि के पश्चात यह अनुभव किया कि सेना के साथ एक नगाड़ा भी होना आवश्यक है, क्योंकि नगाड़ के बिना अनुशासन संभव नहीं है। उन्होंने एक नगाड़ा भाई नंदचंद और कृपालसिंह की सहायता से तैयार किया। उसका नाम ' रणजीत नगाड़ा ' रखा। [2] उन दिनों नगाड़ा केवल राजाओं के पास ही रहता था। कोई भी राजा किसी दूसरे राजा को नगाड़ा बजाकर अपने राज्य से बिना पराजित किए नहीं जाने देता था। गुरुजी के शिष्यों एवं गुरुजी की माताजी ने उन्हें नगाड़ा न रखने का आग्रह किया, परन्तु गुरुजी का जन्म ही अत्याचारी राजाओं का दमन करने के लिये हुआ था। [3]

गुरु गोविंदसिंहजी की बढ़ती हुई सैनिक शक्ति को देखकर आसपास के पहाड़ी राजाओं में ईर्ष्या उत्पन्न होना स्वाभाविक थी। वे गुरुजी की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर उनका विरोध करने लगे। अतः गुरुजी के जीवन में संघर्षों का सूत्रपात हुआ। गुरुजी के ऐश्वर्य, सैनिक-शक्ति एवं तेज प्रताप को देखकर बिलासपुर का राजा भीमचंद अत्यन्त ईर्ष्यालु हो गया। वह किसी प्रकार आसाम वाली भेंट ' प्रसादी ' हाथी को पा लेना चाहता था। छल-कपट के द्वारा भी जब वह उसे पाने में असफल रहा तो वह गुरुजी का शत्रु बन गया। यही शत्रुता बाद में पाउंटा साहब के निकट हुए ' भंगाणी ' के प्रसिद्ध तथा सबसे प्रथम युद्ध का कारण बनी। [4]

---

१. दी सिक्खस रिलिजन वौल्युम-५, पृ०-४५
२. वही भाग-५ पृ०-५
३. गुरु बिलास पृ०-१०४
४. दी सिक्खस रिलिजन, भाग-५ पृ०-१६

गुरुजी की सेना की चर्चा सब जगह होने लगी । श्रीनगर के राजा फतेहचंद से नाहन के राजा मेदनी प्रकाश की शत्रुता थी । नाहन के राजा नेगुरु गोविंदसिंह जी को अपने पास बुलाया और अपने नगर की बहुत प्रशंसा की । उन दिनों भीमचंद गुरु गोविंदसिंह से युद्ध करने के लिये तैयार था । उनके शिष्यों ने सोचा कि यह बहुत सुंदर अवसर है । गुरु गोविंद सिंह यदि वहां चले जायेंगे तो भीमचंद से यु द्ध नहीं होगा । गुरुजी ने वहां जाने की तैयारी कर ली । किंतु गुरुजी पहाड़ी राजाओं की कूटनीति से भलीभांति परिचित थे , अत: वहां जाने से पूर्व उन्होंने पूरा प्रबंध कर लिया । नाहन के राजा ने गुरुजी को अपने प्रान्त के रमणीक स्थान दिखाए । गुरुजी ने वहीं पर एक स्थान किले के लिए चुन लिया - और किला बनाया गया, जिसका नाम उन्होंने पांवटा [१] (पैर रखने की जगह) रखा यहीं पर रहते हुए ही उन्होंने ' भंगाणी ' का युद्ध किया । जिसकी विस्तृत विवेचना उन्होंने अपने ' विचित्र नाटक ' में की है । गुरुजी को भारी विजय प्राप्त हुई और राजा भीमचंद का अहंकार टूट गया ।

गुरु गोविंद सिंहजी का अधिकांश समय युद्धों की तैयारी एवं युद्धों में व्यतीत हुआ , किंतु इसका कारण यह नहीं था कि वे अपनी इच्छा से युद्ध करते थे , अपितु परिस्थितियों ने उन्हें युद्ध करने के लिये विवश कर दिया था। वे तो हृदय से जनता का कल्याण चाहते थे । अगर यह बात नहीं होती तो वे क्यों अपने पिता का बलिदान होने देते ।[2] जब उन्हें यह ज्ञात हो गया कि निर्दयी सम्राट औरंगजेब ,त्याग बलिदान एवं आत्मोत्सर्ग से भी उदार नहीं बनता तभी उन्होंने पाप की शक्ति को नष्ट करने के लिये सैनिक शक्ति का सहारा लेना आवश्यक समझा । परिणाम स्वरूप उन्होंने कायर,भीरु जनता में शक्ति का संचार किया । ' खालसा ' ~~पंथ शब्द~~ ' खालिस

---

१. गुरु विलास, पृ०-१२६
२. जीवन कथा श्री गुरु गोविंद सिंह,पृ०-१६८

एवं एक नये पंथ की स्थापना की जिसका नाम उन्होंने ` खालसा ` पंथ रखा। ` खालसा ` अरबी शब्द ` खालिस ` पर आधारित है जिसका अर्थ है शुद्ध । खालसा पंथ के द्वारा उन्होंने विशुद्ध मार्ग का अवलंबन कराया , इसलिये उनके अनुयायी संत भी थे और सैनिक भी । गुरुजी पांच सिक्खों की परीक्षा लेकर उन्हें सर्वोच्च पद पर सुशोभित किया एवं उन्हें ` पंच प्यारे ` की उपाधि दी ।[१]

कहा जाता है कि गुरुजी के तीन विवाह हुए थे । प्रथम विवाह लाहौर निवासी सुभिखिया क्षत्रिय की कन्या जीतो देवी से २३ अषाढ़ संवत् १७३४ में हुआ था[२] दूसरा विवाह रामसरन क्षत्रिय की कन्या सुंदरी के साथ (गुरुजी की माता के कहने से)हुआ था ।[३] तीसरी कन्या से गुरुजी का विवाह सात्त्विक था । कहते हैं कि रोहतास गांव के एक प्रेमी सिक्ख ने अपनी कन्या गुरुजी को भेंट की थी , जो बाद में ` खालसा की माताजी बन कर रहीं ।[४]

गुरुजी के चार पुत्र हुए । वे चारों भी अपने पिता के ही अनुरूप थे । गुरुजी की यशः कीर्ति बढ़ रही थी । पहाड़ी राजा तो ईर्ष्या से जल ही रहे थे , उन्होंने इनके विरुद्ध मुगल सम्राट औरंगजेब को भी भड़काना प्रारंभ कर दिया । औरंगजेब ने आज्ञा दी कि गुरुजी को लाकर उनके समक्ष उपस्थित किया जाए , किंतु गुरुजी को पकड़ना अत्यन्त कठिन था। कई दिनों तक मुगल सेना आनंदपुर को घेरे रही, किंतु विफल रही । तब उन्होंने गुरुजी को धोखे से पकड़ना चाहा । औरंगजेब ने उन्हें गाय और कुरान की शपथ का उल्लेख करते हुए पत्र भेजा उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की।[५]

- -

१. ट्रांसफरमेशन आफ सिक्खिज्म ,डा०गोकुलचंद नारंग, पृ०-१३८
२. श्री दशमेश चमत्कार, भाई ज्ञानसिंह, पृ०-८०-८२
३. वही पृ०-८८
४. जीवन कथा श्री गुरु गोविंदसिंह,प्रो०करतारसिंह,पृ०-२३६
५. श्री दशमेश चमत्कार, पृ०-४८१ - भाई बूटा सिंह

गुरुजी औरंगजेब की कूटनीति को समझते थे । किन्तु उनकी माताजी एवं सिक्खों ने उन्हें आनंदपुर छोड़ देने के लिये विवश कर दिया । परिणाम स्वरूप उन्हें आनंदपुर छोड़ना पड़ा । मुगल सेना ने इसी समय आक्रमण कर दिया, भगदड़ सी मच गई । गुरुजी की माताजी एवं दोनो पुत्र सिरसा नदी पार चले गए दोनों पत्नियां दूसरी ओर निकल कर दिल्ली पहुंची तथा स्वयं गुरुजी एवं दोनो पुत्र तथा चालीस सैनिकों के साथ सिरसा नदी पार कर चमकौर की ओर चले गये ।[१]

दशमेशजी की माताजी और दोनों छोटे साहबजादों को उनका रसोइया गंगू ब्राह्मण अपने साथ ले गया । माताजी के साथ मोहरों से लदा हुआ खच्चर था। ब्राम्हण ने द्रव्य को देखकर विश्वासघात किया और पुरस्कार पाने के लालच से वह माताजी और गुरु के पुत्रों को लेकर सरहद में नवाब वजीद खां के पास पहुंच गया । नवाब के पास ही एक सुच्चानंद नाम का क्षत्रिय बैठा था , उसने नवाब से कहा कि - इन पर दया दिखाना उचित नहीं, अन्यथा वह भी अपने पिता की तरह मुगल शासन की जड़ें उखाड़ देंगे । यह सांप के बच्चे हैं । इनको शीघ्र नष्ट कर दीजिये ।[२] नवाब ने उन्हें इस्लाम स्वीकार करने को कहा , किन्तु बच्चोंने उसे स्वीकार न किया , न किसी प्रकार के लालच में आए । इस समय दोनों बच्चों की अवस्था क्रमश: नौ और सात वर्ष की थी । नवाब ने निर्दयी बन कर सुकोमल बच्चों को दीवार में चिनवा दिया ।[३]

मैकालिफ के अनुसार - " सिक्खों मे यह सामान्य विश्वास है कि बच्चों को दीवार में चिनवा दिया गया और उसी स्थिति में उनकी मृत्यु हुई । परन्तु सूरज प्रकाश और गुरबिलास के लेखकों के अनुसार उन्हें आयु के क्रम से एक भिल गई बाफिक ने तलवार के घाट उतारा था ।[४]

---

१. गुरु बिलास, पृ०-४१५
२. श्री दशमेश चमत्कार, पृ०-५२६
३. गुरु बिलास, पृ०-४४६
४. दि सिक्ख रिलिजन, भाग-५ पृ०१२८-मैकालिफ

परन्तु सिख इतिहासकारों ने एक स्वर से यह स्वीकार किया है कि सरहिन्द के सूबेदार ने दोनों लड़कों को दीवार में चिनवा दिया था । [१]
इस विषय में मुसलमान लेखक भ्रामक मत ही उपस्थित करते हैं । पोतों की दुखद मृत्यु का समाचार सुनते ही माताजी ने शरीर त्याग दिया इसकी सूचना जब गुरुजी को मिली तो वे अत्यन्त दुखी हुए और क्रोध में उन्होंने उसी समय दृढ़ प्रतिज्ञा की कि इस अत्याचारी राज्य का वे समूल अन्त करेंगे । उनके शेष दो पुत्र भी चमकौर के युद्ध में बहादुरी के साथ लड़ते हुए वीरगति प्राप्त कर चुके थे । [२] दीना गांव में एक दिन गुरुजी बैठे तलवार की नोंक से भूमि को कुरेद रहे थे तो उनसे किसी ने पूछा - यह आप क्या कर रहे हैं ? तो उन्होंने कहा कि वे तुर्कों के राज्य की जड़ें काट रहे हैं तांकि वे पुनः न उभर सकें। तभी उन्होंने औरंगजेब को फारसी में एक पत्र लिखा - जिसे ' जफरनामा ' का नाम दिया ।

यह जफरनामा उन्होंने भाई दयासिंह के द्वारा औरंगजेब के पास भेजा। [३] गुरुजी अपना सब कुछ खोकर भी शाही फौजों से किसी न किसी रूप में टक्कर लेते रहे । औरंगजेब इस समय दक्षिण में युद्धों मे व्यस्त था। वह वृद्ध हो चुका था । भाई दयासिंह को गए पर्याप्त समय हो चुका था अतः स्वयं गुरुजी दक्षिण की ओर गए । रास्ते में ही उन्हें औरंगजेब की मृत्यु का समाचार मिला । औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात उनके पुत्रों में राजगद्दी के लिये युद्ध छिड़ गया । अंत में बहादुरशाह विजयी हुआ । इसकी सूचना उसने गुरु गोविंद सिंह को भी दी । इनकी मित्रता और आशिर्वाद के लिये अनुरोध करते हुए इन्हें आगरा आने के लियेआमंत्रित किया । गुरु गोविंदसिंह दिल्ली होते हुए आगरा पहुंचे । दोनों सौहार्द्रपूर्वक एक दूसरे से मिले । वहां से ये बादशाह के साथ जयपुर, चित्तौड़, बुरहानपुर आदि गए ।

- -

१. जीवन कथा- गुरु गोविंदसिंह ,पृ०-५४६
२. गुरु गोविंद सिंह और उनका काव्य,डा० प्रसन्नि सहगल,पृ०-५६
३. दशमेश चमत्कार,पृ०-५४६

जिस समय बहादुरशाह राजपूताने में था, उस समय गुरुजी गोदावरी तट पर नांदेड़ चले गए। वहां के निवासियों से इनका परिचय हुआ। ऐसे ही लोगों में एक बैरागी साधु भी था। उसका नाम माधवदास था। गुरुजी से प्रभावित हो उनका शिष्य बन गया। बाद में वह खालसा पंथ का एक प्रमुख सदस्य बन गया और " बंदा बहादुर " के नाम से प्रसिद्ध हुआ। पंजाब में जाकर उसने विदेशियों के कुकृत्यों का पूरा पूरा बदला लिया।[१]

दक्षिण में गुरुगोविंदसिंह सं० १७६५ में पहुंचे थे। बहादुरशाह की सेना में इन्होंने कोई पद स्वीकार नहीं किया था। कनिंघम का कथन है कि - " बहादुरशाह ने गुरु गोविंदसिंह को अपने शिविर में बुलाया। वहां गुरुजी गए। उनका आदर कर वहां उसने उन्हें एक सैनिक पद दिया।" मेकालिफ का मत है कि इनके धार्मिक उपदेशों से चिढ़कर एक पठान ने इनके पेट में कटार भोंक दी।[२]

सिख इतिहासकारों के अनुसार पैदांखां (जिसे हरगोविंद ने युद्ध में मारा था) के वंशज एक पठान गुलखां ने अवसर प्राप्त कर एक दिन सोते हुए गुरु गोविंदसिंह के पेट में कटार चुभो दी। बहादुरशाह ने जब सुना तो अत्यन्त कुशल चिकित्सकों को इनकी सेवा में भेजा। उन्होंने घाव भरकर सी दिया। उस पठान को गुरुजी ने क्षमा कर दिया। परन्तु जब वे एक बड़े धनुष की प्रत्यंचा खींच रहे थे तो इनके घाव का टांका टूट गया। यह घटना प्राण-घातक सिद्ध हुई। अंत समय निकट जानकर वे वीर वेश में सुसज्जित हुए। कंधे पर धनुष रखा और हाथ में कृपाण ले ली। गुरु ग्रंथ साहब खोलकर सामने रखा। पांच पैसे और नारियल रख उसे शीश झुकाया और गुरु ग्रंथ साहिब को अपने उत्तराधिकारी के रूप में छोड़कर उसी में अपनी आध्यात्मिक और शारीरिक आत्मा तिरोहित कर दी। बाद में सिक्खों में गुरु प्रथा की समाप्ति हुई और " गुरु ग्रंथ साहिब " ही गुरु रूप में प्रतिष्ठित हो गए। देहावसान के समय गुरुजी की आयु ४२ वर्ष की थी।[३]

---

१. दशमेश चमत्कार पृ०-६८४-८५
२. दि सिक्ख रिलिजन भाग-५ पृ०२४१ -मेकालिफ
३. दि सिक्ख रिलिजन ,भाग-५ पृ०-२४२

बिहार की भूमि को उन्हें जन्म देने का गौरव प्राप्त हुआ तो महाराष्ट्र की वीर प्रसु भूमि में उनका अंतिम संस्कार हुआ । नांदेड़ में उनकी स्मृति में बना हुआ भव्य गुरुद्वारा सुदूर उत्तर से लाखों श्रद्धालु दर्शनार्थियों के लिए ' हजूर साहब ' नाम से विख्यात एक महत्वपूर्ण तीर्थस्थान है।

साहित्य -

गुरु गोविंदसिंहजी केवल एक वीर सेना की और कुशल राजनीतिज्ञ ही नहीं थे वरन् एक सिद्ध हस्त महाकवि होने के साथ-साथ उच्च कोटि के गुणग्राहक भी थे । जीवन पर्यन्त अपने अवशिष्ट समय में वे काव्य सृजन करते रहे ।

गुरुजी की गुणग्राहकता और कला प्रेम की प्रसिद्धि उस काल में इतनी अधिक हो गई थी कि दूर-दूर के कवि और कलाविद् उनका राजाश्रय प्राप्त करने के लिए लालायित रहते थे । उनके दरबार में संस्कृत,फारसी, हिन्दी, पंजाबी आदि भाषाओं के अनेक कवियों को राजाश्रय प्राप्त था जिनकी संख्या ५२ से भी अधिक थी ।[१] इन कवियों में हिन्दू मुसलमान सभी सम्मिलित थे और उनमें परस्पर कोई भेदभाव नहीं था । ये कवि प्राय: अपनी रचनाएं स्वांत: सुखाय लिखते थे और गुरुजी से प्रेरित किए जाने पर अनेक ग्रंथों का भाषानुवाद भी प्रस्तुत करते थे । आनंदपुर ही इन सब रचनाओं का केन्द्र था ।[२]

गुरु गोविंदसिंह बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न महाकवि थे । उनकी साहित्यिक कुशलता और काव्य-सृजनात्मक शक्ति अद्भुत थी । उन्होंने विविध विषयों की रचनाओं का सृजन करके हिन्दी साहित्य में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। गुरु गोविंदसिंह की समस्त काव्यकृतियों को ' दशम ग्रंथ ' के नाम से अभिहित किया गया है ।[3] किंतु दशम ग्रंथ में संग्रहीत सभी ग्रंथ गुरु गोविंदसिंह रचित ही हैं, इस सम्बन्ध में कुछ विद्वानों ने शंकाएं उठाई है । उनके अनुसार कई ग्रंथ गुरुजी के राजाश्रित कवियों के द्वारा लिखे गए हैं ।[४]

- -

१. दी सिक्ख रिलीजन,व्होल्युम-५ पृ०-१६१
२. गुरु गोविंद सिंह और उनका काव्य डा० पद्मिनि सहगल,पृ०-९०
३. दी पोयट्री आफ दशम ग्रंथ , डा० धर्मपाल आश्ता, पृ०१

आष्टे

' पाख्यान चरित्र ' और ' हिकायत ' जैसी रचनाएं जिनमें स्त्रियों की दुर्बलताओं का नग्न चित्रण है, दार्शनिक और धार्मिक विचार वाले व्यक्तियों द्वारा लिखी रचनाएं कदापि नहीं हो सकती । डा० मोहनसिंह के अनुसार ' राम ' और ' श्याम ' गुरुजी के दो दरबारी कवियों ने ' त्रिया चरित्र ' की रचना की थी ।[1] गोकुलचंद नारंग ने भी इसी प्रकार के मत का प्रकाशन किया है ।[2] दशमेशजी के ग्रंथों के रचना स्थल एवं काल के संबंध में भी मतभेद हैं । कई विद्वानों ने इनका रचना-स्थल ' दमदमा ' माना है ।[3] डा० धर्मपाल आश्ता ने गुरुजी के ग्रंथों के रचना स्थान के संबंध में निष्कर्ष निकाले हैं कि इनका प्रणयन आनंदपुर में हुआ दमदमा में नहीं । प्राचीन प्रामाणिक ग्रंथ ' गुरु विलास ' से स्पष्ट होता है कि दमदमा को दशमेशजी ने ' हमारी काशी कहा है जो बाद में गुरुमुखी लेखकों का केन्द्र बन गया , किंतु ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता जिससे यह सिद्ध हो सके कि वह दशम ग्रंथ' का रचना-स्थान भी है ।[4]

रचनाओं की प्रामाणिकता -

भाई मणिसिंहजी गुरुजी के शिष्य और अपने युग के प्रतिष्ठित विद्वान पुरुष थे । उन्होंने गुरुजी के निधन के पश्चात् ६ वर्ष कठिन परिश्रम करके दशम गुरु की रचनाओं का संग्रह किया । उनके एक पत्र की फोटो कापी जिसे उन्होंने गुरुजी की पत्नी माता सुन्दरी को अमृतसर से लिखा था , डा० आश्ता के ग्रंथ में प्रकाशित मिलता है । इससे भी स्पष्ट हो जाता है कि दशम ग्रंथ का लेखन आनंदपुर में हुआ , और ' पाख्यान चरित्र ' गुरुजी का स्वरचित ग्रंथ है । गुरुजी के कई ग्रंथों का आरंभ भी " श्री मुखवाक पातशाही १० से होता है , जिसका अभिप्राय है कि दसवें गुरु के मुख से उच्चारित वाणी । जापु, विचित्र नाटक ', सवैये, शब्द हजारे' का आरंभ इसी वाक्यांश से होता है ।

---

१. हिस्ट्री आफ पंजाबी लिट्रेचर, पृ०-४०, डा० मोहनसिंह दीवाना
२. ट्रांसफारमेशन आफ सिक्खिज्म पृ०-३४२
३. इवोल्यूशन ओफ खालसा, पृ०१६६
४. दी पोइट्री आफ दशमेश ग्रंथ, पृ०५-६
५. वही पृ०८

जै जै किसन चरित्र दिखाए । दसम बीच भाख सुनाए।

ग्यारा सहरा बानवे छंदा , कहै दसमपुर बैठ आनंदा ।। [१]

दूसरे चरण में ' दसम ' शब्द का प्रयोग ' दसम ग्रंथ ' और चौथे चरण में ' दसम ' का प्रयोग दसम गुरु के लिए हुआ है । कृष्णावतार के शेष छंद पांवटा में लिये गये जिसका उल्लेख दसमेश जी ने उस रचना के अन्त में किया है -

सत्रह से पैंताल महि सावन सुदि थिति दीप,
नगर पांवटा सुभ करन जमुना बहै समीप,
दसम कथा भागौत की भाखा करी बनाइ।
अवर बासना नाहिं प्रभु धर्म जुद्ध के चाइ ।। [२]

धर्मयुद्ध की इतनी प्रबल चाह रखने वाला गुरु गोविंदसिंह के अतिरिक्त और कौन हो सकता है । कृष्णावतार में ' स्याम' और राम ' दसमेशजी के उपनाम हैं । वे कोई राजाश्रित कवि नहीं है, जैसा कि कई विद्वानों ने शंका उठाई थी । ' स्याम ' गुरुजी का बचपन का नाम था । स्याम और गोविंद के स्थान पर यत्र-तत्र रामहि की छाप भी भावसाम्य के आधार पर मिलती है । [३] राम अवतार के अन्त में दसम गुरु ने स्वरचित होने का निर्देश किया है -

सगल दुआर कौं छांडि कै गह्यौ तुहारो दुआर।
बांहि गहे की लज असि गोविंद दास तुहार।। [४]

अतः पाख्यान चरित्र भी दसमेशजी की रचना है । उसमें भी ' स्याम', ' राम ' की छाप मिलती है । इसमें उपलब्ध ' काल ' की छाप' अकाल पुरुख' अथवा काल से संबंधित है । स्याम, राम, गोविंद हरि के सदृश यह भी ईश्वरीय नाम का पर्याय है । इसके अतिरिक्त इसमें ' भी मुक्तक ' के सादृश्य पर' कवियोवाच' का प्रयोग भी दसमेशजी के लिये हुआ है। [५]

---

१. कृष्णावतार दसम गुरु ग्रंथ साहब, खंड १, छंद सं० ४, पृ०-२५४
२. वही छंद सं०२४९१, पृ०-५७०
३. दी पोइट्री औफ दसमे ग्रंथ ,पृ०१३-१४
४. गोविंद रामायण, पृ०-२४२
५. गुरु गोविंदसिंह और उनका काव्य पृ० ०-१०२

गुरु गोविंदसिंह रचित ग्रंथ 'दशम' ग्रंथ के नाम से दो खण्डों में प्रकाशित मिलते हैं। प्रकाशित दशम ग्रंथ में रचनाओं को काल-क्रमानुसार नहीं दिया है। इनका सम्पूर्ण रचना काल बीस पच्चीस वर्ष का कहा जा सकता है।

प्रकाशित और प्राचीन हस्तलिखित संग्रह ग्रंथों के अनुसार गुरु गोविंदसिंह रचित निम्नलिखित कृतियां प्रामाणिक मानी जा सकती हैं-

१. जापु
२. अकाल स्तुति
३. विचित्र नाटक
४. चंडी चरित्र उक्ति विलास
५. चंडी चरित्र
६. वार श्री भगवतीजी की
७. चौबीस अवतार
८. मीर मेंहदी
९. ब्रह्मावतार
१०. रुद्रावतार
११. शस्त्र नाममाला
१२. ज्ञान प्रबोध
१३. पाख्यान चरित्र
१४. हजारे दे शबद
१५. सवैये
१६. जफरनामा

जापु :- गुरु गोविंदसिंहजी ने सिक्ख धर्म के अन्तर्गत, अपने काल की राजनीतिक परिस्थिति से प्रेरित होकर 'खालसा' की स्थापना की थी। उन्होंने धर्म को रजोगुणी कहा है, किंतु उनके धार्मिक संस्कार बड़े प्रबल थे। धर्म उनके लिये सर्वोपरि था, इसलिये ईश्वर का नाम स्मरण, स्तुति और वंदना से संबंधित यह रचना सर्वप्रथम चर्चित हुई है।

उनके प्राप्त समस्त हस्तलिखित संग्रह ग्रंथों में ` जापु ` उनकी सर्वप्रथम रचना है।[1]

इस रचना में गुरुजी ने ईश्वर के निराकार रुप को विविध विशेषणों से संबोधित करते हुए नमस्कार किया है। उसे अजन्मा, निराधार, निर्विकार, दयालु बताया है। वही मुसलमानों का रफीक, रहीम, करीम और अल्लाह है। वह सर्वव्यापक है। वह विश्व का सृष्टा अकाल पुरुष है। समापन में कवि ने पुनः सच्चिदानंद को नमस्कार किया है - इस प्रकार ` जापु ` रचना का नाम सार्थक है।[2]

यह मुक्तक रचना है। इसमें छप्पय, भुजंगप्रयात, चाचरी, चरपट, रुयाल, मधुभार, भगवती, रसावल, हरि बोलमना, एक अछरी दस प्रकार के छंदों के के प्रयोग किए गए हैं। इसकी भाषा शुद्ध है, ध्वनि का भी पुट है। यत्र तत्र अरबी फारसी के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। यह रचना विष्णु सहस्त्रनाम की शैली पर लिखी गई है जिसमें ईश्वरको विविध नामों से संबोधित किया गया है।[3]

अकालस्तुति -

गुरुजी की दूसरी रचना हस्तलिखित संग्रह तथा प्रकाशित ग्रंथों में अकाल-स्तुति ` लिपिबद्ध मिलती है। इसमें आरंभ में ब्रह्म के निराकार एवं सर्वव्यापक रूप का वर्णन किया गया है। यह मानव शरीर से और समस्त सृष्टि में व्याप्त है ईश्वरकी महिमा वर्णन के अतिरिक्त कवि ने बीच-बीच में पाखंड, लौकिक उपचार, वासना आदि का भी खंडन किया है। ज्ञान के द्वारा ईश्वर प्राप्ति होती है, अंधनिरनात द्वारा नहीं। सभी मानव ब्रह्म के ही द्वारा रचित हैं, अतः हिन्दू धर्म का भेदभाव नहीं है। इसमें कवि का मानवतावादी दृष्टिकोण दिखाई पड़ता है।

यह भी मुक्तक काव्य है। इसमें चौपाई, कवित्त, सवैया, तोमर, लघुनिराज, भुजंग प्रयात, पाधड़ी, तोटक, नराच, रुआमल, दोहरा, दीर्घ त्रिभंगी छंदों के प्रयोग हुए हैं। इसकी भाषा प्रौढ़ परिमार्जित शुद्ध है। फारसी एवं संस्कृत के शब्द भी मिलते हैं। हिंदी साहित्य के संत-काव्य के अन्तर्गत प्रस्तुत रचना विशिष्ट स्थान रखती है।

- -

१. गुरु गोविंदसिंह और उनका काव्य, पृ०११७

२. वही

३. दी सिक्ख रिलीजन, व्हॉल्यूम-५, पृ०-२६१

विचित्र नाटक -

यह भी हस्तलिपि संग्रह ग्रंथों में लिपिबद्ध मिलता है। प्रस्तुत रचना के विषय में यह भी कहा जाता है कि एक श्रद्धालु सिक्ख ने गुरुजी से प्रार्थना की कि ईश्वर के सम्पूर्ण गुणों का वर्णन कीजिये, तभी गुरुजी ने इस ग्रंथ की रचना की और विस्तार से सृष्टि के प्रारंभ, सोढ़ी वंश की उत्पत्ति तथा ईश्वर की महिमा का गान किया और कहा कि यद्यपि ईश्वर के सूक्ष्म रूपों का वर्णन नहीं हो सकता फिर भी अवतारों के रूप में उन्होंने इस ग्रंथ में उसे व्यक्ति किया है। [1] यथा

सूक्ष्मा रूप बरना जाई ।। बिरध सरूपेहि कहौ बनाई।

विचित्र नाटक चौदह अध्यायों में विभाजित है। इसमें गुरुजी की वंश और जीवन का विस्तृत वर्णन मिलता है। प्रस्तुत ग्रंथ आत्मचरित्र काव्य की कोटि में रखा जा सकता है। इसमें भी अन्य ग्रंथों की भांति अनेक छंदों का प्रयोग है। इसकी भाषा ब्रज है अवधी का भी प्रयोग मिलता है। हिन्दी तथा पंजाबी साहित्य में आत्मचरित्र सम्बन्धी यह प्रथम उत्कृष्ट रचना है। [2]

- -

१. विचित्र नाटक, अध्याय २ पृ०-१८

२. दि पोइट्री आफ दशम ग्रंथ, पृ०-५०

चंडी चरित्र उक्ति विलास -

हस्तलिखित तथा प्रकाशित संग्रह ग्रंथों में चंडी चरित्र उक्ति विलास लिपिबद्ध मिलता है । इसमें चंडी चंडी की कथा मार्कण्डेय पुराण के आधार पर लिखी गई है । यह अंश दुर्गा सप्तशती से संबंधित है । इसकी पुष्टि प्रत्येक अध्याय के अंत में - " इति श्री मारकण्डेय पुराणे श्री चंडी चरित्रे उक्ति विलासे के उल्लेख से होती है । १

प्रस्तुत ग्रंथ सात अध्यायों में विभाजित है । इसमें देवासुर संग्राम तथा देवी चंडिका और दैत्यों का युद्ध विधिवत वर्णित है । अनेक छंदों का प्रयोग हुआ है । कवित्त और सवैया का बाहुल्य है । भाषा ब्रज है । फारसी के शब्द भी प्रयुक्त हैं । इसमें वीर रस और ओजगुण की प्रधानता है।

चंडी चरित्र -

" हस्तलिखित संग्रह ग्रंथों में चंडी चरित्र" लिपिबद्ध मिलता है । इस ग्रंथ का कथानक भी " चंडी चरित्र " उक्ति विलास के सदृश है किंतु विस्तार कम है । मारकण्डेय पुराण के दुर्गा सप्तशती की कथा इसमें भी वर्णित है। देवासुर संग्राम का क्रमबद्ध वर्णन मिलता है । इसमें ओज गुण प्रधान ब्रज भाषा है। छंदों का प्रयोग भावानुकूल हुआ है । वस्तुत: गुरु गोविंद सिंह जी दुर्बल राष्ट्र में क्षात्रिय भावना भरना चाहते थे । वीर साहित्य की रचना का वे यही उद्देश्य मानते थे । चंडी चरित्र उनके इसी लक्ष्य को पूरा करती है । २

वार श्री भगवती जी दी -

हस्तलिखित संग्रह ग्रंथों में " वार श्री भगवती जी दी का वर्ण्य विषय मार्कण्डेय पुराण के अन्तर्गत दुर्गा सप्तशती पर आधारित चंडी कथा है। इसमें भगवती स्मरण के अनन्तर गुरु गोविंद सिंहजी ने अपने पूर्व के गुरुओं का स्मरण किया है । यह ग्रंथ प्रबंधात्मक खण्ड काव्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है इसकी भाषा पंजाबी है । पंजड़ी छंद इसमें प्रधान है ।

- -

१. चंडी चरित्र उक्ति विलास श्री गुरु दशम ग्रंथ साहब खंड-१

२. दि पोइट्री आफ दशम ग्रंथ, पृ०-५३

चौबीस अवतार :-

इसमें गुरु गोविंदसिंहजी ने परब्रह्म के चौबीस अवतारों का वर्णन किया है। वे समस्त अवतार है - मच्छ, कच्छ, नर नारायण, मोहिनी, वाराह, नरसिंह, बावन, परशुराम, ब्रह्मा, रुद्र, जलन्धर, विष्णु, कालपुरुष, अरहंत देव, मनुराजा, धनवंतर, सूरज, चन्द्र, राम, कृष्ण, अर्जुन, बुध, कल्कि।
ये अवतार श्रीमद् भागवत के चौबीस अवतारों से कुछ भिन्नता रखते हैं। गुरु गोविंद सिंहजी ने अपने ढंग से इन अवतारों का वर्णन किया है। [१]

गुरुजी की प्रस्तुत रचना प्रबंधात्मक काव्य कही जा सकती है। गुरुजी ने प्रत्येक अवतार के विवेचन के प्रसंग में यथास्थान उन उद्देश्य का भी विवेचन कर दिया है। [२]

मीर मेंहंदी :-

दशम् गुरुजी के चौबीस अवतार के अन्तर इस रचना का उल्लेख मिलता है। सम्भवतः इसकी प्रेरणा उन्हें इस्लाम धर्म के शिया सम्प्रदाय के ग्रंथों से मिली। [३]

कलियुग के अंत में जब काल पुरुष की उपासना बंद हो गई तो उसने रुष्ट होकर 'मेंहदी मीर' नामक व्यक्ति को उत्पन्न किया। कालान्तर में मीर मेंहंदी में भी गर्व बढ़ गया है और वह अपने को ईश्वर के समकक्ष मानने लगा। उसकी सर्व-शक्तिमत्ता का विनाश करने के लिये काल पुरुष ने एक कीड़ा उत्पन्न किया जो मेंहंदी मीर के कान में प्रवेश कर गया और दर्द से उसकी मृत्यु हो गई। इस रचना की भाषा ब्रज है। फारसी के शब्द भी प्रयुक्त हैं।

---

१. गुरु गोविंदसिंह और उनका काव्य, पृ०-१२७
२. दि पोइट्री आफ दशम ग्रंथ, पृ०६४
३. वही पृ०११४

थी

वे गुरुजी की ओर आकृष्ट हो गईं किंतु गुरुजी ने उन्हें उपदेशों द्वारा सुमति दी और सिक्खों को त्रिया-चरित्र (नारी चरित्र) से बचाने के लिये तथा उनके मार्ग-प्रदर्शनार्थ इस ग्रंथ की रचना की । [१]

इस ग्रंथ में वर्णित कथाओं की कई कोटियां निर्धारित की जा सकती है यथा = धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, श्रृंगारिक, सामाजिक और विविध ।

धार्मिक में - भक्ति, वंदना, तथा शिव विष्णु की उपासनावर्णित है ।
पौराणिक में - कृष्ण चरित्र, समुद्र मंथन तथा देवासुरसंग्राम की कथा वर्णित है।
ऐतिहासिक में- मुगल बादशाहों, हिन्दू राजाओं एवं रानाणियों की वीरता की कथाए हैं ।
श्रृंगारिक में- हिन्दू मुसलमानों की प्रेमकथाएं यथा - नल दमयन्ती, ढोलमारू, सोहिनी महीवाल, हीर रांझा, रत्नसेन-पद्मावती, की कथाए हैं ।
सामाजिक में- लोकमर्यादा के प्रतिकूल आचरण से संबंधित कथाएं हैं ।
विविध में- उपर्युक्त कथाओं के द्वारा दशम् गुरु का उद्देश्य केवल यथार्थ रूप का चित्रण करके लोगों को आदर्श-मार्ग की ओर प्रेरित करना था । कई कथाएं काल्पनिक हैं, जिनका सत्य से कोई सम्बन्ध नहीं है । [२]

पाख्यान चरित्र में विषय-वैविध्य इतना अधिक है कि मानव जीवन का शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र हो जो कवि के मस्तिष्क से ओझल हुआ हो। इसका उद्देश्य मात्र इतना ही था कि उस काल के लोगों के भ्रष्ट आचरण की भर्त्सना और उचित नैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना करना इसमें वर्णित चरित्रों के माध्यम से आदर्श स्वरूप की ओर प्रवृत्त करने का सफल प्रयत्न किया गया है। [३]

---

१. शब्द मूरति, रणधीर सिंह, पृ०-२१
२. दि पोइट्री आफ दशम ग्रंथ, पृ०-१५०
३. पाख्यान चरित्र, श्री दशम ग्रंथ चरित्र सं०४०५

शब्द हजारे -

शब्द हजारे की संख्या हस्तलिखित ग्रंथों एवं संग्रह ग्रंथों में कहीं दस और कहीं नौ मिलती है। किंतु कहीं-कहीं सात भी मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि गुरु गोविंदसिंहजी ने प्रबंध काव्य रचनाओं के अतिरिक्त बहुत से मुक्तक काव्य की भी रचना की थी, किंतु ये सारे मुक्तक भाई मनीसिंह आदि संपादकों को प्राप्त न हो सके। केवल ये दस शब्द ही प्राप्त हुए हैं। [१]

गुरुजी की स्फुट रचनाओं में शब्दों का विशेष साहित्यिक महत्व है, क्योंकि इनकी रचना रागों के आधार पर हुई है। इनको सांगीतिक पदों के अन्तर्गत रखा गया है। रामकली, सोरठ, कल्याण, बिलावल, काफी तिलंग आदि रागों का प्रयोग हुआ है। प्राय: सिद्ध संतों में यह परम्परा मिलती है कि उन्होंने भक्ति का गान रागबद्ध रूप में प्रस्तुत किया है। संत कबीरदास, महाकवि सूरदास, तुलसीदास की रचनाएं रागबद्ध हैं। [२]

प्रस्तुत रचना का नाम शब्द हजारे अथवा ' हजारे शब्द ' के संबंध में विद्वानों में अलग-अलग मत हैं। कनिंघम के अनुसार आरंभ में शब्द की हजार पंक्तियों को काव्यगत करने के मूल विचार से यह नाम रखा गया है। कुछ के अनुसार पश्चिमोत्तर प्रांत में हजारा से गुरु-दर्शनार्थ आए हुए सिक्ख-संगत के सम्मुख उच्चारित होने के कारण इसका यह नाम पड़ा। एक मत के अनुसार गुरुजी ने चमकौर के युद्ध में अपने प्रिय पुत्रों के दिवंगत होने पर विरह विभोर की अवस्था में उनका प्रणयन किया। यह भी संभव है कि हजारा का अर्थ ' फव्वारा ' भी हो और इन शब्दों का उच्चारण गुरुजी के मुख से अपने शिष्यों के लिये आध्यात्मिक फव्वारे से निकले जलबिंदु के समान ज्ञान पिपासा को शान्त करने में सहायक सिद्ध हुआ हो। किंतु अभी तक कोई निश्चित निष्कर्ष नहीं निकाला जा सका है। [३]

- -

१. दसम ग्रंथ - रूप ते रस - श्री तारनसिंह
२. गुरु गोविंदसिंह और उनका काव्य, पृ०-१८२
३. दि पोइट्री आफ दसम ग्रंथ, पृ०१४४

इस रचना में गुरुजी ने योग, सन्यास, ईश्वर-भक्ति, नाम-स्मरण की चर्चा की है। ' जापु ' और ' काल-स्तुति ' के समान इसमें निराकार ब्रह्म के गुण और सर्वव्यापकता का वर्णन किया है।

इसमें छठा शब्द विशेष महत्व का है। अन्य शब्दों की भाषा ब्रज है किन्तु इसकी भाषा पंजाबी है। इसकी रचना ' रब्याल ' में हुई है, जिसमें भाषा और भाव दोनों का सुन्दर सम्मिश्रण मिलता है। इस शब्द के माध्यम से गुरुजी ने अपनी गहन व्यथा को प्रकट किया है। धर्म की वेदी पर सर्वस्व बलिदान कर देने वाले की व्यथा अकथ्य होगी ही। इस शब्द के माध्यम से उनकी वेदना के दर्शन होते हैं - मित्र प्यारे नू हाल मुरीदा दा कहणा'। इसमें अनुपम छंद योजना के दर्शन होते हैं। संगीत, भाव-गांभीर्य और रचना-कौशल की दृष्टि से ये अनूठे हैं और हिन्दी सन्त-काव्य के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।[१]

प्रभुजू तो कह लाज हमारी।
नील कण्ठ नर हरि नारायण नील बसन बनवारी।
परम पुरख परमेश्वर स्वामी पावन पउन अहारी

माधव महाज्योतिमइ मरदन मान मुकंद मुरारी।
निर्विकार निरजर निद्रा बिन निर्विरन नरक निवारी
कृपा सिंधु काल त्रै दरसी कुकृत प्रनासनकारी
धुनरधान धृत मान धराधर अनिर्विकार असिधारी।
हौं मति मन्द चरन सरनागति करिगहि लेहु उबारी।।[२]

---

१. गुरु गोविंदसिंह और उनका काव्य-पृष्ठ-१८३
२. शब्द हजारे श्री दशम गुरु ग्रंथ सं०-३

श्री मुखवाक् पातशाही १० सवैया -

दशमेशजी की स्फुट रचनाओं के अन्तर्गत १-३२ सवैया गुरु रामदास लाइब्रेरी, अमृतसर तथा सेन्ट्रल लाइब्रेरी पटियाला के अधिकांश हस्तलिखित संग्रह ग्रंथों में मिलते हैं। प्रकाशित ग्रंथों में १-२३३ संख्या उपलब्ध होती है। पहला सवैया हस्तलिखित ग्रंथों में प्राप्त नहीं होता है। १

इस स्फुट रचना में गुरुजी ने अकालस्तुति और शब्द हजारे के समान ही ईश्वर की महिमा, उसके स्वरूप का गुणगान किया है। प्रारम्भिक सवैयों में तीर्थ, मठों, कब्र आदि की उपासना की अवहेलना की गई है, क्योंकि मात्र इनके पूजने से ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती है। उस ईश्वर के भेद को वेद, पुराण और और कुराण भी नहीं पा सके हैं। वह सर्वव्यापक और अन्तर्यामी है। उसने प्रह्लाद, गणिका आदि सबका उद्धार किया है। इन सवैयों को माध्यम से योगी, सन्यासी, मूर्ति-पूजा आदि का खंडन किया है। विविध आडम्बरों से ईश्वर प्राप्त नहीं हो सकता। गुरुजी ने दो सवैयों में मसनदों (सिक्ख धर्म के के उपासक किंतु बाद में स्वयं को गुरु मानने वाले)की निंदा की है। बाद में अन्तिम सवैया में शरीर की क्षणभंगुरता और नश्वरता का उल्लेख करके मानव-मन को सचेत किया है कि मृत्यु के समय पुत्र, कलत्र, सुमित्र सखा सब विमुख हो जायेंगे धन जायदाद सब बेगानी हो जायेगी और अन्त समय जीव को अकेला ही इस संसार से विदा होना पड़ेगा। समस्त सांसारिक ऐश्वर्य पीछे छूट जायेंगे। २

गुरुजी की इस मुक्तक रचना में काव्य-कला का सुन्दर प्रस्फुटन हुआ है। भाषा हृदयग्राही है तथा ब्रजभाषा है। भक्तिभावना से पूर्ण छंद मर्मस्पर्शी है।

- -

१. गुरु गोविंदसिंह और उनका काव्य, डा०प्रसिन्नी सहगल, पृ०१८३
२. वही पृ०१८४

सवैया जो किछु लेखु लिखियो बिधना -

गुरु गोविंदसिंह के हस्तलिखित तथा प्रकाशित ग्रंथों में तीन सवैये और एक दोहा भी प्राप्त होता है जिसमें गुरुजी ने खालसा की महिमा का वर्णन किया है। लगता है इस रचना में गुरुजी ने केशोदास पंडित को बाह्याडम्बरों के माध्यम से लोगों को भ्रमित करने के संबंध में दिए गए उपदेश की की चर्चा की है। नैनादेवी में किए गए यज्ञ के पश्चात भी जब देवी प्रकट नहीं हुई तब गुरुजी ने यज्ञ का विविध दान निम्नजातीय वर्ग के सिक्खों को दिया और ब्राह्मणों को इससे वंचित रखा - जिसका विरोध उक्त पंडित ने किया उसी को सान्त्वना देने के लिए दशम गुरुजी ने इन सवैयों में कथन किया है कि उन्हें भी आज ही वस्त्र और बिस्तर आदि भेज दिए जायेंगे गुरुजी ने कहा कि उनकी सारी विजय और सम्पन्नता उसी दलित वर्ग पर निर्भर करतही है। उन्हीं की कृपा से शत्रुओं का विनाश हुआ है और उन्हें सुख वैभव की प्राप्ति हुई है। उन्हीं को दान देना सर्वोत्तम है, अन्य को देने में कोई परोपकार नहीं है।

> युद्ध जिते इनही प्रसाद, इनही के प्रसादि सो दान करे।
> अघा ओघ टरै इनही के प्रसादि, इनही की किरपा फुन धाम भरे।।
> इनही के प्रसादि सु बिदिआ लई, इनही की किरपा सम सत्रु मरे।
> इनही की किरपा सजे हम हैं, नहीं मो सो गरीब करोर परे।। [१]

इस रचना में गुरुजी ने निम्न और दलित वर्ग के लिये अगाध स्नेह और सम्मान प्रकट किया है। इससे उनकी उदारता और महानता के भी दर्शन होते हैं।

---

१. श्री मुखवाक् पातशाही १० - दशम ग्रंथ

जफरनामा -

गुरु गोविंदसिंहजी की इस रचना का वर्णन रेफरेन्स लाइब्रेरी अमृतसर के हस्तलिखित ग्रंथ और सेन्ट्रल लाइब्रेरी पटियाला के हस्तलिखित संग्रह ग्रंथों में मिलता है। [१]

' जफरनामा ' एक पत्र के रूप में है संभवत: जो गुरुजी का अंतिम ग्रंथ है। कुछ विद्वान इसका रचना काल संवत् १७६३ के आसपास मानते हैं। [२] गुरुजी ने एक पत्र वंशावलीनामा औरंगजेब के पास भेजा था, जिसका उल्लेख वंशावलीनामा और सरकारी पत्रों में मिलता है। औरंगजेब के खास मुंशी मिर्जा अनायत उल्ला खान इस्मी के सम्पादित किए अहवामी आलमगिरी की एक प्रति उत्तर प्रदेश के रामपुर राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित है, जिसमें इसका उल्लेख मिलता है। [३] कवि सेनापति ने जो गुरुजी के दरबारी कवि थे, उल्लेख किया है कि मुक्तसर के युद्ध के बाद गुरुजी ने औरंगजेब को यह पत्र भेजा था। यह समय लगभग वैशाख २१ के बाद जेठ या आषाढ़, संवत् १७६३ का है। [४]

' जफरनामा ' फारसी भाषा की रचना है। यह दो भागों में विभक्त है, जिसमें १११ बैत छंद मिलते हैं। पहले भाग में ईश्वर की सर्व-व्यापकता और उसके विविध गुणों के स्मरण का उपदेश है। दूसरे भाग में कथा है जिसमें गुरुजी ने औरंगजेब से उसके अन्याय और अत्याचार का निर्देश युद्ध की घटनाओं द्वारा किया है। औरंगजेब की वीरता, धार्मिक कट्टरता आदि का उल्लेख करने के पश्चात उसकी भर्त्सना की गई है कि तेरे द्वारा कुरान की शपथ लिए जाने पर भी तेरा तुर्क सरदार नाहन खां पठान, अन्य सरदार और दो शहजादों ने आक्रमण किया किंतु युद्ध करने के कारण वे मारे गए।

---

१. गुरु गोविंदसिंह और उनका काव्य, पृ०-१८५
२. शब्द मूरति-रणधीर सिंह, पृ०-३५
३. वही पृ०-३२-३३
४. वही पृ०-३५

तुझे न खुदा और न मुहम्मद पर विश्वास है । तूने अपने पिता,भाइयों की हत्या की और हिन्दुओं को मुसल्मान बनाया। तूने मेरे चार पुत्रों का वध करवा दिया तो कोई बात नहीं , अभी तो मैं तेरा वध करने के लिये जीवित हूं । तु अभिमान को त्याग कर प्रजा की सेवा कर और ईश्वर को सर्वोपरि मान, वही तेरी रक्षा करने वाला है ।

' जफरनामा ' की भाषा फारसी है । यद्यपि हिन्दी, संस्कृत के शब्दों एवं मुहावरों का भी प्रयोग हुआ है । इसकी छंद योजना मसनवी कवि फिरदौसी निजामी के द्वारा प्रयुक्त चौबोला छंद (फाकुला) में हुई है। दशमेशजी की पत्र शैली में लिखी यह महत्वपूर्ण रचना है । [१]

हिकायतें-

जफरनामा के साथ ११ हिकायतें भी है, जो जफरनामा का ही अंग मानी जाती हैं । पहली हिकायत में ६१ बैंत हैं और इसमें गुरुजी ने पौराणिक तथा अन्य कथाओं के वर्णन द्वारा औरंगजेब को उपदेश दिया है।

दूसरी हिकायत में ५६ बैंत हैं । इसमें इन्होंने चीन के एक राजा की कथा का वर्णन करके औरंगजेब को शिक्षा दी है ।

तीसरी हिकायत २४० बैंत में है । इसमें ईश्वर स्तुति तथा एक राजकुमारी की कथा द्वारा औरंगजेब को समझाया गया है ।

चौथी हिकायत में ५१ बैंत हैं । इसमें एक काजी की स्त्री का वर्णन है।

पांचवी हिकायत ४२ बैंतों में है । छठी में ४६, सातवी में ४७ बैंते हैं।

आठवां में ४४, नवीं में १७६, दसवीं में ६० तथा अन्तिम हिकायत ग्यारवी २१ बैंतों में वर्णित है ।

---

१. गुरु गोविंदसिंह और उनका काव्य,पृ०-१८७

गुरुजी ने दयासिंह और भाई धर्मसिंह द्वारा औरंगजेब को जफरनामा भेजा था । उसी के साथ ये ग्यारह हिकायतें भी भेजी थी । इससे स्पष्ट होता है कि गुरुजी ने राजाओं के विश्वासघात और त्रियाचरित्र आदि के उदाहरण देकर औरंगजेब को सत्य मार्ग अपनाने काउपदेश दिया है ।

गुरुजी ने ब्रज और फारसी भाषा मिश्रित कर दोनों धर्मों के भेदभाव को मिटाने का सफल प्रयत्न किया है ।

इस प्रकार गुरु गोविंदसिंह जी की रचनाएं न केवल विषय की विविधता के कारण महत्वपूर्ण हैं, अपितु अपनी शैलीगत सौंदर्य के कारण भी हिन्दी साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं । उस सामंती वातावरण में जब केवल शासकों की विलासिता को उद्दीप्त करने के लिये कवियों अपनी रचनाएं मुक्तकों के रूप में रच रहे थे , दशम् गुरु की प्रबंधात्मक नीति उपदेशपरक एवं मुक्तक रचनाएं स्वान्त:सुखाय ही नहीं अपितु जन-कल्याणकारी अपने महान दायित्व को वहन करने में सर्वथा सक्षम सिद्ध होती हैं । उनके श्रृंगार का उज्ज्वल स्वरूप, भक्ति भाव की विह्वल स्थिति, वीरत्व का ओज पूर्ण चित्रण, तथा उपाख्यानों की उदात्त उपदेशपरक परिणति का इतने सुन्दर रूप में संयोजन हुआ है कि अन्यत्र मिलना कठिन है।[१]

21.3.83

---

१. गुरु गोविंदसिंह और उनका काव्य-डा०प्रसिन्नी सहगल,पृ०-१८६

विचार धारा -

श्री गुरु गोविंदसिंह के व्यक्तित्व एवं उनसे संबंधित सभी युद्धों से स्पष्ट होता है कि उन्होंने राज्य लिप्सा की भावना से प्रेरित होकर कभी भी कोई युद्ध नहीं किया । उनके सभी युद्ध अन्याय, अनाचार, अत्याचार आदि को रोकने या मिटाने के लिये ही किए गए थे । उनका सारा जीवन युद्ध करते ही बीता किंतु वे न तो कभी निराश ही हुए और न कभी उन्होंने अन्याय का समर्थन किया । वे हृदय से युद्ध करने के पक्ष में नहीं थे, किंतु सच्चे धर्म के विस्तार और दुष्टों के संहार के उद्देश्य से ही उन्होंने युद्धों में रुचि दिखाई । इन युद्धों से विदित होता है कि उनकी युद्ध-नीति 'सत्यता' और 'पवित्रता' पर ही आधारित थी । उन्होंने युद्ध में किसी पर न तो कभी पहले आक्रमण ही किया और न किसी राज्य पर अधिकार लिप्सा प्रकट की । पहाड़ी राजाओं को कई बार पराजित करने पर भी उन्होंने न किसी प्रकार की यातनाएं दीं और न कोई कर लगाया। उनके युद्ध किसी जाति विशेष एवं सम्प्रदाय के विरुद्ध थे । उनका उद्देश्य केवल अत्याचारियों का दमन करना ही था । उनकी सेना में अनेक मुसलमान पठान भी ऐसे थे जो अपनी अपनी ही जाति और धर्म के विरुद्ध युद्ध करते रहे और बुद्धू शाह जैसे पीर ने तो उनकी ओर से लड़ते हुए अपने दो पुत्रों की आहुति भी रणभूमि में दे दी।[1]

गुरुजी मानवता की साकार मूर्ति थे । उन्होंने सेना में सेवा कार्य करने वालों को यह आदेश दे रखा था कि घायल किसी भी जाति अथवा पक्ष का हो उसकी समान सेवा सुश्रुषा की जाय । भाई कन्हैया जी ऐसे ही सेवादार थे । उन्होंने प्रत्येक सिक्ख को यह आदेश दे रखा था कि वह कभी भी अपनी कृपाण से न तो कोई अत्याचार या अनाचार करें और न अपना धर्म बलात् दूसरों पर लादें ।

---

१. श्री दशमेश चमत्कार - पृ०-१२५-१४२

शक्ति का प्रयोग केवल निर्बल को सबल के पंजे से मुक्त कराने तथा न्यायोचित कार्यों के लिए ही किया जाए। देश सेवा के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया, किंतु भक्ति भावना को कभी नहीं छोड़ा। युद्धों में भी वे अपने सैनिकों सहित ईश्वर की उपासना का समय निकाल लेते थे वे तो संत सिपाही थे। ईश्वर की प्रार्थना और आराधना उनका दैनिक कार्यक्रम था और इसका पालन वे गोलियों और तीरों की बौछार में भी निरंतर करते रहे। धर्म रक्षा के लिए स्वयं को बलिदान कर देना ही उनका लक्ष्य था।[1]

गुरु गोविंदसिंहजी मानव-मात्र को समान भाव से देखते थे। अतः तत्कालीन फैली हुई कुत्सित प्रथाओं को तोड़ने के लिए उन्होंने 'लंगर' (सहभोज) की प्रथा को प्रश्रय दिया। इसमें प्रत्येक वर्ग के लोग मिलकर एक स्थान पर ही एक जैसा भोजन ग्रहण करते थे। इससे समानता की भावना को प्रोत्साहन मिला। वे बाल्यकाल से ही पंडितों की पूजा एवं बाह्याडम्बरों का खंडन करते थे।[2] उन्होंने ब्राह्मणों की परख के लिए एक बार ब्रह्म भोज दिया। काश्मीर, लाहौर, पेशावर और काशी आदि नगरों से पंडितों को आमंत्रित किया गया। ब्रह्म भोज के लिये दो स्थानों पर प्रबंध किया गया। एक में निरामिष भोजन और दूसरे में मांस आदि आमिष भोजन का प्रबंध था और यह आज्ञा दी गई कि जो आमिष भोजन ग्रहण करेगा उसे पांच मोहरें और जो निरामिष भोजन करेगा उसे पांच रुपये दिये जायेंगे।

- -

१. दि सिख रिलिजन व्हॉल्यूम ५ पृ० ५०
२. वही पृ० ५२

ब्राह्मण धर्म के प्रभाव में अपने धर्म को भूलकर आमिष भोजन खाने लगे। इस पर गुरुजी ने उन्हें बहुत लज्जित किया एवं सद्धर्म और ज्ञान का उपदेश दिया। [१]

गुरुजी बाहुबल एवं अपनी आत्मिक शक्ति में विश्वास रखते थे बाहरी पाखंड पर नहीं। एक बार केशवदास पंडितजी बनारस से गुरुजी की उदारता एवं कीर्ति सुनकर भौतिक ऐश्वर्य प्राप्त करने के लालच से आनंदपुर आया, वहाँ पर उसने गुरुजी से देवी पूजा के लिए आग्रह किया। उसने कहा कि सिख भी देवी की आराधना कर भीम एवं अर्जुन की भाँति अथाह शक्ति प्राप्त कर सकते हैं। गुरुजी ऐसे भ्रम कैसे प्रभावित हो सकते थे किंतु बार-बार सिक्खों के आग्रह करने पर उन्होंने उनका भ्रम निवारण करने के लिए केशवदास पंडित को बहुत सारी हवन सामग्री देकर नैना देवी पहाड़ के टीले पर देवी प्रकट करने के लिये कहा। गुरुजी का एक वर्ष तक हवन जारी रहा किंतु देवी प्रकट नहीं हुई। गुरुजी ने नैना देवी के टीले पर गए एवं केशवदास से देवी के प्रकट न होने का कारण पूछा। केशवदास ने कहा कि देवी किसी महान पुरुष की बलि चाहती है। गुरुजी उसकी चालाकी को समझ गए और कहा - " पंडितजी आपसे बड़ा विद्वान और भद्र पुरुष और कौन है ? आप ही देवी को बलि में अपना शीश दे दीजिये। " पंडित घबरा गए एवं बहाना बनाकर वहाँ से भाग गए। गुरुजी ने पाखंड का पर्दा फाश करके बाकी बची हुई सामग्री को एक बार ही हवन कुंड में डाल दिया, जिससे अग्नि की भीषण लपटें उठने लगीं।

- -

१. दि सिख रिलीजन -व्हॉल्युम-५ पृ०-६१

लोगों ने समझा देवी प्रकट हो गयी है । तब गुरुजी ने अपनी कृपाणनिकाल कर सिखों को बताया कि यही दुर्गा है, यहीं शक्ति है, यही उसका वरदान है, यही संतों की रक्षा एवं दुष्टों का नाश करती है। [१]

दशमेशजी ने रामायण महाभारत, श्रीमद्भागवत गीता और अन्य पुराणों का हिन्दी में अनुसरण करने के लिए अनेक कवियों को नियुक्त किया था । इसका एक मात्र उद्देश्य अपने शिष्यों को न्यायोचित धर्म कर्म की भावना की ओर प्रेरित करना था। गुरुजी ने राम और कृष्ण को भगवान अर्थात ईश्वरीय अवतार न मानकर केवल महापुरुष के रूप में ही माना है । ईश्वर का कोई माता-पिता, जाति-पाति नहीं है यथा-

प्रभु जाति न पाति न जोति जुतं।।
जिह तात न मात न भ्रात सुतं ।। [२]

उन्होंने अपने संबंध में भी यही आदेश दिया था कि उन्हें कोई ईश्वर का अवतार न माने , वे सर्वथा मानव हैं और कुछ नहीं । यदि उन्हें कोई ईश्वर मानेगा तो नर्क का भागी होगा। यथा-

जो मोको ईश्वर उच्चरि हैं, ते नर नरक कुंड महि परि हैं।
मैं हो परम पुरुष को दासा । देखन आयो जगत तमासा ।। [३]

गुरु गोविंदसिंहजी एक ईश्वरवादी थे । मूर्ति-पूजा का उन्होंने बराबर खंडन किया और स्पष्ट किया कि प्रेम के बिना सगुण अथवा निर्गुण ईश्वर को मानना व्यर्थ है । प्रेम के द्वारा ही ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है ।

वे समदृष्टा थे । वे समस्त प्राणियों को एक ही पिता की संतान समझते थे । उनका एक निश्चित मत था कि जो प्रभु से प्रेम करना चाहता है उसे पहले प्राणियों से प्रेम करना सीखना चाहिये,क्योंकि सबके हृदय में एक ही ईश्वर व्याप्त है ।

- -

१. ईवोल्यूशन ओफ खालसा व्होल्युम -।। - इन्दु भूषण बनर्जी पृ० ९७-१०७
२. अकाल-स्तुति पृ० २७
३. विचित्र नाटक-पृ०-४०

स्त्रियों के प्रति उनमें अत्यधिक आदर भावना थी । युद्ध में यदि पराजित प्रदेशों की स्त्रियाँ उनके अधिकार में आ जाती थी तो वे उनके साथ शिष्टता और आदर का व्यवहार करते थे और उन्हें उनके परिवार वालों के पास सुरक्षित भेजना और अपना कर्तव्य समझते थे ।

गुरु गोविंदसिंहजी ने ऐसी अनेक संस्थाओं का अंत किया जो भ्रष्टाचार और अनाचार को बढ़ावा देती थी, और सांस्कृतिक एकता में विघ्न स्वरूप बनी हुई थी । उन्होंने खालसा पंथ चलाकर इन सबको समाप्त किया । उन्होंने हिन्दू-सिक्ख एकता पर बल दिया और स्पष्ट किया कि सिक्ख भी हिन्दु जाति से उत्पन्न हुए हैं, इसलिये उनका अटूट सम्बन्ध है । देश के अत्याचारों एवं निरंकुश शासन से मुक्त कराना उनका परम धर्म है ।

गुरुजी धर्म-परायण वीर पुरुष थे । प्रारम्भिक जीवन में ही उन्होंने कठिनाइयों का सामना तथा बलिदान, धैर्य और निर्भयता पूर्वक करने का पाठ सीख लिया था । वे दृढ़ संकल्पी थे और अपने संकल्प पर प्रकृति के नियमों की भांति अटल रहते थे । उनका सम्पूर्ण जीवन संघर्षमय परिस्थितियों का सामना करने में ही व्यतीत हुआ। अनेक मतभेद, विरोध,प्रतिद्वंद्विता और आपत्तियों की आंधी तूफान भी उनको प्रशस्त मार्ग से विचलित न कर सके । वह ईश्वर से सदैव यही प्रार्थना करते थे कि हे ईश्वर तू मुझे ऐसी शक्ति दे कि प्रत्येक अवसर पर मैं अपने नियमों का पालन भली-भांति कर सकूँ मुझ से शुभकर्म सदैव होते रहे - । यथा-

> देह शिवा वर मोहि इहै, शुभ कर्मन ते कबहूं न टरौं।
> न डरौं अरि सों जब जाइ लरौं।निश्चय कर अपनी जीत करौं।
> अरु सिख हौं अपने मन को, इह लालच हौं गुण हौं उचरौं।
> जब आवक अउध निदान बनै । अतही रण मैं तब जूझ मरौं।। [१]

---

१. चंडी चरित्र, छंद सं० ३१-गुरु गोविंदसिंह

गुरु गोविंदसिंह एक सफल सेनानायक थे । अपनी रणकुशलता के कारण ही नीच, पददलित व्यक्तियों से ही उन्होंने ऐसी समर्थ और योग्य सेना तैयार की थी, जिसने मुगल शक्तिशाली सेना से कई बार टक्कर ली थी ।

उनका वैयक्तिक प्रभाव ही उनके सैनिकों पर विशेष रूप से पड़ा। इसी कारण वे युद्धों में सदैव विजयी होते रहे । वे कर्मनिष्ठ योगी थे । वे देश जाति के हेतु उन्होंने अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया अपने निजी , पारिवारिक सुख से जाति और देश के सुख को सर्वोपरि समझा । वे त्याग की भावना से परिपूर्ण मानवता की मूर्ति थे । शरणागत की रक्षा करना वे अपना पुनीत कर्तव्य समझते थे । उनके राज्य में सभी ~~सं वत्सल एवं~~ सानंद जीवन व्यतीत करते थे । गुरुजी की आज्ञाकारी पुत्र, सहृदय पिता एवं वत्सल स्वामी थे । माता की आज्ञा का पालन करते हेतु ही वे इच्छा न रहते हुए भी आनंदपुर छोड़कर चले गए थे, यद्यपि उसका परिणाम इतना घातक हुआ था जिसमें उनके चारों पुत्रों को बलिदान होना पड़ा । अपने पुत्रों को भी उन्होंने वीरता और धर्मपरायणता की शिक्षा दी थी जिसके परिणाम-स्वरूप उनके सात और नौ वर्ष के पुत्रों ने सब सुखों के प्रलोभन को त्यागकर धर्म की रक्षा के लिये अपने को बलिदान कर दिया ।

गुरु गोविंदसिंह अपने में अद्भुत विविधता लिये हुए थे, जो कहीं कहीं विरोधाभास सी प्रतीत होती है । एक आध्यात्मिक पुरुष और सांसारिक व्यक्तित्व, एक योद्धा और एक ऐसी गद्दी के स्वामी, जिसके पीछे नौ पीढ़ियों की उपार्जित प्रतिष्ठा , वैभव एवं असंख्य अनुगामियों का समूह - ये सभी बाते कहीं पर एक दूसरे से विरोधी प्रतीत होती हैं किंतु गुरु गोविंदसिंहजी के व्यक्तित्व ये सभी बातें इस प्रकार घुल मिल गई है कि यह निर्णय करना कठिन प्रतीत होता है कि उनके जीवन का कौन सा पक्ष दूसरे की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है ।

गुरु गोविंदसिंहजी ने जिस पंथ का निर्माण किया था, वह धर्म की रक्षा के लिए था। वह धर्म, जिसकी रक्षा के लिए श्रीकृष्ण ने कहा था कि जब धर्म की हानि होती है मैं अवतार धारण करता हूं इसी कथ्य को प्रकारांतर से गुरु गोविंदसिंह जी ने अपने शब्दों में कहा- कि मेरा जन्म 'धर्म चलावन संतन उबारन के लिये हुआ है। धर्म के इस कार्य में संतों की रक्षा और दुष्टों का नाश बहुत महत्वपूर्ण है, इसी दृष्टि से गुरुजी द्वारा किए सशस्त्र संग्रामों को 'धर्म युद्ध' कह कर पुकारा जाता है।

गुरु गोविंदसिंहजी एक राष्ट्रनिर्माता थे। उनका सबसे महत्वपूर्ण कार्य एक पीड़ित, दलित और आत्मविस्मृत जाति को एक अदम्य आत्म-विश्वास से पूरित शक्ति में परिवर्तित कर देने का था। भारत का तत्वकालीन हिंदु समाज असंख्य टुकड़ों में बांटा हुआ था, जिसका उच्चवर्ग या तो धार्मिक पाखंडों और बाह्याचारों में निमग्न था अथवा अपने मिथ्या गौरव और जातीय अहंकार को लेकर मुगल शक्ति की सेवा में दत्तचित्त था। उस समाज के शताब्दियों से उपेक्षित वर्ग को अपना सहयोगी बनाकर गुरु गोविंदसिंहजी ने उसमें असीम शक्ति एवं आत्म विश्वास का संचार कर दिया।

लोगों में अन्याय का प्रतिरोध करने के लिये जिस शक्ति संचार की आवश्यकता थी उसके लिए गुरु गोविंद ने अपने पूर्ववर्ती गुरुओं की भक्ति पद्धति में वीर रूपकों का समावेश किया। सम्पूर्ण भक्ति-काव्य में ईश्वर के सृष्टि का निर्माण एवं पोषण करने के गुणों के वर्णन का प्राधान्य है। परन्तु ईश्वर का एक और रूप भी है - विनाश करने वाला रूप गुरु गोविंद सिंह जी ने अपनी रचनाओं में ईश्वर के निर्माण एवं पोषण गुणों के साथ ही उसके विनाशकारी स्वरूप का भी बड़े मनोयोग से चित्रण किया है। अनेक स्थलों पर वे कहते हैं -

"या कलि में सम काल कृपान के,
भारी भुजान को भारी भरोसो।"

अर्थात जिस ' काल-पुरुष ' ने बड़े-बड़े देवताओं , दैत्यों, सम्राटों को क्षण भर में समाप्त कर दिया उसके सम्मुख कोई टिक सके ऐसी शक्ति किस में है ? कदाचित यह कहकर उन्होंने अपने युग की उस मदान्ध मुगल-सत्ता की ओर संकेत किया जिसकी विशाल शक्ति के सम्मुख उस ' काल पुरुष ' का भरोसा ऊपर ही वे खड़े हुए थे ।

गुरु गोविंदसिंहजी ने अपने सम्पूर्ण साहित्य में परमात्मा के अगणित नामों का प्रयोग किया है किंतु इनमें ' काल ' नाम उन्हें सर्वाधिक प्रिय है । मध्यकालीन भक्तों की रचनाओं में ईश्वर के लिए विविध नाम प्रयुक्त किए गए हैं किंतु यह नाम कहीं दिखाई नहीं देता । पौराणिक साहित्य में अवश्य इस नाम की चर्चा हुई है । विष्णु पुराण में लिखा है-

' हे द्विज । परब्रह्म का प्रथम रूप पुरुष है अव्यक्त(प्रकृति) और व्यक्त (महदादि) उसके अन्य रूप हैं तथा सबो क्षोभित करने वाला होने से) काल उसका परमरूप है । [1]

' काल ' का वर्णन विष्णु पुराण में और भी मिलता है-
' हे विप्र । विष्णु के परम (उपाधि रहित) स्वरूप से प्रधान और पुरुष ये दो रूप हुए , उसी (विष्णु) के जिस अन्य रूप के द्वारा वे दोनों (सृष्टि और प्रलय काल में(संयुक्त और वियुक्त होते हैं, उस रूपान्तर का ही नाम ' काल ' है । [2]

अपने साहित्य में गुरु गोविंदसिंह ने ईश्वर के उस अप्रचलित नाम का प्रयोग विशेष उद्देश्य से प्रेरित होकर किया । उन्होंने बड़े विश्वासपूर्वक कहा कि - ' जिस ' काल ' ने शुंभ, निशुंभ,धूम्रलोचन चण्ड-मुण्ड,महिषासुर, चामर,रक्तबीज आदि राक्षसों को क्षणभर में नष्ट कर दिया ऐसी स्वामी का सहारा पाकर भला मुझे किसकी परवाह है । [3]

---

१. विष्णु पुराण ।।१५।।
२. -वही- ।।२४।।
३. दसमग्रंथ -पृ० ४५

' काल ' को उन्होंने ' अकाल ' सर्वकाल, महाकाल ,श्रीकाल आदि अनेक नामों से पुकारा है । काल के रूप में उन्होंने ईश्वर के वीर रूप औरउग्र रूप की प्रतिष्ठा की । डमरू बजाते हुए , फणिधर के समान फुफकारते हुए , बाघ के समान दहाड़ते , दामिनी के समान हंसते, रक्त पीते हुए अष्टायुध धारण किए, सिंह पर सवार,अपनी दाढ़ में सभी को चबाते हुए भयावह रूप का चित्रण उनके साहित्य में अनेक स्थानों पर हुआ है । उनकी रचना ' अकाल-स्तुति में ऐसे अनेक प्रसंग देखे जा सकते हैं ।

गुरु गोविंदसिंह जी के सम्मुख ' काल ' रूप की कल्पना भी अस्त्र शस्त्र युक्त है । जनता के सम्मुख ईश्वर का वंशी बजाने, गौएं चराने,माखन चुराने का रूप ही प्रमुख था । उन्होंने उसके सम्मुख ' खड्गपाणि ' यथा-

' खड्गपाणि की कृपा ते पोथी रची विचार ' [१]

कृपाणपाणि - ' कृपाणपाणि ते जपै । अनंत थाट ते थपै। [२]

बाणपाणि- ' नमो बाणपाणं । नमो दण्ड धारियं ।। [३]

असिपाणि- ' धनुषधारिणी आदि अनेक वीररूप रखे ।

ईश्वर के वीर रूप और शस्त्रों के प्रति उनकी इतनी तन्मयता थी कि उनकी दृष्टि में शस्त्र और शस्त्रधारी में कोई अंतर ही न था । स्वयं ' खड्ग ' ही खड्गपाणि का प्रतीक बन गया । वीर कार्यों के प्रसंग में शस्त्रपूजा इस देश के प्राचीन परम्परा रही है । गुरुगोविंदसिंह ने अपने व्यक्तित्व और साहित्य द्वारा इस परम्परा को और मुखर किया । उन्होंने अपने ' विचित्र' नाटक ग्रंथ का प्रारम्भ ही खड्ग स्तुति से किया है-

नमस्कार श्री खड्ग कउ करौं सु हितु चितु लाइ।
पूरन करौं ग्रंथ इह, तुम मुहि करहु सहाइ ।। [४]

गुरुजी इसमें घोषित करते हैं कि संतों के सुख का दुष्टों के दलन का, संसार की स्थिति का, सृष्टि के उद्धार का, और मेरी प्रतिज्ञा के पालन का एक मात्र साधन , तेग ' ही है उसी की जय हो । [५]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

१. दशमग्रंथ, पृ०-३८६
२. वही ४४
३. वही ४५
४. वही ३६
५. वही ३६

काव्य-वैशिष्ट्य :-

गुरु गोविंद सिंह संत पुरुष तो थे ही किंतु एक विद्वान कवि भी थे। उनका सम्पूर्ण साहित्य विविध-रूपों में दिखलाई पड़ता है। वीर कवि के रूप में उन्होंने विपुल साहित रचा किन्तु उन्होंने वीर-काव्य की रचनाएं किसी लोभ के वशीभूत होकर नहीं की थी जैसा कि तत्कालीन दरबारी कवि किया करते थे। गुरु गोविंदसिंह का महत्व सभी आश्रय प्राप्त कवियों से सर्वथा पृथक् है। हिन्दी में वीर रस के वे एक मात्र कवि हैं, जिनकी रचनाओं की पृष्ठभूमि में कोई सांसारिक आकांक्षा नहीं है, जिन्हें किसी आश्रयदाता को प्रसन्न नहीं करना है। साहित्य सृजन के लिये उनकी एक मात्र आकांक्षा " धर्म युद्ध का चाव " है यथा -

" दशम कथा भागौत की भाषा करी बनाई।
अवर वासना नाहि प्रभु धर्म युद्ध को चाइ ।। [१]

वे काव्य-रचना दूसरों को प्रेरित करने के लिये नहीं करते थे, अपितु स्वयं प्रेरित होने के लिये करते थे।

इनकी रचनाओं में उदात्त भावना का प्रकटीकरण स्थान-स्थान पर हुआ है। यही भावना अन्य काव्य गुणों से संयुक्त होकर उन्हें हिन्दी वीर-काव्य के उच्चतम स्थान पर प्रतिष्ठित करती है। गुरु गोविंदसिंह हिन्दी के एक मात्र ऐसे कवि हैं जिनका युद्ध-चित्रण स्वानुभूतिपूर्ण है। किंतु खेद का विषय है कि भूषण,चंद बरदाई आदि वीर कवियों के समान गुरु गोविंदसिंह कावालोच्य ग्रंथों में कहीं उल्लेख नहीं मिलता है।

गुरु गोविंदसिंहजी ने अपने वीर काव्यों में युद्ध की प्रवृत्ति में आमूल परिवर्तन किए। उन्होंने लोगों के मन में बैठी तीन भावना को निकालकर - " सवा लाख से अकेले लड़ने का अदम्य साहस लोगों में भरा। इतना ही नहीं उन्होंने युद्ध करने के साथ युद्ध दर्शन में भी मूलभूत परिवर्तन किए। [१]

- -

१. दशम ग्रंथ पृ०-५७०

गुरु गोविंद सिंह और उनके आश्रित कवियों का सम्पूर्ण साहित्य इस युद्ध दर्शन को ही दर्शाता है । उन्होंने सम्पूर्ण प्राचीन समयोपयोगी, भारतीय साहित्य का भाषानुवाद किया और करवाया । अपने आप में यह एक महान और महत्वपूर्ण कार्य था । सम्पूर्ण इतिहास में इस दृष्टि से इतना महत्वपूर्ण आयोजन हमें और कहीं उपलब्ध नहीं होता है ।[1]

उन्होंने अपनी वाणी द्वारा सैनिकों में केवल युद्ध का नहीं अपितु ' धर्म युद्ध ' का भाव भरा, और यह विश्वास उत्पन्न किया कि वे जो कार्य कर रहे हैं वह सामान्य सांसारिक कार्य नहीं , ईश्वरीय कार्य है । उन्होंने अपने सैनिकों को युद्धोपयोगी वेश दिया, जय घोष दिया, नाम दिया और आस्था दी । उसका परिणाम यह हुआ कि उनके देहावसान के पश्चात् कल्पनातीत कष्ट सहते हुए, अपने शीश के लिए अस्सी-अस्सी रुपये का मूल्य बंधवाते हुए, जंगलों, पहाड़ों और रेगिस्तानों में भटकते हुए भी उन्होंने आत्मविश्वास और अपनी अन्तिम विजय को इस दीप को बुझने नहीं दिया, जिसकी ज्योति गुरु गोविंदसिंहजी ने स्वयं प्रज्ज्वलित की थी ।

गुरु गोविंदसिंह जी ने अपना युद्धाक्रोश मुसलमानों के विरुद्ध नहीं तुर्कों के विरुद्ध प्रदर्शित किया है, जिन्हें उन्होंने म्लेच्छ कहकर भी पुकारा है। वस्तुत: उस युग में मुसलमान शब्द जहां धार्मिक विश्वासों को महत्व रखता था वहां ' तुर्क ' शब्द उस राजनीतिक शक्ति का परिचायक था जिसके विरुद्ध गुरु गोविंद सिंह और शिवाजी को युद्ध करना पड़ रहा था । अनेक मुसलमान गुरु गोविंद सिंह के मित्र और स्नेही थे । सिढौरा के पीर बुद्धशाह का भंगाणी के युद्ध में उनकी सहायता करने वाले नबीखान, गनीखान, काजी पीर मुहम्मद रायकाल्हा आदि सज्जन मुसलमान ही थे ।

---

१. दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय पृ०-३१६

तुर्क जाति के लोगों ने किस प्रकार मुसलमान संसार पर अपना प्रभाव स्थापित कर, अरबी और ईरानी जाति के लोगों को नेतृत्वहीन कर दिया, इसका विवेचन दिनकरजीने अपनी पुस्तक " संस्कृति के चार अध्याय " में किया है । [१] गुरु गोविंदसिंह ने तत्कालीन हिन्दु-तुर्क-संघर्ष को भारत के प्राचीन देवासुर-संग्राम की परम्परा का ही एक अंग माना । अन्य अवतारों के साथ ही जहां उन्होंने अपने आपको भी उसी अवतार परम्परा की एक कड़ी मानकर अपने जीवन का उद्देश्य रखा - वहां दूसरी ओर उन्होंने पठानों, मुगलों, सैयदों और शेखों को उसी आसुरी परम्परा का अनुवर्ती माना जिसके साथ इस देश की राष्ट्रीय शक्ति का संघर्ष युगों से चला आ रहा था ।

गुरु गोविंदसिंह जी ने सभी हिन्दु शक्तियों का समन्वय किया । शैवों, शाक्तों, वैष्णवों द्वारा समादृत साहित्य का श्रद्धापूर्वक भाषानुवाद करना तथा करवाना इस समन्वय प्रयास का सबसे बड़ा प्रमाण है । गुरु गोविंद सिंह जैसी बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न व्यक्तित्व हमें तत्कालीन भारतीय इतिहास में दूसरा नहीं दिखाई देता । वे एक भक्त थे । भक्त का संसार में कोई शत्रु मित्र नहीं होता । वे एक योद्धा भक्त थे अतः वे द्विमुखी व्यक्तित्व वाले भक्त थे । वे मानव मात्र से स्नेह करते थे । वे संसार में एक ही परम शक्ति का निवास मानते थे - इसी भाव की पुष्टि उनकी सभी रचनाओं में होती है ।

" देहरा मसीत सोई पूजा औ निमाज ओई ,
मानव सबै एक पै अनेक को भ्रमाउ है । [२]

---

१. संस्कृति के चार अध्याय, पृ०-२२६-२७

२. दशम ग्रंथ, पृ०-१६

कला पक्ष-

गुरु गोविंदसिंह जी के काव्य का भाव पक्ष जितना सबल एवं महान है, उतना ही उनका कला पक्ष भी सफल है। पूर्ववर्ती गुरुओं से उनमें कलात्मकता अधिक है। साहित्य रचना के अतिरिक्त उन्हें साहित्य शास्त्र का पूरा ज्ञान था। हिन्दी साहित्य में वह युग रीतिकाल का था। उस समय हिन्दी कविता अपनी प्राण प्रतिष्ठा खोकर कलात्मकता के कृत्रिम घेरे में चक्कर काट रही थी। कविता के नाम पर अलंकार और छंदों का प्रभाव मात्र हो रहा था। अलंकार और पिंगल के पीछे पड़कर कवियों ने कविता की दुर्गति कर रखी थी। ऐसे समय में गुरु गोविंदसिंह के काव्य में चमत्कार और सूक्ति के प्रयोग अवश्य हुए हैं, परन्तु उनका कवि अपनी प्रतिभा का दुरुपयोग नहीं कर रहा था। वह कला और साहित्य के प्रति होने वाले अपने कर्तव्य के प्रति सजग था। उनकी प्रतिभा कलात्मकता को साध्य नहीं अपितु साधन के रूप में प्रयोग करना जानती थी।

भाषा-

हिन्दी और पंजाबी के अतिरिक्त गुरुगोविंद सिंह जी फारसी, अरबी और संस्कृत के भी ज्ञाता थे। हिन्दी के अतिरिक्त उन्होंने फारसी और पंजाबी भाषा में भी काव्य-रचना की। पंजाबी में उन्होंने 'माझी' भाषा का प्रयोग किया है। माझी में उन्होंने 'चंडी दी वार' की रचना की।

फारसी भाषा में उन्होंने 'जफरनामा' की रचना की है। फारसी कविता का उदाहरण देखिए-

कसे कौल कुरआं मुनद एतबार।
हमा रोजि आखिर शवद मुरद ख्वार।[1]

उनकी कविता में शुद्ध बृज भाषा के भी प्रयोग पाए जाते हैं। राजस्थानी के अतिरिक्त खड़ी बोली के भी सफल प्रयोग उनकी भाषा में मिलते हैं।[2]

---

१. जफरनामा, पृ०-१४ अवतार सिंह
२. हिन्दी साहित्य कोश, पृ०-८४८

जैसे - जौन जगत में कबहूं न आया
याते सभौं अजौन बताया ।

छंदों में उन्होंने 'चौबोला' छंद का प्रयोग किया । ऐसे छंदों में उन्होंने एक साथ तीन-चार भाषाओं का प्रयोग किया है । उन्होंने नौ रसों का प्रयोग किया है किंतु गुरुजी 'वीर रस' के सिद्धेश्वर कवि माने जाते हैं । उनका क्षेत्र युद्ध ही था । अतः वीर कवि के रूप में ये सत्रहवीं सदी के सर्वश्रेष्ठ वीर कवि माने जाते हैं ।

हिन्दी साहित्य में गुरु गोविंद सिंहजी की वीर रसात्मक रचनाओं का उचित मुल्यांकन नहीं हुआ है। इसका प्रमुख कारण यह रहा है कि उनकी रचनाएं देवनागरी लिपि में उपलब्ध न होकर फारसी और गुरुमुखी लिपियों में हैं । हिन्दी के इतिहासकार गुरु गोविंदसिंह जी की दो एक रचनाओं का नाम गिनाकर अपने दायित्व का निर्वाह मान लेते हैं साथ ही दो एक विशेषताओं का ही उल्लेख वे कर देते हैं । वस्तुतः उनके रचनाओं को गंभीरता पूर्वक समझने की आवश्यकता है । उनके बहुत से ग्रंथों का अभी तक अध्ययन नहीं हो पाया है । उनकी रचनाओं में अन्य सिख गुरुओं की अपेक्षा अधिक साहित्यिक सौष्ठव है ।

गुरुजी की रचनाएं विविध विषयों से संबंधित है अतः अपने भावों को अभिव्यक्त करने के लिए उन्होंने विविध काव्य शैलियों को अपनाया । किसी वस्तु की मानसिक या भावनात्मक अनुभूति के अनेक तत्व संघटित होके एक निश्चित आकार प्राप्त करते हैं । रूप किसी वस्तु के आन्तरिक कारणों पर प्रकाश डालता है अथवा यों कहें वह उसके अस्तित्व का कारण , जिसके द्वारा उस वस्तु के उपादान को आकार प्राप्त होता है । २

- -

१. मत्स्यअवतार, चौबीस अवतार-छंद सं०१२

कलावृत्ति में रूप का तात्पर्य उन समस्त तत्वों का एक सम्मिलित आकार है जिससे कि उनका प्राधान्य का लोप हो जाता है और काव्य सृजन की प्रक्रिया में रूप, विषय वस्तु, अभिव्यक्ति और शैली में अभिन्नता स्थापित होजाती है। गुरुजी को इस रचना पद्धति के लिये मुक्तकों से बड़ी सहायता मिली। यद्यपि इन्होंने प्रबंध शैली का भी सहारा लिया किंतु वह इतिवृत्तात्मक वर्णनात्मक अथवा आख्यान शैली तक ही सीमित रह गए, उनमें रसात्मकता और तल्लीनता कम प्रतीत होती है। प्रबंध शैली के लिए जिस काव्य आयोजना की आवश्यकता पड़ती है, उसकी ओर ध्यान देने का उनके पास समयाभाव प्रतीत होता है। प्रबंध शैली के लिए दोहा, चौपाई, छंद सर्वप्रिय रहे हैं। उनके द्वारा अपनाई गई दूसरी शैली संवादशैली है। संवादों में प्रवाह, भाषा की सरलता, सहजता की बहुत आवश्यकता होती है। संवाद शैली में वृहद् कथानक, घटना, वातावरण आदि का निर्माण प्रबंध के सदृश हो सकता है। सारा प्रबंध दो या दो से अधिक व्यक्तियों के संवादों का परिणाम होता है, तथापि संवाद शैली का स्वतंत्र अस्तित्व भी है। गुरुजी की रचनाओं में 'नृप कुंवरि चरित्र' और 'श्री रणथम्भ कला चरित्र' संवाद शैली के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इनमें कवि ने दो व्यक्तियों की बातचीत द्वारा अपने सिद्धांतों की महत्ता का प्रतिपादन किया है। उनमें भाषा का प्रवाह और सहज बोधगम्यता दृष्टव्य है।

गुरुजी ने तत्कालीन एवं अन्य शैली 'समस्या पूर्ति' में रचनाएं नहीं की थी, तथापि इस शैली का प्रभाव उनके कुछ छंदों में दिखाई पड़ता है। गुरुजी की सुन्दर रचनाएं मुक्तकों के रूप में दिखाई पड़ती हैं। समूचे रीतिकाल में वे श्रेष्ठ मुक्तककार हुए। भक्ति तथा रीतिकाल के मुक्तकों की रचना करने की उनमें अद्भुत क्षमता थी।[१]

---

१. गुरु गोविंद सिंह और उनका काव्य पृ०-२८६

मध्यकालीन संतों और भक्तों ने पदों की पर्याप्त मात्रा में रचना की है। गुरु गोविंदसिंह में जहां सभी विषयों और रसों का प्रतिपादन और परिपाक मिलता है, वहीं मध्यकालीन सारी रचना पद्धतियों में अपने विचार व्यक्त करने की क्षमता का भी पता चलता है। यह काव्य रचना की सबसे प्रिय गेय रचना शैली है। इसमें संगीत का अनुपम परिपाक होता है। पदों के साथ प्रायः किसी न किसी राग का निर्देश मिलता है। इन पदों में संगीत का सहज स्वाभाविक स्वरूप रहता है न कि किसी स्वगुर और शास्त्रीय बाज विशेष के आग्रह से मुक्त राग का हृदय के भावनाओं की निश्छल आत्माभिव्यक्ति की इतनी सुन्दर शैली दूसरी नहीं है। दशमेश जी ने संतों की पद शैली का आधार अनेक आध्यात्मिक प्रसंगों में लिया है। उनके 'हजारेशब्द' की रचना पद-शैली में ही है। मार्मिक एवं सूक्ष्म भावाभिव्यंजन का उदाहरण प्रस्तुत है -

'रे मन इह बिधि जोग कमाउ।
सिंगी साच अकपट कंठला ध्यान बिभूत चढ़ाउ।
ताती गहु आत्मबसि कर की भिच्छा नाम आधारम्।
बाजे परम तार ततु हरिको उपजै राग रसारम्।
उघटै तान तरंग रंग अति गिआन गीत बंधानं।
चकि चकि रहे देव दानव मुनि छकि छकिब्योम बिधानं।
आतम उपदेस भेस संजम को जापु स अजपा जापै।
सदा रहै कंचन सी काया काल न कबहु ब्यापै।।[1]

मुहावरे और लोकोक्तियां - भाषा को अधिक आकर्षक बनाने के लिये मुहावरे एवं लोकोक्तियों का प्रयोग किया जाता है। इनसे भावों की प्रभावात्मकता की भी वृद्धि होती है। गुरुजी की रचनाओं में मुहावरों के प्रयोग अधिक हुए है।

उदाहरण -

कलयो चलो तब लो कहानी। जब ला गंग जमुन को पानी।[2]
गाल बजाय बजाय के दुंदभ ज्यों घन सावन के घहरार।[3]

- -

१. हजारे दे शब्द, श्री दशम गुरु ग्रंथ संख्या २ पृ०-७१०
२. चौबीस अवतार - छंद सं० २५
३. कृष्णवतार - छंद सं० १६६५

अलंकार योजना - गुरुजीने अपने काव्य में अलंकारों का भी प्रयोग किया है। इन्होंने मुख्यत: तत्कालीन वातावरण, शास्त्र ज्ञान, घरेलु जीवन से उपमानों का विशेष चयन किया है। नायक-नायिका की मुद्राओं, विभिन्न आन्तरिक मनोदशाओं एवं शारीरिक सौंदर्य के चित्रण के लिए प्रकृति और पशु पक्षियों का अवलम्बन किया है। उनका उपमान विधान, एवं चित्र योजना संबंधी अध्ययन स्वयं एक स्वतंत्र विषय कहा जा सकता है। उपमान, उत्प्रेक्षा, रूपक, अनुप्रास यमक, वक्रोक्ति आदि अलंकार स्वाभाविक रूप से प्रयुक्त हो गए हैं। यथा -

यमक- सुधि पड़ी प्रभु कोऊ लिया, सुधि नारि नवाइ के नारि सुनाई।[१]

उपमेय- हीर कैसी हारावथ हास कैसी हस्तानेर
क्षपाकर कैसी छवि कालिन्दी के कूल के।[२]

उल्लेख- करुणालय हैं। अघालय हैं।।
खल खंडन हैं। महि मंडन हैं।।[३]

अतिशयोक्ति- रक्त बीज दे चल्यों नगारा। देव लोग लौं सुनो पुकारा।
कंपी भूम गगन थहराना। देवन जुति दिव राज डराना।[४]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि गुरु गोविंदसिंहजी ने काव्य के भावागत एवं कलागत समस्त पक्षों के उद्घाटन में जिस निपुणता का परिचय दिया है, अलंकारों, छंदों का जो अद्भुत प्रदर्शन किया है, समस्याओं और संग्रामों में व्यस्त रहने पर भी जिस सहृदयता एवं भावुकता का चरम प्रकाशन किया है, वह उनके कवि वैचित्र्य का प्रमाण तो है ही, उनके काव्य की अभूतपूर्व सफलता भी है।

- -

१. कृष्णावतार - छंद सं० २१५८
२. अकालस्तुति - छंद सं० २६४
३. जापु - छंद सं० १७०
४. रुद्र अवतार - छंद सं० १६

दार्शनिक एवं धार्मिक भावना -

भारतवर्ष दार्शनिकों, संतों का देश रहा है । यहां के चिंतकों की चिंतन-धारा ने बहुमुखी होकर जीवन के विविध क्षेत्रों का आवश्यकतानुसार परिष्कार तथा उन्हें उपादेय बनाने का प्रयत्न किया है । इस देश की प्राकृतिक स्थिति ने भी पारलौकिक चिन्तन-धारा को प्रोत्साहित करने में विशेष सहायता की है । इस चिंतनधारा का देश पर इतना व्यापक प्रभाव पड़ा कि साधारण से साधारण व्यक्ति के जीवन को भी इसने विशिष्ट रूप से प्रभावित किया । पाश्चात्य देशों में दर्शनशास्त्र को विद्वानों ने मनोविनोद का साधन माना, किंतु भारतवर्ष में दर्शन तथा धर्म, तत्वज्ञान तथा भारतीय जीवन का गहरा संबंध है । त्रिविध ताप से संतप्त जनता की शान्ति तथा क्लेशमय संसार से दुख निवृत्ति करने के लिये ही भारत में दर्शनशास्त्र का आविर्भाव हुआ है । १

भारतीय संतों एवं विचारकों ने चली आती हुई चिन्तनधारा में समय-समय पर अनुकूल मोड़ देकर उसे जनसाधारण के लिये उपयोगी बनाया इसलिए चिंतन के प्रवाह में वैविध्य का आना स्वाभाविक था । संतों ने इस चिंतनधारा को पारलौकिक मोड़ दिया । इस प्रकार भारतीय-विचार-दर्शन लौकिक तथा पारलौकिक सभी तत्वों से पूर्ण है । उपयोगितावाद के आग्रह ने भारतीय जीवन में इस भावना को महत्व दिया कि जब जब धर्म की ग्लानि होती है, अधर्म बढ़ता है तो कोई विशेष शक्ति अवतार लेकर इस अव्यवस्था में व्यवस्था की स्थापना करती है । संतों ने इसी तथ्य को आध्यात्मिकता का आवरण पहनाकर प्रस्तुत किया, तथा लौकिक कार्यों के पीछे भी आध्यात्मिक आनंद की प्राप्ति के उद्देश्य को स्पष्ट किया । चाहे यज्ञ हो या अध्ययन, दान हो या ग्रहण, शत्रुओं का नाश हो या पीड़ितों की रक्षा, सभी कार्यों को करने से मुक्ति या कल्याण जैसा आलौकिक लाभ होता है । भारतीय दर्शन को सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसका उद्देश्य व्यावहारिक है।

---

१. भारतीय दर्शन-पृ०-१०

उनका लक्ष्य मानसिक अशान्ति को दूर करना तो है ही साथ ही ऐसा जीवन व्यतीत करना है जो राग द्वेष के तुमुल युद्ध से बहिष्कृत होने के कारण नितांत आदरणीय एवं स्पृहणीय है ।

गुरु गोविंदसिंह ऐसी ही संत-परम्परा के विशिष्ट योद्धा संत थे । वे अपने युग की जिन परिस्थितियों में कार्यरत थे, उन सबको परिप्रेक्ष्य में रखते हुए इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि एकान्त चिंतन के लिये उनके पास समयाभाव था । आध्यात्मिक विवेचन के अतिरिक्त उन्होंने अन्य साहित्यिक कृतियों का प्रणयन मुख्यत: लोकपक्ष को ध्यान में रखकर किया था । वे दर्शन या अध्यात्म के उच्चकोटि के चिंतन को अपने ग्रंथों में गंभीरता से प्रदर्शित नहीं कर सके हैं । यह उस युग की परिस्थितियों के अनुकूल भी था । अतएव यह स्वाभाविक है कि अध्यात्म तत्व के चिन्तकों या ऐकान्तिक साधकों को उसमें अपने विषय के अनुरूप सामग्री नहीं मिल सकती । १

गुरु गोविंदसिंहजी का जीवन पूर्णतया एक धार्मिक निष्ठावान वास्तविक संत का जीवन था । अपने पूर्ववर्ती संतों की परम्परा में वे भी ईश्वरवादी थे । गुरु नानक एवं अन्य गुरुओं तथा कबीरदास द्वारा प्रतिपादित ईश्वर संबंधी विचारों में गहरी समानता है । दोनो धर्म के व्यावहारिक रूप के कट्टर समर्थक थे। अत: इन विचारकों का मतवाद दार्शनिक न होकर सर्वसाधारण के लिये प्रस्तुत किया गया एक शुद्ध व्यावहारिक धर्म था , जिसका पूर्ण अनुसरण समाज में रहकर ही किया जा सकता था । इसी कारण गुरुओं ने सांसारिक जनता के बीच रहकर ही अपने उपदेश दिए और अपने व्यक्तिगत जीवन का आदर्श भी सबके सामने रखा । २

सिक्ख गुरुओं के संबंध में विशेष ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि गुरु नानक देव की गद्दी पर बैठने वाले किसी भी गुरु ने अपने को उनसे भिन्न नहीं माना।

- -

१. गुरु गोविंद सिंह और उनका काव्य, पृ०-२८८
२. उत्तरी भारत की संत परम्परा - पृ०३३६

इसी कारण गुरु नानक देव के पीछे आने वाले शेष नौ गुरु एक ही दीपक से जलाये गये। अन्य नव दीपकों की भांति अपने आदि गुरु के पूर्ण प्रतिरूप समझे जा सकते हैं और उनके संगृहीत व सुरक्षित सद्वचन रूपी मणियों की माला में भी इसी भांति उस एक की भावना का सूत्र निस्सृत माना जायेगा जिससे कभी गुरु नानक देव ने पहले पहल प्रेरण प्राप्त की थी । [१]

इतनी विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि गुरु नानक एवं गुरु गोविंद सिंह के ईश्वर संबंधी विचारों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है । अत: गोविंदसिंह की ` शक्ति-उपासना ` नानक पंथ में अपनी विशेषता रखती है। गुरु नानक के अनुसार धार्मिक जीवन एक साधना प्रधान अथवा निरंतर अभ्यास एवं शिक्षण में निरत रहने का जीवन है । इसे यापन करने के लिये उचित है कि अपने को उत्तरोत्तर-पूर्णता तक पहुंचाने की चेष्टा करता रहे । [२] अपने को ज्ञानी, पूर्ण पंडित-समझ लेने का अभिमान उसे नष्ट कर डालता है । जो सदैव कुछ न कुछ ग्रहण करते रहने के लिए अपनी ज्ञानेन्द्रियों के द्वार उन्मुक्त रखता है वही कुछ सीख सकता है । गुरु नानक का साधक कभी अपने को पूर्ण नहीं सकता , वह सदा सीखते रहने वाला शिष्य व सिक्ख है । [३]

ईश्वर का स्वरूप -

एक सच्चा निष्ठावान आस्तिक यह स्वीकार करता है कि ब्रम्हांड के संचालन की सूत्रधारिणी परम सत्ता है।वह अपनी सभी क्रियाएं किसी व्यापक नियम` हुकुम` के प्रति समर्पित समझता हुआ करता है ।

संत-मत में परमात्मा को निराकार, निर्गुण,अजर,अमर,अभय नित्य पवित्र माना गया है ।

- -

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा -पृ० ३३६
२ वही पृ० ३३६
३. वही पृ० ३४२

सिख गुरुओं ने इसी संत परम्परा का प्रभाव ग्रहण किया और अपने स्वाधीन चिंतन द्वारा उसे आगे बढ़ाया । परमात्मा सत्य स्वरूप निराकार एवं एक है । गुरु नानक ने अपनी रचना 'जपुजी' में यह स्पष्ट किया है - " एक ओंकार सतिनाम, करता पुरुख, निरभउ, निरवैर अकाल मूरति, अजूनि सैभं, गुरु प्रसादि, जपु, आदि सच्च, जुगादि सच्च, है भी सच्च, नानक होसी भी सच्च ।"[1] अर्थात वह एक मात्र सत्य स्वरूप स्वयंभू और नित्य पवित्र है । साथ ही उसे सच्चा कर्ता पुरुष बताकर सम्पूर्ण सृष्टि में परिव्याप्त माना है । उनका ओंकार निष्क्रिय, कोरा पारमार्थिक सत्य मात्र न होकर सर्वशक्तिमान है । उसका सत्य और कर्तृत्व सदैव विद्यमान है । न वह संसार से पृथक है और न संसार की कोई वस्तु उससे भिन्न है । इस प्रकार गुरु नानक का मूल दार्शनिक सिद्धांत सर्वात्मवाद के उस रूप की ओर संकेत करता है जिसके अनुसार उस नित्य निर्गुण, एक मात्र सत्य एवं व्यावहारिक असीम सत्ता के बीच कोई अन्तर नहीं है ।

गुरु गोविंद सिंह जी ने भी परमेश्वर की इन्हीं विशेषताओं का विशद वर्णन किया है -

नमो सरब काले । नमो सरब दियाले ।।
नमो सरब रूपे । नमो सरब भूपे ।।[2]

ईश्वर के स्वरूप का विवेचन करते हुए उन्होंने जापु साहिब के प्रारंभ में ही स्पष्ट कहा है -

चक्र चिन्ह अरु बरन, जाति अरु पांति नहिन जिह ।
रूप रंग अरु रेख भेख कोई कहि न सकत किह ।।[3]

परमात्मा को कोई व्यक्ति भौतिक पदार्थों से उसके सादृश की कल्पना करके नहीं बता सकता । उसका कोई न चिन्ह है, न वर्ण, जाति-पांति ही, रूप-रंग, रेखा, वेशभूषा से भी उसे नहीं बताया जा सकता । वह ठीक ऐसा ही है, यह कह सकना मनुष्य के सामर्थ्य की बात नहीं ।

---

१. जपुजी - प०१.
२. जापु साहिब-छंद सं०१६
३. वही छंद सं०१

कबीरदास ने भी इसी कठिनाई के लिए उस परमतत्त्व को ' कहणा, अकहणा' के बीच कहा । अतः वह व्यक्ताव्यक्त है, स्वानुभूतिगम्य है । [1]

ब्रह्म के इसी स्वरूप की अव्यक्तता को ध्यान में रखते हुए गुरु गोविंदसिंह जी ने कहा -

निरबूझ हैं । असूझ हैं । अकाल हैं । अजाठ हैं ।। [2]

अर्थात वाणी या शब्दों का तुच्छ आधार देकर उस ब्रह्म को सीमा में नहीं बांधा जा सकता । दशमेशजी ने प्रभु की अनंत शक्तियों का वर्णन करते हुए स्पष्ट लिखा है- वह डुबाये डुबाया नहीं जा सकता , सुखाने पर सुखाया नहीं जा सकता । शस्त्रों के आघात से उसका छेदन नहीं हो सकता और न ही उस ईश्वर का कोई शत्रु-मित्र है । [3] गीता में भी भगवान श्रीकृष्ण ने आत्मा के स्वरूप का वर्णन करते हुए आत्मा की इन्हीं विशेषताओं को प्रकट किया है । [4]

सिक्ख मत निर्गुणी संत मत के सदृश ब्रह्म की निराकार उपासना करता है । उस ब्रह्म का कोई आकार अथवा स्वरूप नहीं है । अतः उसकी प्रतिमा नहीं बनाई जा सकती । दशमेशजी ने सर्वत्र इसी रूप की चर्चा की है ।

संतों ने सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक ईश्वर के लिये 'अवतारवाद' की आवश्यकता नहीं मानी है । कबीर और गुरुनानकजी ने ईश्वरावतार का खुल कर विरोध किया । कबीर ने ' राम ' के परम्परागत रूप को ईश्वर के लिये ग्रहण किया है ।

दशमेशजी ने पुराणों में वर्णित चौबीस अवतारों का प्रायः वैसा ही वर्णन किया है , अतः यह प्रश्न उठाया जाता है कि गुरुजी को अवतारों में विश्वास था ? गुरुजी ने भ्रान्ति को उठने ही नहीं दिया है, क्योंकि चौबीस अवतारों का वर्णन करने से पूर्व ही उन्होंने अपना मत व्यक्त कर दिया है ।

क- काल सभन का करत पसारा ।।
अन्त काल सोई खापन हारा ।
आपन रूप अनन्तन धरही ।।

---

1. कबीर ग्रंथावली , पद-४२
2. जापु साहिब - छंद सं० ३७
3. ज्ञान प्रबोध - छंद सं० १२६
4. श्रीमद्भागवत गीता- २।२३, २।२४

आपन मध्य लीन पुन करही।।
इन महि सृष्टि सुदस अवतारा।।
जिन महि रमिया राम हमारा।।
अनत चतुरदास गुन अवतारु।।
कहौ जो तिन तिन कीए अखारु।।
काल आपनो नाम छपाई, आवरण के सिर दै बुरिआई।।
आपन रहत निरालम जगते, जान लए जा नामे जब ते ।। [1]

ख- जो चौबीस अवतार कहाए । तिन भी तुम प्रभ तनक न पाए।
सबही जग भर मैं भरमाये । तातैं नामु बिअंत कहाये । [2]

गुरु गोविंदसिंह की दृष्टि में दस अवतार अथवा चौबीस अवतारों से भी प्रभु महान है । वह स्वयं जन्म न लेकर भक्तों का संकट दूर करने के लिए कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को संसार में जन्म लेने के लिए भेजता है । उनका कार्य समाप्त हो जाने पर अपने में उन्हें लीन कर लेता है । भक्तों पर अपनी इसी असीम करुणा के कारण वह दीनबंधु ,करुणानिधि आदि नामों से पुकारा जाता है । उस सर्वशक्तिमान प्रभु को भक्तों की सहयता के लिये शरीर धारण नहीं करना पड़ता क्योंकि -

किन्हूं कहुं न ताहि लखायो । इह कर नामु अलख कहायो ।।
जौन जगत मैं कबहूं न आया । याते सभौ अजौन बताया ।। [3]

गुरु गोविंदसिंह के भगवद्विषयक विचारों का सबसे मूल्यवान एवं प्रामाणिक संग्रह जापु साहिब है । उसमें उन्होंने अवतारों का जो वर्णन किया है , वह केवल पौराणिक परम्परा का पालन मात्र है । उन्होंने प्राय: पुराणों से अधिकांश अवतारों का हिन्दी में अनुवाद मात्र किया है । इनमें आये हुए युद्ध एवं प्रेम के स्थलों का उन्होंने बड़ी रोचक शैली में वर्णन किया है, जो वस्तुत: उनकी अभिरुचि के अनुकूल भी था । इन अवतारों का उनकी निजी आस्था से कोई संबंध नहीं है । अपने जापु साहिब में ब्रह्म के सर्वशक्तिमान रूप का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं -

- -

१. चौबीस अवतार - चौपाई , ३,४,५
२. वही ७
३. वही १३

बतर चक्र करता । बतर चक्र हरता ।।
बतर चक्र दाने । बतर चक्र जाने ।।
बतर चक्र बरती । बतर चक्र भरती
बतर चक्र पाले । बतर चक्र काले ।।
बतर चक्र पारे । बतर चक्र वासे ।।
बतर चक्र मानये । बतर चक्र दानये ।। [1]

नाम महिमा - संतों ने नाम स्मरण और नाम-श्रवण को बहुत महत्वपूर्ण स्थान दिया है । भक्तों के अनुसार हृदय में भगवान का ध्यान, जिव्हा पर उसका नाम कीर्तन मन, वाणी और कर्म द्वारा होने वाले सम्पूर्ण पापों को नष्ट कर पवित्र भावना को भरने वाला अभ्यास है । [2]

संतों ने ईश्वर को अनेक नामों से स्मरण किया है । गुरु गोविंदसिंह जी ने कहा है -

`नमस्तं अनामं ।` [3]
नाम ठाम न जाति जाका रूप रेख न रंग । [4]

गुरु नानक देवजी ने भी नाम-स्मरण की महत्ता का गुणगान किया है। इसी परम तत्व को सतिनाम, कर्ता पुरुष कहा है । इसी के लिए अकाल शब्द का प्रयोग हुआ । गुरुमत में जिस शब्द को सबसे अधिक महत्ता मिली वह है - " १ ओंकार" । वेदों में भी ईश्वर का सबसे मूल प्रामाणिक रूप `ओऽम्` ही माना गया है । गुरु नानकजी ने अपनी पवित्र वाणी `१ ओंकार` से ही प्रारंभ की है । [5] गुरु गोविंदसिंह ने भी इसका समर्थन किया है -

प्रिथमै ओंकार तिन कहा । सो धुन पूर जगत मो रहा ।।
ताते जगत भयो बिस्तारा । पुरख प्रकृत जब दुहु विचारा ।। [6]

- -

१. जापु साहिब - चौपाई ६६,६७,६८
२. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय-डा०दीनदयाल गुप्ता पृ०५६४
३. जापु साहिब -छंद सं०-४
४. वही ८०
५. गुरु गोविंद सिंह और उनका काव्य,पृ०-३०४
६. चौबीस अवतार - चौपाई -३०

गुरु गोविंदसिंहजी ने निर्गुण मत के सभी परम तत्व के वाचक नामों- अकाल, अलख, दीनबंधु, करुणानिधान, भक्तवत्सल, दयाल, अभेख, सच्चिदानंद से ईश्वर का गुणगान किया है दशमेशजी ने इन नामों के अतिरिक्त अने अस्त्र-शस्त्रों के नामों से भी उसके विविध नामों का स्मरण किया है । यथा -

असिपान, असिधारी, असिकुज, असिकेतु, खड्गकेतु,
सस्त्रपाने, अस्त्रपाने, अस्त्रमाने, सखलोह । [1]

ईश्वर की व्यापकता - निर्गुण पंथ में परमेश्वर अनंत शक्ति सम्पन्न, विश्व का कर्ता, नियन्ता, शासक, और एकमात्र स्वामी ही नहीं वरन् सर्वव्यापक भी है । वह ब्रम्हांड के कण-कण , जीवमात्र के घट-घट और अणु-परमाणु सभी में व्याप्त है । भारतीय विचारधारा में परम तत्व को परमेश्वर , परमात्मा आत्मा की परम सत्ता कहा गया है । आत्मा ईश्वर का ही अंश है । जीव के पार्थिव स्थूल शरीर के नष्ट होते ही आत्मा परमात्मा में विलीन हो जाती है । कबीर, गुरुनानक ने भी इस तथ्य की पुष्टि की है

लेखा होई त लिखीये लेखे होई विणासु
नानक वड्डा आखीए आपे जाणै आपु ।। [2]

ईश्वर की सर्वव्यापकता निर्गुण संतों का सर्वस्व है । वे सम्पूर्ण सृष्टि में उसी का विस्तार देखकर भक्ति विव्हल होकर भगवान के गुणगान में निरत हो जाते हैं । वे भगवान को सर्वव्यापक तो मानते हैं किंतु वह उनमें लिप्त नहीं है । गुरु नानकजी ने कहा है कि परमात्मा त्रैलोक्य में व्याप्त है, परन्तु इन तीनों से बाहर है-

तीनि समावे चौथे वासा । [3]

प्राणनाथजी ने भी इसी प्रकार के भाव व्यक्त किए हैं -

वाणी मेरे पीउ की, न्यारी जो संसार ।
निराकार के पार थे, तिन पारहु के पार ।। [4]

---

1. जापु साहिब ,छंद सं० ३०
2. जपुजी साहिब -पाउडी,१९
3. श्री गुरु ग्रंथ साहब-पृ०४५
4. प्रगटवाणी,पृ०१

गुरु गोविंदसिंह जी ने अनेक स्थानों पर इसी भाव की पुष्टि की है। ईश्वर समर्थ है उसके लिए कुछ भी असंभव नहीं है। गुरु गोविंदसिंह जी के अनुसार-

सरब विश्व रचियों सुंयभव गड़न भंजन हरि ।।[1]

संतों को प्रभु की एकात्मता के दर्शन अनेक रूपों में होते हैं। इसलिए वह एक होते हुए भी अनेक प्रतीत होता है। जिस प्रकार बाजीगर अपने चमत्कारों को दिखाकर अपनी खेल समाप्त कर देता है, ठीक उसी परमात्मा भी सृष्टि की रचना करके स्वयं उसे अपने में लीन करके पुनः एक हो जाता है। इसी भाव की अभिव्यक्ति दशमेशजी ने भी की है-

एक मूरति अनेक दरसन कीन रूप अनेक।
खेल खेल अखेल खेलन अंत को फिरि एक ।।[2]

संतों ने स्वतंत्र अनुभूति को ही महत्व दिया है वे किसी प्रणाली अथवा पद्धति में आबद्ध होकर उसका अनुसरण नहीं करते अपितु वे अपने ढंग से तत्व चिन्तन करते हैं। फलतः उनके विचारों में सर्वत्र उन्मुक्त वातावरण और चिंतन की स्वाभाविकता मिलती है। जैसे ब्रह्म निर्गुण निराकार ही, यह कथन अधूरा है। ब्रह्म पूर्ण है उसे सीमा में बांधा नहीं जा सकता। अतः संतों के अनुसार ब्रह्म निर्गुण और निराकार भी है तो सगुण और साकार भी। परन्तु उन्होंने सगुण और साकार इस प्रकारका माना है कि परमात्मा के असीम और अंनत स्वरूप को किसी प्रकार क्षति न पहुंचे। सगुणोपासक-भक्तों की मूर्ति या विग्रह से वह सर्वथा भिन्न है। सांख्य मतावलम्बी-सृष्टि रचना में प्रकृति का बहुत बड़ा योगदान मानते हैं। परन्तु सिक्ख गुरुओं ने स्पष्ट रूप से इस बात को माना है कि निर्गुण ब्रह्म ने बिना किसी अन्य अवलम्बन के अपने को सगुण रूप में प्रकट किया। उन्होंने माया को परमात्मा रचित माना। उनके अनुसार स्वयंभु निर्गुण हरि ही सगुण रूप में दिखाई पड़ रहा है, निर्गुण हरि ही सगुण बन गया है।[3]

---

१. जापु साहिब छंद सं० ८२
२. जापु साहिब छंद सं० ८३
३. श्री गुरु ग्रंथ दर्शन पृ० ७८

परमात्मा का यह गुण-वर्णन सन्तों और गुरुओं की वाणी में दो प्रकार से वर्णित है - १- विराट स्वरूप का वर्णन २- परमात्मा के अन्य गुणों का वर्णन। पहले वे अन्तर्गत सगुण ब्रह्म के विराट स्वरूप का चित्रण है - आकाश रूपी थाल में सूर्य और चन्द्रमा दीपक बने हैं । मलय चन्दन की सुगंध ही आरती की धूप है । वायु चंवर कर रहा है । वनों के सारे पुष्प ही आरती के पुष्प बने हुए हैं। आरती (सीमित आरती) कैसे हो सकती है । संसार के भय को दूर करने वाले प्रभु की आरती के समय अनाहद शब्द होता है और दिव्य भेरी बजती है । [1]

गुरु गोविंदसिंह जी ने भी ब्रह्म का वर्णन इस प्रकार किया है-

आदि रूप अनादि मूरत अजोनि पुरख अपार ।
सब मान त्रिमान देव अभेद आदि उदार।। [2]

परमात्मा के अन्य रूपों का वर्णन करते हुए दसमेशजी कहते हैं-

प्रमाथं प्रमाथे ।। सदा सरब साथे ।।
अगाध स्वरूपे । निरबाध विभूते ।।

निर्गुण-सगुण निराकार-साकार सभी रूपों में परमात्मा का दर्शन किया। वे उसे इन दोनों से परे मानते हैं । वह ब्रह्म सुगण-निर्गुण, जड़-चेतन और तीनों गुणों से अतीत है-

कहूं गीत के गवैया, कहूं बेन के बजैया,
कहूं नृत के नचैया, कहूं नर को आकार हो।
कहूं बेद बानी, कहूं कोक की कहानी।
कहूं राजा कहूं रानी, कहूं नार के प्रकार हो।।
कहूं बेन के बजैया कहूं धेन के चरैया,
कहूं लाखन लवैया, कहूं सुन्दर कुमार हो।
सुधता की सान हो कि सन्तन के प्राण हो कि,
दाता महादान हो कि, निर्दोखी निरंकार हो ।[3]

---

१. श्री गुरु ग्रंथ दर्शन पृ०-८०
२. जापु साहिब छंद सं०-७९
३. अकालउस्तति छंद सं० १९

सृष्टि - जीवों के कर्म ही सृष्टि रचना का कारण है। परन्तु गुरुमत सिद्धांत इसका कारण कर्म को न मानकर अकाल पुरुष के हुक्म को मानते हैं। उनके अनुसार मोह-माया और भ्रम के कारण सृष्टि नहीं बनी है, किंतु ईश्वर ने सृष्टि बनाकर अपना हुक्म प्रकट किया है। गुरुमत में सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जटिल दार्शनिक तर्क पद्धति का आश्रय नहीं लिया गया है। वेदों के अनुसार यह विविध सृष्टि उस एक अविनाशी सर्वशक्तिमान परमात्मा से उत्पन्न हुई है और प्रलय के उपरान्त समस्त सृष्टि व्यापक तत्व में समाप्त हो जाती है।[1] गुरुनानकजी ने वेद के स्वर में स्वर मिलाकर कहा -

> कीता पसाऊ एकका कवाऊं।
> तिसते होवे लख दरियाऊं ।।[2]

गुरु गोविंदसिंह जी ने भी काल-पुरुष को इसी दृष्टि से देखा है -

> काल सभन का करत पसारा।
> अन्त काल सोई खापन हारा।
> आपन रूप अनन्तन धरही।
> आपहिं मध्य लीन पुन करही ।।[3]

गुरुनानक देव ने सृष्टि रचना के सम्बन्ध में एक ऐसे समय की कल्पना की है जब सृष्टि का कोई चिन्ह तक नहीं था।[4] उनके अनुसार असंख्य युगों पूर्व सर्वत्र घोर अंधकार था। नाम रूपात्मक जगत का कोई अस्तित्व नहीं था। वह अपने प्रकाश से प्रकाशित हो रहा था।

---

१. गुरुमत फिलासफी - पृ०-३८८
२. जपुजी साहब - पउड़ी - १६
३. चौबीस अवतार - खण्ड १ छंद सं०३
४. श्री गुरु ग्रंथ दर्शन, पृ०-८६

अरबद नरबद धुन्धुकारा । धरनी नगगन हुकुम अपारा।

न दिन न रैनि न चन्द न सूरज, सुन्न समाधि लगाइदा । [१]

ऋग्वेद में भी सृष्टि के सम्बन्ध में कहा गया है कि वह सब जगत सृष्टि के पहले अंधकार से आवृत रात्रिरूप में जानने के अयोग्य सब जगत तथा तुच्छ अर्थात अनन्त परमेश्वर ने अपने सामर्थ्य से इसे कार्यरूप में परिणित कर दिया । [२] गुरु गोविंदसिंह जी ने भी निम्नलिखित छंद में यही कहा -

अमित तेज जग जोति प्रकासि ।

आदि अछेद अभै अबिनासी ।

परम तत्त परमार्थ प्रकासी।

आदि सरूप अखण्ड उदासी।। [३]

ईश्वर के सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता कि उसने संसार की रचना किस प्रकार और कब की । उसने यह कार्य खेल खेल में कर दिया । अंत में वह पुनः एक कर देगा ।

खेल खेल अखेल अंत को फिरि एक । [४]

भक्ति पंथ -

आध्यात्मिक जगत में जीवन के चरम उद्देश्य के सम्बन्ध में बहुत विवाद मिलता है । ज्ञानमार्गियों ने जीवन का अन्तिम उद्देश्य मुक्ति को माना है । भक्तिमार्गी भक्ति को ही अपना लक्ष्य समझते हैं । कर्ममार्गी कर्म पर विश्वास करता है । अतः ज्ञान, भक्ति और कर्म में समयानुसार किसी की श्रेष्ठता हो जाती है । परन्तु मध्यकाल में इन तीनों का अद्भुत समन्वय हो गया है । ज्ञानमार्गी संतों की वाणियों में भक्ति का श्रेष्ठ स्वर निनादित हुआ । कबीर, नानक और गुरु गोविंद सिंहजी की रचनाओं से इस कथन की पुष्टि हो जाती है। दशमेशजी का सम्पूर्ण जीवन एक विशुद्ध धार्मिक संत का जीवन था जिसका मूल आधार भक्ति था । [५]

- -

१. श्री आदि गुरुग्रंथ साहब- पृ० १०३५,३६
२. ऋ ग मं० १० सूक्त १२९,मंत्र ७,३४
३. ज्ञान प्रबोध - छंद सं०२५
४. जापु साहिब-छंद-८१
५. श्री गुरु ग्रंथ दर्शन-पृ०-२८८

उन्होंने शक्ति की उपासना की है । जहां उस परमतत्व की युद्ध के अधिष्ठाता के रूप में आराधना हुई है, उन्हीं स्थलों पर अस्त्र-शस्त्रों को परमात्मा का प्रतीक माना गया है । युद्ध-प्रिय गुरुजी की ईश्वर विषयक यह धारणा अत्यन्त मनोरम है ।

निखिल विश्व में उसी परम तत्व का सृजन को देखने वाले आस्तिक की आस्था अत्यन्त बलवती और दृढ़ हो जाता है । वह उसकी शरण छोड़ कहीं जाना नहीं चाहता । परमात्मा अनंत-शक्ति-सम्पन्न है। उसके समक्ष व्यक्ति अकिंचन है । ईश्वर का कृपा पात्र बनने के लिये परमात्मा के समीप पूर्णतया आत्म समर्पण करने की आवश्यकता है । भक्तों का विश्वास है कि बिनापरमात्मा के अन्य कोई भी शरणदाता नहीं । गुरुजी के शब्दों में-

बिना सरन ताकि न अउरै उपायं।
कहा देव दईत कहा रंक रायं।
कहा पात शात कहा उमरायं।
बिना शरण ताकी न कौ है उपायं ।। [१]

ईश्वर के चरणों में स्वयं को रख भक्त निश्चिन्त हो जाता है उसे अपने सुख-दुख जय-पराजय की चिंता नहीं रह जाती । वह तो प्रत्येक क्षण ईश्वर को स्मरण करते हुए कहता है -

प्रभु जु तो कहं लाज हमारी।
नीलकण्ठ नर हरि नारायण नील बसन बनवारी।
परम पुरख परमेश्वर स्वामी पावन पउन अहारी।
माधव महा जोति मधु मरदन मान मुकुन्द मुरारी।
निर्बिकार निरजर निद्रा बिन निर्बिख नरक निवारी।
कृपा सिंधु काल त्रै दरसी कुकृत प्रनास नकारी।
धुनरपान धृत मान धराधर अनिबिकार असिधारी।
हौं मति मन्द चरन सरनागति कर गहि लेहु उबारी।। [२]

---

१. विचित्र नाटक - छंद सं० ७५

२. शब्द हजारे-सं० २

कोई भी व्यक्ति अपने पुरुषार्थ से ही भक्ति तत्व को पाना चाहे तो नहीं पा सकता । जब तक स्वयं प्रभु अनुग्रह नहीं करते , तब तक भक्ति रस का आनंद प्राप्त करना असंगति है । गुरु गोविंद सिंहजी अनुग्रह की महत्ता का वर्णन करते हैं -

> सारे ही देस को देखि रह्यो, मत कोऊ न देखिअत प्रानपती के ।
> श्री भगवान की भाए कृपा हूते, एक रती बिन एक रती के ।। [१]

शक्ति उपासना -

मध्य युग में शक्ति की उपासना प्राय: समाप्त हो गयी थी । समाज में इसे हेय दृष्टि से देखा जाने लगा । मध्य युग के संतों , भक्तों, महात्माओं में शाक्तों जुगुप्साजनक साधना की निंदा की एक परम्परा सी बन गयी थी । शाक्तों के प्रति कबीर का विरोध सबसे अधिक था । एक ओर वैष्णव भक्त समाज की श्रेष्ठता प्राप्त कर रहे थे, वहीं शाक्तों को निम्न श्रेणी का समझा जाने लगा था जिस मत से गुरु गोविंदसिंह संबंधित थे, स्वयं उसी में शाक्तों की निंदा भरी पड़ी है । गुरुजी ने जहां एक ओर निर्गुण ब्रह्म के उपासक के रूप में , अपने भक्ति रूप की झांकी प्रस्तुत की है, वहीं दूसरी ओर उन्होंने स्थान स्थान पर शक्ति एवं उसी के पर्याय देवी, भवानी, भद्रकाली, कपाली आदि नामों का स्मरण करके शक्ति के प्रति अपनी आस्था प्रकट की है । अपनी रचना से पूर्व और अन्य सभी महत्वपूर्ण स्थलों पर उन्होंने देवी के ऐश्वर्य एवं प्रताप का प्रचुर वर्णन किया है । उससे यह तो पूर्ण निश्चित हो जाता है कि उनकी शक्ति के प्रति अविचल आस्था थी । श्री कृष्णावतार ग्रंथ में गोपियां दुर्गा की पूजा करती हुई दिखाई गई हैं ।[२] जिसका उल्लेख अन्य किसी तत्सम्बन्धी ग्रंथ में नहीं मिलता ।

---

१. अकालस्तुति - छंद-१
२. कृष्णावतार, चौबीस अवतार - छंद सं० २४५,४६

यह विचारणीय तथ्य है कि गुरुजी ने शक्ति को इतना महत्व क्यों दिया ? अपने काव्य के पात्रों ,नायक नायिकाओं से देवी स्तुति पूजन आदि करवाने में उनका विशेष प्रयोजन रहा होगा । इसके तीन कारण हो सकते हैं - पहला यह कि गुरुजी का जन्म पूर्व में हुआ था, जहां पर शाक्तमत का अधिक प्रभाव था । दूसरा शाक्तमत स्वयं दो धाराओं में प्रवाहित हो रहा था , एक तो वामाचारी और दूसरा लोकाचार की रक्षा करते हुए शक्ति की विशुद्ध उपासना का समर्थक था । तीसरा, शक्ति की उद्भावना शत्रुओं के विनाश करने की भावना में स्थित है । दशमेशजी की रचनाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे लोकाचार की अधिष्ठात्री देवी होने के कारण गुरु गोविंद जैसे वीर पुरुषों को उसकी उपासना अधिक आकर्षक प्रतीत होती हुई[1] गुरु गोविंदसिंहजी के समय तक सिक्खों पर मुसलमानों के अत्याचार पराकाष्ठा को पहुंच गये थे । देवी के भयंकर विकराल रूप की कल्पना में संभवतः गुरुजी को अधिक संतोष मिला । मध्य युग में शक्ति की उपासना राजपूत जातियों में विशेष रूप से प्रचलित थी । राजपूत शासकों सामंतों एवं सैनिकों में बहुतों का कुल देवी भी काली, भवानी, चण्डी आदि हैं । विभिन्न अवसरों पर देवी के पृथक पृथक रूपों तदनुसार कृत्यों एवं नामों के प्रयोग भी मिलते हैं । यथा आदि-शक्ति, आदि-जननी, महामाया, महाशक्ति, पार्वती, वैष्णवी, काली,दुर्गा,भवानी,चण्डी, प्रलयंकारी, दैत्य-मर्दिनी आदि । इस शक्ति-उपासना का प्रभाव इतना व्यापक रूप से पड़ा कि एक भी ऐसा महान देवता नहीं जिसके साथ उसकी शक्ति अथवा पत्नी न हो यथा शिव-पार्वती, सीताराम, राधाकृष्ण, लक्ष्मीनारायण आदि। शाक्तों का सम्प्रदाय प्रबल नहीं रहा किंतु इतना निर्विवाद मानना पड़ेगा कि उनकी उपासना की मूल भावना को भारत के सम्प्रदायों ने अपना लिया जो आज भी अक्षुण्ण रूप से विद्यमान है । [2]

- -

१. गुरु गोविंदसिंह और उनका काव्य-पृ०-३३६
२. गुरु गोविंदसिंह और उनका काव्य -पृ०-३३७

गुरु गोविंदसिंहजी ने चण्डी और काली का अलग अलग रूपों में वर्णन किया है। उनके पूर्व "दुर्गा सप्तशती" में भी इसी प्रकार का वर्णन मिलता है। प्रथम रूप में देवी की कल्पना अवतारों की पत्नियों के रूप में हुई। कालान्तर में समाज की नैतिक और आचार प्रस्थान व्यवस्था से ऊबे हुए कापालिकों ने इसमें पशुबलि का समावेश कर देवी को उग्र विकराल बना दिया। दूसरे रूप में देवी की पवित्र रूप में आद्याशक्ति, नियामक शक्ति मानकर पूजा होती रही। गुरु गोविंदसिंहजी ने देवी के इस रूप द्वारा राक्षसों के संहार के उपरांत यज्ञ, वेदपाठ आदि के सम्पन्न होने की चर्चा की है।[1] देवी का तीसरा रूप काम वासना के रूप में प्रकट हुआ। अर्द्धनारीश्वर की कल्पना, सृष्टि की उत्पत्ति सम्बन्धी विचार आदि सभी ने मिलकर इस रूप को पुष्ट कर दिया। गुरुजी के शक्ति के उपासना विषयक तीन ग्रंथ उपलब्ध होते हैं -

चंडी चरित्र उक्ति विलास, चंडी चरित्र, चंडी दीवार। चंडी चरित्र उक्ति विलास में कवि ने प्रमुख रूप से देवी की अपार शक्ति, अनंत पराक्रम, शौर्य आदि का वर्णन किया है। चंडी चरित्र में देवी युद्धों और उसके बल-पराक्रम का ही विशद वर्णन है।

"चंडी दीवार" पंजाबी में लिखा गया है इसमें भी युद्ध और स्तुति दोनों हैं। शाक्त अद्वैतवादी होते हैं। शक्ति को परम चिन्मय, अखण्ड, अपार, अनन्त, सर्वव्यापक, अजय, नित्य पवित्र मानते हैं। वह एक अद्वैत शक्ति, निखिल ब्रह्मांड का सृजन, नियमन एवं संहार करती है। गुरु गोविंद सिंहजी ने एक स्थान पर देवी के रूप की स्तुति करते हुए कहा है -

---

१. चंडी चरित्र उक्ति विलास - सवैया-५४

२.

खण्ड प्रिथमै साज कै जिन सम संसारु उपजाइया।

ब्रहमा बिसन महेस साजि कुदरती दा खेलु रचाइ बनाइआ।

सिन्धु परबत मेदनी बिनु थमा गगन रहाइआ।

सिरजे दानो देवते तिन अन्दरि बाद रचाइआ।

तैहीं दुर्गा साजि कै दैता दा नासु कराइआ।

किनै तेरा अन्त न पाइआ ।[1]

गुरु गोविंदसिंहजी ने देवी को पारब्रह्म, परमेश्वरी, निराकार, सर्वशक्तिमान अनेक नामों से स्मरण किया है। सृष्टि का सृजन, पालन, नियमन और संहार भी वही करती है। उसी ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, वरुण आदि देवताओं को उत्पन्न किया है। उसी ने साधु, असाधु, तीनों गुण, पांचों तत्व, चारों युग, नारदादि ऋषियों और देवताओं के अभिमान को नष्ट करने के लिये महिषासुर आदि राक्षसों को उत्पन्न किया। २

गुरुजी ने देवी के उग्र क्रोधी प्रलयंकारी, क्रूर, नृशंस, शत्रु संहारक स्वभाव सूचक अनेक नामों का उल्लेख किया है। निम्नलिखित श्लोक से यह स्पष्ट हो जाता है -

नमो खिआली नमो दाढ़ गाढ़े।

नमो रग्ग दग्ग क्रमाक्रम बाढं।

नमो रूढ़ गूढ़ नमो सरब बिआपी।

नमो नित नारायणी दुष्ट खापी ।[3]

गुरुजी ने देवी के केवल विकराल रौद्र रूप को ही चित्रित नहीं किया है अपितु उसके नख-शिख का भी उत्कृष्ट वर्णन किया है -

मीन मुरझाने कंज खंजन खिसाने अलि फिरत दीवाने बन डोलै

जित तित ही।

---

१. चंडी दीवार - छंद सं० २
२. वही - छंद सं० २,३
३. चंडी चरित्र छंद सं० २३४

कीर और कपोत बिम्ब कोकला कलापी बन छूटे फूटे फिरैं
मन चैनहू न कित हीं ।।
दारम दरक गयो पेख दसननि पांति रूप ही की कांति जग
फैल रही सित हीं।
ऐसी गुन सागर उजागर सुनागर है लीनो मन मेरा हरि
नैन कौर कित हीं । [१]

इस प्रकार गुरु गोविंदसिंहजी ने शक्ति उपासना के प्रति अपनी अडिग आस्था प्रकट की है। वे देवी के पारब्रह्मस्वरूपिणी, शुद्ध पवित्र, सर्वव्यापक रूप की उपासना करते थे । युद्ध-प्रिय स्वभाव के कारण गुरुजी ने देवी की प्रवृत्ति को अपने अत्याधिक निकट पाया इसलिये वे देवी की बल-पराक्रमयुक्त-स्वरूप की आराधना को वे अपने जीवन का आधार बनाकर चले। ब्रह्म को शक्ति मानकर साधनारत रहने के अतिरिक्त अन्य भक्तों, संतों से उनका कोई अन्तर नहीं है । भक्ति की विह्वलता, तन्मयता, उनमें सर्वत्र मिलती है ।

2-3-84

वाह्यडम्बर का विरोध -

मध्यकाल में पाखंड और मिथ्याचार अत्याधिक बढ़ गये थे। सभी धर्मावलम्बी ईश्वर की उपासना की बात तो करते थे किंतु अपने अपने पंथ को सर्वश्रेष्ठ बतलाते और दूसरे मत को पथ भ्रष्ट समझते थे । आडम्बर एवं प्रदर्शन का महत्व बढ़ गया था । संतों भक्तों ने ऐसी विषम परिस्थिति में सरल उपासना पद्धति को अपनाकर ढोंग, मिथ्याचार, रूढ़िवादिता के मूल पर आघात करके मानवता का संदेश दिया । गुरु गोविंदसिंहजी ने अपने काव्य में तत्कालीन साधना पद्धति के आडम्बर का चित्रण किया है-

काहूं लै पाहन पूज धरयो सिर, काहू लै लिंगु गेर लटकायो।
काहू लखियो हरि अवाची दिसा महि, काहूं पछाह को सीस निवायो।
कोऊ बुतान को पूजत है पसु,कोऊ मृतान को पूजन धायो।
क्रिया उरझयो सब ही जगु, श्री भगवान को भेदु न पायो। [२]

---

१. चंडी चरित्र उक्ति बिलास - छंद ८६
२ अकाल स्तुति, छंद-३०

नाना प्रकार की वेशभूषा धारण करने से ही मुक्ति नहीं मिल जाती। लोगों ने कर्म धर्म छोड़ मनमाने वेश बनाकर पूजा करवानी शुरू कर दी थी। प्रभु में चित्त नहीं रमा मन की वृत्तियों पर नियंत्रण नहीं हुआ, फिर मौन धारण करने तीर्थादि में भटकने से कोई लाभ नहीं है। इसी पाखंड का चित्रण गुरुजी करते हैं-

कहा भयो दोऊ लोचन मूंद कै,
बैठि रहो बक ध्यान लगाइओ।
नात फिर्यो सात समुद्रन।
लोक गयो पर लो गवाइओ।
वास कियो विखिन आन सो बैठके,
ऐसे ही ऐस सु बैस बिताइओ।
सचु कहो सुन लेहु सभै,
जिन प्रेम कियो तिनही प्रभु पाइओ।।[१]

गुरुजी ने मूर्ति पूजा, तीर्थाटन, अवतारवाद को स्पष्ट विरोध किया। उन्होंने अनुभव किया कि महापुरुषों को ही लोग ईश्वर का अवतार मानकर पूजने लगते हैं। ठीक उसी प्रकार लोग उनकी भी पूजा न करने लगें। इसी आशंका से गुरुजी ने अपने अनुयायियों को कड़ी चेतावनी देते हुए कहा -

जो हमको परमेसर उचरि हैं।
ते सब नरक कुण्ड महि परिहैं। २

- -

१. अकाल उस्तुति, छंद सं० २६
२. विचित्र नाटक, छंद सं०-२५

यौगिक क्रियाओं तथा उन सभी साधनाओं को, जिनसे शरीर को यंत्रणा मिलती है, उन्होंने निरर्थक माना । उनकी दृष्टि से सन्यास का बाह्याचारों से कोई सम्बन्ध नहीं है । निम्नलिखित छंद उनकी इसी धारणा को पुष्ट करता है-

रे मन ऐसो करि सन्यासा।
बन से सदन सबै करि समझहु मनहि माहि उदासा।
जत की जटा जोग को मजनु नेम के नखन बढाओ।
ज्ञान गुरू आत्म उपदेसहु नाम बिभूत लगाओ।
अल्प अहार सुल्प सी निद्रा दया छिमा तन प्रीति
सील सन्तोष सदा निरबाहिबो ह्वै है त्रिगुण अतीति
काम क्रोध हंकार लोभ हठ मोह न मन सों ल्यावै।
तब ही आत्म तत्व को दरसै परम पुरख कह पावै ॥ १

इस प्रकार गुरु गोविंदसिंहजी ने सिद्धों नाथों, कबीर और गुरुनानक जी के स्वर में स्वर मिलाकर बाह्याचार और पाखंड का विरोध किया। उन्होंने अनुभव किया कि यही भेदभाव भारतीय एकता को पंगु बना रहा है । अतः जाति पांति का भाव मिटाकर उन्होंने अखण्ड जातीय एकता का अचूक संदेश दिया ।

---

१. हजारे दे शब्द, छंद नं० -२

-: षष्ठम अध्याय :-

पंजाबी संत मत द्वारा प्रभावित साहित्य १५वीं-१६वीं सदी -

शेख फरीद -

जीवनवृत्त -

शेख फरीद का नाम शेख बिरहम या इब्राहीम था। पाकपट्टन के आदि फरीद हजरत बाबा फरीदुद्दीन मसऊद शकरगंज के यह वंशज थे, और ' फरीद ' इनकी उपाधि थी । इन्हें फरीद सानी अर्थात् फरीद द्वितीय भी कहते हैं । शेख बिरहम कर्जा, बलराजा शेख बिरहम साहब और शाह बिरहम नामों से भी यह प्रसिद्ध हैं । [१]

आदि फरीद यानी हजरत बाबा फरीदुद्दीन ईसा की तेरहवीं शती में विद्यमान थे । यह बहुत बड़े पहुँचे हुए सूफी फकीर थे । दिल्ली के सुप्रसिद्ध हजरत निजामुद्दीन औलिया इनको अपना गुरु मानते थे । [२]

द्वितीय शेख फरीद या शेख बिरहम उनकी ११वीं पीढ़ी में आते हैं । आदि गुरु बाबा नानक के साथ इन्हीं का सत्संग हुआ था । गुरु ग्रंथ साहिब में इन्हीं फरीद के २ पदों और १३० सलोकों का संग्रह मिलता है ।[३] इसके वास्तविक रचयिता के विषय में मतभेद चला आता है । ' दि सिक्ख रिलिजन ' ग्रंथ के लेखक डा० एम०ए०मैकालिफ ने ' सौआलातुल्वारीख ' के आधार पर कहा है कि ये शरख फरीद २१वीं रज्जब सन् ९६० हि० : सन् १५५२ - १६०६ में मरे थे, और उस समय तक अपनी गद्दी पर बैठे इनके ४० वर्ष बीत चुके थे ।

---

१. संत सुधासार - वियोगी हरि - पृ०-४०५
२. वही - पृ०-४०५
३. उत्तरी भारत की संत परम्परा - पृ०-४५४

उन्होंने इनके दो लड़कों के भी नाम लिए हैं जिनमें से पहला अर्थात् ताजुद्दीन मुहम्मद था और वह भी एक प्रसिद्ध फकीर हो चुका है। दूसरे का नाम उन्होंने शेख मुनव्वर शाह शहीद दिया है। इनके अनेक शिष्यों में से भी उन्होंने शेख सलीम चिश्ती का नाम दिया है और उसे फतेहपुरी भी बतलाया है।[१] एक अन्य लेखक सी०एच०आकलिन ने भी इन्हें शेख फरीद (द्वितीय) ठहराते हुए इनके जन्म स्थान का दीपालपुर के निकट वर्तमान 'कोठीवाल' नाम दिया है। इनकी मृत्यु का समय १५५२ ई०: बतलाते हैं तथा इनकी समाधि सरहिंद पंजाब में होना भी कहा गया है।[२] मैकालिफ साहब ने गुरु नानक देव के संबंध में लिखी गई जन्म साखियों के आधार पर बतलाया है कि इन्हीं शेख फरीद के साथ उनकी दो बार भेंट हुई थी। इन दोनों के बीच कुछ सत्संग भी हुआ था और उक्त रचनाएं निश्चित रूप से इन्हीं की होंगी।[३] उनका कहना है कि गुरु नानक देव अपनी पूर्व वाली यात्रा से लौटते समय पंजाब के दक्षिणी भाग की ओर गये जहां ये पाकपटन की गद्दी पर वर्तमान थे। इनके साथ हुई बातचीत का उन्होंने कुछ विवरण भी दिया है।[४] इसी प्रकार उन्होंने इन दोनों महापुरुषों की एक दूसरे से भेंट की चर्चा भी की है। उन्होंने कहा है कि इस बार गुरु नानक देव तथा मर्दाना पाकपटन से चार मील की दूरी पर ठहरे थे, किंतु उनकी अभ्यर्थना के लिये ये वहां पर स्वयं पहुंच गये तथा इन्हें आदर पूर्वक ले आये।[५] क्षिति बाबू के अनुसार इनकी कुछ अन्य रचनाएं भी उपलब्ध हैं। किंतु वे बहुत चर्चित नहीं है जितनी आदि ग्रंथ की रचनाएं।[६]

इसके विपरीत कई लेखक उक्त रचनाओं को 'शेख फरीद सानी' की न मानकर शेख फरीदुद्दीन गंज ए शकर की है जो इनके पूर्वज रह चुके हैं।[७]

- -

१. एम०ए०मैकालिफ - दि सिक्ख रिलिजन, भा०-६ पृ०-३५७-८
२. सी०एच०आकलिन: दि सिक्खस एंड देयर बुक, लखनऊ, १९४६ ई०-पृ०-६६
३. मैकालिफ दि सिक्ख रिलिजन, भा०-६ पृ०-३५६-७
४. वही पृ०-३८४-६
५. वही पृ०-४०१-२
६. मिडिवल मिस्टिसिज्म-पृ०-१११
७. उत्तरी भारत की संत परम्परा-पृ०-४५५

इनका जीवनकाल सं० १२३० : १३२२ बतलाया जाता है । जो लोग इनका रचयिता ' गंज-ए-शकर ' को मानते हैं उनका कहना है कि एक तो गुरु नानक देव के साथ इन शेख इब्राहिम की कोई भेंट होने की संभावना ही नहीं, क्योंकि जिस समय सं० १५९६ में उनका देहांत हुआ उस समय तक अभी ये अपनी गद्दी पर बैठे तक भी नहीं थे । इनका सं० १६१० में गद्दनशीन होना बतलाया जाता है । इनकी मृत्यु का संवत भी सं० १६७१ दिया जाता है ।[1] इस संबंध में यह भी कहा जाता है कि इन रचनाओं में जो कुछ प्रभाव मुलतानी का दीख पड़ता है वह केवल उसी दशा में संभव हो सकता है तब हम इन्हें पुराने फरीदुद्दीन द्वारा रचित स्वीकार कर लें । इस मत के समर्थकों में एक डा० मोहन सिंह जान पड़ते हैं जिनके लिए कहा गया है कि उन्होंने कतिपय ' प्रतियों से तुलना करके ' इन्हें बाबा फरीद की कृति प्रमाणित किया है ।'[2] एक दूसरे लेखक चंद्रकांत बाली हैं जिन्होंने इस संबंध में पाये जाने वाले विभिन्न मतों की विस्तृत आलोचना प्रस्तुत की है । परन्तु इस संबंध में ' गुरु ग्रंथ साहब ' में शेख फरीद ' शीर्षस्थ रचनाएं गंज-ए-शकर बाबा फरीद की हैं, फरीद सानी की नहीं ।[3] इस मत को मानने के लिए कुछ गंभीर विवेचन करना पड़ेगा । शेख फरीद सानी की रचनाओं के ' आदि ग्रंथ ' में संगृहीत होने के लिए इनकी गुरु नानक देव के साथ भेंट का भी हो चुका रहना अनिवार्य नहीं , न यही आवश्यक होगा कि इनके साथ उनकी भेंट केवल तभी संभव हो जब ये पाकपटन में गद्दीनशीन हो चुके हों । जिन लोगों ने इन दोनों के मिलन की संभावना मानी है उन्होंने प्रायः इन शेख फरीद सानी का सं० १६०८ में अपनी गद्दी पर ४० वर्षों तक रह चुकने के अनंतर मरना भी स्वीकार किया है ।[4]

- -

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा - पृ०-४५५
२. पंजाब प्रांतीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, दिल्ली, १९६२ई० पृ०-१३२
३. वही पृ०-१२६-३६
४. उत्तरी भारत की संत परम्परा - पृ०-४५६

इसके सत्य सिद्ध हो जाने की दशा में वह घटना कभी असंभव नहीं जान पड़ेगी ।

आदि फरीद की तरह शेख फरीद भी उच्च कोटि के महात्मा थे । इनके अनेक चमत्कारों की भी कथाएं प्रसिद्ध हैं । एक कथा है कि एक रात को एक चोर इनके घर में चोरी करने आया , और वह अंधा हो गया । सबेरा होते ही उसने शेख साहब से माफी मांगी , और प्रतिज्ञा की कि आगे वह कभी ऐसा बुरा काम करेगा । शेखजी ने उसके लिए ईश्वर से प्रार्थना की, और उस चोर को फिर से दृष्टि मिल गई । [1]

बाबा नानक दो बार अजोधन में जाकर इनसे मिले थे । इन दोनों महात्माओं का सत्संग प्रसिद्ध है । उस सत्संग में शेख फरीद ने कई आध्यात्मिक प्रश्न किए थे और उनका बाबा नानक ने उन्हें उत्तर दिए थे । [2]

शेख फरीद के दो पुत्र थे - शेख ताजुद्दीन महमूद और शेख मुनव्वर शाह शहीद । शेख ताजुद्दीन भी पहुंचे हुए फकीर थे । शेख फरीद के कई शिष्य थे जिनमें शेख सलीम चिश्ति फतेहपुरी प्रसिद्ध थे ।

शेख फरीद की मृत्यु २६ रजब , ९६० हिजरी सन् में हुई । करीब ४२ बरस तक इन्होंने प्रेम एवं परमार्थ की बहुमूल्य सम्पदा मुक्त हाथ से वितरित की । [3]

- -

१. संत सुधा सार - वियोगी हरि - पृ०-४०६
२. वही - पृ०-४०६
३. वही - पृ०-४०६

साहित्य -

शेख फरीद का साहित्य बानियों में संग्रहीत है। इनकी बानी रसपूर्ण, रहस्यमय तथा मर्म पर सीधे चोट करने वाली है। इनके सलोकों में गहरा विषाद एवं रहस्य भरा पड़ा है। किंतु रहस्य का भेद भी इसी के अंतर्निहित जाता है। वस्तुतः स्वरूप का साक्षात्कार करने के बाद ही इस आध्यात्मिक गहराई और ऊंचाई तक पहुंचा जा सकता है। वैराग्य की भावना फरीदजी ने खूब भरी है। उनका एक-एक शब्द अनूठा है। इनकी प्रेम-प्रीति की रसभरी वाणी में सूफी रंग बहुत निखरा हुआ मिलता है। जैसे -

> " फरीद मैं भोलावा पगड़ा मत मैली हो जाई ।।
> गहिला रूहु न जाणई सिरु भी मिटी खाइ।।[१]

(अर्थात फरीद मैं डरता हूं कि कहीं मेरी पगड़ी मिट्टी से मैली न हो जाये। मेरा बावलाजी यह नहीं जानता कि पगड़ी तो क्या मेरे इस सिर को भी मिट्टी सड़ा गलाकर खा जायेगी।)

आदि ग्रंथ में फरीद जी के लगभग १३० सलोका एवं ४ पद संग्रहीत है। इनके रूपक तथा दृष्टांत बड़े सुन्दर हैं -

> " जिंदु वहुटी मरणु वर, ले जासी परणाइ ।
> आपण हथी जोलि कै, कै गलि लगै धाइ ।[२]

(अर्थात जीवात्मा दुलहिन है, और मृत्यु दूल्हा है। वह उसे ब्याहकर अपने साथ ले जायेगा। विदा होते समय, वह बेचारी किसके गले में अपनी बाहें डालेगी ?)

- -

१. आदि ग्रंथ सटीक शेख फरीद - पृ०-१३७७
२. वही - पृ०-१३७८

फरीदजी ने पंजाबी हिन्दी मिश्रित भाषा को अपनाया है जो सूफी प्रेम से पूर्ण होकर बहुत मीठी और रसीली बन गई है। फरीदजी ने भावपूर्ण सलोक लिखकर गागर में सागर भर दिया है। इनके सलोकों को पढ़कर मन सांसारिक विषयों से अनासक्त हो भगवद् चरणों में झुक जाता है।

विचारधारा -

" सलोक शेख फरीद के " शीर्षक के अन्तर्गत फरीदजी के १३० सलोक आदि ग्रंथ में संकलित हैं। इनके सलोकों के माध्यम से ही हम फरीदजी की विचारधारा को समझ सकते हैं। फरीदजी के अनुसार " इस सरोवर में एक ही पक्षी है, किंतु पचासों जाल लगे हुए हैं यह शरीर जल की लहरों में मग्न हो चुका है, है सत्य परमात्मा केवल तेरी ही आशा है। [1] आत्मा (जिंद) वधु और काल (मरण) वर स्वरूप है जो उसका पाणि-ग्रहण करके उसे लेता चला जायेगा। पता नहीं वह जाते समय दौड़ती हुई किसे गले लगायेगी।" [2]

विरह विरह तो सभी कहा करते हैं, किंतु उसका रहस्य किसी को भी विदित नहीं। वास्तव में विरह एक सुल्तान है और जिसके शरीर में वह उत्पन्न न हो उसे श्मशान समझना चाहिए। [3] फरीदजी का कहना है कि जब तक नेत्रों के दो दीपक जलते हो रहते हैं तब तक मृत्यु का दूत आकर शरीर पर बैठ जाया करता है, वह दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया करता है, " आत्मा रूपी धन को लूट लेता है और दीपक बुझाकर चल देता है। [4]

फरीदजी कहते हैं - मैंने पहले समझा था कि मैं अकेले दुख में पड़ा हूं, किंतु अब सभी को दुख में ही देखता हूं। जब ऊंचाई पर चढ़कर मैंने देखा तो पता चला कि सबके घर में वैसी ही आग लगी हुई है। [5]

- -

१. आदि ग्रंथ - सलोक १२५ पृ०-१३८४
२. वही पृ०-१३७७ ३- आदि ग्रंथ सलोक ३६ पृ०-१३७९
४. वही सलोक ४८, पृ०-१३८० ५- आदि ग्रंथ सलोक-८०, पृ०-१३८२

अतएव फरीदजी दूसरों को उपदेश देते हुए कहते हैं -
धूल की निंदा कभी नहीं करनी चाहिए । वास्तव में उसके बराबर कोई नहीं, जब तक हम लोग जीवित हैं वह पैरों के नीचे रहा करती है किंतु हमारे मरने पर कब्र में वह ऊपर पड़ जाया करती है । [1]

अपनी सूखी रूखी रोटी खाकर ठंडा पानी पी लिया करो, दूसरों की घी में चुपड़ी रोटी देखकर तरसो मत लगो । [2]

हे स्वामी मुझे किसी दूसरे के द्वार पर झांकने की आवश्यकता न पड़े । यदि ऐसा अवसर आ ही जाए तो पहले मेरे प्राणों को शरीर से प्रथक कर दो ।[3] हंस को देखकर बगुले को भी तैरने की इच्छा हुई किंतु उसके अनुकरण में चलते ही वह डूबने लगा और उसके पैर ऊपर की ओर उठ गये । [4] फरीद, देख तो जरा यह क्या हुआ - शक्कर भी विष हो गई । अपने स्वामी को छोड़ अब मैं और किसे अपना दुखड़ा सुनाऊं ? [5]

फरीदजी के कुछ श्लोक हैं -

१. जित दिहाड़ै धन वरी साहे लए लिखाइ।
   मलकु जि कंनी सुणीदा मुहु देखाले आइ ।।

२. फरीदा जे तू अकलि लतीफु काले लिखु न लेखु।
   आपनड़े गिरीवान महि सिरु नींवां करि देखु ।।

३. देखु फरीदा जु थीआ दाढ़ी होई भूर।
   अगहु नेड़ा आइआ पिछा रहिआ दूर ।।

४. फरीद सकर खंडु निवात गुड़ माखिउ मांझा दुधु।
   सभे वसतू मिठीआं रब न पुजनि तुधु।।

५. बुढा होआ सेख फरीदु कंबणि लगी देह।
   जे सउ वरिहआ जीवणा भी तनु होसी खेह ।।

६. फरीदा मैं जानिआ दुखु मुझ कू दुखु सबाइऐ जगि।
   ऊचे चड़ि कै देखिआ तां घरि घरि एहा अगि।।
   निवणु सु अखरु खवणु गुणु जिहबा मणीआ मंतु।
   ए त्रै भैणे वेस करि तां वसि आवी कंतु ।। 5

- -

१. आदि ग्रंथ सलोक २६ पृ०-१३७६
२. वही सलोक-२ पृ०-१३८०
३. वही सलोक १२२ पृ०-१३८४
४. वही पृ०-१३८०
५. वही पृ०-१३७७ से १३८८

दादू दयाल -

जीवनवृत्त -

संत दादू दयाल का जन्म गुजरात के प्रदेश अहमदाबाद नगर में फाल्गुन सुदि २ बृहस्पतिवार सं० १६०१ को हुआ था और इनका देहान्त ज्येष्ठ वदि ८, शनिवार सं० १६६० को राजस्थान प्रांत के नाराणागांव में हुआ ।[१] जहां पर इनके अनुयायियों का प्रधान मठ वा 'दादू द्वारा' आज भी वर्तमान है, वहां पर इनकी दादू-गद्दी बनी है और उसके उपलक्ष में प्रति वर्ष फाल्गुन की शुक्ल चतुर्थी से पूर्णिमा तक एक बहुत बड़ा मेला लगता है।[२] दादू पंथी साधु हाथ में सुमरनी रखते हैं और आपस में 'सतराम' कहकर अभिवादन करते हैं ।

स्वामी दादू दयाल की जन्म-कथा ठीक वैसी ही लोक प्रचलित है, जैसी कि कबीरदास जी की जन्म-कथा है । कहते हैं कि लोदीराम एक नागर ब्राह्मण को साबरमती नदी के तट पर एक नवजात शिशु बालक बहता हुआ मिला , और उसे उठाकर वह अपने घर ले आया । यही बालक पीछे बढ़कर 'दादू' के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।[३] जनगोपाल उस व्यक्ति को एक सौदागर मात्र कहकर ही रह जाते हैं ।[४] परन्तु उनमें से कुछ का कहना है कि वास्तव में उक्त लोदीराम ब्राह्मण के औरस पुत्र थे । इनकी माता भी बसीबाई नाम की एक ब्राह्मणी ही थी ।[५] इसके विपरीत अन्य बहुत से लोग इनका ब्राह्मण होना तो दूर हिन्दू होना तक स्वीकार नहीं करते । इस विचार वाले लोगों ने इन्हें मुसलमानी धुनिया जाति का होना बताया है, और इनका पूर्व नाम 'दाऊद' माना है।

- -

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा ,पृ०-४८८ " पच्छिम दिसा अहमदाबादु।।
तो ठा साय परगटे दादू ।। ६।। विश्राम ४ पृ०२
२. उत्तरी भारत की संत परम्परा-पृ०-४६१
३. संत सुधा सार - वियोगी हरि - पृ०-४२५
४. नगर अहमदाबाद मझारा।सौदागर इक परम उदारा।।१२।।पृ०-४
५. उत्तरी भारत की संत परम्परा-पृ०-४६०

इसी प्रकार ये लोग इनके पिता का सुलेमान और इनके गुरु का नाम बुरहाउद्दीन कहते हैं । इनकी स्त्री को भी ह्व्वा ' नाम से शोभित करते हैं । [१]

एक अन्य मत के अनुसार दादूजी को ' मोची ' जाति का माना जाता है । इसका एक मात्र कारण दादू ने अपनी वाणी में स्वयं को मोट महाबली ' अर्थात पानी सींचने के लिये चमड़े की मोट सीने वाला महाबली नामक मोची कहा है ।[२] किंतु यह कथन कि ' मोट ' शब्द का अर्थ मोची लगाकर उन्हें मोची जाति का मान लें - मेरी समझ से युक्तिसंगत नहीं है ।

इसके अतिरिक्त क्षितिमोहन सेनजी ने बंगाली बाउलों की वंदना वाले एक वाक्य द्वारा इनके पूर्व नाम दाऊद होने की भी पुष्टि भी की है । अतः इनके मुसलमान होने का संदेह दूर हो जाता है ।[३] दादू दयालजी के दो पुत्रों के नाम - गरीबदास और मिस्कीनदास तथा इनकी दो पुत्रियों के नाम अब्बा और सब्बा भी इसी ओर संकेत करते हैं ।

प्रसिद्ध है कि इन्हें अपनी वय के ११वें वर्ष में ही किसी अज्ञात संत द्वारा दीक्षा मिली थी जिसे बुढ्ढानंद ' वा ' बुढ्ढन ' कहा जाता है ।[४] उस समय दादूजी अन्य बालकों के साथ खेल रहे थे । उसी समय वहां अचानक आकर एक वृद्ध साधु ने इनसे भिक्षा मांगी। इनके भीख दे देने के बाद इनके मुख पर पान की पीक उस समय इनके ऊपर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा, किंतु जब ये १८ वर्ष के हुए तब उसी साधु ने इन्हें फिर एक बार दर्शन दिए ।

---

१. उत्तरी भारत की संत परंपरा पृ-४६०
२. दादू दयाल की बानी, भाग-१ (बेलविडियर प्रेस) पृ०-४
३. दादू उपक्रमणिका ,आचार्य क्षिति मोहन सेन पृ०-११-१२
४. ' दादू - क्षितिमोहन सेन, पृ०-१७

इस बार इनकी विचित्र कायापलट सी हो गई - और ये संत पंथ की ओर प्रेरित हो गये । तब से ये कुछ दिनों तक देशाटन, सत्संग, चिंतन मनन एवं कतिपय साधनाओं में लगे रहे और लगभग ३० वर्ष की अवस्था में ये सांभर आकर रहने लगे, जहां पर अपने उपलब्ध अनुभवों के आधार पर इन्होंने एक ' ब्रह्म सम्प्रदाय ' नाम की संस्था का सूत्रपात किया । यही सम्प्रदाय आगे चलकर ' परब्रह्म सम्प्रदाय '[१] के रूप में विख्यात हुआ । उस समय तक इनका विवाह हो चुका था और ये ग्रहस्थ जीवन में भली भांति प्रवेश कर चुके थे । उक्त सांभर में रहते समय ही इनके दो पुत्र और दो पुत्रियां हुईं । इनके परिवार का पालन पोषण इनकी पैतृक जीविका अर्थात धुनियांगीरि से ही चलता था और एक साधारण ग्रहस्थ का जीवन व्यतीत करते थे । फिर भी इनका अधिक समय देश भ्रमण, सत्संग तथा सर्व-साधारण को उपदेश देने में ही बीतता और ये कुछ दिनों में ही प्रसिद्ध हो गये । फलत: सांभर का परित्याग कर आमेर में रहते समय इन्हें अकबर बादशाह ने आध्यात्मिक चर्चा के लिये सिकरी में बुला भेजा और सं० १६४३ में , उसके साथ इनका सत्संग ४० दिनों तक चला । अकबर के पूछने पर कि खुदा की जात, अंग, वजूद और रंग क्या है ? इन्होंने उत्तर दिया -

' इसक अलाह की जाति है, इसक अलाह का अंग ।
इसका अलाह औजूद है, इसका अलाह का रंग ।।[२]

दादू दयाल के यों तो सैकड़ों-सहस्त्रों शिष्य थे, पर १५२ उनके प्रमुख शिष्य थे और उनमें ५२ और भी अंतरंग थे , यद्यपि किसी को वे गुरु दीक्षा नहीं देते थे ।

---

१. संत साहित्य - डा०सुदर्शन सिंह मजीठिया-पृ०-२३६
२. संत सुधा सार - पृ०-४२६

उनके महान् त्याग, ऊँचे प्रेम और अथाह दया ने हजारों को खींच लिया था। गरीबदास, बखना, रज्जब, सुन्दरदास दादू-सौर मंडल के अत्यन्त प्रकाशमान नक्षत्र गिने जाते हैं। दादूजी ने सतत सहजयोग की कठिन साधना की। निरंतर भक्ति रस में लौलीन रहने की अति ऊँची अवस्था को इन्होंने प्राप्त कर लिया और यह अन्तर्मुख हो गए।

दादूजी का दया का अंग तो पराकाष्ठा को पहुंच गया। दया-पारमिता को सहजयोग से प्राप्त कर लिया। लोग इन्हें 'दयाल' के प्यार भरे नाम से पुकारने लगे। दया-दर्शन का इनका बड़ा सुन्दर प्रसंग है। एक दिन अपनी कोठरी में ये ध्यान-मग्न बैठे थे। कुछ ईर्ष्यालु ब्राह्मणों ने ईंटों से कोठरी का दरवाजा चिन दिया। ध्यान से जागने पर द्वार बंद मिला, और जब बाहर निकलने का रास्ता नहीं मिला तो फिर उसी में ध्यान लगाकर बैठ गये। इस प्रकार से ये कई दिनों तक ध्यानस्थ कोठरी में बंद रहे। लोगों को जब मालूम हुआ तो द्वार खोला और दुष्टों को दण्ड देना चाहा। दयालजीने दंड देने से मना किया और बोले - "इन लोगों ने तो कोठरी के द्वार को ईंटों से चिनकर अच्छा ही किया था, इनकी कृपा से ही तो इतने दिनों तक मैं भगवान के ध्यान में लौलीन रहा।"[१]

संत दादूजी की सांसारिक शिक्षा कुछ नहीं थी, परंतु इनकी आध्यात्मिक-अनुभूति बड़ी गहरी और सच्ची थी तथा उसे व्यक्त करने के लिए भाषा के प्रयोग में भी ये निपुण थे। इस दृष्टि से इन्हें एक सफल कवि कह सकते हैं फिर भी इस प्रकार की पहुंच स्वानुभूति की साधना तथा सत्संग के अनुकूल वातावरण द्वारा ही संभव हो सकती है। हमें इनके अपार परिचयहीन साधक होने में किसी प्रकार का संदेह करने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती।[२]

---

१. संत सुधा सार - वियोगी हरि-पृ०-४२६
२. क्षिति मोहन सेन - दादू उपक्रमणिका, पृ०-१६४

साहित्य -

दादु दयालजी ने अपनी वाणियों का आरंभ साँभर में ही कर दिया था । पर आमेर में रहकर इन्होंने उस और भी अधिक ध्यान दिया और वहाँ से इनके शिष्य द्वारा उनका प्रचार होने लगा । आमेर से आकर नाराणे में रहते समय जब इनका देहांत हो गया तो इनके शिष्यों द्वारा उनका प्रचार होने लगा तथा विविध रचनाओं को संग्रहीत भी किया जाने लगा ।

दादु दयाल को सारी रचनाओं की संख्या २० सहस्त्र की मानी जाती है, जिनमें इनके पद साखियाँ और अन्य वाणियाँ भी संग्रहीत हैं । परन्तु इन सबका अभी तक कोई प्रामाणिक संग्रह प्रस्तुत नहीं किया जा सका है और जो रचनाएं इस समय उपलब्ध हैं, वे भी सभी असंदिग्ध नहीं कही जा सकती ।[१] दादु दयाल के शिष्यों में से संतदास तथा जगन्नाथदास ने इनकी रचनाओं का एक संग्रह `हरड़ेवाणी` नाम से तैयार किया था ।[२] इनके एक अन्य शिष्य रज्जबजी ने इन त्रुटियों को दूर कर उन्हें ३७ भिन्न भिन्न अंगों या प्रकरणों में विभक्त किया और अपने संग्रह का नाम तदनुसार `अंगबद्य` रखा ।[3] इसके पश्चात आधुनिक संपादकों में से पंडित सुधाकर द्विवेदीजी ने रज्जब की ही प्रणाली का अनुसरण कर एक नवीन संग्रह तैयार किया । यह संग्रह काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से प्रकाशित हुआ, और उसमें २६२३ साखियाँ और ४४५ पद संग्रहीत किए गए हैं । एक दुसरा संग्रह डा० राय बलजंग सिंह का भी प्रायः इसी आदर्श के अनुसार प्रस्तुत किया हुआ जयपुर से प्रकाशित हुआ है । परन्तु इन सबसे प्रामाणिक संग्रह एक तीसरा निकला जिसका संपादन पंडित चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी ने [illegible] जो अजमेर से प्रकाशित हुआ ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

[illegible] परंपरा-पृ०-५००
[illegible] सिंह मनीठिया-पृ०३४१
[illegible]

फिर प्रायः उसमें निर्धारित पाठ पर ही आश्रित एक नवीन संस्करण भी स्वामी मंगलदास द्वारा संपादित होकर निकला। इसमें ३७ अंगों में ही विभाजित साखियों की संख्या २६५२ है और २७ रागों के अनुसार छपे हुए ४४५ पद हैं। प्रयाग के 'बेलवेडियर प्रेस' की ओर से भी दादूजी की रचनाओं का एक संस्करण प्रकाशित हुआ है जिसमें त्रिपाठीजी के संस्करण से अधिक भिन्नता नहीं दीख पड़ती। इधर 'नागरी प्रचारिणी सभा' काशी से श्रद्धेय परशुराम चतुर्वेदी द्वारा संपादित एक नया संस्करण अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक रूप में प्रकाशित होने जा रहा है।[1]

पदों एवं साखियों के अतिरिक्त दादू दयालजी की एक अन्य रचना 'काया बेलि' नाम से भी प्रसिद्ध है जो उनके पद संख्या ३५७ से ऊपर ३६४ का ही एक पृथक संकलन है।

दादूजी संत परम्परा के एक उज्ज्वल रत्न थे, किंतु उन्होंने अपने विचारों को अन्य संत कवियों की अपेक्षा अधिक मनोहर ढंग से रखा है, यही इनकी विशेषता है। इनकी रचनाओं का विषय कबीर और गुरुनानक से भिन्न नहीं था, किंतु उनका सा माधुर्य-भाव कबीरजी में नहीं पाया जाता। अन्याय का विरोध करने के बाद भी उनकी जागरूक चेतना समन्वय जानती थी। जो कार्य प्रेम से हो सकता है, उसके लिए वे कठोर शब्दों का प्रयोग करना नहीं चाहते थे।

दादूजी को गहन अनुभूति का साक्षात्कार हो चुका था। इसलिये उन्होंने कहा था कि जब ईश्वर प्राप्ति हो गई तो अन्य किसी चीज की क्या आवश्यकता? हरिजन में ही हरि मिल गया। कबीर की सहजावस्था दादू को भी प्राप्त हो गई थी। इसीलिये इन्होंने इसे सहज मार्ग की संज्ञा दी।[2]

---

1. उत्तरी भारत की संत परम्परा-आचार्य परशुराम चतुर्वेदी-पृ०-५०१
2. संत साहित्य- मजीठिया, पृ०-२४१

विचारधारा-

दादू दयालजी की वाणी कबीर की वाणी के समान्तर रखी जा सकती है। सगुण पक्ष में भक्त कवियों में जैसे तुलसी और सूर हैं, वैसे ही निर्गुण संत कवियों में कबीरदास और दादू दयाल जी। इनकी प्रेम तत्व की व्यंजना तो बहुत ही ऊँची और गहरी है। कितने ही शब्दों एवं साखियों में प्रेम और विरह का निरूपण अत्यन्त निर्मल और अनुपम हुआ है। इतने ऊँचे घाट की बानी अन्यत्र बहुत ही कम देखने में आती है। दादू के शब्दों में आप अन्तर को वेधने वाली सुक्ष्म से सुक्ष्म दृष्टि और अमृत रस से सींचा हुआ स्वानुभाव पायेंगे। [१]

अनेक शब्दों व साखियों में कबीर का रंग देखने में आता है किंतु कथ्य को व्यक्त करने का ढंग दादूजी का अपना अनूठा है। कबीर को यह गुरुवत् मानते भी थे। इनकी साखी दृष्टव्य है।

> जो था कंत कबीर का सोई वर वरि हूं।
> मनसा वाचा कर्मना मैं और न करिहूं ।।
> सांचा सबद कबीर का मीठा लागै मोहि।
> दादू सुनतां परमसुख केता आनंद होहि । [२]

किंतु कबीर की तरह इन्होंने सत्य की राह में भटकाने वाले पंडितों और मुल्लों पर प्रहार नहीं किये। खंडन-मंडन में इन्हें, रुचि नहीं थी। संत मत का मंथन कर सब: प्रेम नवनीत "दया" को दादू दयाल ने दोनों हाथों से प्राणियों में लुटाया है। इनकी रचनाओं में न केवल इनके सिद्धांतों एवं साधनाओं का ही परिचय मिलता है प्रत्युत उनके एक-एक शब्द से इनके उस संत हृदय का भी स्पष्ट पता चल जाता है जिसका क्रमिक विकास, उनके शुद्ध सात्विक जीवन से साधारण दैनिक व्यवहारों के बीच में हुआ होगा।

---

१. संत सुधा सार - वियोगी हरि-पृ०-४३७
२. वही वही

अपनी वाणी की नम्रता, क्षमाशीलता एवं कोमल-हृदयता के कारण ये केवल दादू से ` दादू दयाल ` कहलाने लगे । सर्वव्यापक परमात्म तत्व के प्रति इनकी अविच्छिन्न विरहासक्ति ने इन्हें प्रेमोन्मत्त सा बना दिया था । इनकी प्रेम पगी वाणियों का प्रभाव इतना गहरा पड़ता कि जो भी इनके सम्पर्क में आता था वह इनका सदा के लिये हो जाता था ।

इनकी भाषा बड़ी सशक्त है। अनेक जनपदों के शब्दों का मुक्त प्रयोग इन्होंने किया है । इनकी रचनाओं की भाषा मुख्यत: राजस्थानी है। फारसी के भी सैकड़ों शब्द इनकी रसवंती बानी में आये हैं । इसके अतिरिक्त कुछ पद पंजाबी, गुजराती, सिंधी एवं मराठी के भी मिलते हैं । यह उनके सामुक्कड़ी प्रभाव एवं देशाटन तथा सत्संग के कारण ही संभव हुआ होगा । संत दादू दयालजी की कृतियों का संत साहित्य में बहुत ऊंचा स्थान है ।

दादूजी की साधना अद्वैतवादी थी। उसमें ईश्वर के अतिरिक्त अन्य का स्थान नहीं । वे तो एक ही आनंद में लीन थे। वे निराकार, निरंजन ब्रह्म के उपासक थे । उन्हें तो सब जगह ईश्वर के सहज रूप ही दृष्टिगत होता था , वे तो केवल एक ईश्वर को देखना चाहते थे अन्य को नहीं । [१]

दादूजी का स्वाभाव सरल और व्यक्तित्व आकर्षक था । उन्होंने बाह्याचारों की आलोचना तो की किंतु लोगों की आलोचना कहीं नहीं की । उन्होंने सम्यक् दृष्टिकोण प्रस्तुत कर सभी धर्मों के गुणों को अपनाया ।

---

१. बानी ज्ञान सागर - पृ०-४२-४३
(संत बाणी संग्रह) - वेलवेडियर प्रेस

दादू दयालजी की वाणी के कुछ अंश है-

राग गौड़ी

(१) अजहुं न निकसे प्राण कठोर

दर्शन बिना बहुत दिन बीते, सुन्दर प्रीतम मोर

चारि पहर चार्यो जुग बीते, रैनि गवांई भोर।

अवधि गई अजहुं नहि आये, कतहुं रहे चित चोर।।

कबहुं नैन निरखि नहि देखे, मारग चितवत तोर।

दादू ऐसे आतुर विरहणि, जैसे चंद चकोर ।। [१]

राग केदारी

(२) बटाऊ, चलणां आज कि काल्हि।

समझि न देखै कहा सुख सोवे, रे मन राम संभालि।।

जैसे तरवर विरखं बसेरा, पंखी बैठे आइ।

ऐसे यहु सब हाट पसारा, आप आप के जाई।।

कोइ नहिं तेरा सजन संगाती, जिनि खोवे मन मूल।

यहु संसार देखि जिनि भूलै, सब ही सेंबल-फूल।।

तन नहि तेरा, धन नहि तेरा, कहा रह्यो इहि लागि।

दादू हरि बिन क्यों सुख सोवै, काहे न देखै जागि।। [२]

साखि , गुरदेव कौ अंग

दादू गैब मांहि गुरदेव मिल्या, पाया हम परसाद।

मस्तक मेरे कर धर्या। देख्या अगम अगाध।। [३]

दादू पड़दा भरम का , रह्या सकल घटि छाइ।

गुर गोबिंद कृपा करें, तौ सहजै ही मिटि जाइं।

दादू जल पाषाण ज्युं, सेवे सब संसार।

दादू पाणी लूण ज्यू कोई बिरला पूजणहार।। [५]

---

१. संत सुधा सार पद-३पृ०-४२६
२. वही पद-२२, पृ०-४३५
३. संत सुधासार - साखी १ पृ०-४४६
४. वही साखी ११-पृ०४५०
५. वही परचा कौ अंग १७, पृ०-४६३

बाजीदजी -

जीवनवृत्त - बाजीदजी संत दादू दयाल के एक सौ बावन शिष्यों में से श्रेष्ठ थे । कहा जाता है कि ये जाति के पठान एवं इस्लाम धर्म को मानने वाले थे । इनके विषय में कहा जाता है कि एक बार ये शिकार खेलने गए और जंगल में एक हिरणी पर तीर चलाने ही वाले थे, कि इनका हृदय दयार्द्र हो गया और इनके जीवन की धारा ही परिवर्तित हो गई । इन्होंने उसी समय तीर कमान तोड़कर फेंक दिए और घर लौट आए । अब वाजिदजी सद्गुरु को पाने के लिए व्याकुल हो उठे । खोजते-खोजते उन्होंने संत दादू दयाल की सुखद शरण पाली, और उनके कृपापात्र शिष्य हो गए ।[१]

बाजीदजी के जन्म स्थान एवं जीवनकाल की तिथियां अज्ञात हैं, साथ ही इनके जीवन-वृत्त पर भी विशेष सामग्री उपलब्ध नहीं है । इनका जीवनकाल विक्रम की १७वीं शताब्दी में माना जाता है कुछ लोग यह अटकल लगाते हैं कि संभवतया ये १८वीं शताब्दी के प्रारंभ काल में थे । इनके जीवन में आमूल परिवर्तन आने के कारण इनके क्रूर शिकारी हृदय का अकस्मात कोमल बन जाना था, जो उसी रूप में इनके अंत समय बना रहा । इनकी रचनाओं में इनकी दया, दानशीलता, सहानुभूति आदि के भाव व्यक्त हुए हैं। इन्हें संघर्ष और द्वेष के जीवन के प्रति तनिक भी आकर्षण नहीं था । ये सामान्य लोगों के जीवन स्तर को नैतिक आधार पर ऊँचा करना चाहते थे । इनकी रचनाओं में भी इसी विचारधारा के संकेत मिलते हैं।

---

१. संत सुधा सार - वियोगी हरि - पृ० -५५२

स्वामी मंगलदासजी ने अपने ' पंचामृत ' में
बाजीदजी के विषय में राघोदासजीका यह कवित उद्धृत किया है -

छाड़ि कै पठान-कुळ रामनाम कीन्हौं पाठ,
भजन प्रताप यूं बाजींद बाजी जीत्यौ है ।।
हिरणी हतत उर डर भयौ भयकारि,
सील भाव उपज्यौ दसीळ भाव बीत्यौ है।।
तोरे हैं कबाणतीर बाणक दिया शरीर,
दादुजी दयाळ गुरु अंतर उदीत्यौ है।।
राघौ रति रात दिन देह दिळ मालिक सूं ।
सालिक सूं सेत्यौ जैसे सेळण की रीत्यौ है ।।[१]

साहित्य - बाजीदजी की रचनाओं की संख्या अनेक बतायी जाती है किंतु कुछ लोगों के अनुसार १४ और कुछ के अनुसार १५ ग्रंथों में उनके वाणी संग्रहीत है । किंतु उनमें से कोई भी प्रकाशित नहीं है और सभी ग्रंथों का विस्तृत विवरण भी उपलब्ध नहीं है । इनकी कुछ साखियां रज्जब ने अपने संग्रह में संकलित की हैं (सर्वंगी) तथा जगनाथजीने अपने संग्रह (गुणगंजनामा) में संकलित की हैं । फिर भी बाजीद की ' अरिल्ल ' छंद की ही रचनाएं सबसे प्रसिद्ध हैं और उनहीं का एक छोटा सा संग्रह जयपुर से प्रकाशित ' पंचामृत ' नामक-पुस्तक में छपा हुआ है। इसमें केवल एक सौ पैंतीस ही अरिल्ल हैं जो क्रमशः सुमरण, विरह, पतिव्रता, साध, उपदेश, चिन्तामणि, विश्वास, कृपण, दातव्य, दया, अज्ञान, उपजण, जरणा, सांच एवं भेष जैसे विविध अंगों के अंतर्गत विभाजित हैं । इनसे संत-हृदय का सर्वांग परिचय मिलता है । इनकी भाषा सीधी सादी स्पष्ट एवं प्रभावपूर्ण है । इनकी अभिव्यक्ति में कहीं भी उग्रता एवं तेजी नहीं लक्षित होती है ।

---

१. पंचामृत - स्वामी मंगलदास - श्री स्वामी लक्ष्मीराम ट्रस्ट-जयपुर १६४८-५० पृ०-६६-६६

इनकी कुछ रचनाएं दोहे-चौपाइयों में भी मिलती हैं । कहीं-कहीं इनकी भाषा में उर्दू-फारसी के शब्द भी स्वभावत: प्रयुक्त हो गए हैं । दया उदारता तथा देह की अनित्यता पर इनके बड़े ही भावपूर्ण अरिल्ल हैं ।[१] इनके कुछ रचना उदरण हैं -

विरह कौ अंग

(१) कहियौ जाय सलाम हमारो राम कूं।
नैणा रहे भड़ लाय तुम्हारे नाम कूं।
कमल गया कुमलाय कल्यां भी जायसी।
हरि हां वाजिद, इस बाड़ी में बहुरि न भंवरा आवसी।।१।।[२]

(२) काजल तिलक तमोल तुमारो नाम है।
चोवा चंदन अगर इसी का काम है।।
हार हमेल सिंगार न सोहे रावड़ी।
हरि हां, वाजिद, जब जिव लागी पीव और क्युं बावड़ी।।२।।[३]

उपदेस कौ अंग

(३) हरिजन बैठा होय तहां चल जाइये।
हिरदै उपजै ग्यान समगुण गाइये।।
परिहारिये वह ठाम भगति नहीं राम की।
हरि हां, वाजिद बीन बिहुणी जान कहो किस काम की।।१।।[४]

अज्ञान कौ अंग

(४) कहा करे उपदेश अज्ञानी जीव कूं।
भई जनम की भूल जपै कि न पीव कूं।
दृष्टि भली न वाजिद दुहाई राम की।
हरि हां, अंधे आरसि दई कहो किहि काम की।।१।।[५]

१-२-३-४-५ : संत सुधा सार-वियोगी हरि पृ०-५५३-५५५-५५७-५५८-५६५

<u>विचारधारा -</u>

वाजीदजीने अपने " पंचामृत " में " सुमरण को अंग " में " राम नाम " के सिमरण के महत्व को बताया है कि राम नाम के आधे भाग से अर्थात " रकार " मात्र से समुद्र पर नल आदि वानर लोगों ने पत्थर तैरा दिये । अत: कलिकाल में रामनाम से कोई भी डूब नहीं सकेगा । वाजीदजी कहते हैं कि " मुझे इस संसार में रामनाम की लूट ही रुचिकर लगी है , अत: रात-दिन जीव प्रिय राम का सुमिरन करता रहता है । सभी जगह यह बात प्रसिद्ध हो गई है, क्योंकि रामनाम के सिमरन से अधिक अजामिल जैसे व्यक्ति भी भवसागर पार हो गए । [१]

वाजिदजी कहते हैं कि जहां पर हरि के प्रेमी बैठे हों वहीं पर जाना चाहिए, क्योंकि राम-नाम के गुणगान से हृदय में ज्ञान उत्पन्न होता है, और उस स्थान का त्याग करना चाहिए जहां पर राम की भक्ति न होती हो, क्योंकि बिना प्रियतम की स्त्री किसी काम की नहीं होती।।

वाजिदजी कहते हैं - " कि जमीन में गाड़ी हुई सम्पत्ति किसी काम की नहीं होती, यह माया धन ईश्वर को ही समर्पित कर देनी चाहिए । यह प्रभु का दास वाजिद खुब चिल्लाकर कह रहा है अरे - जैसे मिट्टी में दबा देने से फूल की सुगंध नहीं फैलती वैसे ही धन गाड़ देने या छिपाकर रखने से यश नहीं मिलता ।२

धातव्य को अंग " में वाजीदजी कहते हैं - भूखे दुर्बल शरीर वाले व्यक्ति को देखकर मुंह नहीं मोड़ना चाहिए। अगर प्रभु कृपा से तुम्हें पूरी रोटी प्राप्त हो गई है तो आधी भूखे को दे देनी चाहिए अगर पास में आधी ही हो तो, उसका टुकड़ा ही भूखे को देना चाहिये ।क्योंकि भूखे को भोजन देने के समान और कोई बड़ा पुण्य नहीं है । [३]

- -

१ साखी वाजीदजी-सुमरण को अंग-१-२ संतसुधा सार-पृ०-५५४

बुल्लेशाह -

जीवनवृत- संत बुल्लेशाह व बुल्लाशाह के जन्म-स्थान एवं निवास-स्थान के विषय में अनेक मत-मतांतर मिलते हैं । कुछ लोगों के अनुसार बुल्लेशाह नामक संत " बलख शहर " के बादशाह थे । [1] अचानक इनका मन विषयों के प्रति अनासक्त हो गया , और ये किसी पहुंचे हुए पीर से मिलने पहुंचे । इन्होंने अपने पुत्र को बादशाह बनाया और कुछ लोगों के साथ लाहौर गये । पीर मियां मीर उस समय जंगल में कुटी बनाकर रहा करते थे , वहां पर उनकी आज्ञा के बिना कोई नहीं जा सकता था । बलख के बादशाह बुल्लेशाह ने भी अपने आगमन का संदेश पीर साहब के पास पहुंचाया । पीर साहब मियां मीर ने पूछा- कि बादशाह किस दशा में है, तो उत्तर मिला - कि वे बादशाह ठाट में है । इस पर मीर साहब ने दर्शन नहीं दिए । बुल्लेशाह (बादशाह) ने उसी समय बादशाही सामान को लुटा दिया और अपने साथ आए लोगों को भी वापस भेज दिया , स्वयं एक चादर लपेटकर पीर मियां के दर्शनों के लिए पहुंचे । मीर साहब ने तब इन्हें वहां से १२ कोस पर किसी अन्य फकीर के पास बारह वर्षों तक रहकर तप करने का आदेश भिजवाया और कृशकाय हो गए थे । बाल भी बेतरतीब बढ़े हुए थे । मीर साहब इन्हें अपना शिष्य बनाकर अद्वैत सिद्धांतों के उपदेश दिए और इनका नाम बुल्ला शाह रख दिया । [2]

एक अन्य मत के अनुसार इनका जन्म कुस्तुन्तुनियां में सं० १७६० सन् १७०३ में हुआ था और ये जाति के सैयद मुसलमान थे। अपनी किशोरावस्था में ही ये फकीरों की खोज भ्रमण करने लगे - और पैदल पंजाब पहुंचे ।

---

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा - पृ०-७५३

२. कल्याण- गोरखपुर संत अंक - पृ०-७६३-४

यहां पर उनकी भेंट इनायत शाह सूफी से हो गयी और कई हिन्दू साधकों के सम्पर्क में आकर सत्संग किया । अंत में ये कसूर में बस गए । [१]

उपर्युक्त मतों के अतिरिक्त एक तीसरा मत भी मिलता है, जिसके अनुसार बुल्लेशाह वास्तव में कहीं बाहर से नहीं आये थे । इनका जन्म भारत में ही लाहौर जिले के अन्तर्गत, कसूर के निकट पंडोल नामक गांव में मुहम्मद दरवेश के घर में हुआ थे साधुओं के संसर्ग में आए और सूफी फकीर इनायतशाह को अपना गुरु (पीर) स्वीकार कर लिया । ये मृत्यु तक सच्चे ब्रह्मचारी के वेश में सारा जीवन व्यतीत करते रहे । अपनी बहन के साथ ये कादरी शतारी-सम्प्रदाय के अनुयायी समझे जाते रहे । इनकी साधना स्थली ' कसूर ' नामक स्थान रही है । इन्होंने कुरानशरीफ तथा परम्परागत विधानों की आलोचना की परिणाम स्वरूप मौलवी मुल्लाओं की दृष्टि इन पर सदैव क्रूर रही, और इन्हें अनेक प्रकार यातनाएं भी दी गईं । ये अपने मौलिक विचारों के कारण अपने गुरु पीर इनायत शाह के भी प्रिय नहीं रह सके । कुछ दिनों तक स्त्रियों की वेशभूषा धारण कर गायक मंडल में गाते रहे । इनका देहावसान सं० १८१० में कसूर गांव में ही हुआ था, जहां पर आज भी इनकी समाधि वर्तमान है और जो तीर्थस्थान की भांति मानी जाती है । [२]

साहित्य -

इनकी रचनाओं का एक संग्रह कसूर निवासी प्रेमसिंह द्वारा प्रकाशित हो चुका है जिसमें इनके ' दोहरे ' ' काफी ' ' सीहर्फी, अठवारा ' बारहमासा ' आदि हैं ।

---

१. क्षिति मोहन सेन - मिडीवल मिस्टिसिज्म आफ इंडिया, लंदन-पृ०-१५६

२. उत्तरी भारत की संत परम्परा-आचार्य परशुराम चतुर्वेदी-पृ०-७५४

इनकी रचना ' सीहर्फी ' का एक संस्करण' वेलडियर प्रेस ' प्रयाग से भी निकल चुका है । इन्होंने अपने सिद्धांतों को बड़ी शुद्ध तथा सरल पंजाबी हिंदी द्वारा स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है ।[१]

इनकी रचनाओं में सूफिया ने प्रेम की नाना अवस्थाओं का निरूपण और व्याख्यान है । इनकी रचना का अंश उद्धरित है -

' टुक बूझ कवन छप आया है।
कई नुकते में जो फेर पड़ा, तब ऐनों ऐन कहाया है।।
तुसीं इल्म किताबा पढ़ते हो, केहे उल्टे माने करदे हो ।
बेमुजब ऐवें लड़दे हो , केहा उल्टा वेद पढ़ाया है।
दुई दूर करो, कोई और नहीं, हिन्दू तुरक कोई होर नहीं।
सब साधु लखो कोई चोर नहीं, घट घट में आप समाया है।।
न मैं मुल्ला, न मैं काजी, न मैं सुन्नी, न मैं हाजी।
बुल्ले शाह नाल लाई बाजी, अनहद सबद बजाया है। [२]

विचारधारा -

संत बुल्लेशाह का कादरी सत्तारी सम्प्रदाय के साथ संबंध था । अतः साधारण सूफियों की भांति ये वेदान्त के सिद्धांतों द्वारा भी बहुत प्रभावित थे । ये कबीर साहब के समान विचार स्वातंत्र्य में विश्वास रखते थे और उन्हीं की भांति बाह्याडम्बर के कट्टर विरोधी भी थे । ' मस्जिद मंदिर, ठाकुरद्वारा आदि को ये चोरों और डाकुओं का अड्डा कहा करते थे । उनका कहना है कि - यदि हृदय के भीतर सच्चे नमाज की भावना न हो, तो मसजिदों में जाकर वहां अपना समय नष्ट करना उचित नहीं कहा जा सकता ।

- -

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा-आचार्य परशुराम चतुर्वेदी-पृ०-७५५
२. भजन संग्रह, चौथा भाग, गीता प्रेस,गोरखपुर ,पृ०-१३७-८

मक्का जाने से तब तक उद्धार नहीं हो सकता, जब तक हम अपने हृदय से अहंता का त्याग न दें, न इसी प्रकार गंगा में सैकड़ों डुबकियां लगाने से ही संभव है । मैंने तो अल्ला का अपने भीतर ही अनुभव करके सदा के लिए विशुद्ध आनंद तथा शांति को उपलब्ध किया है । नित्य का सांसारिक मरण ही मेरा नित्य का आध्यात्मिक जीवन है और मैं प्रत्येक क्षण अग्रसर होता हुआ चला जा रहा हूं। ईश्वर के प्रेम में सदा मस्त बने रहो । तुम्हें इसके लिए सैकड़ों हजारों विरोधों का सामना करना पड़ेगा , किंतु इनकी परवाह न करो । जब कभी तुमसे कोई कहे कि तू काफिर है , तो तू ही कह कि हां - तू सत्य कहता है।[1]

संत बुल्लेशाह की रचनाएं अधिकतर मस्ती से भरी हुई जान पड़ती है। इससे समझ पड़ता है कि उनका प्रत्येक शब्द निजी अनुभव द्वारा ओतप्रोत है। उनके अनुसार -

• वह मेरा प्रियतम परमात्मा नितांत निरुपाधि तथा नित्य आनंद स्वतंत्र है और जिसने एक बार भी उसे देख लिया , वह चकित हो गया। उसके प्रति लाखों स्वर्ग न्योछावर कर दिए तथा प्रपंचों से अलग हो उस दशा को प्राप्त कर लिया, जो चिंताओं से रहित है । बुल्लाशाह उसी स्थिति में आ जंजीर तोड़कर स्वतंत्र बन कर हाथी की भांति मस्त हो फिर रहा है ।

• ऐन-ऐन ही आप है बिना नुक्ते, सदा चैन महबूब दिलदार मेरा
इक्क बार महबूबनू जिनी डिठा , ओह देखणेहार है सम्भ कैरा।।[2]

इसी प्रकार ये सर्वात्मवाद की भावना से प्रेरित हो अन्यत्र कहते हैं -

• तनिक समझ तो लो कि कौन तुम्हारे सामने गुप्त रूप से वर्तमान है। केवल उपाधियों के ही कारण नाम तथा रूप के भेद दीख पड़ते हैं । सद्गुरु द्वारा भ्रम दूर कर दिए जाने पर केवल आत्म स्वरूप ही एक मात्र रह जाता है।

---

1. क्षिति मोहन सेन - मिडीवल मिस्टिसिज्म आफ इंडिया, पृ०-१५६-१५७
2. बुल्लाशाह की सीहर्फी, श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बई-पृ०-६

तुम शास्त्रादि का अध्ययन करते हो तथा व्यर्थ उल्टा सीधा अर्थ लगाते हो और लड़ते हो । यदि द्वैत की भावना को दूर करके देखो तो हिन्दू तथा मुसलमान में कोई अन्तर ही नहीं है , सभी एक समान साधु जान पड़ते हैं और सबके भीतर वही एक व्याप्त समझ पड़ता है । मैं न तो मुल्ला हूं , न काजी हूं और न अपने को कभी सुन्नी अथवा हाजी ही मानने को तैयार हूं । अब तो उसके साथ आत्मीयता की बाजी मार ली है और अनाहत शब्द बजाता हुआ आनंद में विभोर हूं ।[१]

(१) " टुक बूझ कवन छप आया है।
कई नुक्ते में जो फेर पड़ा, तब एन है न का नाम धरा।
जब मुरशिद नुक्ता दूर किया, तब ऐनी ऐन कहाया है।।
तुसीं इल्म किताबा पढ़दो हो, केहे उल्टे माने करदे हो।
बे मुजब एवें लड़दे हो, केहा उल्टा वेद पढ़ाया है।
दुई दूर करो कोई और नहीं, हिन्दू तुरक कोई होर नहीं।
सब साधु लखो कोई चोर नहीं, घट-घट में आप समाया है।
न मैं मुल्ला, न मैं काजी, न मैं सुन्नी, न मैं हाजी।
बुल्लेशाह नाल लाई बाजी, अनहद सब्द बजाया है ।।[१]

" चेतावनी " के रूप में बुल्ला साहब कहते हैं -

" राग भैरों "

(२) अब तूं जाग मुसाफिर प्यारे । रैन घटी लटके सब तारे।
आवागवन सराईं डेरे । साथ तयार मुसाफिर तेरे,
अजे न सुनदा कूच नकारे । करले आज करन दी बेला।
बहुरि न होसी आवन तेरा, साथ तेरा चल चल पुकारे।
आपो अपने लाहे दौड़ी, क्या सरधन क्या निरधन बौरी,
लाहा नाम तू लेहु संभारे। बुल्ले सहुदी पैरी परिये, [२]
गफलत छोड़ हीला कुछ करिये। मिरग जतन बिन खेत उजारे।।२।।

---

१. भजन संग्रह चौथा भाग-गीता प्रेस गोरखपुर-पृ०१३७-१३८
२. वही वही

' राग पीलू '

(३) कद मिलसी मैं बिरहों सताईं नू।
आप न आवे, न लिखि भेजे, भट्ठि अजे ही लाईं नू।
ते जेहा कोई होर तां जाण, मैं तनि सूल सवाईं नू ।।
रात दिने आराम न मैंनू, खावे बिरह कसाईं नू।
बुल्ले शाह धुग जीवन मेरा जौलों दरस दरस दिखाईं नूं।। १

' राग काफी '

(४) माटी कुदी करेंदी यार
माटी जोड़ा, माटी घोड़ा, माटीदा असवार ।।
माटी माटीनू मारन लागी, माटी दे हथियार।
जिस माटी पर बहती माटी, जिस माटी हंकार ।।
माटी बाग, बगीचा माटी, माटी दी गुल्जार।
माटी माटी नूं देखन आई, है माटी दी बहार ।
हंस-खेल फिर माटी होई, सौंदी पांव पसार ।
बुल्लेशाह बुझारत बुझी, लाह सिरों भौं मार ।। २

25-3-93

---

१. भजन संग्रह चौथा भाग गीता प्रेस गोरखपुर-पृ०-१३६
२. संत साहित्य और साधना-भुवनेश्वर नाथ मिश्रा माधव पृ०-१७१

वारिस शाह -

सैयद वारिस शाहजी को पंजाब में जितनी लोकप्रियता मिली है संभवतया उतनी लोकप्रियता मलिक मुहम्मद जायसी को भी नहीं मिली। जायसी को केवल हिन्दी का इतिहास प्रिय छात्र जानता है। जायसी घर-घर के कवि नहीं बन सके, वारिस शाह पंजाब के घर-घर और जन-जन में निवास करता है। वारिस के पिता 'कुतुबशाह' थे एवं वे जंडियाला शेरखां (जिला गुजरांवाला) के निवासी थे। 'हीर वारिसशाह' एक ही रचना है जो अपने स्रष्टा को युगों तक जीवित रखने की क्षमता रखती है।[१]

वारिसशाह का जन्म ११५० हिजरी अर्थात विक्रम संवत् १७९५-१७३८ ई० अनुमान किया जाता है। इसका कारण यह है कि आपने अपना रचना-काल ११८० हिजरी अर्थात १७६८ ई० तथा १८२५ विक्रम संवत बताया है जोकि महाराजा रणजीतसिंह को राज्य प्राप्ति से कुछ पूर्व ठहराता है।[२]

वारिस की सामान्य शिक्षा अपने गांव तथा उच्च शिक्षा कसूर में हुई। उस समय कसूर मुफती गुलाम मुहीउद्दीन तथा हाजी हाजी गुलाम मुर्तजा द्वारा संचालित बृहत् इस्लामी शिक्षा के केन्द्र थे। वारिस ने वहां फिका का इल्म तथा हदीस तथा कुरान मजीद का सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त किया। आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त करने वारिस पाकपट्टन, संभवत: दीवान मुहम्मद युसुफ के पास, आये। शिक्षा प्राप्त कर वारिस घर लौट रहे थे कि मिंटगुमरी के किसी गांव में एकांत पाकर वहीं रहने लगे।

---

१. पंजाब प्रांतीय हिन्दी साहित्य का इतिहास-पं० चन्द्रकांत बाली, पृ०-१८०
२. वही पृ०-१८०

उसी स्थान पर ' भागभरी ' नामक भटियारिन से आपका प्रेम हो गया, भागभरी के माता-पिता विरोध करते, इन पर प्रेम का रंग इतना गहरा हो जाता । प्रेम की इस गहराई में उतर कर आपने ' हीर-रांझा ' पर एक बृहत्काय काव्य लिखा । अपने काव्य में स्त्रियों के विशेषणों में ' भागभरी ' का बड़ा सुन्दर प्रयोग किया है । अन्ततोगत्वा आपका विवाह भागभरी से हो गया । विवाह के उपरान्त वारिस अपने दादा-गुरु के पास गये । हजरत गुलाम मुर्तजा ' हीर की प्रशंसा सुन चुके थे । मिलते ही गुरु ने शिकायत की -

बुल्लेशाह को पढ़ाया, तो उसने सारंगी उठाली, और तुम्हें पढ़ाया तो तुने इश्किया किस्से लिखने शुरू कर दिया । ' जब वारिस के मुंह से हीर-काव्य के कतिपय पाठ सुने, तब फरमाया -

' बहार-ए-दानिश के कर्ता इनायत उल्ला की तरह तुने भी मुंज की रस्सी में जवाहर पिरो दिए हैं । [१]

बुल्लेशाह वारिस का सहपाठी था । पैतबअब्दुल हकीम बहावलपुरी, अली हैदर मुल्तानी वारिस के समकालीन थे । शाहनवाज के बाद पंजाब की सूबेदारी की खींचतान वारिस के समक्ष हुई, जिसकी चर्चा उसके अमर काव्य में विद्यमान है । हीर ' वारिस शाह ' को पंजाबी साहित्य में से इस रचना को निकाल दिया जाये, तो पंजाबी साहित्य निष्प्राण हो जायेगा ।

प्रेम कथानक पर आधारित ' हीर ' में वारिस शाह ने लौकिक प्रेम को आलौकिक बाना पहना कर अमर बना दिया है।

- -

१. पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास-पं० चन्द्रकांत बाली, पृ०-१८१

बाबा लाल -

जीवनवृत -

पंजाब की संत परम्परा में जो ख्याति बाबालालजी को प्राप्त है, उतनी ख्याति शायद ही किसी अन्य पंजाबी संत को मिली हो। किंतु इस विख्याति की आड़ में भक्तों को व्यर्थ की खींचतान का अवसर मिल गया है, और खींचतान में चार बाबालाल दिखाई पड़ने लगे।

प्रथम मत के अनुसार पिंडदादन खां में टाहलीवाले संत बाबालालजी वस्तुतः बाबालालजी हैं, जिन्होंने अपने चमत्कार से एक सूखी टहनी को शीशम के हरे-भरे वृक्ष में परिणित कर दिया था।

दूसरे मत के अनुसार बाबालालजी भेरा-ध्याना निवासी बताए जाते हैं।

तीसरे मत के अनुसार बाबालालजी का जन्म-स्थान गुरदासपुरी है। इनका मठ इस समय तक विद्यमान है।

चौथे मतावलम्बी बाबालालजी को कसूर निवासी मानते हैं।[1]

उपर्युक्त विवेचन से यह कहना कठिन है कि ये चारों मूर्तियां भिन्न - भिन्न हैं, अथवा एक ही संत भिन्न-भिन्न स्थानों पर भ्रमण करते से भ्रान्ततः चार मूर्तियों में भास रहा है। किंतु कसूर निवासी संत बाबालाल के पक्ष में ही विद्वज्जनों का रुझान अधिक है - अतः उन्हें ही हम चरित नायक मानेंगे। इनकी भेंट द्वारा शिकोह से हुई थी।[2]

अन्य संतों की तरह बाबालालजी की जन्म-मरण संबंधी तिथियां निर्भ्रान्त नहीं है। श्रुति परम्परा को यदि विचार की कोटि में लाया जाए तो उनका जन्म संवत् १४१२ विक्रमी, माघ शुक्ल द्वितीय मानना पड़ता है।

- -

१. पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास-पं० चन्द्रकांत बाली, पृ०-२८२
२. संत काव्य परशुराम चतुर्वेदी-पृ०-३६२

बाबालालजी का निधन संवत् १७२० विक्रमी में प्रायः सर्वसम्मत माना जाता है। इस प्रकार ३०८ वर्ष की आयु यदि एकदम असंभव नहीं तो विश्वसनीय तथ्य भी नहीं हो सकता । मृत्यु तिथि को इसलिए तर्क संगत मानने की विवशता है इसके पीछे एक ऐतिहासिक घटना का बल निहित है । वह घटना है - बाबा द्वारा मिलन । दारा शिकोह संवत् १६९७ विक्रमी में काश्मीर गया था और संवत् १७१६ विक्रमी में औरंगजेब ने उसका वध कर डाला था । अतः १६९७ संवत् से लेकर १७१६ संवत् के अन्तराल में, किसी भी समय बाबा-दारा मिलन का समय आंका जा सकता है। एच-एन०विल्सन ने इस भेंट का समय संवत् १७०६ विक्रमी ठहराया है, जो तर्क संगत भी लगता है, क्योंकि इसी वर्ष दारा काश्मीर से लौटते हुए लाहौर रुका था । यदि मृत्यु संवत् निराधार नहीं है तो इनका जन्म १६३६ - १६४० के मध्य किसी वर्ष माना जा सकता है । इसका एक प्रबल आधार यह है कि संतजी के विवेकी भक्त जन इनकी जन्म-तिथि १६३६ संवत् बता रहे हैं । श्री परशुराम चतुर्वेदीजी ने इसी तिथि को सही माना है ।[1]

संत बाबालालजी की माता का नाम कृष्णा देवी था और पिता का नाम भोलानाथ था । आठ वर्ष की अवस्था में इन्होंने कुलधर्मानुसार अध्ययन समाप्त करके धार्मिक जीवन चुन लिया था। दस वर्ष की अवस्था विरक्त भाव की जागृति में आप घर से निकल पड़े तथा सद्गुरु की खोज में ये तीर्थों में निकल पड़े । लाहौर के समीप बहरा में बाबा चेतनदास व चैतन्य स्वामी से रावती जी के तट पर इनकी भेंट हो गई । इसका उनके ऊपर बहुत प्रभाव पड़ा । संभवतः उनसे दीक्षित होकर ये उनके साथ कुछ दिनों तक लाहौर रहे ।

- -

१. पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास-पं० चन्द्रकांत बाली पृ०-२८२

परन्तु प्रसिद्ध है कि बाद में ये अपने प्रमुख शिष्यों के साथ पंजाब के अतिरिक्त काबुल। गजनी, पेशावर, गांधार, देहली और सूरत की ओर भी भ्रमण कर उपदेश देते रहे। इनके कहीं एक स्थान में जमकर रहने अथवा पारिवारिक जीवन व्यतीत करने का हमें कोई संकेत नहीं मिलता। इनके अनुयायियों का विश्वास है कि उच्च कोटि के योगिराज होने के कारण उन्होंने काया सिद्ध कर ली थी जो ३०० वर्षों तक बनी रही।[१]

साहित्य-

बाबालालजी की अनेक यत्र-तत्र कतिपय बिखरी रचनाएं पाई जाती हैं। आपकी भाषा है तो ब्रज, पर उसमें खड़ी बोली तथा पंजाबी का आभास मिल जाता है। कुछ राजस्थानी शब्द भी मिल जाते हैं। इनका एक ग्रंथ "असरारे मारफत" भी फारसी में है और मुंशियों ने लिपिबद्ध किया है। इसमें दारा शिकोह के साथ इनकी भेंट और बातचीत का वर्णन मिलता है बाबालाल के कुछ फुटकर दोहे भी प्रचलित हैं किन्तु उनकी संख्या अधिक नहीं है। इनकी वर्णन शैली अत्यन्त सीधी सादी एवं सुबोध है - इनकी रचना के कुछ अंश हैं।

(क) जाके अन्तर ब्रह्म प्रतीत, धरै मौन भावे गीत।

निसिदिन उनमत रहत खुमार, शब्द सुरत जुड़ एकी तार।

न गृह रहे न बन को जाय लाल दयाल सुख आतम पाय।[२]

(ख) आशा विषय विकार की, बान्ध्या जग संसार।
लख चौरासी फेर में, भरमत बारम्बार।
जिह की आशा कुछ नहीं, आतम राखै शून्य।
तिनको कछु नहिं भरमणा, लगे पाप न पुन्य।।
देहा भीतर स्वास है, स्वासे भीतर जीव
जाके अन्तर वासना, किस विध पावे पीव।
जाके अन्तर वासना, बाहर धारे ध्यान।
तिह को गोविन्द न मिले, अन्त होत है हान।।[३]

---

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा - आचार्य परशुराम चतुर्वेदी - पृ०-५६०
२. संत अंक कल्याण - गोरखपुर - पृ०५१४
३. संत अंक कल्याण, गोरखपुर - पृ०५१४

विचारधारा -

अन्य संतों की भांति बाबालाल के भी विचार विशुद्ध एकेश्वरवादी हैं । ईश्वर हरि, अथवा राम - ये सब नाम उस परम तत्व के परिचायक हैं। सभी सम्प्रदाय अन्ततोगत्वा एक ही गंतव्य को पहुंचाते हैं । इनका मत कबीर साहब तथा दादूदयाल जैसे संतों की विचारधारा से कोई पृथक मार्ग ग्रहण करता नहीं जान पड़ता, यद्यपि इसमें संदेह नहीं कि उस में वेदांत - मत तथा सूफी मत का प्रभाव कहीं अधिक स्पष्ट है । [१]

इनके अनुसार जीव परमात्मा से कोई भिन्न तत्व नहीं है, वह आनंद सागर के एक बिंदु के समान है। उसके वियोग के अनुभव का एक मात्र कारण हमारी ' अहंता ' है, जिसके साधना द्वारा क्षय हो जाने पर हमें एकता की अनुभुति है आप से आप होने लगती है । जीव का अहंभाव यन्द्रियासक्ति का जन्म दाता है।

जीवात्मा और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं है। क्योंकि परमात्मा के सुख-दुख उसके बंधन के कारण हैं जो शरीर धारण से संभव हुआ है। गंगा नदी का जल एक ही है, चाहे वह नदी की घाटी से होकर बहे, चाहे किसी पात्र में बंद रहे । अंतर का प्रश्न केवल तब आता है जब हम देखते हैं कि शराब की एक बुंद भी पात्र वाले जल को दूषित कर देती है , जहां नदी में पड़ने पर उसका कहीं पता नहीं चल पाता । इस प्रकार परमात्मा सभी प्रभावों से दूर है, जहां जीवात्मा इन्द्रियों के कार्यों तथा मोहादि के द्वारा प्रभावित हो जाया करती है।

---

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा-आचार्य परशुराम चतुर्वेदी-पृ०-५६२
२. वही वही

संत बाबालालजी ने प्रकृति और सृष्टि का संबंध बीज तथा वृक्ष अथवा समुद्र और तरंग के जैसा है दोनों तत्वत: एक है।

संत बाबालालजी के अनुसार साधना के अन्तर्गत शम , दम, चित्त शुद्धि दया परोपकार, सद्भाव तथा सत्य दृष्टि जैसी बातें आती हैं । इनकी सहायता से अहंता का नाश किया जा सकता है । इसी प्रकार भक्ति तथा प्रेम की शक्ति द्वारा उस परम तत्व की उपलब्धि कर सकते हैं । वैराग्य (विरक्ति) से तात्पर्य इनके अनुसार भोजन वस्त्रादि का त्याग कर देना अथवा अपने शरीर को कष्ट देना कदापि नहीं है। इनके अनुसार इन सबों की विस्मृति अथवा इनके मोह का त्याग ही वास्तविक वैराग्य होगा ।[1]

ईश्वरीय प्रेम की अनुभूति तथा परोपकार इनके दो ऐसे अंग है जिनकी ओर विशेष ध्यान दिया है। इन्होंने मूर्ति पूजा, अवतारवाद व अन्य ऐसी बातों के प्रति आस्था प्रकट की है और योग-साधना को विशेष महत्व दिया है। इनके अनुसार साधु का परम कर्तव्य श्रद्धा तथा वैराग्य के साथ अपना जीवन व्यतीत करना है। इन्होंने यह भी कहा है - कि जिसे ब्रह्म में पूरी आस्था हो गई वह चाहे मौन धारण करे व गीत गाये एक ही बात होगी। उसे बराबर उन्मनी की खुमारी सी रहती है।शब्द तथा सुरत दोनों एक ही तार में जुड़े बने रहा करते हैं । आत्मोपलब्धि हो जाने पर न तो वह घर में रहता है न वन में ही जाया करता है, " जो किसी प्रकार की आशा से रहित है और आत्मा को शून्य की स्थिति में रखता है उसे न तो कोई भ्रम रहता है, न पुण्य-पाप " । अपने शरीर के भीतर श्वास है और श्वास के भीतर जीव का निवास है, जिसमें वासना है उस जीव को प्रियतम कैसे मिल सकता है ।[2]

- -

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा -आचार्य परशुराम चतुर्वेदी-पृ०-५६२
२. संत अंक, कल्याण- गोरखपुर, पृ०-५१४

बुधसिंह -

बुधसिंह नामक संत के विषय में निर्विवाद रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है। इनके विषय में भी अनेक भ्रान्तियां हैं। इस नाम से तीन व्यक्ति प्रसिद्ध हैं।

प्रथम बुधसिंह स्वरूपचन्द भल्ला के शिष्य अथवा पुत्र के रूप में प्रसिद्ध हैं।

दूसरे बुधसिंह रणजीत सिंह दरबारी कवि तथा पंचतंत्र के अनुवादक के रूप में प्रसिद्ध हैं। तथा तीसरे बुधसिंह साहब सिंह ' मृगेन्द्र ' के शिष्य हैं जिनका रचना काल संवत् १६२० के लगभग है।[१]

प्रथम बुधसिंह को उनके उपनाम ' शशिज मृगेन्द्र ' से पहचाना जा सकता। यहां जिन रचनाओं का उल्लेख है, उन पर उक्त उपनाम अंकित है। अमृतसर के ' सिख रिफ्रेन्स पुस्तकालय में ' महिमा प्रकाश ' की एक प्रति रखी है, जिसके आरंभ में स्वरूपचंद भल्ला अंकित है, अन्त में बुधसिंह का नाम। संभव है वह भल्ला का शिष्य या पुत्र न होकर केवल लिपिकार हो।[२]

बुधसिंह सरल व्यक्तित्व के धार्मिक व्यक्ति थे। आपके सिख मत में दीक्षित हो जाने पर भी आप पर पौराणिक-भावना की छाप स्पष्ट है। उनकी रचनाएं देखकर यह अनुमान लगाना असंगत न होगा कि आपने जो कुछ लिखा है वह किसी की संतुष्टि के लिये नहीं, बल्कि स्वान्तः सुखाय लिखा है।

---

१. पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास - पं०चन्द्रकांत बाली पृ०-३३८
२. वही पृ०-३३८

साहित्य -

बुधसिंहजी की रचनाएं हैं - अद्भुत नाटक, माधवानल, राधा मानमु और गुरु-रत्नावली । आपका रचना-काल विक्रम संवत् १८८० से १९१० के अन्तराल का है । अद्भुत नाटक में राजा अम्बरीष की कथा है । गेय नाटक परम्परा में इसका चौथा स्थान है । इसमें नाटकीय विधान का किसी अंश तक ही पालन हुआ है। भाषा तथा विषय प्रतिपादन की दृष्टि से रचनाएं उच्च कोटि की हैं । उल्लेखनीय इतना है कि इन रचनाओं में साहित्य पक्ष एवं भक्ति पक्ष का मणि कांचन योग हो गया है । उर्दू-इतिहासकार शीरानी ने भी बुधसिंह का उल्लेख किया है ।[१] बुधसिंहजी ने पंजाबी में भी मांझा, सीहर फ्रिया तथा बारहमाह लिखे हैं । हिन्दी उर्दू तथा पंजाबी में रचनाएं लिखकर भी ये हिन्दी कवियों का ही प्रतिनिधित्व करते हैं । इनकी भाषा ब्रज है ।

प्रभु कौ प्रणाम जौ अगम्य गम्य भाखियत
मुदित नरेस देस अपनै में आयौ है।
मंगल भयौ अपार औध को न पारावार
औधपुर पति पुष्ठ सिंह कौ सुहायौ है।
बाजत हैं दुन्दुभीन और सहनाई बीन
नाचत नवीन बधु राग बहु गायौ है।
बरस्यौ बहुत बिध वारिद ज्यौं रतननि
राज अम्बरीश जस त्रय लोक छायौ है।।
तक्र ताप सराप रिसौक्त और जु अपि विप्राग्नि कहावै।
इच्छत ही नृप चक्र सुदर्शन ले उन कौ यह मार भगावै।
यौ कहि तौपत हरि जू मुनि नायक जाहु कौ सेवन पावै
संत दयाल करै प्रतिपाल रिखा अस सिल्य अतः समझावै ।।[२]

---

१. पंजाब में उर्दू - शीरानी

२. पंजाब प्रान्तीय हिंदी साहित्य का इतिहास-पृ०-३३४

काह्नजी -

भक्त काह्नजी के जीवनवृत्त के विषय में विशेष सामग्री उपलब्ध नहीं है । प्राप्त ग्रंथों के आधार पर इतना ही पता लग पाया है कि आप गुरु अर्जुनदेवजी के समकालीन थे । क्योंकि उनका वर्णन एक स्थल पर गुरबिलास पातशाही ६ में इस प्रकार किया गया मिलता है -

दोहरा -

कान तब बोलति भयो
इह कारन हम आए
रचयो ग्रिंथ तुम हम सुनयो
भगतन शब्द लिखाई ।। [1]

चौपाई-

देह गेह तिन को नह कोई
कहा मरे तरे जान न होई
तिन के तुम इह शब्द लिखाए
हम जीवत नहीं बोल पठाए।
हमरी बानी नहीं चढ़ावो
तुमे प्रमाण ग्रिंथ कस पावो
सिरि गुरु कहा बानी निज करी
प्रिथक प्रिथक जिऊ इच्छा धरी ।

---

1. गुर बिलास पातशाही-६ दोहरा - ३३५

कानै मुख असबानी कही

ऊही रे मै ऊही सही

सिरी गुर कहा प्रमान न केना

भगत पंथ इह जग सुख देना

कानै कहा हम बैन हटाए

या ते तुम बड़ ऊहौ सजाऐ

सिरी गुर कहा देह थिर नाही

तुम भी मरौ पैंड के माही । १

दोहरा -

कानै तब ऐसी चिठी जानौ

जोग अभियास

काल निकट आवै नही

दसम दवार घरवास । २

उपरोक्त उदाहरणों से ज्ञात हो जाता है कि आप गुरु अर्जुनदेव से मिले थे । डा० मोहनसिंह जी के अनुसार आपकी रची काफी वाणी है - किंतु वे सभी प्राप्य नहीं है । कुछ शब्द हस्तलिखित में से उद्धृत कर रहीं हूं -

मरि मरि जाहि कहा समाहि

यह अचरज देखहु मन माहि ।। रहाऊ ।।

पंज तत पांचो यह पुन

तांते ऊपजे पाप न पुन

छठवा करता अदृष्ट समाई

नरक सरगि किस मिलै सजाइ

यह पंच तत महि बंधिवा न रहै ।

- -

१. गुर बिलास पातशाही - ६ दोहरा - ३३६
२. वही पथर छापा - १६५४ बिक्रमी पृ०-८४

तिस को जगतबंध किउ कहै
खोजहि पिंड न पावहि मरमा
सुर नर बांधिओ लौकी करमा ।। २ ।।
जब गुर दीना तत बताई
मूए की गत जीवत पाई
जब मैं देखिआ तत बिचार
मुकता देखिआ सम संसार ।। ३ ।।
आप आप मैं आप समाइआ
गुर के सबदी ऐक लखाइआ
काना कहै सोइ निरबंध
जिस को उपजै ब्रहम की संध ।। [1]

काहनजी के जन्म-तिथि, जन्म स्थान के विषय में कुछ नहीं मिलता केवल इतना ही मिलता है कि इनकी मृत्यु १६०६ ई०: में हुई थी । [2]

25-3-83

---

१. हस्तलिखित प्रति भगत काहनजी शब्द-३
२. भक्ति काव्य पृ० २१६

:- सप्तम अध्याय :-

पंजाबी संत साहित्य तथा हिंदी संत साहित्य एक तुलनात्मक अध्ययन -

संत-साहित्य मध्यकालीन भारतीय संस्कृति की वह दिव्यधारा है, जिसमें युग-युग के बिखरे हुए जीवन तत्व बड़ी सजगता से सहेजे गए हैं। इससे भारतीय धर्म-साधना के क्षेत्र में एक नई चेतना आ गई थी। विवशता और नैराश्य के काल में संतों की वाणी ने संजीवनी का कार्य किया। स्वार्थ और संघर्ष के गर्त में फंसे हुए विश्व के लिए वही एक मात्र त्राण बनी। अज्ञान के अंधकार में डगमगाती हुई मानव-जाति उसी के प्रकाश में अपने सत्पथ को खोज सकती है।

संत शब्द का प्रयोग विशेषतः बुद्धिमान, पवित्रात्मा, सज्जन, परोपकारी व सदाचारी व्यक्ति के लिए किया गया मिलता है।[1] कभी-कभी साधारण बोलचाल में इसे भक्त, साधु, एवं महात्मा जैसे शब्दों का भी पर्याय समझा लिया जाता है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने 'संत' शब्द का अर्थ शुद्ध अस्तित्व मात्र माना है, जिसका प्रयोग उस परम तत्व के लिए किया जाता है, जिसका कभी नाश नहीं होता, जो सदा एक रस तथा अविकृत रूप में, विद्यमान रहा करता है।[2] इसे 'सत्य' के नाम से अभिहित किया जा सकता है। इस शब्द के सत् रूप का ब्रह्म या परमात्मा के लिए किया गया प्रयोग वैदिक साहित्य में भी पाया जाता है। जैसे छांदोग्य उपनिषद में कहा गया है कि - आरंभ में एक अद्वितीय सत् ही वर्तमान था।[3]

संत शब्द का उक्त अर्थ अपभ्रंश की पुस्तक 'पाहुड़ दोहा' में भी किया गया है, वहां भी यह परमतत्व के लिये प्रयुक्त हुआ है।

---

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा-पृ०-३
२. वही पृ०-४
३. छांदोग्य उपनिषद -द्वितीय खण्ड-१

संत णिरंजन सोजि सिउ वहिं किज्जउ अणुराउ ।[१]

कुछ महात्माओं ने भी संत एवं परमात्मा में कोई मौलिक अन्तर नहीं माना है । गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है -

जानेसु संत अनंत समाना -[२]

गरीबदासजी ने भी कहा है - कि संत एवं सांई दोनों एक समान हैं, इस बात में किसी प्रकार का मीन मेष करने की आवश्यकता नहीं -

सांई सरीखे संत हैं यामें मीन न मेख ।[३]

पल्टू साहब ने भी कहा है - कि संत तथा राम में कोई भी भेद नहीं मानना चाहिए - संत और राम को एक कै जानिये

दूसरा भेद न तनिक आने ।[४]

इस प्रकार ' संत ' शब्द इस विचार से उस व्यक्ति की ओर संकेत करता है जिसने सत् रूपी परम तत्व का अनुभव कर लिया हो और जो, इस प्रकार अपने व्यक्तित्व से ऊपर उठकर उसके साथ तद्रूप हो गया हो । जो सत्य स्वरूप नित्य सिद्ध वस्तु का साक्षात्कार कर चुका है अथवा अपरोक्ष की उपलब्धि के फलस्वरूप अखंड सत्य में प्रतिष्ठित हो गया है, वही संत है ।

संत जन आदर्श महापुरुष हुआ करते हैं और उनके लिए उनका वे पूर्णत: आत्मनिष्ठ होने के अतिरिक्त समाज में रहते हुए नि:स्वार्थ भाव से विश्व कल्याण में प्रवृत्त रहा करते हैं ।

संत शब्द-प्रयोग किसी विशेष समय में वारकरी सम्प्रदाय के भक्तों के लिए होता था, जिनकी साधना निर्गुण भक्ति पर आधारित थी ।[५] जैसे - ज्ञानदेव, नामदेव, तुकाराम आदि भक्त । उन्हीं की प्रवृत्तियों के अनुरूप होने पर उत्तरी भारत के भक्तों - कबीर, नानक, रैदास आदि का भी वही नामकरण हो गया ।[६]

---

१. पाहुड दोहा - कारंजा जैन सीरीज-३८
२. रामचरित मानस-उत्तरकांड
३. गरीबदासजी की बाणी बेलवेडियर प्रेस प्रयाग, पृ०-८७
४. पल्टू साहब की बानी वही पृ०-८
५. उत्तरी भारत की संत परम्परा पृ०-७
६. वही पृ०-७

परन्तु इन सभी संतों का लक्ष्य मानव जीवन को समुचित महत्व प्रदान करने उसका आध्यात्मिक आधार पर पुनर्निर्माण करने, उसे इसी भूतल पर स्वर्ग बनाने, साथ ही विश्वकल्याण में सहयोग देने का भी जान पड़ता है। इन्होंने अपने सिद्धांतों को भी बहुधा संत मत का ही नाम दिया है ।

उत्तरी भारत के हिंदी और पंजाबी के संतों ने फुटकर पदों की रचना की है, जो उनकी वाणियों के नाम से प्रसिद्ध है । बहुतों ने साखी, रमैनी, कवित्त सवैयों आदि विविध छंदों में अपने उपदेशों को व्यक्त किया है। कुछ प्रबंध ग्रंथ भी मिलते हैं किंतु उनकी रचना शिथिल जान पड़ती है। ये संत साधारण पढ़े लिखे थे , जिन्होंने अपने भाव का प्रकाशन किसी प्रकार टूटे-फूटे शब्दों में हो किया । जिनकी रचनाएं बहुत कुछ स्वतंत्र हैं । फिर भी उक्त दोनों प्रकार के संत अधिकतर गार्हस्थ्य जीवन में रहकर अपनी साधना करते रहे , साम्प्रदायिक वेशभूषा का बाह्याडम्बरों से नित्य तटस्थ रहे । सामाजिक भेद-भावों को हटाने के लिए उपदेश देते रहे और सबके प्रति प्रेम और उपकार के भाव प्रदर्शित करते रहे । इनके सरल जीवन,सात्विक आचरण में अहिंसा और अपरिग्रह को बराबर महत्व दिया गया । इन्होंने स्तुति निंदा , वा मानापमान की चिंता किए बिना अपने छलछद्म रहित शुद्ध व्यवहार द्वारा सभी को सुख-शान्ति पहुंचाकर स्वयं आनंद मग्न रहने की चेष्टा की ।

हिंदी संतों की परम्परा में जिस प्रकार कबीर, दादू, रैदास के नाम लिए जाते हैं उसी प्रकार पंजाबी संतों की परम्परा में गुरुनानक एवं अन्य गुरु आते हैं । किंतु कबीर आदि हिंदी संत और पंजाबी संत प्रायः समकालीन है और गुरुनानक जी ने देशाटन किया था अतः उनकी रचनाओं में भाषा का वैविध्य भी दिखाई पड़ता है । सारग्राहिता इन इन संतों की प्राणभूत विशेषता थी ।

उन्होंने अपने समय की समस्त प्रचलित धार्मिक एवं दार्शनिक विचारधाराओं, साधनाओं और सारभूत तत्वों को " अनुभौ " (अनुभव) के द्वारा आत्मसात करके तथा अपनी प्रतिभा और प्रयोग के साँचे में ढाल कर एक अभिनव रूप दे दिया जो संतों की मौलिक देन है ।[१] वे सत्य के अनन्य उपासक थे । उन्होंने अपनी संत-मत की रचनाएँ अधिकतर हिंदी भाषा में रची । संतों का जन्म जिन जातियों में हुआ था, वे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र से लेकर नाई, चमार जुलाहे तक की थी । किंतु संत मत के अनुयायी थे । संत मत के अनुयायी होने के कारण उन्होंने जातिगत विभिन्नता की सदैव उपेक्षा की, और शुद्ध मानव के रूप में सबको एक समान समझा । संतों के इस वृहद् समुदाय का स्तर इनके सीधे साधे- एवं साधारण होने पर अत्यन्त ऊँचा है और इनका विस्तृत साहित्य अनाकर्षक होते हुए भी महत्व-पूर्ण और कल्याणकारी है ।

संतों ने जिस मत और साधना का संदेश दिया उसमें विश्व-कल्याण प्रमुख है । यह कोई नवीन संदेश नहीं था, और भारतीयों के लिये अपरिचित ही था। उसके प्राय: प्रत्येक अंग का मूल रूप हमारे प्राचीन साहित्य में किसी न किसी रूप में विद्यमान है । उन प्राचीन सूत्रों को लेकर अग्रसर होने की चेष्टा अनेक लोगों ने की, किंतु उन्हें सफलता नहीं मिली । कबीरजी के समय में ऐसे महापुरुषों की एक परम्परा ही चल निकली, जो एक नई दिशा दिखाने में सक्षम हो सकी। प्रारंभ में संत आध्यात्मिक बातों को अधिक महत्व देते थे , जिस कारण सुधार प्रवृत्ति भी केवल धार्मिक दृष्टिकोण से ही संभव थी । किंतु कालक्रम के अनुसार इनमें परिवर्तन आता गया ।

संतों ने परम तथा सत्य को माना है। यही सत्य परम-तत्व के नाम से जाना जाता है। संतों ने परमतत्व को अनिर्वचनीय कहा है । इसे पूर्ण, नित्य, सर्वव्यापी या सहज जैसे शब्दों द्वारा प्रकट करते हैं ।

---

१. हिंदी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि-पृ०११

मानव उसका सर्वोत्कृष्ट अंश है जिसके द्वारा मनुष्य अपनी अभ्यंतरिक शक्ति के समुचित विकास द्वारा पूर्णतः प्राप्त कर सकता है। यही पूर्ण व्यक्ति जीवन्मुक्त संत कहलाता है, जो प्राणी मात्र के लिए प्रेम सद्भाव प्रदर्शित करता है। संत के लिए सभी भेद भाव कृत्रिम एवं अस्वाभाविक है। इनकी साधना चित्त शुद्धि की साधना है। हृदय की सत्यता के समक्ष सभी प्रकार के बाह्याडम्बर तुच्छ हैं और सादगी तथा सदाचरण उच्चे संत की पहचान है। संतों ने अपने इन्हीं आदर्शों को सर्वसाधारण के समक्ष रखकर उन्हें सहज जीवन जीने की प्रेरणा दी।[१]

पंजाबी संतों की वाणियों की, हिंदी संतों की वाणियों से तुलना करते समय हम कुछ भी अन्तर नहीं पाते, क्योंकि संतों में मूलतः अन्तर नहीं होता, अन्तर होता है अभिव्यक्ति का अतः हम उनके विचारों का अध्ययन सबसे पहले दर्शन के आधार पर करेंगे।

दर्शन - पंजाबी संतों के काव्य में दार्शनिक तत्वों का विश्लेषण करते समय यह जानना आवश्यक है कि संतों की वाणी 'काव्य-दर्शन' है, कोई तर्क पूर्ण दर्शन नहीं, जिसे 'वैज्ञानिक दर्शन' की संज्ञा से अभिहित किया जा सके। दर्शन मुख्य रूप से पराभौतिक विषयों के सम्पूर्ण, तर्कशील और क्रमबद्ध अध्ययन को कहते हैं।[२] यों दर्शन शुष्क, नीरस, बुद्धिप्रधान तात्त्विक विश्लेषण है परन्तु काव्य दर्शन में कवि हृदय का रसात्मक अनुभव है। काव्य यद्यपि दर्शन का अनुगामी नहीं होता, किंतु अपने विकास की चरमावस्था में स्वयं दर्शन बन जाता है। अतः काव्य दर्शन में आत्म गहराइयों का परमात्म गहराइयों के साथ भोगे हुए रहस्यात्मक अनुभव के निस्वादक स्वाद का सहजात्मक वर्णन होता है। इस लिए पंजाबी संत साहित्य में दार्शनिक तत्वों की स्थिति 'काव्य दर्शन' की दृष्टि से ही संभव है। इन दार्शनिक तत्वों में, 'ब्रह्म' 'आत्मा', 'जीवात्मा, अंतःकरण (मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार) 'माया, 'सृष्टि, 'मुक्ति उल्लेखनीय तत्व हैं जिनका क्रमबद्ध वर्णन प्रस्तुत है।

---

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा-पृ०-२४
२. संत काव्य का दार्शनिक विश्लेषण-मनमोहन सहगल,पृ०-२६८

ब्रह्म जिज्ञासा सम्बन्धी विचार -

पुरातन काल में ही मानव के मन में जिज्ञासा का विषय अगर रहा है तो वह है - ' विस्मयजनक शक्ति ' जिसे भिन्न भिन्न नामों - ब्रह्म, खुदा, भगवान, परमेश्वर, विष्णु, शिव आदि नामों से अभिहित किया है। भिन्न-भिन्न युगों में अलग-अलग रूपों में यही ' विस्मय शक्ति ' मानव के चिंतन का विषय रही है।

मानव मन का इस आध्यात्मिक तत्व से बहुत गहरा संबंध है। यह सारे धर्मों और सभी दर्शनों का केन्द्रीय विषय है। सभी धर्म और दर्शन इसकी गूढ़ता का विश्लेषण करने में रत हैं। इसका भलीभांति ज्ञान होने के बाद कुछ भी जानना शेष नहीं रह जाता। इसीलिए मुंडकोपनिषद् में कहा गया है -

' कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति ' अर्थात् हे ऋषि किस को जानने के पश्चात सबको जाना जाता है? [1]

इसमें कोई संदेह नहीं है कि ' आध्यात्म सत्ता ' अप्रत्यक्ष होने के कारण अकथनीय और अवर्णनीय है। वह हमारे पास होता हुई भी हमारी दुनियां के प्रत्यक्ष और स्थूल पदार्थों से इतना भिन्न है कि सांसारिक तत्वों का निरूपण करने वाली जिह्वा उसका भली प्रकार निरूपण करने में असमर्थ रहती है। दर्शनों और शास्त्रों का अध्ययन भी हमारी सहायता नहीं कर सकता है। इसीलिए गीता में इस परोक्ष सत्ता को ' गुह्यतर ' कहा गया है - ' इति ते ज्ञान माख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं मया।[2] मध्यकाल के सिद्धों और संतों ने इसे गूढ़ और अदृश्य मानकर इसको वर्णित करने के लिए ' संध्या भाषा ' या ' संधा भाषा ' का प्रयोग किया है।

कबीर और अन्य संतों ने उलटबांसियों के द्वारा इसको प्रकट करने की चेष्टा की है। पर आश्चर्य की बात यह है कि इतना सब कुछ जानते हुए भी कोई भक्त या संत ऐसा नहीं है जिसने आध्यात्मिक सत्ता के विषय में कुछ न कहा हो।

---

१. मुंडकोपनिषद् १।१।३   २- गीता, १८।६३

बात ही ऐसी है कि इसके संबंध में कहे बिना रहा नहीं जाता ।
तुलसीदासजी ने ठीक ही लिखा है -

' सब जानत प्रभु प्रभुता सोई, तदपि कहे बिन रहा न कोई ।[1]

अत: पंजाबी संत कवियों ने भी अपने काव्य में ' ब्रह्म ' का जो निरूपण किया है वह उस ब्रह्म जिज्ञासा का ही परिणाम है।

पंजाबी संत साहित्य में ब्रह्म का नाम -

यह सत्य है कि पंजाबी संत साहित्य में ' ब्रह्म ' को भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा गया है, किसी विशेष नाम से उसे बांध कर नहीं रखा गया है। गुरुनानक देवजी इस शक्ति को अनेक नामों से संबोधित करते हैं -

' असंख नाव असंख थाव ।[2] वस्तुत: गुरुनानक देवजी नामों के वाद-विवाद में नहीं पड़ना चाहते । क्योंकि नामों की भिन्नता कई बार कटुता उत्पन्न कर देती है । उनके अनुसार - हमें परमात्मा के मुख्य नाम की खोज करते समय सबसे पहले यह समझ लेना चाहिए कि संसार में या उससे बाहर कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जिसका संबंध उसके साथ न हो । जहां कहो भी हम उस परमात्मा को देखने का प्रयत्न करते हैं , वहीं वह वर्तमान है । बिना उसके नाम के कोई स्थान बाकी नहीं है । यथा-

' जेता कीता तेता नाउ। विण नावै नाही को थाउ।।[3]

गुरु साहबजी कहते हैं कि परमात्मा का असली नाम कोई नहीं । उसकी जाति, नाम केवल उसकी वास्तविकता को प्रकट करना नाम हो ही सकता है।अन्य जितने नाम मानवी भाषा में प्रयुक्त होते हैं वे सब कृत्रिम हैं । परमात्मा के अस्तित्व को बतलाने वाला नाम केवल ' सतिनामु ' है जिसका भाव सर्वव्यापी सत्यता है । यही कारण है कि गुरु नानक देवजी और अन्य गुरु व्यक्तियों ने ब्रह्म तत्व के किसी एक नाम पर बल नहीं दिया।

---

१. रामचरित मानस, १०।२०
२. आदिग्रंथ महला-१, पृ०-४
३. वही पृ०-४

उन्होंने हिन्दू, मुसलमान दोनों धर्मों में प्रचलित और निर्गुण और सगुण दोनों उपासनाओं में प्रयुक्त नामों को स्वीकार किया ।

इसका यही कारण प्रतीत होता है कि गुरुजी का संदेश किसी एक जाति या सम्प्रदाय के लिए नहीं था। वे तो मानव मात्र को अपना विचार देना चाहते थे । इसीलिये प्रत्येक धर्म और साधना में ब्रह्म तत्व ' के वाचक जितने भी शब्द उन्होंने देखे वे सभी निःसंकोच प्रयुक्त करने शुरु कर दिए । यह गुरु नानक देवजी की ' समन्वयवाद ' की नींव है । दूसरी बात यह है कि गुरु साहबजी का उद्देश्य ' जनवादी ' था । वे अपने विचारों को जनसमूह तक पहुंचाना चाहते थे । बौद्धिक उलझनों और तर्क वितर्क से मुक्त प्रभु का स्वरूप उनके जनवादी उद्देश्य के अनुकूल था । अतः उन सभी सम्प्रदायों से जो भी परमात्मा के प्रचलित नाम थे, उन्हें लेकर उन्होंने ब्रह्म का स्वरूप चिंतन किया कि साधारण लोग उससे लाभ उठा सकें ।

एक बात और ध्यान देने योग्य है । गुरुजी अनुभवी महापुरुष थे । वे अपने ब्रह्म को ' सहज अनुभव ' द्वारा अनुभव करते थे । इस अनुभव के अनुसार ब्रह्म सभी जगह रमा हुआ है। वह घट-घट में व्याप्त है। इसलिए ऐसे सर्वदेशिक, सर्वकालिक, और सर्वमय ब्रह्म को किसी एक नाम से प्रगट करना गुरुजी के सहज अनुभव के विरुद्ध था । इसीलिए गुरुनानकजी ने समय समय पर भिन्न-भिन्न अनुभवों के द्वारा भिन्न-भिन्न नामों से प्रगट किया है । ब्रह्मवादियों ने इस जगत् को ' नाम रूपात्मक ' कहा है। परन्तु ब्रह्म तत्व नाम रूप से परे है । गुरु कवि इस धारणा के समर्थक प्रतीत होते हैं क्योंकि गुरु कवि स्पष्ट रूप से ' अरूप और ' निरंकार (निराकार ') के उपासक थे ।

- -

परन्तु ब्रह्मवादियों से भी आगे बढ़कर जो बात गुरु कवियों ने कही वह ब्रह्म का नाम रहित होना है। इसकी प्रतिध्वनि गुरु गोविंदसिंह जी के 'जापु साहिब' से प्राप्त होती है -

'नाम संत अनामे। नमस्त अठामे ॥ [1]

अतः पंजाबी संत काव्य में 'परम सत्य का कोई एक विशेष नाम सामूहिक रूप से प्राप्त नहीं होता। उनके ज्ञानमंडल में जोभी नाम आया, चाहे वह ब्राह्मण, शैव, तांत्रिक, बौद्ध या वैष्णव, सूफी या इस्लामी, प्रतीकवादी या काव्यमयी रहा हो, उन सब का बिना किसी संकोच के खुले रूप से प्रयोग किया। ए०एन०अंसारी ने ठीक ही कहा है कि - गुरु नानक अन्तिम सत्य को ऐसा ईश्वर स्वीकार करते हैं, जिसके असंख्य गुण है। नानक वाणी में परमात्मा के अनेक नाम प्राप्त हैं, जो अलग अलग स्त्रोतों से लिए गए हैं - हिन्दु, इस्लामी-साहित्य, संतों और सूफियों की वाणी। [2]

परन्तु एक बात ध्यान रखने की यह है कि गुरु कवियों ने जितने भी हिन्दु या मुसलमानी नाम या फिर सगुण-निर्गुण नाम प्रयुक्त किए हैं वे सभी 'अकाल पुरुष' या निर्गुण ब्रह्म' के लिए ही प्रयुक्त किए हैं। उन्होंने उन नामों को रूढ़ि और सम्प्रदायिक अर्थों से निकाल कर व्यापक अर्थों में प्रयुक्त किया है। अतः इस प्रकार निराकार सत्ता को सर्वव्यापक बनाने का शुभ प्रयत्न किया। किंतु यहाँ विचार-विमर्श की सुगमता के लिए उपनिषद् परम्परा के अनुसार 'ब्रह्म शब्द का ही प्रयोग किया है जो अनुकूल है और निर्गुण काव्य के ज्ञान प्रकरणों के सर्वथा उपयुक्त है। ऐसे प्रकरणों में गुरुनानकजी ने स्वयं भी ब्रह्म विचार की बात की है।

' पंच मारि सुखु पाइआ ऐसा ब्रह्म बीचारु ॥ [3]

---

1. जापु साहिब - गुरुगोविंदसिंह - छंद-४
2. गुरुनानक्स व्यु ऑफ गोड - (ए एन एस अं सा री)
3. आदिग्रंथ महला-१ पृ०-१३३०

ऐसा

ब्रह्म निरूपण का ढंग-

भारतीय साहित्य में ब्रह्म-निरूपण की एक दीर्घ परम्परा है । इसी परम्परा को विकसित करते हुए किंतु अपने नए स्वरूप में पंजाबी संतों ने ब्रह्म का वर्णन किया है ।

पंजाबी संत काव्य के संस्थापक गुरु नानक भारत की प्रमुख दार्शनिक प्रणालियों - ज्ञान, भक्ति और से भिज्ञ थे , जोकि उनके समय तक बड़े व्यापक रूप में प्रचलित थी । इन तीनों के रूप पंजाबी संत-काव्य में प्रसंगानुकूल मिलते हैं । इनके अतिरिक्त चौथी आध्यात्मिक प्रणाली सूफी प्रणाली थी , जिसका गुरुनानक एवं अन्य गुरुओं की चिंता धारा में बहुत योग देखा जा सकता है। इन चारों की पृष्ठभूमि में रखकर जब हम पंजाबी संत कवियों के ब्रह्म-निरूपण का विश्लेषण करते हैं तो इसके चार रूप दृष्टिगोचर होते हैं -

१- ज्ञानमार्गी रूप
२- भक्तिमार्गी रूप
३- योगमार्गी रूप
४- सूफीमार्गी रूप

१- ज्ञानमार्गी ब्रह्म निरूपण -

` ब्रह्म का साक्षात्कार करना प्रत्येक साधक का मनोरथ होता है। इन प्रयत्नों को भारतीय शब्दावली में ` साधना ` कहा गया है । भारत में धर्म-साधना कई प्रकार की प्रचलित है। किंतु इनमें से तीन साधनाएं प्रमुख हैं - ज्ञान भक्ति, योग, चौथा विशेष साधना` कर्म ` रही है, परन्तु संत-साहित्य` में कर्म-साधना का आध्यात्म के निरूपण में कोई वर्णनीय सहयोग नहीं है । ` ज्ञान साधना` को ज्ञान-कांड, ` ज्ञानयोग भी कहा जाता है। यों तो ऋग्वेद में ज्ञानमय ईश्वरवाद के अंश वर्तमान है परंतु ज्ञानमय ब्रह्म चिंतन का मूल उपनिषद साहित्य से ही माना जाता है।

उपनिषद् ज्ञान या ब्रह्म विद्या का कोष है। इनमें परम तत्व, जिसे उपनिषद् शब्दावली में ब्रह्म कहा गया है, का बड़ी सूक्ष्मता से विवेचन किया गया है और जिसकी नींव ज्ञान है।[1]

भारतीय छह दर्शन (न्याय, मीमांसा, वैशेषिक, योग सांख्य, वेदांत (ज्ञान का अवलम्ब लेकर चलते हैं। दार्शनिक ढंग से किया गया ब्रह्म चिंतन ज्ञानमार्गी चिंतन है। इनके छहों दर्शन में शंकर का अद्वैतवाद का प्रधान है। संत-काव्य में वेदांत और शंकर अद्वैतवाद ही बड़ी स्पष्टता से झलकता है। वस्तुतः ज्ञान मार्ग ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा परम तत्व (परमात्मा) का साक्षात्कार हो सकता है। इसलिए ज्ञान के स्वरूप को भांति-भांति के पर्यायों के द्वारा देखने का प्रयत्न किया गया है। ` ज्ञान , `बोध ` जानकारी , ` पहचान` प्रतीति` , ` अनुभव आदि शब्द ज्ञान के ही पर्याय हैं। वस्तु की पहचान या अभिव्यक्ति को ज्ञान कहा जाता है। जिस प्रकार दीये का प्रकाश वस्तुओं को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार ज्ञान भी अपने विषयों और पदार्थों को प्रकाशित करता है।

भारतीय साहित्य में तत्व ज्ञान का अधिक प्रचार रहा है। इस साहित्य के ज्ञान का विषय ` ब्रह्म रहा है उपनिषदों में ज्ञान का पूरा-पूरा सम्मान है। आत्म ज्ञानकी प्राप्ति उपनिषदों की प्रमुख खोज है। गीता में ज्ञान की महिमा का बखान है। गीता में कहा गया है - ` ज्ञान सभी गुप्त विषयों में पवित्र और उत्तम है।[2] न्याय दर्शन वस्तुओं की पहचान को ज्ञान कहता है। किसी वस्तु का सही ज्ञान प्रमा और यथार्थ ज्ञान अप्रमा है।[3] वैशेषिक विद्या अविद्या दो प्रकार के ज्ञान मानता है। मीमांसा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दो प्रकार के ज्ञान मानता है। योग भी विद्या अविद्या दो रूप मानता है।

---

१. गुरुनानक और निर्गुण धारा - पृ०-५७
२. गीता - ६ । २
३. भारतीय दर्शन-उमेश मिश्र, पृ०-१६१-६२

अद्वैत वेदांत में ` ब्रह्म ज्ञान ` को मुख्य ज्ञान माना गया है । माया या अविद्या के कारण आत्मा अपने सही रूप को भूल जाती है। उस माया और अविद्या को ज्ञान के द्वारा दूर कर ब्रह्म को प्रत्यक्ष करना पहला कर्तव्य है ।[१]

नाथ मत और गोरखनाथ ब्रह्म को ही ज्ञान मानते हैं । इस प्रकार भारतीय दार्शनिकों ने , चाहे वे आस्तिक हों या नास्तिक ज्ञान की मीमांसा अवश्य की है । इस ज्ञानमय प्रकाश में इन ज्ञानमार्गियों ने ब्रह्म के जिस ज्ञानमयी ढंग से निरूपण किया है, उसके अनुसार ब्रह्म अनिर्वचनीय तत्व है । वह ज्ञान स्वरूप और सत्य-स्वरूप है। वह निर्गुण निर्विशेष , निर्विकल्प, और निराकार है। उसमें अनेक गुणों का आरोप किया जाता है। इसके अनुसार ब्रह्म में एकता, अनंतता, अद्वैतता, व्यापकता, नित्यता, अन्तर्यामिता, अयोनिभाव, स्वयंभू, पूर्णता और कर्ताभाव है। ब्रह्म ज्ञानियों ने उसका तुरीयावस्था में वर्णन किया और अनेक शैलियां अपनाई हैं ।

ज्ञानमार्ग की उपर्युक्त वस्तुस्थिति को पृष्ठभूमि में रखकर जब पंजाबी संत-साहित्य में वर्णित ब्रह्म का अध्ययन करते हैं तो स्पष्ट होता है कि इनके ब्रह्म निरूपण में ज्ञान मार्ग अनेक रूपों में प्रेरणा का स्रोत बना। वस्तुत: पंजाबी संत-साहित्य अनेक अर्थों में ज्ञानात्मक है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी निर्गुण शाखा को ` ज्ञानाश्रयी शाखा कहा है ।[२]

गुरु वाणी में ज्ञान का सम्पूर्ण सम्मान अंकित हुआ है। गुरु अर्जुनदेवजी ` सुखमनी ` में ब्रह्मज्ञान और ब्रह्मज्ञानी की बड़ी प्रशंसा करते हैं ।

` ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म का बेता, ब्रह्म ज्ञानी एक संगी हेता।[३]

---

१. कबीर दर्शन -रामजीलाल सहायक, पृ०-२५२

२. हिन्दी साहित्य का इतिहास-पृ०-७१

३. आदि ग्रंथ महला-५, पृ०-२७३

अनिर्वचनीय तत्व -

ज्ञान मार्ग में ब्रह्म को चिरंतन काल से ऐसा तत्व कहा जाता रहा है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। जो अनिर्वचनीय है। कठोपनिषद् में लिखा है कि जो शब्द रहित, स्पर्शहीन, अरूप, अरस और गंध रहित और जो अविनाशी, नित्य अनादि , अनंत, महान् सतिनाम, है उसका साक्षात्कार करके जीव सदैव के लिये मृत्यु से मुक्त हो जाता है।[1] इसका अभिप्राय यह है कि ब्रह्म तत्व वर्णन और कथन से परे है । वह मन, वचन, का विषय नहीं । उसका तो केवल अहसास ही हो सकता है।

गुरुओं ने उस परम सत्य के विषय में ऐसे ही भाव प्रकट किए हैं । कोई कितना भी सोचे। वह विचार में नहीं आ सकता । मौन रहकर एकाग्रता से ध्यान करके भी कोई न कोई शंका उत्पन्न होती रहती है । यथा -

सोचै सोचि न होवई जे सोची लख वार।
चुपै चुप न होवई जे लाइ रहा लिवतार ।[2]

इस प्रकार पंजाबी संतों ने ज्ञानमार्गी रीति के अनुसार ब्रह्म को ' अनिर्वचनीय ' कहा है। वस्तुत: यह बुद्धि का विषय नहीं , वह अज्ञेय है। समुद्र में ही बूंद है, और बूंद में समुद्र है तो फिर उसे कैसे जाना जा सकता है ? वह ब्रह्म तो स्वयं को खुद पहचानता है। यथा- सागर महि बूंद बूंद महि सागर
कवणु बुझै बिधि जाणै ।[3]

---

१. १ । ३ । १५
२. आदि ग्रंथ महला-१, पृ०-१
३. आदि ग्रंथ महला-१ पृ०-८७८

अद्भुत ब्रह्म -

अकथ्य का कथन करना मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति के अनुसार पंजाबी संतों ने ज्ञान साधना के ब्रह्म निरूपण की भांति अपने ब्रह्म का अदभुत रूप में वर्णन किया है। वस्तुत: चिंतक ब्रह्म को ज्ञानमुखी दृष्टि से वर्णन करने की चेष्टा करते हैं, परन्तु जब उसकी महान महिमा का अनुभव करते हैं तो धन्य धन्य पुकार उठते हैं। उसकी अद्भुतता पर बलिहार जाते हैं। गुरुनानक जी उस अनंत और अगम्य प्रभु का वर्णन करते हुए आश्चर्य से कह उठते हैं-

* वड़ी कीजा वडियाईआ किछु कहणा कहिणु न जाई ।।[१]

अर्थात् हे वाहिगुरु, तू बड़ा है, तुम्हारी अनंत महिमा है। ब्रह्म सबको देखता है, किंतु सब उसे नहीं देख सकते। यह बड़ी आश्चर्यजनक बात है। गुरुनानकजी इसको अपने प्रभु का विस्मादक रूप में वर्णन करते हैं। सिख धर्म में प्रचलित 'वाहिगुरु' मंत्र भी इस अदभुत वाले ब्रह्मवादी सिद्धांत का ही परिणाम है जिसके पीछे परमतत्व को आश्चर्य मिश्रित महिमा कार्य करती है।

ब्रह्म का तुरीयावस्था में वर्णन-

पंजाबी संत काव्य में निर्गुणवादी काव्य के समान ब्रह्म का तुरीया रूप में वर्णन मिलता है। यह वर्णन ज्ञानमार्गी ढंग का ही है। ज्ञानयोग के प्रचारक उपनिषद् ग्रंथों में तुरीया रूप का संकेत मिलता है। यहां ब्रह्म तत्व को जागृत, स्वप्न और सुषुप्ता इन तीनों अवस्थाओं से विलक्षण तुरीया रूप सिद्ध किया गया है।[२]

---

१. आदि ग्रंथ महला-१ पृ०-४७५
२. मांडूक्योपनिषद् (शंकर महा भाष्य(तुरय परमभूतत्वं ब्रह्म)

गुरु वाणी में ब्रह्म का और ब्रह्म दशा का तुरीया रूप में वर्णन हुआ है ।

' तुरीयावस्था गुरमुखि पाइऐ । [1]

' त्रैगुण माइया मोहि विआपे तुरीया गुणु है गुरमुखि लहोजा। [2]

प्राय: सभी संत कवियों ने ' चौथे पद ', ' श्री पद ', ' परमपद ' अमै पद ' आदि नामों से तुरीया का ही वर्णन किया है ।

गुणों के साथ निर्गुण ब्रह्म का वर्णन -

इसमें संदेह नहीं है कि पंजाबी संतों का ' अकाल पुरुष ' निर्गुण और निराकार है। परन्तु निरंकार प्रभु का केवल चिंतन ही हो सकता है। उसको केवल विचारा ही जा सकता है, वह भक्ति का विषय नहीं बन सकता । गुरुजी ज्ञानी थे, परन्तु उनके भक्त हृदयने अपने निराकार और निर्गुण अकाल पुरुष में गुणों के दर्शन किए । किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि गुणों का वर्णन करके गुरुओं का अकाल पुरुष सगुण होकर अवतारी हो गया है, अपितु गुरुओं का ब्रह्म सगुणवादी भक्तों का भगवान नहीं बना, क्योंकि गुरु उन्हें अकाल मुरति और ' अजोनी ' मानते हैं । गुरुनानकजी के अनुसार उस निर्गुण के अनंत गुण और प्रशंसाएं हैं । उनके अनुसार -

' अंतु न सिफती कहिण न अंतु ।
अंतु न करणी देणि न अंतु । [3]

पंजाबी संतों ने ब्रह्म के अनेक गुणों का वर्णन किया है । जिसमें प्रमुख है- ' एकता ' अनंतता, अद्वैतता, ' व्यापकता ,' नित्यता। इनका कथन उन्होंने ज्ञानमार्गी ढंग से किया है ।

---

१. आदि ग्रंथ महला-१ पृ०-३५६
२. वही -५ पृ०-८३३
३. वही -१ पृ०-५

स्वयंभू रूप -

निर्गुण ब्रह्म का एक गुण यह है कि उसे किसी और शक्ति या पदार्थ ने नहीं रचा है अपितु उसकी रचना अपने आप(स्वयं)है । उसका कोई उपादान कारण नहीं । वह स्वयं ही कारण है , स्वयं ही कार्य है । अतः वह अकारण है । गुरु नानक देवजी ने अपने जपुजी के मूलमंत्र में ' स्वयंभू ' कहा है । अर्थात उसे न तो स्थापित किया जा सकता है और न रचा जा सकता है। वह अपने आप प्रकाशमान है ।

थापिया न जाई कीता न होई।
आपे आप निरंजन सोई ।[1]

किंतु एक बात बहुत स्पष्ट है कि पंजाबी संत साधक ज्ञान की अपेक्षा ' भक्ति ' पर अधिक बल देते हैं । इनका परम तत्व, भक्ति प्रेम भाव आदि का भी विषय है, जो ज्ञान सिद्धांत के सर्वथा विपरीत है। अतः यथार्थ स्थिति यह है कि पंजाब संत-साहित्य में ब्रह्म का स्वरूप चिंतन कुछ अंशों में ज्ञानमार्गी ढंग से निरूपित हुआ है, सम्पूर्ण रूप से नहीं ।

२- भक्ति मार्गी ब्रह्म निरूपण -

परमेश्वर के गुण, स्वरूप आदि का प्रेम एवं अनन्य भाव के साथ चिंतन करना ही भक्ति है। भक्ति का सर्वप्रथम महत्वपूर्ण तत्व है - शरणागत होना अपने प्रभु के प्रति अनन्य रूप में श्रद्धा स्थापित करना एवं उस प्रभु की कृपा में पूर्ण निष्ठा रखना । ऐसे अंश भारतीय शास्त्र ऋग्वेद उपनिषद[2] में बारम्बार[3] मिलते हैं परन्तु गीता में भक्ति की पूर्ण स्थापना है । गीता में लिखा है कि - ' अव्यक्त निर्गुण ब्रह्म में चित्त को एकाग्र करना कठिन है, क्योंकि निराकार को प्राप्त करना देहधारी जीवों के लिये कठिन है।[4]

---

१. आदि ग्रंथ महला-१-पृ०-२
२. ऋग्वेद ७।८८।६
३. मुंडकोपनिषद ' प्रणवो धनुः शरो हि आत्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते
अप्रमत्तेन वेधव्यं शरवत् तन्मयो भवेत ' २।२।४
४. गीता - १२।५

इसलिये उसमें शुभ कर्मों को अर्पण करते सच्चे निश्चय के साथ भगवान में ध्यान लगाने के लिए उपदेश दिया है । [१] पौराणिक युग में अवतारवाद का पूरा प्रचार हुआ और भक्ति की महिमा बढ़ी। परंतु शंकर के मायावाद की प्रतिक्रिया स्वरूप ' भक्ति-आन्दोलन ' शुरू हुआ और सम्पूर्ण हिन्दुस्तान में फैल गया । आलवार भक्तों , रामानुज, निंबार्क, वल्लभाचार्य , चैतन्य आदि आचार्यों ने भक्ति का खूब प्रचार किया । इसके साथ वैष्णव धर्म और अवतारवाद स्थापित हुआ और निर्गुण ब्रह्म के स्थान पर ' सगुण ईश्वर ' ही भक्ति साधना का आदर्श बना। किंतु निर्गुण संतों तथा पंजाबी निर्गुण संतों ने किसी प्रकार भी साकार सत्ता को स्वीकार नहीं किया ।

शांडिल्य भक्ति सूत्र ' नारद भक्ति सूत्र आदि भक्ति के सैद्धांतिक ग्रंथों में भक्ति के दो रूप प्रमुख रूप से माने गये हैं ।
(१) वैधी भक्ति (२) रागात्मिका भक्ति ।

पंजाबी संतोंने ' रागात्मिका भक्ति ' को ही प्रमुखता दी है। उनकी भक्ति में ' शरणागत होना' सबसे बड़ी विशेषता मानी गई है। जिसे वैष्णव शैली में ' प्रपत्ति भावना ' कहा जाता है ।

पंजाबी संतों की भक्ति न तो हिंदु परम्परा से जोड़ी जा सकती है , जिसमें ' पोथी ज्ञान ' को आवश्यक समझ कर देह साधना का महत्व माना जाता है, और न ही उस ईश्वर प्रधान-भक्ति के साथ, जिसमें सूफी मुसलमानों की स्थूल तड़प और विह्वलता ही प्रधान होती है।[२] पंजाबी संत-काव्य में भक्ति का वह रूप मिलता है, जिसमें दीनता,नम्रता ही प्रधान है । जिसमें गुरु अपने प्रभु की भगवत्वत्सलता के लिये प्रार्थना करता है और सर्वस्व भूलकर उनकी शरण में झुक जाते हैं । गुरुनानक और पंजाबी संतों का पक्का विश्वास है कि भक्ति के बिना मन का कल्याण नहीं उतर सकता-

---

१. गीता - १२।६
२. संत-काव्य में परोक्ष सत्ता का स्वरूप-बाबु राव जोशी-पृ०२३६

भरीअै मति पापा कै संगि।

ऊह धोपै नावै कै रंगि ।। [१]

अर्थात साधक को तीर्थ, तप, दान आदि झगड़े में नहीं पड़ना चाहिए। जो प्रभु के नाम को सुनता है, मनन करता है और मन में भाव अर्थात भक्ति करता है, उसने सभी तीर्थों का स्नान कर लिया है और अपने सारे पापों, को धो लिया है। इसी लिए पंजाबी संतों ने 'नाम-स्मरण' और 'भक्ति' को बहुत महानता प्रदान की है। 'नाम' जीवन है और नाम का विस्मृत होना मृत्यु है - यथा -

आखा जीवा विसरै मरि जाउ। [२] यही कारण है कि पंजाबी संतों एवं गुरुनानक की भक्ति 'भाव-भक्ति' है, ये बाहरी चिन्हों वाली 'वैधी भक्ति' को महत्व नहीं देते हैं। इन्होंने तो भक्ति मार्गियों के सारे विधि-विधान, तिलक माला, धारण, मूर्ति पूजा सामग्री, धूप, दीप, नैवेद्य आदि पूजा-पदार्थों का खंडन किया है।[३] वस्तुत: पंजाबी संतों ने इन भौतिक वस्तुओं का 'आध्यात्मीकरण' किया है और इनमें नये अर्थ प्रदान किए हैं। अत: स्पष्ट है कि पंजाबी संत वैधी भक्ति के स्थान पर 'रागानुगा' भक्ति को प्रमुखता देते हैं।

पंजाबी संतों के अनुसार ब्रह्म निर्गुण से सगुण हो जाता है। अपने ब्रह्म की निर्गुणता में पूर्ण विश्वास रखते हुए भी उन्होंने कहीं-कहीं सगुणता को स्वीकार कर लिया है। गुरु अर्जुनदेवजी ने दोनों स्वरूपों की एकता का बहुत ही स्पष्ट वर्णन किया है -

ईहै निर्गुण ऊहै सरगुण

केल करत बिच सुआमी मेरा ।[४] अर्थात गुरु अपने निर्गुण ब्रह्म का सगुण शैली में ही निरूपण कर जाते हैं।

---

१. आदि ग्रंथ महला-१ पृ०-४
२. वही -१ पृ०-४५८
३. वही पृ०-४७०
४. वही -५ पृ०-८२७

पंजाबी संतों ने अपनी वाणी में वैष्णव भक्ति में प्राप्त ईश्वर के अवतारी नामों को अपने ब्रह्म के लिये उज्ज भाव के साथ स्थल-स्थल पर अंकित किया है। यह इस बात का प्रमाण है कि गुरु अपने ब्रह्म के स्वरूप चिंतन में भक्ति-मार्ग की प्रणाली को भी अपना कर चले हैं। उनकी वाणी में - दामोदर, मधुसूदन, जगदीश, नारायण, मुरारी, गोपाल, गोसाईं, वासुदेव, गोविंद, हरि, सगुण ब्रह्म के विभिन्न नाम मिलते हैं।

भक्ति में प्रेम तत्व -

भक्ति में प्रेम का बड़ा महत्व है। प्रेम भक्ति का आधार है। प्रेम किसी प्रिय वस्तु की आकर्षकता के कारण उत्पन्न होता है। भक्ति मार्ग में साधक अपने भगवान को आकर्षण का केन्द्र स्वीकार करता है। डा० त्रिगुणायत के अनुसार इस आकर्षण के तीन कारण हैं -
१- पूर्वजन्म के संस्कारों का फल २- इसी आकर्षण के कारण भक्त भगवान का दिव्य सौंदर्य
३- निजी मोक्ष की प्राप्ति [1]
इसी आकर्षण के कारण भक्त अपने ईश्वर को पांच स्वरूपों में कल्पित करके उसके साथ अपनी सारी मनोवृत्तियां जोड़ता है। ये पांच स्वरूप है -
१- भगवान की मूर्तियां २- भगवान के प्रतिनिधि देव अवतार
३- भावना द्वारा कल्पित मानसिक साकार स्वरूप अर्थात अव्यय सगुण स्वरूप
४- बुद्धि द्वारा कल्पित भगवान का विराट स्वरूप
५- प्रतीकों के रूप में स्वरूप चिंतन [2]

---

१ हिन्दी नि०का० की - पृ०-४११
२ वही -पृ०-४११

परन्तु निर्गुण और पंजाबी संत भक्ति मार्ग के इन पांचों स्वरूपों के स्थान पर केवल तीन रूपोंमें की ही कल्पना करते हैं -

१- भाव कल्पित मानसिक सगुण रूप

२- बुद्धि कल्पित विराट रूप

३- प्रतीकमयी स्वरूप ।

पंजाबी संत कवि अपनी भावना के द्वारा अपने ब्रह्म में अनेक दिव्य सगुणों की कल्पना करते हैं और उस कल्पित भावमय रूप का अपने मनोजगत् में साक्षात्कार करते हैं । ब्रह्म का मानसिक साक्षात्कार ही भावमयी कल्पना का फल होता है। इसलिए ऐसा भाव कल्पित सगुण रूप होता है । पंजाबी संत कवि अपने ईश्वर को बड़ी नम्रता एवं दीनता से संबोधित करते हैं । इस संबोधन में वे प्रभु के लिये - तू, तेरा, तुझको, तेरे, तुम्हारा, तुम आदि शब्द प्रयुक्त करते हैं, जिसका बड़ा गंभीर अर्थ होता है। अर्थात् ये संत अपने प्रभुको ' एक ही समझते हैं , जिसकी तुलना में और कोई नहीं है । दूसरी विशेषता यह है कि ये स्वयं में ईश्वर की अद्वैतता, और अनेकता मानते हैं । जीव ब्रह्म की एकता। ये अपने प्रभु में सर्वोत्तम गुणों का आरोपण भी करते हैं । [1] उनका प्रभु ज्ञानावान, सर्वसमर्थ और क्षमाशील है। वह दयालु, करुणानय, भक्तवत्सल, सर्वपालक और रक्षक है । [2] भक्ति मार्ग की ब्रह्म निरूपण शैली में भक्त और भगवान के अति निकट और गूढ़ संबंध की चर्चा की जाती है। भक्त अपने भगवान के चरणों में कई प्रकार के संबंधों के अनुसार वंदना और अर्चना करता है। इन संबंधों के अनुसार ही भक्त का भगवान के प्रति पूरा समर्पण होता है। वैष्णवों की शब्दावली में यही ' प्रपत्ति मार्ग ' (समर्पण करना) है।

भक्ति मार्ग में संबंध रूप भक्ति की भी कल्पना की गई है - दास्य भाव, मित्रभाव, प्रिय भाव, श्रृंगार भाव आदि। पंजाबीसंतों ने भी प्रभु के साथ कई संबंध स्थापित किए हैं -जैसे स्वामी-सेवक संबंध, दांपत्य भाव संबंध, सखा संबंध और वात्सल्य भाव संबंध हैं।

---

१. गुरुनानक की निर्गुण धारा-पृ०-७०

२. वही पृ०-७०

ब्रह्म का विराट स्वरूप -

भारतीय आध्यात्मिक साहित्य में ब्रह्म का विराट स्वरूप प्राप्त है। ऋग्वेद का पुरुष सूक्त का आरंभ ही ' विराट पुरुष ' के वर्णन से होता है - " उस पुरुष के हजार माथे है, हजार नैन हैं, हजार पैर हैं। वह सारी धरती से व्यापक हैं और उससे दस अंगुल पर भी है। जो कुछ है और जो कुछ होगा , वह सभी कुछ पुरुष है।[१]

गीता में ब्रह्म के विराट स्वरूप का वर्णन मिलता है। अर्जुन कहते हैं - " हे भगवन् मैं आपकी अनेक भुजाएं , अनेक उदर, अनेक मुख , और अनेक आंखें देखता हूं। आप अनंद रूप वाले हो, परन्तु हे विश्व के मालिक, आपका न अंत है न मध्य और न आदि ही मुझे दिखाई देता है।[२] ब्रह्म का ऐसा स्वरूप बुद्धि द्वारा कल्पित ही है। पंजाबी संत भी अपने प्रभु के अनंत विस्तार, अनंत सामर्थ्यपूर्ण, सर्व-व्यापकता का अनुभव कर कई स्थलों पर ब्रह्म के विराट स्वरूप को चित्रित किया है। इस भाव की उल्लेखनीय वाणी गुरु नानक देवजी की " आरती है। यथा -

" गगन में थालु रवि चंद दीपक बने
तारिका मंडल जनक मोती
धूप मालिआनलो पवणु चवरो करे
सगल बन राई फुलंत जोती।
कैसी आरती होई भवखंडना तेरी आरती।
अनहता शबद वाजंत भेरी ॥ [२]

इसमें पारब्रह्म के गौरव का वर्णन किया गया है। मानवीय इतिहास में जो बड़ी-बड़ी शक्तियां है, उनको ब्रह्म की स्तुति करते दिखाकर गुरुनानक ने अपने प्रभु की महानता स्थापित की है।

---

१ ऋग्वेद १।९०(सहस्त्रशीर्षा पुरुष: सहस्त्राक्ष: सहस्त्रपात्)
२. गीता - ११।१६

ब्रह्म वाचक ` पुरुष -

पंजाबी संतों में प्राप्त ब्रह्म वाचक पुरुष ` शब्द दर्शनीय है ब्रह्म को ` पुरुषरूप में चित्रित करना गुरुनानक देवजी की बौद्धिक कल्पना है। ` पुरुष ` के उस स्वरूप की कल्पना द्वारा ब्रह्म की विराटता प्रकट होती है और भक्ति मार्गी दृष्टि अनुसार महा-महानता के दर्शन होते हैं। गुरनानक देव ` पुरुष ` के भिन्न-भिन्न कार्यों और तत्वों के समक्ष रखकर उसके स्वरूप का भिन्न-भिन्न रूपोंमें वर्णन करते हैं। वह ` कर्ता ` पुरुष है - एक ओनकार सतिनाम कर्ता पुरुष निरभउ निरवैरु अकालु मूरति अजूनि सैभं गुरप्रसादि ।।[1]
वह ` आदि ` पुरुष है। यथा-

` आदि पुरखु । अपरंपरा गुरमुखि हरि पाए ।[2]

वह ` सतिपुररख ` और ` अकाल पुरख है । जहां पुरुष को कर्ता पुरख कहा गया है। वहां ` पुरख ` को कर्ता बताकर उसकी आदि सृजना शक्ति को स्थापित किया गया है। वह पुरख इस सृष्टि का , इस प्रकृति का कर्ता है। यही सारे ब्रह्मांड का मूल कारण है।

परन्तु ऋग्वेद का ` पुरुष ` ब्रह्मवादी या सर्वात्मवादी दृष्टि वाला है। [3] सांख्य दर्शन में प्रकृति और पुरुष दो मूल तत्व स्वीकार किए गए हैं जिनके संयोग से जगत् प्रगट होता है। प्रकृति अचेतन और पुरुष सचेतन है परन्तु ब्रह्मांड के कर्ता रूप में सांख्य ने प्रकृति को स्वीकारा है पुरुष को नहीं। इस दृष्टि से पुरुष क्रियाहीन है। किंतु पंजाबी संत तथा संत गुरुनानक पुरुष को जड़ शक्ति नहीं मानते, वे उसे अलौकिक शक्ति वाली क्रियाशील सत्ता मानते हैं। इस दृष्टि से पंजाबी संतों का पुरख कठोपनिषद के पुरुष से मेल खाता है।

---

1. आदि ग्रंथ महला-१ पृ०-६६३
2. वही पृ०-१ (मूल मंत्र)
3. आदि ग्रंथ महला-१ पृ०-४२२

काठोपनिषद् के अनुसार -

" इन्द्रियों के आगे अर्थ, अर्थ से आगे मन, मन से आगे बुद्धि, बुद्धि से आगे महान आत्मा, महत् से आगे अव्यक्त और अव्यक्त से आगे पुरुष है, " पुरुष " से आगे और कोई भी वस्तु नहीं होती ।[१]

गीता के पन्द्रहवें अध्याय में " पुरुष " को आदि (आद्य) विशेषण से विशेषित किया गया है।[२] यह गीता का " आद्य पुरुष " गुरुनानक का " आदि पुरुष " का रूप ही प्रतीत होता है । इस अध्याय में श्रीकृष्ण ने " क्षर " और " अक्षर " के रूप में पुरुष का वर्णन किया है । संसार के प्राणी क्षर है और जीवात्मा अक्षर है । परन्तु इनसे परे " पुरुषोत्तम " की स्थिति है ।[३]

इस प्रकार गीता, उपनिषद् में पुरुष सगुण ब्रह्म का वाचक है किंतु पंजाबी संतों ने " पुरुष " का वर्णन निर्गुण ब्रह्म के लिये किया है ।

३- योगमार्गी ब्रह्म निरूपण -

पंजाबी संतों का ब्रह्म तत्व ज्ञान भक्ति और योग मार्ग की पृष्ठभूमि में रखकर ही निरूपित हुआ है । " गुरुनानक जी उदारवादी संत थे । इसलिए उन्होंने अपने समय के प्रत्येक धर्म और साधना को बड़ी उदारता के साथ देखा और उनके भीतर जो असली और सच्चे तत्व उनको मिले, उनके वर्णन में कोई संकोच नहीं किया। किंतु उसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि उन्होंने उस साधना को ही यथावत स्वीकार कर लिया है । इसी प्रकार सिद्धांततः वे योगमार्ग के सिद्धांतों को स्वीकार नहीं करते, साम्प्रदायिक योग साधना के वे विरोध ही करते हैं ।

भारतीय आध्यात्मिक जीवन में " योग " का महत्वपूर्ण स्थान है ।

---

१. ऋगवेद मंडल-१ सूक्त-६०
२. कठोपनिषद् वल्ली ३-श्लोक-११-१२
३. गीता श्लोक-१८ अध्याय-१५

योग की परम्परा उतनी ही पुरातन है जितना ज्ञान कर्म और उपासना की । योग से संबंधित संकेत ऋग्वेद में भी मिलते हैं ।[1] गीता मे योग का पूर्ण विस्तार से वर्णन मिलता है । उसमें कर्म योग, आत्मसंयम योग, ज्ञान योग, बुद्धियोग, भक्ति योग आदि अठारह प्रकार के योगों का उल्लेख है ।[2] बौद्ध दर्शन,जैन धर्म और तंत्रों में भी योग की महत्वपूर्ण भूमिका है ।

वस्तुत: योग का दार्शनिक विवेचन पतंजलि के प्रसिद्ध योग सूत्रों में ही है । योग दर्शन में ` ब्रह्म ` को बड़ा ऊंचा स्थान है। इसके अनुसार ईश्वर नित्य, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी है। वह संसार के सभी जीवों से अलग और श्रेष्ठ है । कर्म और कर्मफल उसे छू भी नहीं सकते हैं । वह अखंड ज्ञान का भंडार है । वह गुरुओं का भी गुरु है । वह भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालों से स्वतंत्र है।[3]

गुरुनानकदेवजी ने भी अपनी वाणी ` जपुजी ` का आरंभ है ब्रह्म के ऐस ही स्वरूप से किया है जो त्रिकालव्यापी और त्रिकालातीत है-

> आदि सचु । जुगादि सचु।
> है भी सचु, नानक होसी भी सचु ।।[4]

योग मार्ग में ब्रह्म को ` शब्दरूप ` माना गया है । शब्द वाद ही प्रणववाद, अनहद नाद, नाद, बिंदु , आदि भिन्न-भिन्न नामों द्वारा प्रगट किया गया है। ब्रह्म को शून्य, सहज, निरंजन, अलख, सम, जोति ईश्वर आदि नामों से भी विभूषित किया गया है।

---

१. कबीर दर्शन-पृ०-२९८(रामजीलाल सहायक)
२. हि०नि०की दा०पृष्ठभूमि-पृ०-४७६
३. संत-काव्य में परोक्ष सत्ता का स्वरूप-पृ०-८४(बाबूराव जोशी)
४. आदि ग्रंथ महला-१, पृ०-१

शब्द रूप ब्रह्म -

शब्द-रूप ब्रह्म का विचार बहुत पुरातन है ` ओमकार ` या प्रणव शब्द ब्रह्म का प्रतीक है। पतंजली का ` तस्य वाचकह प्रणवह - ब्रह्म की शब्द स्वरूपता ही प्रकट करता है ।[१] कठोपनिषद में भी ` अक्षर ` को ब्रह्म कहा गया है ।[२] शब्द को व्याकरणकार ब्रह्म ही मानते है - और परा पश्यंति मध्यमा बैखरी को शब्द के ही सूक्ष्म रूप मानते हैं ।[३] गीता में भी शब्द ब्रह्म की महिमा अंकित है । अक्षर ब्रह्म परम आध्यात्म स्वभाव वाला है ।[४]

योगियों के अनुसार ` शब्द ब्रह्म ` सभी मनुष्यों की चेतना में वर्तमान है । वह ` कुंडलिनी ` का रूप धारण करके फिर बैखरी-वाणी के माध्यम द्वारा प्रकट होता है ।[५]

पंजाबी संत-साहित्य और गुरु वाणी में यही ` अनहद नाद ` है सैद्धांतिक रूप में यही ` प्रणववाद है ` नाथ - पंथी भी ` शब्द को ताला शब्द को ` कुंजी ` कहते हैं अर्थात सब कुछ शब्द का ही विस्तार है ।[६] तंत्र-ग्रंथों में प्रणववाद की व्याख्या ` नाद ` और ` बिंदु ` कहकर की गई है ।

उपर्युक्त विवेचन को पृष्ठभूमि में रखकर हम पंजाबी संतों की शब्द ब्रह्म की व्याख्या करते हैं तो वह योगमार्गी शब्द-ब्रह्म के बहुत निकटप्रतीत होती है ।

---

१. पतंजली योग-दर्शन - १।२७
२. कठोपनिषद १।२।१६
३. भारतीय दर्शन (बलदेव उपाध्याय (पृ०-५७४)
४. गीता - ८ । ३
५. शारदा तिलकम (पहला पटल)
६. गोरख बानी - पृ०७८ डा० बड़थ्वाल

गुरुनानकजी ने ब्रह्म चिंतन का सार निचोड़ रूप में अपने मूलमंत्र का प्रारंभ ही एक ' ओंकार ' (ओम) ' से किया है। मूलमंत्र में इसका लक्षण बताते हुए जहां ये ब्रह्म सत्ता को एक सत्स्वरूप, निरभउ, निर्वैर अजोनि आदि कहते हैं, वहीं उसमें कर्ता शक्ति (कर्ता पुरुख) का भी आरोप करते हैं। इस प्रकार गुरुनानकजी का ' एक ओंकार ' केवल क्रिया रहित परमार्थ सत्य ही नहीं रहता, वह क्रियाशील चिद्रूप X चेतनामयी)(कर्ता भी प्रतीत होता है। गुरुजी ' ओम ' के साथ १ अंक लगाकर इसको अर्थ रेखा सीमित कर देते हैं और योगमार्गी ढंग से प्राप्त शब्द स्वरूप को स्वीकारते हैं। किंतु ' १ ' को सर्वव उसके ऐकेत्य का बोधक है, अर्थात एकेश्वरवाद गुरु नानक के ब्रह्म निरूपण का मूल स्तंभ है।[१]

गुरुनानक और पंजाबी संत इसी शब्द को ब्रह्म के वाचक रूप में स्वीकार करते हैं।

नाम-साधना -

' नाम-साधना ' पंजाबी संतों एवं गुरु कवियों की विशेषता है। नाम-साधना में नाम का जाप, सिमरण और श्रवण कल्याणकारी है। परन्तु गुरु और पंजाबी संत इससे भी आगे बढ़कर नाम और नामी में अभेदता स्थापित करते हैं। यह अद्वैतवाद है। इस विचार के अन्तर्गत गुरु-नाम को ब्रह्म का ' वाचक शब्द ' स्वीकार करते हैं।

---

१. गुरुनानक और निर्गुण धारा - पृ०-८०

गुरु अर्जुनदेव स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं -

' नाम के धारे सगले जंत,
नाम के धारे खंड ब्रह्मंड । [१]

' नाम शब्द का बोधक है, इसलिये शब्द स्वरूपी ब्रह्म का पर्याय है । गुरुवाणी में शब्द स्वरूपी ब्रह्म के स्वरूप की स्वीकृति इस बात से भली-भांति प्रकट होती है कि गुरु स्वयं ' शब्द ' को ही ब्रह्म के लिये प्रयुक्त करते हैं । यथा -

' शब्द गुरु सुरति धुनि चेला ।[२]

गुरु वाणी में प्रयुक्त हुए - जप, जाप, अजपा, नाद, अनहदनाद, मंत्र, गुरुमंत्र, नाम आदि शब्द ब्रह्म की शब्द स्वरूपता के ही वाचक हैं ।

नाद बिंदु - पंजाबी संत-साहित्य में नाद-बिंदु साधना की ओर अधिक रुचि तो दिखाई नहीं पड़ती हां संकेत अवश्य मिल जाते हैं । जैसे -

' नाद बिंद की सुरति समाई ।
सतिगुरु सेवि परमपदु पाई ।[३]

ज्योति स्वरूप ब्रह्म - डा० त्रिगुणायत ने जो बात सम्पूर्ण संत-काव्य के विषय में कही है, वह पंजाबी एवं निर्गुण संत काव्य के विषय में सही प्रतीत होती है। उनका कहना है कि - हमारे समक्ष में संत कवियों ने बौद्ध तांत्रिकों एवं नाथ पंथियोंगियों की साधना में प्रयुक्त होने वाले ईश्वर वाचक सभी शब्दों का प्रयोग ज्योति स्वरूप और नाद-स्वरूप ब्रह्म के लिये ही किया है ।[४]

---

१. आदि ग्रंथ महला-५, पृ०-२८४
२. वही -१
३. वही -१ पृ०-३५२
४. हिन्दी निर्गुण काव्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि पृ०-४१८

इससे स्पष्ट है कि योग मार्ग में ब्रह्म की शब्द स्वरूपता और ज्योति-स्वरूपता उल्लेखनीय है । इस परम्परा में गुरुवाणी में प्राप्त ब्रह्म की ज्योतिस्वरूपता प्रकट होती है । गुरुनानकजी कहते हैं - हे प्रभु । सर्वत्र तेरी ज्योति फैल रही है, जहां-जहां मैं देखता हूं , वहां-वहां तेरी सत्ता है ।[1] मैं तेरा रूप ज्योतिमान देखता हूं, सभी भुवनों में तेरा ही प्रकाश है ।[2] तू निरंजन है, अपरम्पार है , और यह सारी ज्योति तेरी है ।[3] गुरु अर्जुनदेवजी भी कहते हैं कि अद्वैत स्थिति ऐसी जैसी जल जल में मिलता है और महान ज्योति के साथ दूसरी ज्योति मिलती है ।[4]

' निरंजन - एक और योगमार्गी शब्द है , जिसकी प्रतिध्वनि पंजाबी संत-काव्य में भी गूंजती है । निरंजन अलख के साथ सम्मिलित होकर अधिक प्रयुक्त हुआ है ।

शून्य - योगमार्गी नाथ पंथियों की तरह पंजाबी संत ' शून्य ' को अपने ब्रह्म का वाचक शब्द मानते हैं । शून्य के द्वारा भी उन्होंने अपने निर्गुण ब्रह्म का निरूपण किया है । उनके अनुसार पवन, पानी, अग्नि सभी प्रकृति ही शून्य से उत्पन्न हुई है । यहां तक कि ब्रह्मा विष्णु महेश भी शून्य से ही उत्पन्न हुए हैं ।

पवुणु पाणी सुनै ते साजे ।सिसटि उपाई काइया गढ़ राजे।
अगनि पाणी जीउ जोति तुमारी सुनै कला रहाइदा।
सुनहु ब्रह्मा बिसनु महेसु उपाए।सुनु वरते जुग सबाए।[5]

पंजाबी संतों का ' शून्य ' सृष्टि का आदि कारण और अवतारों का सूचक है । इन अर्थों में गुरु शून्य को ब्रह्म का पर्याय स्थापित करते हैं और परम्परा से आए इस तत्व सूचक शब्द को आस्तिकता और ब्रह्म तत्व के साथ नवीन रूप प्रदान करते हैं ।

---

1. आदि ग्रंथ महला-१ पृ०-८७६
2. वही पृ०-३५१
3. वही पृ०-३६७
4. वही ५ पृ०-५७८
5. वही -१ पृ०-१०३७

सहज - निर्गुण काव्य में ' सहज ' महत्वपूर्ण आध्यात्मिक शब्द है । इसे कई अर्थों में प्रयुक्त किया गया है - सहज विचार, विवेक , ज्ञान, शोक, का अभाव, आनंद, का सूचक है। गुरु कवियों ने अपने ब्रह्म को भी ' सहज ' शब्द द्वारा निरूपित किया है । गुरु अमरदासजी कहते हैं -

' सहज सालाही सदा सदा । [१]

' सहज' का तत्व वस्तुत: वज्र यानी बुद्ध सम्प्रदाय की देन है । परन्तु इसका विकास आगे जाकर बौद्ध तांत्रि सहजयानी सिद्धों की वाणियों में हुआ । सहजयानी सिद्धों का' सहज ' एक प्रकार की मानसिक अवस्था थी , जिसे वे ' महासुख ' भी कहते थे । सिद्धों का ' महासुख ' महासुख है जिसका कोई आदि-अंत नहीं, जो निर्वाण से भी परे है । परन्तु सहज यानी सिद्ध नास्तिक थे अत: उनका' सहज ' ईश्वर का वाचक न बनकर ' महासुख ' की अवस्था का वाचक बना। परन्तु नाथ मत में नास्तिक ' सहज' आस्तिक बनकर उतरा और नाथ-पंथियों का सहज हठ यागिक प्रक्रिया के प्रसंग में ही रूपमान हुआ, किंतु गुरुनानक और अन्य निर्गुण कवि हठयोगिक ' सहज ' के पक्षधर नहीं थे , अत: इन्होंने सहज के नास्तिक और आस्तिक दोनों परम्पराओं को प्राप्त करके भी नवीन अर्थ प्रदान किए हैं ।

गुरु वाणी में ' सहज ' वह सत्ता है जो और किसी पर निर्भर नहीं है । गुरु गोविंदसिंहजी ' जापु ' में इसी स्वरूप को - 'नमस्तं निरासेरे' लिखते हैं । इस प्रकार निर्गुण काव्य में ब्रह्म का निरूपण योगमार्गी प्रणाली से भी हुआ है किंतु शब्द योग शब्दावली में नये अर्थों के विस्तार के साथ ।

---

१ आदि ग्रंथ महला-३

४- सूफी मार्गी ब्रह्म निरूपण -

निर्गुण एवं पंजाबी संत-साहित्य में ब्रह्म से संबंधित अनेक ऐसे शब्द मिलते हैं जो स्पष्टत: इस्लामी और सूफी प्रकार के हैं। कई स्थलों पर ब्रह्म का सूफी रूप चित्रित हुवा है । पंजाबी संतों के संत गुरुनानक अपनी वाणी में अपने प्रभु का सिमरन सुलतान मियां 'साहिब', 'पातशाह' खसम' 'अलाह' कावा, करीम, खुदाय, दानाबीना आदि शब्दों के साथ करते हैं निःसंदेह ये इस्लामी और सूफी शब्दावली है । इसका एक कारण तो यह हो सकता है उस समय पंजाब में मुसलमान शासक थे और सूफीवाद और इस्लामी आध्यात्मवादी का जोर था । दूसरा कारण यह हो सकता है कि पंजाबी संत कवि विशेष रूप से गुरुनानक सभी धार्मिक सम्प्रदायों में एकता की भावना उत्पन्न करना चाहते थे । उनका लक्ष्य हिन्दू और मुसलमान दोनों सम्प्रदायों के धर्म के झूठे मार्ग से विरक्त करके सच्चे धर्म की ओर लाना चाहते थे।[१] इस दृष्टि से उन्होंने अपने ब्रह्म का निरूपण और स्वरूप चिंतन अपने समय की सभी प्रचलित शैलियों का सहारा लेकर किया। ज्ञान, भक्ति, योग के साथ साथ सूफी मार्गी ढंग भी उनकी उदार प्रवृत्ति के अनुकूल था । अत: उन्होंने सूफीवादी शब्दावली को जिसका मूल इस्लामी धारा थी, अपनी काव्य वाणी में खुले हृदय से प्रयुक्त किया।

सूफी मार्गी ब्रह्म - इस्लाम के आध्यात्मिक चिंतन को लेकर अपने ब्रह्म में और बढ़ोतरी की है, जिसका प्रतीति हमें भारतीय सूफी कवियों, विशेष रूप से फरीद, शाह हुसैन, बुल्लेशाह आदि में मिलती है। पहले सूफी कवियों के साथ ही पंजाबी कवियों का मेल हुआ, जिनकी शैली उनके काव्य में मिलती है । गुरु कवियों का ऐकेश्वरवाद, ब्रह्म की अन्तर्यामिता घट-घट व्यापकता, ब्रह्म की नित्यता, पतिवाद, सूफी ब्रह्म चिंतन से मेल रखते हैं ।

---

१. हिन्दी निर्गुण काव्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि- पृ०-३६१

ऐकेश्वरवाद - डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल के अनुसार - जिन परिस्थितियों ने इस नए निर्गुण पंथ को जन्म दिया था, ऐकेश्वरवाद उनकी सबसे बड़ी आवश्यकता थी ।[१] यह कथन भले सम्पूर्ण भारतीय निर्गुणवाद को समक्ष रखकर लिखा गया था, किंतु यह पंजाबी संतों के काव्य के लिए भी सार्थक प्रतीत होता है । गुरुनानक देवजी ने ब्रह्म के ' एकत्व ' पर बहुत बल दिया है -

" साहिब मेरा ऐको । एको है भाई ऐको है ।[२]

इस विचार के पीछे सूफीवादी स्वर स्पष्ट सुनाई पड़ता है , जिसका आधार इस्लाम है । इस्लाम में एक ईश्वर ' अल्लाह ' की भावना कट्टरता की हद तक पहुँची हुई है । इसमें कोई दोमत नहीं है । इस इस्लामी सूफीवादी शैली में ही गुरुनानक अपने मूलमंत्र के आरंभ में ' ओम ' (१ ओम) के साथ ' १ ' अंक को विशेष विशेषता के साथ अंकित करते हैं और अपनी वाणी में एक ईश्वरीय एकत्व को स्पष्ट करते जाते हैं ।

परन्तु इस्लाम के एकेश्वरवाद और गुरुनानकजी के एकेश्वरवाद में अन्तर प्रतीत होता है । मुसलमानों के ईश्वर संबंधी विश्वास का सार - ला इलाह इल्लिलाह मुहम्मद रसुलिल्लाह ' में आ जाता है। इसका अर्थ है कि अल्लाह का कोई अलग नहीं , वह एक परमेश्वर है और मुहम्मदी का पैगम्बर या दूत है । कबीरजी ने मुहम्मद के पैगम्बर को स्वीकार नहीं किया । ईश्वर संबंधी विचार को और रोचक बना दिया ।[३] गुरुनानक देवजी ने ब्रह्म को एक कहा है परन्तु किसी पैगम्बर को स्वीकार नहीं किया है । गुरुनानक के ऐकेश्वरवाद की यही विशेषता है ।

दूसरी बात यह है कि ' इस्लाम ' के अल्लाह संबंधी कल्पना में अल्लाह बादशाह की भांति है जिस पर और किसी का शासन नहीं । कुरान का अल्लाह ' भय बिनु होई न प्रीति ' की नीति बरतता है।

- -

१. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय - पृ०-१३८
२. आदि ग्रंथ महला-१-पृ०-३५०
३. [illegible]

वह प्रेम का परमात्मा होने के बदले भय का भगवान है । [१] अतः अल्लाह और जीव में जो रिश्ता है वह भगवान और भक्त जैसा नहीं अपितु बादशाह और गुलाम जैसा है ।[२] बाद में भले ही सूफियों ने अल्लाह की इस्लामिक भावना में प्यार प्यान या 'इश्क के तत्व को बड़े जोर के साथ संचरित किया परन्तु गुरुनानक एवं अन्य निर्गुणियां संतों के विचारों के साथ उनका अंतर बना रहा । पंजाबी संतों ने अपने प्रभु की घट-घट व्यापकता स्वीकार करके ब्रह्म की अति निकटता का अनुभव सदैव किया, जो जो इस्लामी धारणा के साथ मेल नहीं खाता फिर भी इतना तो मानना होगा कि पंजाबी संतों ने अपने काव्य में जो एकेश्वरवाद की बलवान भावना व्यक्त की है उसका प्रेरणा स्रोत इस्लाम और सूफी मत ही है ।

अन्तर्यामिता - ब्रह्म की अन्तर्यामिता पंजाबी संतों की विशेषता है। गुरु अर्जुनदेवजी 'कर्ता पुरख' को अन्तर्यामी 'कहते हैं । फरीदजी भी कहते हैं -

'वसु रबु हिआलिअै, जंगलु किआ ढूंढेहि ।[३]

घट घट व्यापकता - ब्रह्म घट घट व्यापक है । भारतीय सूफियों ने इसकी पुष्टि की है। फरीदजी लिखते हैं -

'फरीदा खालक खलक महि खलक वसै रब माहि '[४]
मंदा किसनु आखिअै जा तिसु बिनु कोई नाहि ।

पतिवाद - भारतीय सूफियों ने इस्लाम की ब्रह्म धारणा से आगे निकलकर अपने ब्रह्म को 'पतिरूप' में कल्पित किया है । फरीदजी कहते हैं ।

निवणु सु अखर खवणु गुणु जिहबा मणीआ मंतु,
एहु त्रै भैणे वेस करि त वसि आवी कंतु । [५]

- -

१. हिंदी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय - ३४३
२. डिक्शनरी आफ इस्लाम पृ०-३०२(ई०आर० एण्ड ई० व्हाल्युम-६)
३. आदि ग्रंथ फरीद श्लोक -१९
४. वही -७५
५. वही -१२६

इस प्रकार पंजाबी संत काव्य में ब्रह्म का निरूपण सूफी मार्गी ढंग से भी हुआ है। परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि सूफी वादी ब्रह्म निरूपण पंजाबी संतों ने पूरी तरह से यथावत् स्वीकार कर लिया है। सूफी प्रकार से ब्रह्म का वर्णन करते हुए भी गुरु कवि कई पहलों में मतभेद रखते हैं।

इसप्रकार पंजाबी संतों ने अपने ब्रह्म के निरूपण के लिए सभी मुख्य प्रणालियों का उपयोग किया है, फिरभी इनका ब्रह्म चिंतन इन चारों प्रणालियों से विलक्षण और निराला है।

२- आत्म निरूपण सम्बन्धी विचार -

पंजाबी संत-काव्य एवं हिन्दी संत काव्य की तुलना के संदर्भ में ' ब्रह्म ' के पश्चात दूसरा महत्त्व पूर्ण तत्त्व है - ' आत्मा ' ' आत्मा ' तत्त्व ही ऐसा आध्यात्मिक तत्त्व है जिसका भरपूर रहस्यवादी निरूपण हुआ है। वस्तुतः ब्रह्म के निरूपण करते समय पंजाबी संत ' आत्मा' को ध्यान में रखकर ही चलते हैं और अपने परम परमात्मा का आत्मा के साथ मेल रखकर ही विश्लेषण करते हैं।

आत्म निरूपण की भारतीय परम्परा -

भारत के आदि ग्रंथ ऋग्वेद में जीवात्मा के स्वरूप का प्रतीकमय उल्लेख व्याप्त है। ऋग्वेद के एक मंत्र में लिखा है - ' हर समय साथ रहने वाले, अपने में मित्रता का भाव रखने वाले दो पक्षी एक ही वृक्ष पर टिकते हैं। उनमें से एक (जीवात्मा) उस वृक्ष के फलों का स्वाद प्राप्त करता है और दूसरा कुछ न खाता हुआ ' दाना-बीना ' रूप में केवल देखता रहता है।[१]

---

१. ऋग्वेद - १।१६४।२०

उपनिषदों में भी आत्मा का दार्शनिक विवेचन मिलता है। यहां आत्मा और ब्रह्म को एक ही बताया गया है। बृहदारण्यक उपनिषद के कई सूत्रों में आत्मा का निरूपण है। यह आत्मा ब्रह्म है, मैं ब्रह्म हूं, यह आत्मा ब्रह्म है और सबका अनुभव करने वाला है।[१]

बौद्ध दर्शन में 'आत्मा' को स्वीकार नहीं किया गया है। भारतीय दर्शनों में 'आत्म तत्व का दार्शनिक दृष्टि से विवेचन कि हुआ है। न्याय-दर्शन के अनुसार - आत्मा शरीर एवं इन्द्रियों से स्वतंत्र एक स्थायी नित्य पदार्थ है। वैशेषिक दर्शन आत्मा की अनेकता में विश्वास करता है। सांख्य दर्शन - पुरुष को आत्म स्वीकार करता है। शंकर ने अपने अद्वैतवाद में उपनिषदों के सूत्र 'तत त्वं असि' की पुष्टि की है जिसका अर्थ है जीव और ब्रह्म एक है। रामानुजाचार्य का विशिष्टद्वैत, चित, अचित और ईश्वर इन तीन तत्वों को स्वीकार करता है। इसमें चित तत्व ही जीवात्मा है। जो देह, इन्द्रीय, मन प्राण एवं बुद्धि से अलग है। मैं इस शब्द द्वारा सूचित होने वाले पदार्थ को 'आत्मा' कहा है। गोरखनाथ 'आत्मा' और परमात्मा में कोई अंतर नहीं मानते हैं। कबीरजी की वाणी से स्पष्ट होता है कि कबीरजी प्रबल आत्मवादी थे। इनके अनुसार 'आत्म-तत्व' परम सत्य है। उसकी पारमार्थिक सत्ता है। कबीर ने इस आत्मा को 'मैं हूं' याहम हैं के अनुभव से व्यक्त किया है। यथा -

> हम सब माहि सकल हम मांहि।
> हम थे और दूसरा नाही ॥[२]

इस्लामी आत्म दर्शन की परम्परा - सूफीवाद इस्लामी दर्शन की रहस्यवादी परम्परा है। सूफीवादी काव्य में इस्लामी दर्शन की ही छाया वर्तमान है।

---

१. बृहदारण्यक उपनिषद २।५।१९
२. कबीर ग्रंथावली - पृ०-२०१

* हम सब मांहि सकल हम मांही
  हम थे और दूसरा नाहीं ।। [१]

इस्लामी आत्म दर्शन की परम्परा -

सूफीवाद इस्लामी दर्शन की रहस्यवादी परम्परा है। सूफीवादी काव्य में इस्लामी दर्शन की ही छाया वर्तमान है । अतः पंजाबी संत-काव्य में भी इसका प्रभाव स्पष्ट झलकता है। कुरान शरीफ के अनुसार अल्लाह ने जब आदि मानव पैदा किया तो उसके अंदर ' रूह ' (स्पिरिट) या नफस (सोल (फूंक दी । जिसका अभिप्राय यह है कि रूह या नफस अल्लाह का अंश है ।[२]

पंजाबी संत-साहित्य में ' आत्म तत्व ' का बहुपक्षी निरूपण हुआ है । आत्मा की अमरता, नित्यता निर्विकारता दिखाकर इसका ज्ञान प्राप्त करना ही इन संतों का उद्देश्य है । ' आत्मज्ञान ' ही ' आत्म साक्षात्कार ' है। इसे ही ' आत्मोपलब्धि ' भी कह सकते हैं । गुरुनानक देवजी कहते हैं - ' आत्मा परमात्मा का ही रूप है जिसको जानकर परमात्मा को जाना जा सकता है ।[३] यथा -

* आत्म चीनि परातम चीनहु गुर संगति रहुं निस्तारा है।

यह आत्मा अमर है, इस देह की भीतर ' नाम ' अर्थात् वाहिगुरु का निवास है, वह आप ही कर्ता है । जीवात्मा अविनाशी है न वह मरती है, न मारी जाती है जैसे -

' न जीऊ मरै न मारिआ जाई करि देखै सबदि
रजाई है ।[४]

गुरुनानक देवजी का यह विचार गीता के उस सिद्धांत से पूर्णतः मेल खाता है , जहां कृष्ण जी कहते हैं - कि यह आत्मा न जन्मता है , न मरती है , न हुई है , न है, न होगी । अर्थात त्रिकालातीत है।[५]

---

१. कबीर ग्रंथावली - पृ०-२०१
२. इ०आर०एण्ड ब्लोत्सुन (सीठ मुस्लिम) पृ०७४५
३. आदि ग्रंथ, महला-१। पृ०-१०३०
४. आदि ग्रंथ महला-१, पृ०-१०२६
५. गीता - २।२०

गुरु रामदासजी ने आत्मा का बड़ा अद्भुत वर्णन किया है। उनके अनुसार - ' आत्मा (जीवात्मा) परब्रह्म का ही रूप है । यह न बूढ़ी है न बालक । इसको किसी प्रकार के दुखों का जंजाल नहीं पहुंचता। यह न विनाशशील है न बदलने के योग्य यह हर काल और युग में वर्तमान रहती है। न इसको गर्मी है। न पाला । न इसका कोई दुश्मन है न मित्र है। इसको न खुशी है न गमी । यह सब कुछ करने में समर्थ है । इसका न कोई जनक है और न जननी , यह परम्परा से सनातन तत्त्व है। यह निर्लेप है , इसे पाप-पुण्य नहीं लगते । यह प्रत्येक देह में प्रकाशमान है। इसकी गति की कोई नाप नहीं सकता इसलिए इसके बलिहारी जाते हैं ।[१] इसमें गुरु रामदासजी ने आत्मा की अद्वैत अवस्था, निर्विकारता, अविनाशता, सर्व-व्यापकता, अपरम्पारता का रहस्यमयी शैली में वर्णन किया है।

पंजाबी संतों ने ' आत्म निरूपण ' में आत्मा का अव्यक्त और व्यक्त दोनों रूपों का वर्णन किया है । गुरुवाणी में इसी ' अव्यक्त ' का ' अविगत ' कहा गया है । यही परोक्ष, अप्रगट, निराकार है। सूफी शब्दावली यह बातन है । शंकराचार्य आत्मा का अव्यक्त स्वरूप को ' स्वरूप लक्षण ' में गिनते हैं । इनके अनुसार आत्मा का एक और स्वरूप ' तटस्थ लक्षण भी है ।

आत्मा एक है -

पंजाबी संत आत्मा की एकता और अद्वैतता में विश्वास करते हैं । गुरु अर्जुनदेवजी लिखते हैं - ब्रह्म और जन अर्थात जीवात्मा एक हैं । ब्रह्म में आत्मा और आत्मा में ब्रह्म है । इसमें कोई भ्रम नहीं है कि यह आत्मा ब्रह्म स्वयं है । जैसे -

' ब्रह्म महि जनु जन महि पारब्रह्म ।
एकहि आपि नहीं कछु भरमु ।[२]

---

१. आदि ग्रंथ महला-४ पृ०-८६८-६६
२. वही -५ पृ०-२८७

आत्मा अद्वैत है -

पंजाबी संत-काव्य में आत्मा का अद्वैतवादी स्वरूप अंकित हुआ है। अद्वैतवाद के अनुसार आत्मा और पर-आत्मा में द्वैत-भाव नहीं है। गुरु नानक देवजी का कथन है - जीवात्मा में हरि है, और हरि में जीवात्मा बसता है, गुरु के विचार द्वारा यह बात समझी जा सकती है -

* आतम महि राम राम महि आतमु चीनसि गुर बीचार ।।[१]

आत्मा-परमात्मा की अभेदता -

गुरु कवियों ने आत्मा और परमात्मा की अभेद अवस्था का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। गुरु नानक देवजी लिखते हैं - हे हरि वही साधक तेरे गुण गाते हैं जो तुझे अच्छे लगते हैं, तुझ से ही उनकी उत्पत्ति होती है और वह तेरे में समा जाते है। इसी विचार को गुरु अर्जुनदेवजी अलंकारिक रूप में वर्णित करते हैं -

* नदी से घड़ा भर कर बाहर निकालें तो वह अलग पड़ा दिखता है, किंतु फिर उसे नदी में डाल दें तो पानी पानी में मिल जाता है और घड़ा अलग नहीं लगता।[३]

आत्मा सत्य-स्वरूप है -

भगवद् गीता के अनुसार आत्म, नित्य, अजेय, पुराण, सनातन और अमर है। गुरु आत्मा को अमर स्वीकार करते हैं। आत्मा के लिये - वे जीव, जीउ, जिअरा आदि का प्रयोग करते हैं। आत्मा समभावी, समर्थ, सर्वव्यापी और परिपूर्ण है - आत्मा सांसारिक क्रिया-कलापों से मुक्त है। गुरु अर्जुन जी कहते हैं।

पाप पुंन का इस लेप न लागै।
घट घट अंतरि सद ही जागै।[४]

---

१. आदि ग्रंथ महला-१ पृ०-११५३
२. वही पृ०-१०३५
३. वही -५ पृ०-१२०३
४. वही -५ पृ०-८६८

आत्मा को निरूपित करने के लिए पंजाबी संतों ने विभिन्न शैलियों का सहारा लिया है। उन्होंने अनेक प्रतीकों , अलंकारों और अनेक उपमानों को प्रयुक्त कर आत्मा को निरूपित करने में सफलता प्राप्त की है । वह रूप है - ज्योति-स्वरूप आत्मा " हंस रूप आत्मा , रत्न रूप आत्मा" अमृत रूप आत्मा " कंत रूप आत्मा ।

इस प्रकार " आत्मा का पंजाबी संतों ने विविध रूपों में विवेचन किया है ।

३- सृष्टि दर्शन संबंधी विचार -

ब्रह्म तत्व के पश्चात् सृष्टि ही ऐसा तत्व है जिसकी दार्शनिक साहित्यिक, और ऐतिहासिक विशद चर्चा हुई है । प्रारंभिक काल से ही दार्शनिकों रहस्यवादियों, साहित्यकारों, संतों, गुरुओं ने इस अद्भुत दृश्य के रहस्य को जानने का पूरा प्रयत्न किया, कहीं सहज अनुभव द्वारा , कहीं बौद्धिक ज्ञान द्वारा । बौद्धिक पद्धति द्वारा सृष्टि की खोज करने की जो विधि अपनाई जाती है उसे " सृष्टि विज्ञान " का नाम दिया जाता है । सृष्टि विज्ञान दर्शन की महत्वपूर्ण शाखा है । इसमें ब्रह्मांड के अस्तित्व में आने के पहले की अवस्था, सृष्टि की उत्पत्ति , उसके आदि रूप के विषय में विचार किया जाता है । सृष्टि निर्माण के कारणों विशेष कर उपादान कारणों एवं निमित्त कारणों का विवेचन होता है और जड़-चेतन पदार्थों का चुनाव होता है । दार्शनिक प्रणाली में सृष्टि विचार के दो भाग हैं - सृष्टि विद्या और सृष्टि शास्त्र । सृष्टि विद्या के अन्तर्गत सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है - पौराणिक और लोक-कथाओं के आधार पर रचना का वैज्ञानिक ढंग से विवेचन होता है।[१]

---

१. गुरुनानक से निर्गुण धारा - पृ०-१२२

सृष्टि जिज्ञासा -

प्रारंभ से ही मानव के मन में सृष्टि के प्रति जिज्ञासा बनी रही कि सृष्टि की रचना कब कैसे हुई । यह एक उलझा सा प्रश्न है। इस प्रश्न में ' काल ' (समय) के माध्यम से सृष्टि को जानने की चेष्टा की है । सृष्टि के प्रारंभ के संबंध में दो विचार मिलते हैं- (१) भौतिकवादी विचार धारा (२) आध्यात्मिकवादी - विचारधारा

भौतिकवादी सृष्टि को अनादि मानते हैं । उनके अनुसार सृष्टि एक निरंतर प्रवाह है , जिसका न आदि है न अंत । इसका कोई कारण या रचने वाला (कर्ता) नहीं है ।

दूसरी ओर आध्यात्मवादी है जो सृष्टि को अनादि और अनंत नहीं मानते हैं । उनके अनुसार सृष्टि का आदि भी है और अंत भी। हिन्दू विचारधारा सृष्टि का आदि स्वीकार करती है । उनके अनुसार उन्होंने चार युग - सतियुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग की कल्पना की है । हमारा वर्तमान युग कलियुग के अन्तर्गत आता है। इसी भावना के अधीन सृष्टि की उम्र रेखा के ' मन्वंतर ,' कल्प ' आदि और भाग भी कल्पित किए गए हैं । यह आध्यात्मवादी दृष्टिकोण है।

गुरुनानकजी भी आध्यात्मवादी थे । उनकी वाणी में ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं जिनसे यह स्पष्ट होता है कि गुरु इस सृष्टि को परमात्मा की रचना मानते हैं । गुरुजी कहते हैं - परमात्मा ने अपने आप को सृजन और उसके बाद सृष्टि की रचना की जैसे -

* आपीनै आपु साजिओ आपीनै रचिओ नाउ
  दुयी कुदरत साजीऐ करि आसणु डिठो चाउ।[१]

---

१. आदि ग्रंथ महला-१, पृ०-४६३

सृष्टि के आदि-अंत सहित होने का एक और प्रमाण भी नानक-वाणी में वर्तमान है। गुरुनानकजी ने ऐसी अवस्था का वर्णन किया है जब यह सृष्टि अस्तित्व में नहीं आई थी। जब निर्गुण ब्रह्म शून्य समाधि अंदर अस्फुट अवस्था में विराजमान था।

> कवणु सु वेला वखतु कवणु कवण थिति कवणु वार
> कवणु सु रुती माहु कवणु जितु होआ आकारु ॥[१]

सृष्टि उत्पत्ति -

दार्शनिक दृष्टि से अगर देखें तो प्रत्येक कार्य के पीछे कोई कारण होता है। सृष्टि एक कार्य है अतः इसका कोई न कोई कारण अवश्य है। भारतीय पौराणिक परम्परा में इस सृष्टि की उत्पत्ति के कई कारणों का उल्लेख है -

१- परम देव ब्रह्म या आत्मा है।
२- आदिम जल समूह है
३- अंधकार है
४- हिरण्यगर्भ है
५- ब्रह्मांड है
६- कमल है। परन्तु गुरुनानक एवं अन्य पंजाबी संत इस कार्य रूप सृष्टि का मूल कारण केवल ब्रह्म को ही मानते हैं। वे लिखते हैं -

" हुइ कुदरति साजीऐ करि आसणु डिठो चाउ।[२]

" ब्रह्म तत्व ने इस " कुदरत " अर्थात सृष्टि का सृजन की है। अतः ब्रह्म तत्व " कारणों का कारण है, जिसे इस्लामी शब्दावली में " मुसबीब - अल - असबाब " कहा गया है। अतः गुरुनानक ऐसे कारण स्वरूपों का उल्लेख करते हैं जिनको माध्यम बनाकर सृष्टि उत्पन्न होती है। गुरु उस कारण-ब्रह्म को " ओंकार " शून्य " हुकुम ", " हुकम ", अवाज " शब्द आदि रूपों में चित्रित करते हैं।

---

१. आदि ग्रंथ महला-१ पृ०-४
२. आदि ग्रंथ महला-१, पृ०-४६३

परन्तु अगर हम उपर्युक्त सभी सृष्टि सिद्धांतों की विवेचना करें तो यही प्रतीत होगा कि इन सभी सिद्धांतों की मूल भावना एक ही है।। 'शब्द' 'कवाऊ', 'नाम' 'ओंकार', 'हुकम' शब्द स्वरूपी ब्रह्म तत्व ही सृष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण है - इस प्रकार ब्रह्म सृष्टि का निमित्त और उपादान कारण दोनों है। गुरु रामदासजी कहते हैं -

> 'आपे अंडज सेतज उतभुज
> आपे खंड आपे सभ लोई।[1]

गुरु अर्जुनदेवजी भी इस कथन की पुष्टि करते हैं -

> 'करण कारण प्रभु एक दूसर नाहीं कोई'।।[2]

इस कथन को डा० जयराम मिश्र ने पुष्ट करते हुए कहा है -

'सिख गुरु परमात्मा को सृष्टि का निमित्त और उपादान कारण मानते हैं'[3]। डा० बड़थ्वाल भी इसी मत के समर्थक हैं - 'इसलिए उनके (गुरुनानक) के अनुसार परमात्मा सृष्टि का कर्ता और उपादान दोनों हैं।[4]

सृष्टि का विकास -

पंजाबी संतों के अनुसार करोड़ों लाखों वर्षों तक शून्य समाधि में लीन निर्गुण ब्रह्म गुप्त रूप से अक्रिय और निश्चेष्ट अवस्था में विराजमान रहता है। परन्तु जब उसकी इच्छा होती है तो वह गुप्त अवस्था से निकल कर प्रगट अवस्था में आगमन करता है -

> 'तिस भावै ता करे बिसथार, तिस भावै ता एकंकार।[5]

गुरुनानकजी इस परिवर्तन विकास का 'गुपतहु प्रगटी आइआ' वाक् द्वारा कथन करते हैं। इसी को 'निर्गुण से सगुण होना', 'निराकार से आकार होना है।' 'सूक्ष्म से स्थूल' होने का परिणाम भी यही है और अव्यक्त से व्यक्त होने की यही प्रक्रिया है।

---

1. आदिग्रंथ महला-४ पृ०-६०५
2. वही -५ पृ० -२७६
3. श्री गुरु ग्रंथ दर्शन-पृ०-१०१
4. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय-पृ०-१८०
5. आदि ग्रंथ महला-५, पृ०-२९४

इस प्रकार निर्गुणवादी एवं पंजाबी संत सृष्टि की विकास के आरंभ में निर्गुण प्रभु " आनंद इच्छा " का ही कारण मानते हैं। गुरुनानक इस इच्छा को " भाणा " " भावनी " भावना " कहकर भी प्रयुक्त करते हैं। इस भावना की पूर्ति के लिए निर्गुण ब्रह्म, सगुण ब्रह्म में परिवर्तित हो जाता है, और यही सगुण ब्रह्म सृष्टि-विस्तार का प्रसार बिंदु है। यही है वह विभिन्न साधना, ओंकार, शब्द, नाम, अवाज़ हउमै - द्वारा इस सृष्टि की रचना करता है। एक से अनेक होने की भावना ही सृष्टि अस्तित्व की प्रेरक शक्ति है। गुरु अर्जुनदेवजी कहते हैं - " एकसु ते होइउ अनंता नानक एकसु माहि समाए जीउ ।[1]

तैत्तिरीय उपनिषद में लिखा है

" उसने यह कामना कि मैं एक से बहुत हो जाऊं।

(सो कामयत एको हं बहुस्याम)[2] इससे स्पष्ट है कि निर्गुण परमात्मा की आनंद इच्छा को ही सृष्टि रचना का मूल कारण समझते हैं। इससे भी अधिक गुरुनानक देव और पंजाबी संतों का सृष्टि दर्शन अन्य वार्तों के अतिरिक्त सबसे अधिक मानसिक व्यापार है। मानसिक व्यापार का अभिप्राय है गुरु सृष्टि का वर्णन चिंतन पद्धति पर कोई अधिक नहीं अपितु मानसिक पद्धति पर ही सृष्टि वर्णन हुआ है। गुरुनानक चिंतक की अपेक्षा रहस्यवादी अधिक हैं। अपने प्रभु के रहस्य दर्शन के प्रसंग में ही सृष्टि-दर्शन का रहस्य उनकी काव्य-वाणी में प्रस्फुटित हुआ है। गुरुनानक के लिए उनका प्रभु अद्भुत विश्वकर्मा है। उसकी विश्व की निर्माण -प्रक्रिया बड़ी विचित्र है। प्रभु कड़ी इस विचित्रता को देखकर गुरुनानक भाव विह्वल हो कह उठते हैं।

" विसमादु नाद विसमादु वेद
विमादु जीअ विसमादु भेद ।[2]

- -

1. आदि ग्रंथ महला-५ पृ०-१३१
2. तैत्तिरीय उपनिषद

गुरुनानक के लिए सृष्टि के सारे रूप-रंग, पवण पानी, इसलिए आश्चर्यजनक है कि इनके पीछे किसी अद्भुत व्यक्तित्व के रहस्य दर्शन होते हैं। " कार्य की महानता से कारण की महानता को आंकना गुरुनानक के सृष्टि दर्शन की विशेषता। " इस प्रकार सृष्टि वर्णन के ऐसे प्रसंगों में गुरुदेव का मनोरथ प्रभु की विराटता, महिमा, उसके गौरव अद्भुत दर्शन, उसका वाहु वाहु " (वाह-वाह) प्रकट करना है, वह भी सहज स्वाभाविक प्रकट होते हैं। इस संदर्भ में सृष्टि की महत्ता इसमें नहीं कि उसकी कोई अलग सत्ता है, अपितु इसमें है वह प्रभु की प्रभुता का प्रकाशीकरण है। सृष्टि का यह रहस्य वस्तुतः गुरुनानक के वाहु - वाहु " प्रभु का ही रहस्य है। इसी स्वर में गुरुनानक सृष्टि को सत्य भी कहते हैं। वे कहते हैं -

" सची तेरी कुदरत सच्चे पातशाह ।[१]

गुरु कवि के अनुसार प्रभु सच्चा है, इसलिए उसका अंश रूप सृष्टि भी सच्ची है। वे पुनः कहते हैं -

" एहु हरि का रूप है हरि रूप नदरी आया ।[२]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि पंजाबी संत सृष्टि तत्व का निरूपण बड़े विस्तृत रूप में करते हैं और अन्य मतों से थोड़ा हटकर सृष्टि को परम तत्व के अंश के रूप में स्वीकार करते हैं।

४- <u>माया संबंधी विचार</u> -

पंजाबी संत-साहित्य और निर्गुण साहित्य में " माया " तत्व का बहुत वर्णन हुआ है। निर्गुण कवियों ने माया के पारम्परिक स्वरूप को लेकर उसकी मानवीकल्पना की है। और उसके स्वभाव, कार्य-शक्ति आदि के विषय में रहस्यवादी ढंग से प्रकाश डाला है।

---

१. आदि ग्रंथ महला-१, पृ०-४६३
२. वही -३ पृ०-६२२

भारतीय इतिहास के प्राचीन , मध्य और आधुनिक, सभी कालों में ' माया ' का वर्णन होता रहा है । भारतीय धर्म दर्शन, साहित्य संतवाणी और गुरुवाणी हर काव्य परम्परा में माया या मायावाद की चर्चा हुई है। भारतीय अध्यात्मिक साहित्य या रहस्यवादी साहित्य में माया का इतना व्यापक वर्णन है कि ब्रह्म तत्व, आत्म-तत्व आदि की तरह माया भी एक दार्शनिक तत्व का रूप धारण कर चुकी है । अतः निर्गुणवादी काव्य के तात्विक दृष्टि के विश्लेषण कराने के प्रसंग में माया का विश्लेषण आवश्यक हो जाता है ।

भारतीय साहित्य में माया का दो रूपों में प्रयोग हुआ है - (१) रहस्यवादी रूप (२) दार्शनिक रूप

रहस्यवादी रूप में ' माया ' शब्द का प्रयोग एक शैली मात्र है । शक्ति, लीला, भ्रम आदि अर्थों को प्रकट करने के लिए साधारण भाषा के कलात्मक रूप में ' माया ' का प्रयोग रहस्यवादी शैली है । रहस्यवादी इसलिए कि तत्व चिंतन दार्शनिक या विचार विवेक की बातें जब काव्यमयी शैली में हुई तो वहां रहस्यवादी कल्पना हुई । दार्शनिक रूप में ' माया ' का एक विशेष दार्शनिक अर्थ निश्चित किया गया जो एक सिद्धांत के रूप में प्रचलित हुआ । इस दृष्टि से शंकर का अद्वैतवाद में माया केवल माया नहीं अपितु ' मायावाद ' का रूप धारण कर गई है । इस दृष्टि से ' माया ' का एक विशेष दार्शनिक अर्थ है । डा० एस०एस० कोहली का कथन उल्लेखनीय है - " माया शब्द इतना प्राचीन है जितना ऋग्वेद, परन्तु मायावाद की स्थापना नवीं सदी में शंकर के साथ होती है ।[१]

---

१. आउटलाइन्स ऑफ सिक्ख थॉट- पृ०-३२ -डा० एस०एस०कोहली

' माया ' को ' साहित्यिक स्वरूप में कई प्रतीकों के माध्यम से प्रगट किया जाता है। इसे मोहिनि, सुन्दरी, मधुर, कंचन कामिनी के रूप में चित्रित किया गया है। गुरुनानकजी कहते हैं - ' माया ममता है बहुरंगी ।[1] (ममता रूप)

' ऐसी स्त्री एक राम उपाई (क्रूर स्त्री रूप)
उनि सम जग खाइआ हम गुरि राखे मेरे माई ।[2]

पंजाबी संत एवं निर्गुण एवं कवि माया को बहुप्रकारी रूप में व्याप्त हुए देखते हैं। माया का विस्तार प्रत्येक स्थल में है। गुरु अर्जुनदेवजी माया के विविध रूपों को चित्रित करते हुए लिखते हैं -

' बिआपत हरख बहु परकारी । संत जीवहि प्रभ उर तुमारी[3]

माया के ' स्वभाव ' को चित्रित करते हुए पंजाबी संत कहते हैं कि माया असत्, झूठ और धोखा है। यथा -

' माया मोहु सभु कूड़ है ।[4]

माया ब्रह्म की शक्ति बनकर आई किंतु उसने जीवों पर अपना प्रभाव जमा लिया और सम्पूर्ण जगत पर छा गयी। न मन मरता है, न माया मर सकती है। इसलिए माया को ' सर्पिणी, सास, बैरी, ' आमर ', ' दासी ' नागिनी, अनेक प्रतीकात्मक रूपकों के द्वारा भी चित्रित किया गया है। कबीरदासजी भी माया को उसी रूप में स्वीकार करते हैं। उन्होंने भी अनेक प्रतीकों और रूपकों में माया को चित्रित करने का प्रयास किया है। इसमें से कुछ रूप निम्नलिखित हैं, जो विविध संत ने प्रयुक्त किये हैं -

---

१. आदि ग्रंथ महला-१ पृ० -१३४२
२. वही पृ०-३६४
३. वही -५ पृ०-१८२
४. वही -१ पृ०-७६०

पंजाबी निर्गुण काव्य में माया -

पंजाबी संत कवियों ने अपनी माया तत्व को पारम्परिक मायावाद की नींव पर खड़ा कर नए रूप में इसकी पुनर्कल्पना की है, गुरु नानक का माया वर्णन, सांख्य दर्शन और वेदांत दर्शन दोनों से अलग है। उनके अनुसार 'माया' सृष्टि के उन विविध रंगों और रूपों का स्रोत है। जो सत्य है ब्रह्म ने अपने आपको व्यक्त किया, संसार की रचना की, त्रिगुणात्मयी-माया की सृजना की -

'त्रैगुण आपि सिरिजनु माया मोह वधाइआ ।[1]

माया के 'तात्विक' स्वरूप पर विचार करते हुए गुरु नानक देवजी कहते हैं - माया ब्रह्म की शक्ति है, जिससे संसार का प्रवाह चल रहा है। इस दृष्टि से माया जगत का कारण रूप ईश्वर की शक्ति है। इस विचार की प्रतिध्वनि निम्नांकित पंक्तियों में सुनाई पड़ती है जिसमें माया को जगत की उत्पत्ति का कारण उल्लेखित किया गया -

'एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु
इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाए दीबाणु ।[2]

गुरु अर्जुनदेवजी ने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा कि ब्रह्म ने त्रिगुणी माया की रचना की है -

त्रै गुण माया ब्रह्म की कीनी ।[3]

अर्थात् माया सतरज तमो स्वरूप है और ब्रह्मा द्वारा रचित है।

---

1. आदि ग्रंथ महल्ला -१ पृ०-१२३७
2. वही पृ०-७
3. वही -१ पृ०३०४

नटणी रूप -

* माया बहुरंगी नटणी नाचे सुर नर मुनि कूं मोहै ।[1]

नागिन सांपिनि -

चंदन सर्प लपेटिया, चंदन काह कराय ।[2]

माया -

देखहु लोगा हरि के सगाई, माय धरै पुत्र धिया संग जाई।
सासु ननंद मिलि अदल चलाई, मादरिया ग्रिह बेटी जाई।[3]

महतारी -

संतों अचरज एक भी भारी, पुत्र धइल महतारी ।[4]

बहेनि- तू माया रघुनाथ की खेलण चढी अहेड़ै ।
चतुर चिकारे चुणि चुणि मारे, न छोड्या नेड़े ।।[5]

डाइन - वह जग जैसे धुप है सुनहु बचन परमान
यह माया जस डाइनो, हराहि लेति है प्रान ।।[6]

अतः माया विविधरूपा है। संत-मत के अनुसार माया के कारण सृष्टि उत्पन्न होती है । इसका पसारा होता है, और इस अर्थ में वह परतंत्र और विवश है । जीव की दृष्टि से माया मोह बन जाती है, असत्य को सत्य में प्रकट करती है। बुद्ध जीव की दृष्टि में वह विनाश कारिणी है । वह मोह है किंतु विषपूर्ण है ।

५- मोक्ष संबंधी विचार -

भारतीय चिंतन धारा के दार्शनिक आध्यात्मिक साधनाओं का अन्तिम मनोरथ मोक्ष (मुक्ति) माना गया है। वेद, उपनिषद् पुराण, महापुराण, षट्दर्शन, भक्ति ग्रंथ, बुद्धग्रंथ, जैन-ग्रंथ, तंत्र आगम और निगम सभी दर्शनों और धर्मग्रंथों में मोक्ष ही अन्तिम लक्ष्य है।

---

१. दादू की बानी,(भाग-१) पृ०-१३६
२. कबीर पृ०-४३७
३. वही पृ०-६४
४. वही पृ०-८०
५. वही पृ०-१५१
६. बुल्लाशाह पृ०-२६

यहां तक कि सूफियों का फना, का इस्लाम की निजात और ईसाइयों की 'सल्वेशन' मोक्ष के भिन्न भिन्न रूप हैं। अतः सभी धार्मिक और साम्प्रदायिक क्रिया के पीछे मोक्ष के लिए ही प्रेरणा निहित है।

'मोक्ष' के लिए भारतीय विचारधारा में अनेक पारिभाषिक शब्द प्रचलित हैं -

जैन दर्शन - मोक्ष
बुद्ध दर्शन - निर्वाण
न्यायदर्शन - अपवर्ग, निःश्रेयस
वैशेषिक - मोक्ष
सांख्य दर्शन - अपवर्ग
योग दर्शन - कैवल्य
वेदांत दर्शन मुक्ति
मीमांसा दर्शन मोक्ष
वैष्णव दर्शन मुक्ति
शैव दर्शन - दुखांत

पंजाबी संत-साहित्य और निर्गुण संतों में 'मुक्ति' शब्द प्रचलित है, किंतु इसके साथ और शब्द भी इन्हीं अर्थों में प्रयुक्त किये गये हैं जैसे - 'परमगति' - 'नानक ताकी परमगति होई।[1]
निहकेवल - दर्शन देखि भई निहकेवलु[2]
जोतिजोत - तिउ जोति संगि जोति मिलाइया।[3]
मोखदुआर - करमी आवै कपड़ा नदरी मोखदुआरु।[4]

---

१. आदिग्रंथ महला-५, पृ०-६००
२. वही -१ पृ०-[illegible]
३. वही -५ माझ
४. वही -१ पृ०-२

किंतु सबसे अधिक ' मुक्ति ' शब्द का ही प्रयोग हुआ जो एक निश्चित सिद्धांत का द्योतक है।

संतों की वाणियों में प्रत्यक्षत: हमें कहीं पर भी मोक्ष के स्वरूप का शास्त्रीय विवेचन नहीं मिलता है। उसका शास्त्रीय विवेचन करना उनका लक्ष्य भी नहीं था। उनका लक्ष्य पाप में लिप्त मानवों को सन्मार्ग पर लाना था। कबीर ने एकाध स्थल पर अपने इस लक्ष्य की अभिव्यक्ति भी कर दी है। वे लिखते हैं - ईश्वर की इच्छा हुई कि कबीर ऐसी साखी कहे कि जिससे भवसागर में फंसे हुए लोगों की मुक्ति हो जाए।

मोक्ष के स्वरूप को - सहज, रहस्यवादी और दार्शनिक स्वरूपों में बांटा जा सकता है। सहज रूप में मुक्ति के स्वरूप को अर्जुनदेवजी ने अपने निम्नलिखित पद में अभिव्यक्त किया है -

सूरज किरणि मिलि जल का जल हुआ राम।
जोति जोत रली संपूरन थीआ राम। [१]

गुरु कवि ' सूर्य-किरण ', जल का जल ' और ज्योति-ज्योत ' के दृष्टांत अलंकारों द्वारा मुक्तात्मा की परमात्मा में अभेदता स्वरूप मुक्ति का वर्णन कर रहे हैं। यह मुक्ति का सहजात्मक स्वरूप का सुंदर उदाहरण है।

गुरु वाणी में रहस्यवादी और दार्शनिक रूपा मुक्ति के उदाहरण भी मिलते हैं परन्तु वे कम हैं।

इस प्रकार जीव प्रभु की अभेदता, एकरूपता, तद्रूपता के रूप में प्रभु की मुक्ति की व्याख्या करता है। भारतीय दर्शन परम्परा में मुक्ति के स्वरूप का अंकन एक और पक्ष के द्वारा भी किया गया है।

---

१. आदि ग्रंथ, महला-५, पृ०-८४६

जब मुक्त जीव मुक्ति और मुक्तावस्था के किसी भी अंश का वियोग या खंडन का वर्णन हो वह मुक्ति ' अभावात्मक मुक्ति मानी जाती है, परन्तु जब मुक्त अवस्था में किसी भी अंश का त्याग न हो तो उसे ' भावात्मक मुक्ति कहते हैं । पंजाबी संत-साहित्य में मुक्ति वर्णन में अभावात्मक और भावात्मक दोनों ही रूप मिलते हैं । गुरु-नानकजी का कथन है -

' गावीऐ सुणीऐ मनि रखीऐ भाउ ।
दुखु परहरि सुखु घरि लै जाइ ।। [१]

यहाँ दुखों क्लेशों के त्याग से अनंत सुख अर्थात् मुक्ति की प्राप्ति बताई गई है। दुखों से मुक्ति का ' अभावात्मक ' स्वरूप अंकित है। अतः यहाँ अभावात्मक मुक्ति है । परन्तु दूसरे स्थल पर गुरुनानक देवजी कहते हैं -

' सागर महि बूंद बूंद महि सागर ।[२]

यहाँ जीव और प्रभु की अभिन्नता अर्थात् संयोग बताया गया है, अतः यही अभिन्नता ' भावात्मक मुक्ति वर्णन सूफी निर्गुण संतों से साम्य रखने वाला मुक्ति वर्णन सूफी सिद्धांतों में भी प्राप्त है । जैन-दर्शन का मोक्ष, बौद्ध दर्शन का निर्वाण, न्याय वैशेषिक का अपवर्ग, योग का कैवल्य अभावात्मक ही है । परन्तु रामानुज के विशिष्ट द्वैत में मुक्ति भावात्मक है , जहाँ ईश्वर का प्रत्यक्ष अनुभव ही अन्तिम साधन माना गया है । निम्बार्क , भगवान के साक्षात्कार को मुक्ति मानते हैं जो भावात्मक हैं ।

निर्गुण काव्य में मुक्ति के अभावात्मक पक्ष पर बहुत विस्तार से निरूपण हुआ है । निर्गुण संत ऐसी बातों का विवरण प्रस्तुत करते हैं जो त्याज्य है और जिनको छोड़ना ही मुक्ति है ।

---

१. आदि ग्रंथ ,महला-१, पृ०-२

इनमें - दुःख, जन्म, मृत्यु, आवागमन, पुनर्जन्म, लाख चौरासी यौनि, नर्क, भ्रम, माया का पर्दा, अहं की दीवार द्वैतभाव, अज्ञान, मोह, भय, विकार प्रपंच, भवजल आदि उल्लेखनीय हैं। छुटकारा प्राप्त करना। यही मुक्ति का ' अभावात्मक पक्ष है।

दूसरी ओर मुक्ति का भावात्मक पक्ष भी भली-भांति चित्रित हुआ है। इस दृष्टि से मुक्ति में जीवात्मा का परमात्मा के साथ संबंध प्रकट होता है। भावात्मक मुक्ति के कई पहलू हैं। जिनमें प्रमुख है - जीवात्मा और परमात्मा की एकता, प्रभु का साक्षात्कार, प्रभु की अनुभूति, प्रभु की प्राप्ति।

मोक्ष के प्रकार -

भारतीय दर्शन साहित्य में मुक्ति के अनेक प्रकार बताए गए हैं। ब्रह्म सूत्र के और गीता के शांकर भाष्य में शिव-महापुराण आदि में क्रम मुक्ति सद्यो मुक्ति, सारूप्य, सालोक्य, सामीप्य, सायोज्य, आदि मोक्ष के भेद बताए गए हैं। वेदांत में ' जीवन मुक्ति ' और ' विदेह - मुक्ति ' की भी कल्पना है।[1]

पंजाबी संत साहित्य में मोक्ष के दोनों प्रकार के वर्णन मिलते हैं ' जीवन मुक्ति का अर्थ है, जीवितावस्था में ही ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति या प्रभु कृपा द्वारा बंधनों से मुक्ति हो जाना। विदेह मुक्ति मरने के बाद शरीर के नष्ट होने के पश्चात मिलती है।

निर्गुण वाणी में जीवन मुक्त जीव के अवस्था के चित्रण के द्वारा जीवन मुक्ति का वर्णन हुआ है। उदाहरणार्थ -

' जीवन मुक्त जा सबद सुणाए।
सची रहत सचा सुख पाए।[2]

---

1. भारतीय-दर्शन बलदेव उपाध्याय, पृ०-४५३ (टिप्पणि)
2. आदि ग्रंथ, महला-१, पृ०-१३४३

इस प्रकार भावरूपा और अभावरूप मुक्ति वस्तुत: विदेह मुक्ति ही है। मुक्ति 'आनंदस्वरूप' है। दार्शनिकों ने अपने अपने ढंग से मुक्ति के अनुभव की ओर संकेत किया है। न्याय-दर्शन के अनुसार मुक्त आत्मा में सुख का अभाव रहता है, अत: मुक्तावस्था में आनंद की प्राप्ति नहीं होती। परन्तु वेदांत आदि दर्शन और वल्लभ मत, चैतन्य मत आदि में मुक्ति को आनंद स्वरूप स्वीकार किया गया है। इस आनंदमय अवस्था का बड़ा ही अद्भुत वर्णन किया हुआ गया मिलता है। गुरु अर्जुनदेवजी ने बड़े स्पष्ट शब्दों में मुक्ति का अनुभव सुखमय और आनंदमय वर्णित किया है जो इससे स्पष्ट है -

* आनंद सहज रस सुख घनेरे
दुसमनु दुखु न आवै नेरे। [१]

अत: गुरु वाणी में वर्णित मुक्त आनंद स्वरूप है। यह सूफियों के 'हाल' से मेल खाती है। चैतन्यमत में भगवान श्रीकृष्णजी के चरणकमलों की सेवा करते हुए जो आनंद मिलता है, वह मोक्ष से भी ऊपर है। उसे 'सेवानंद' अर्थात् सेवा द्वारा प्राप्त आनंद कहते हैं, और वह चार पुरुषार्थों के बिना पांचवा पुरुषार्थ माना गया है। गुरुजी का कथन है -

* राज न चाहउ मुकति न चाहउ
मनि प्रीत चरन कमलारे। [२]

मोक्ष की प्राप्ति कई साधनों द्वारा की जा सकती है किंतु पंजाबी संत-साहित्य में प्रभु की कृपा पर ही अधिक बल दिया गया है। इस कृपा को 'करम' 'नदर', 'मिहर', 'प्रसाद', 'कृपा, अनुग्रह, दया आदि पारिभाषिक शब्दों द्वारा भी अभिव्यक्त किया गया है।

---

१. आदि ग्रंथ महला-५, पृ०-१३४० राग देवगंधारी
२. वही -५

यह सिद्धांत पुष्टि मार्ग के मूल में है। ` पुष्टि ` का अर्थ अनुग्रह है।

इस प्रकार मुक्ति निर्गुण काव्य में सर्वापेक्षा विवेचित है। दर्शन के इस सैद्धांतिक पक्ष के अतिरिक्त एक व्यावहारिक पक्ष भी है जिसके आधार पर हम संतों की वाणियों का विवेचन कर सकते हैं। निम्नांकित रूप में हम उन पर विचार कर सकते हैं।

६- गुरु महिमा संबंधी विचार -

संतों ने अपनी वाणियों में गुरु महिमा का गुणगान किया है। गुरु के अभाव में तो गोविंद की कल्पना ही व्यर्थ समझी जाती है। पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के मतानुसार संत साहित्य में गुरु के पर्याय के रूप में सिकलीगर, साहु, सुनार, चन्दन, चिंतामणि, भृंगी, वैद्य, हंस और पारिख आदि शब्दों का व्यवहार किया है।[१]

गुरु महात्म्य भारतीय साधना-धारा में नवीन नहीं है। इसकी परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। यज्ञ का निर्देशक पुरोहित हुआ करता था, एवं आर्येतर साधना -धारा में गृहपति पौरोहित्य करता था। बौद्धकाल में गुरु उपदेशक बना। शास्त्रीय परम्परा में शास्त्र प्रमाण थे और गुरु उनको समझने समझाने में सहायक थे। अतः जनसाधारण में गुरु की महिमा बढ़ने लगी। उपनिषदों में गुरु और इष्टदेव में अभिन्न माना गया है - यथा - देवे तथा मंत्रे यथा मन्त्रे तथा गुरौ - कहा गया है। तंत्र शास्त्र में भी गुरु-पूजा अनिवार्य है, गुरु पूजा के अभाव में साधक की सारी साधना निष्फल हो जाती है। तंत्रों में गुरु का ध्यान शिवशक्ति का ही ध्यान है। नाथपंथियों में गुरु का महत्व और कट्टरता के साथ प्रतिष्ठित हुआ। इन्होंने गुरु की वंदना परमानंद के रूप में की, जिसके सान्निध्य मात्र से शाश्वत आनंद की प्राप्ति होती है। निगुरे की गति संभव नहीं है।[२]

---

१. हिन्दी में निर्गुण सम्प्रदाय - पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, पृ०-३७८
२. गोरखबानी- पृ०-१२८

सांसारिकता की माया से आबद्ध जीवात्मा चैतन्य के दर्शन स्वयं करने में असमर्थ रहती है, अत: माया को हटाकर गुरु चिरंतन के दर्शन कराने में सक्षम है। गुरु के द्वारा ही अमुल्य धन का रहस्य और ज्ञान भक्ति के द्वारा जाना जा सकता है। गुरु के शब्द (उपदेश) द्वारा ही ब्रह्म की पहचान होती है। गुरु की शक्ति ने ही हीरे (आत्मा) से हीरा (परमात्मा) बेधने का रहस्य समझा दिया। चैतन्य स्वरूप आत्म- तत्व[1] का रहस्य कोई नहीं जानता, ऐसे अभेद्य रहस्य को जानने का एक मात्र साधना है गुरु की कृपा और प्रताप। अत: गुरु महिमा अकथनीय है।

संत कवि का विश्वास है कि ब्रह्म की अनुकूलता और कृपा से ही सम्पूर्णता प्राप्त होती है, और उसी की कृपा से लक्ष्य प्राप्ति संभव है। ऐसी अवस्था में ऐसे गुरु की प्राप्ति जो परमतत्व से परिचय करा दें, मेघाच्छन्न सूर्य के समान आत्मतत्व चैतन्य को प्रकट कर दे, उसी की इच्छा से संभव है। ऐसा (भेदी) जब मिल जाता है तभी सद्वस्तु का रहस्य प्रकट होगा।[2] यथा -

वस्तु कहीं ढूंढै केहि विधि आवै हाथ
कह कबीर तब पारस भेदी लेवे साथ।[2]

संतों की शब्दावली में गुरु ब्रह्म के समकक्ष है, क्योंकि जीव और ब्रह्म में अन्तर तो इतना ही रहता है कि जीव वह मायाच्छन्न है और ब्रह्म पूर्ण मुक्त और स्वतंत्र। गुरु ने अपना यह रूप पहचान लिया होता है, अत: गुरु और ब्रह्म की अभिन्नता स्वत: स्थापित हो जाती है। कबीर के अनुसार -

" गुरु गोविंद तो एक है।[3]

---

1. यह मसीत, यह देहरा, सति गुरु दिया दिखाइ।
भीतर सेवा बंदगी, बाहरि काहे जाइ।। दादू-संतवाणी भाग-१ पृ०- ७७।१०
2. कबीर वचनावली, हरिऔध, पृ०-१२०
3. कबीर ग्रंथावली, पृ०-३।२६

गुरु ब्रह्मा से बड़ा है । इस कथन को तत्ववाद के रूप में नहीं बल्कि व्यावहारिक रूप में स्वीकार करना चाहिए। इसका कारण है शिष्य और परब्रह्म का भेद व्यावहारिक ही है, पारमार्थिक नहीं । वह तो सर्वत्र एक ही है। उससे कोई बात नहीं भिन्न भी नहीं , अतः परम तत्व ही जगत् का एक मात्र गुरु है ।

गुरु की कृपा से बुद्धियोग, जपयोग, राजयोग, हठयोग आदि में सफलता प्राप्त होती है। नामदेव ने भी कहा है -

" सुकिरत मनसा गुर उपदेसे, जागत ही मन मान्या।[१]

गुरुनानक देव कहते हैं कि गुरु की वाणी ही आदि शब्द है, नाद है और वही वेद है । गुरु के मुख में ईश्वर का वास होता है। गुरु ही शिव है, गुरु ही विष्णु । जो गौ और पृथ्वी का रक्षक है, गुरु ही ब्रह्मा है। पार्वती और माता लक्ष्मी भी गुरु ही है। यदि मैं उसे जान लूं तो उसका वर्णन नहीं कर सकता, क्योंकि गुरु तो कथनी से परे हैं । गुरु ने मुझे इस बात का ज्ञान करा दिया है कि जीव को देने वाला एक मात्र ईश्वर ही है ।[२] गुरु अंगदजी कहते हैं कि चाहे सौ चन्द्र ही क्यों न उदित हो जाएं और सहस्त्रों सूर्यों का उदयम्य उदय हो, फिर भी इतने प्रकाश के अतिरिक्त भी गुरु के बिना अंधेरा ही रहेगा ।[३]

भक्त चाहे कितना भी सत्संग करे, अथवा साधना करे , उसे फिर भी ऐसे साधक की आवश्यकता है जो अनवरत रूप से ईश्वर का मार्ग बताता उसमें बार-बार प्राण फूंकता रहे । बिना गुरु के साधकका पथ ऐसे विशाल मैदान के समान हैं जहां पर मनुष्य कहीं भी जा सकता है, लेकिन जाता नहीं क्योंकि दिशा भ्रम हो जाता है । गुरु ही दिशा ज्ञान करा सकता है। यदि एक वस्तु किसी स्थान पर पड़ी हो और उसे अन्यत्र खोजा जाए तो उसका पता नहीं लग सकता। उसका पता तभी लगाया जा सकता है जब उसके साथ ऐसा मनुष्य हो जो उसके रहस्य से ठीक ठीक परिचित हो !

---

१. संत सुधा सार- वियोगी हरि- पृ०-४५
२. [illegible] ग्रंथ-माला-३।पृ०-२

जैसा कि कबीर साहब कहते हैं -

" वस्तु कहां ढूंढे कहां, केहि विधि आवै हाथ।
कह कबीर तब पाइए, भेदी लीजै साथ। [१]

इसी कारण ईश्वर प्राप्ति के लिये गुरु की आवश्यकता है गुरु ही ऐसा माध्यम है जोकि भक्त को ईश्वर का साक्षात्कार कराता है। निर्गुण पंथ और संत-साहित्य में सिख गुरुओं ने गुरु वाणी का मर्म समझ कर ही अनुयायियों के समक्ष रखा ।

गुरु की महिमा इस संतों ने गाई है - किंतु गुरु में भी कुछ विशेष प्रकार के गुण अपेक्षित हैं । शिष्य को अत्यन्त सावधान रहना पड़ता है कि कहीं कोई वंचक माया जाल का विस्तार तो नहीं कर रहा है। जिज्ञासु साधक को उपयुक्त गुरु की पहचान अवश्य रखनी चाहिए ।

कबीर के मतानुसार सद्गुरु वह है जिसका सत्संग महा-सुखदाई है और जो भटके हुए मन को विरामपूर्ण संतोष देता है । [२] सद्गुरु प्रत्यक्ष दर्शक होता है जिसके द्वारा परब्रह्म में अनुरक्ति जग जाती है और सब कुछ स्वाभाविक रूप में दिख पड़ने लगता है । [३] गुरु में अद्भुत ज्ञान होना चाहिये जिससे शिष्य के अन्तर का अंधकार दूर हो सके । गुरु को अपने पर दृढ़ विश्वास होना चाहिए ताकि वह सच्ची आध्यात्मिक प्रगति का उपदेश कर सके । सद्गुरु वह है जिसके मिलने से ज्ञान होता है और गगन से अमृत की धारा चूने लगती है-

" उपजै गिआनु दुरमति छीजै , अंम्रित रस गगनंतरि भीजै।। [४]

सतिगुरु परमपावन है, उसकी कृपा से त्रयताप नष्ट हो जाते हैं । परमात्मा से विच्छिन्न आत्मा अपना लक्ष्य पा लेता है । [५]

- -

१. कबीर वचनावली, पृ०-१२०
२. कबीर वचनावली-१२६
३. आदि ग्रंथ, राग आसा महला-१, पृ०-६४
४. वही बेणी - रामकली
५. ज्ञान विलास- सुन्दरदास, गुरु के अंग

कबीरदास कहते हैं - हरि तो हीरा है, हरिजन जौहरी है और संसार को हाट है। सद्गुरु रूपी पारखी मिलने पर ही नाम का व्यापार चलता है। जैसे -

हरि हीरा जन जौहरी सबन पसारी हाट।
जब ही पाइए पारखु तब हीरन की साट।[1]

सहजोबाई ने गुरुओं के चार प्रकार बताए हैं -

१- पारस गुरु २- दीपक गुरु ३- चंदन गुरु
४- भृंगु गुरु जैसे -

"गुरु है चार प्रकार के, अपने अपने अंग।
गुरु पारस दीपक गुरु। मलयागिरि गुरु भृंग।[2]

सुनकर मनुष्य परब्रह्म को देख सकता है, साथ ही मन की चिंता मिट जाती है-

" पूरे गुरु का सुनि उपदेश, पारब्रह्म निकट करि पेखु।[3]

रज्जबजी भी कहते हैं कि गुरु के बिना मनुष्य निगुरा कहलाता है और उसमें ऊँच-नीच का भाव बना रहता है। उसमें समता का भाव नहीं आता। पवन भी एक है और पानी भी एक ही है परन्तु उसके अन्तर को बुद्धि नहीं पहचान सकती है। शरीर और आत्मा एक ही होती है, किंतु बिना समझ के दोनों में बहुत अंतर होता है। गुरु के ज्ञान दान से ही सब ठीक ठीक देखा जा सकता है।[4]

संत सम्प्रदाय में गुरु को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। सहजोबाई ने तो गुरु को ईश्वर से भी बढ़कर माना है। वे कहती हैं कि - राम को भले ही मैं बिसार दूं, किंतु गुरु को कभी नहीं भूलूंगी। मैं तो गुरु के बराबर हरि को भी नहीं समझती। गुरु हरि से ऊँचा है। हरि ने जग में जन्म दिया। गुरु ने ही आवागमन के मार्ग से छुड़ाया। हरि ने तो पांच चोर साथ लगा दिए। उनसे पीछा तो गुरु ने ही छुड़ाया।

---

१. कबीर वचनावली-पृ०-२६२ २- सहजप्रकाश,पृ०-२१८
३. आदि ग्रंथ महला-५ पृ०- (सुखमनी) ४- सर्वगुंगा सार -पृ०-५८७

ईश्वर ने कुटुम्ब रूपी जाल चारों ओर लगाकर फंसा दिया । उस ममता की बेड़ी को गुरु ने ही काटा । ईश्वर ने तो रोग भोग इत्यादि लगा दिए, किंतु गुरु ने योग-मार्ग द्वारा उन सबको छुड़ा दिया । हरि ने तो संसार में कर्मों का लेखा-जोखा लगा दिया, आत्म स्वरूप के दर्शन तो गुरु ने ही कराए हैं । मैं तो अभी तन वारती हूं । हरि को छोड़ सकती हूं किंतु गुरु को नहीं ।[१]

स्पष्ट देखा जा सकता है कि संत-साहित्य और पंजाबी संत-साहित्य में ' गुरु ' को कितना महत्व दिया गया है । क्या हिन्दी, क्या पंजाबी दोनों ही वर्ग के संतों ने बढ़-चढ़ कर गुरु की महिमा गाई है ।

सिख गुरुओं में दस गुरुओं की आदर्श, योग्यतम परम्परा चली। हिन्दी संतों में कोई भी ऐसा संत नहीं जिसकी गुरु-गद्दी सुचारु रूप से चार या पांच पीढ़ी भी चली हो । पंजाबी संत-साहित्य में दस गुरुओं के पश्चात् भी ' आदि- ग्रंथ में संग्रहित वाणी को गुरुवत् ही माना जाता है। वह प्रतीक-रूप होकर भी गुरु तुल्य ही है । इसीलिए कहा गया है -

" गुरु ग्रंथ जी मान्यों प्रकट गुरां की देह । "

७- नाम-स्मरण संबंधी विचार -

संत-साहित्य में ' नाम ' का प्रयोग साधारण अर्थों में नहीं होता । ईश्वर के विभिन्न गुणों के कारण उसके विभिन्न नाम रखे गए हैं । नाम-स्मरण ईश्वर स्मरण ही है । सभी धर्मों में इस नाम स्मरण को एक विशेष स्थान प्राप्त है । सूफियों की साधना ' जिक्र ' कहलाती है।

---

१. संत सुधा सार - पृ०-१८१

' नाम-स्मरण ' का महत्व मध्ययुग के साहित्य में सर्वत्र दीख पड़ता है। सगुण-निर्गुण धाराएं समान रूप से इसका प्रतिपादन करती है । किंतु निर्गुण धारा में नाम स्मरण पर विशेष बल दिया गया है। इसमें भी हिन्दी संतों की अपेक्षा नाम गुणगान सिख संत गुरुओं में अधिक पाया जाता है । गुरु नानकजी ने ईश्वर को ' सतनाम ' भी कहा है। संत गुरु के अनुयायी किसी कार्य को प्रारंभ करते समय सतनाम का उसी रूप में उच्चारण करते हैं, जिस रूप में हिन्दू संत श्रीगणेशायनमः का प्रयोग करते हैं । गुरुनानकजी के अनुसार ' स्वामी सत्य है, उसका नाम सत्य है ।[1] रविदास ने कहा है कि ' सत्ययुग में सत्य, त्रेता में यज्ञ, और द्वापर पूजाचार साधन थे, किंतु कलियुग में केवल नाम ही आधार है ।[2]

' नाम स्मरण का अर्थ है चिन्तन मनन।
चिंतन के द्वारा समस्त अंधकारमयी मानसिक वृत्तियों का विनाश होता है। चिंतन, ध्यान, उपासना, नामस्मरण सबका प्रधान लक्ष्य है - उस अन्तर्गत, सर्वव्यापक तत्व के प्रति चैतन्य का जागरण, जो उसकी अनुभूति की उपलब्धि का परम साधन है। नाम-रूपी रत्न बड़ा अनमोल है, विशेष पुण्य प्रताप से यह प्राप्त होता है। बार-बार स्मरण करने से श्रवणों को सुख मिलता है , और चित चेत जाता है। , इस प्रकार सर्वत्र एक ही तत्व देखकर आंखें तृप्त हो जाती है । फिर और देखने की अपेक्षा कहां रह जाती है । किंतु यह नाम-स्मरण सरल नहीं है , विरले संत ही जप करना जानते हैं । सच्चे जाप से आत्मा का प्रकाश होता है और वह परम तत्व स्वयं प्रकाशित हो उठता है। नाम स्मरण से सारे भ्रम, भय, क्लेश समाप्त हो जाते हैं ।

= =

१. आदि ग्रंथ-महला-१, पृ०-२
२. वही राग गउड़ी, बैरागण-२

'नाम' के विषय में कोई अन्तिम शब्द नहीं कहा जा सकता। नाम को कल्पनाओं से भी रहित माना गया है। कई नाम के लिए 'ओंकार' का भी व्यवहार करते हैं। संतों में ईश्वर के लिए वैष्णव नाम 'हरि', गोविंद, राम, नारायण, आदि का भी प्रयोग किया गया है।

कबीर ने राम को निर्गुण ब्रह्म का ही पर्याय माना है। कबीर ने कहा है कि - 'नाम का नशा उतरता नहीं। अन्य नशे तो क्षण-क्षण में उतरते जाते हैं किंतु नाम रूपी नशा दिन-प्रति-दिन बढ़ता ही जाता है। देखने मात्र से यह चढ़ता है और सुनते ही हृदय में चोट करता है। सीधा यह सुरति में हो ले जाता है। इसका प्याला जो भी पीता है मतवाला हो जाता है। गणिका, सदना कसाई नाम रस को चखकर ही मुक्ति पा गए थे। नाम तो गूँगे के गुड़ खाने के समान है जिसे खाने वाला ही समझ सकता है किंतु उसका वर्णन नहीं कर सकता।[१]

पंजाबी संत-साहित्य में सिख गुरुओं ने प्रार्थना को बहुत महत्व दिया है जिसे 'अरदास' कहा जाता है। प्रार्थना का आधार नाम स्मरण ही है। गुरु ग्रंथ साहब ईश्वर की नाम महिमा से परिपूर्ण है। नाम स्मरण से तात्पर्य किसी बाहरी साधना से नहीं है और न ही किसी पवित्र शब्द को मंत्रवत् दुहराना ही है। अपितु नाम-स्मरण से तात्पर्य है - मन का सत्य रूप होना। सुमिरन से धीरे-धीरे बाहरी तत्व परे हो जाते हैं और प्रार्थनात्मक मनोवृत्ति की चरम सीमा पर ओठों का जाप समाप्त हो जाता है और अजपा जाप प्रारंभ हो जाता है। इस स्थिति में आत्मा भीतर ही भीतर ईश्वरीय भावना के समक्ष समर्पित हो जाती है। फिर शब्दोच्चारण की आवश्यकता नहीं रह जाती। प्रत्येक छिद्र ईश्वर का गुणगान करने लग जाता है। जब यह दशा स्थिर हो जाती है तो अनाहद शब्द सुनाई देने लगता है।

---

१. संतसुधासार - कबीर - पृ०-१०६

साधक का ध्यान अनाहद की ओर रहता है , इस अवस्था को ' लौ
' लिव कहा जाता है यहीं प्रभु मिलन की अवस्था है।

' नाम स्मरण तीन प्रकार का माना जाता है -

१- जाप २- अजपा जाप ३- अनाहद।

जाप रसना के आधार से किया जाता है। अजपा की अवस्था में साधक बाह्य अवस्था का त्याग कर आन्तरिक अवस्था में पहुंच जाता है। अनाहद के द्वारा साधक अपनी आत्मा के गूढ़तम प्रदेशों में प्रवेश करता है। सभी स्थितियों से परे वह अनाहद में कारणातीत हो जाता है। उसके बाद की अवस्था जाप, अजपा, अनाहद आदि से भी ऊपर है। यहां सुरति शब्द में ही लीन हो जाती है।[3]

इसी नाम-स्मरण की महिमा पंजाब ही नहीं हिन्दी के भी सभी संतों ने गाई है। नाम तो निर्गुण और सगुण के ऊपर है। नाम मूल है, उसी से निर्गुण रूपी बीज और सगुण रूपी फल और फूल पल्लवित होते हैं। कबीरजी के अनुसार -

' सत नाम सबते न्यारा, निर्गुण सगुन सब्द संसारा।
निर्गुण बीज फल फुल साखा ग्यान नाम है मूल।[2]

सच्चे नाम की कीमत आंकी नहीं जा सकती। कथनी में उस नाम की कीमत को आंकने का प्रयास करना मूर्खता है। संतों का विचार है कि एक नाम का ही स्मरण करो। नाम, जाप, अजपा और अनाहद तक ही नहीं रहता, वह तो इनसे भी आगे जाता है। कबीर कहते हैं कि जाप करने वाले की मृत्यु होगी। अजपा और अनाहद तक की स्थिति तक भी जो पहुंचेगा उसकी मृत्यु होगी, किंतु जिसने सुरति को शब्द में मिला लिया है, वही काल के बंधनों से मुक्त हो सका है।

इस नाम स्मरण का उद्देश्य ईश्वर से कुछ मांगना नहीं होता। प्रार्थना केवल शारीरिक सुख या संपत्ति प्राप्त करने के लिये नहीं की जाती। यह तो एक प्रकार की साधना है, तपस्या है। उसका ध्येय ईश्वर से भीख मांगना नहीं है।

- - - - - - - - - - - - - -

२. सन्त-साहित्य डा० ... मणी ठिया-पृ०-२८५-२८६

३. संत ... पृ० ...

क्योंकि साधक तो भौतिक सुखों से कहीं ऊपर उठ जाता है। यह नाम-स्मरण साधना सभी संतों में एक सी मिलती है।

संतों के हृदय में असीम साहस और अदम्य उत्साह था। जिस वस्तु में उन्हें अन्याय के दर्शन हुए उसका ही उन्होंने विरोध किया। उन्होंने इस पर ध्यान नहीं दिया कि संसार उनके विषय में क्या कहता है। यहां तक कि मुल्ला, काजी और पंडितों तक की बुराइयों के विरुद्ध उन्होंने आवाज उठाई। भारतीय इतिहास के इस युग में दसवीं सदी के पश्चात्, हिन्दी और पंजाबी साहित्य में क्रान्तिकारियों के दर्शन प्रथम बार होते हैं। लोग संतों पर हंसते थे किंतु संतों को इसकी चिंता नहीं थी। जनता के साथ हो रहे अन्याय को वे अनदेखा नहीं कर सकते थे। छुआछूत, जाति-पांति, ऊंच-नीच, कुरान पुराण, मूर्तिपूजा आदि का इन्होंने विरोध किया एवं इनकी निस्सारता से भोली, पथभ्रष्ट हो रही जनता को अवगत कराया।

तत्कालीन युग अन्तयन्त संक्रमण काल था। हिन्दू और मुसलमानों के बीच में पड़ना बड़ा कठिन था। किंतु कबीर और गुरु नानक जैसे संतों ने स्पष्ट शब्दों में उनकी कुरीतियों का खंडन किया। इन्होंने एक ओर से आक्रमण नहीं किया अपितु चारों ओर से आक्रमण किया। इस कार्य के लिए इन संतों को समाज की कितनी चोटें सहनी पड़ी होंगी, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। उन्हें न तो किसी का भय था न आतंक। उनमें धार्मिक दृढ़ता एवं नैतिकता थी। सत्य के जिस मार्ग पर वे बढ़ रहे थे, उसका उन्हें पूरा पूरा विश्वास था। राह भटक कर चलने वालों को इन्होंने विश्वस्त मार्ग प्रशस्त किया। इन सबमें कबीर का स्वर सबसे तीव्र था। उनसे बढ़कर किसी ने तीखी चोट किसी ने नहीं की है। कबीर का साधक अन्यायी से समन्वय या सन्धि के पक्ष में कभी नहीं रहा। गुरुनानक, दादू, रैदास आदि ने बाह्याचारों की निंदा की है किंतु कबीर की सी कट्टरता एवं तेजी इनमें नहीं मिलती है। इन संतों ने जिन बाह्याचारों का खंडन किया है वे हैं -

८- अवतारवाद का विरोध -

निर्गुण संतोंने हिंदु पुराणों में वर्णित अवतारों को स्वीकार नहीं किया है। पैगम्बर हो या अवतार, कोई भी संतों को ग्राह्य नहीं है। उनका राम दशरथ-सुत नहीं था। कबीर कहते हैं -

" कि राम ने न तो दशरथ के घर अवतार हो लिया था न उसने किसी लंका के राजा का नाश किया, न देवकी की कोख से पैदा हुए थे और यशोदा ने उन्हें गोद में खिलाया, न तो वे ग्वालों के संग घूमा करते थे और न उन्होंने गोवर्धन पर्वत को धारण ही किया था, न तो उन्होंने वामन होकर बलि को छला था और न वेदोद्धार के लिये वराहरूप धारण करके धरती को अपने दांतों पर ही उठाया था, न वे गण्डक के शालिग्राम है न वराह, न मत्स्य, कच्छप आदि वेषधारी विष्णु के अवतार, न तो वे नरनारायण के रूप में बदरिका आश्रम में ध्यान लगाने बैठे थे और न परशुराम होकर क्षत्रियों का ध्वंस करने गये थे, औरन तो उन्होंने द्वारिका में शरीर छोड़ा था और न वे जगन्नाथ धाम में बुद्ध रूप में अवतरित हुए।[१]

" राम का अभिप्राय संतों ने वैष्णवों के अवतारों से भिन्न लिया है। उनका मत है कि ईश्वर को किसी मनुष्य का रूप धारण कर पृथ्वी पर अवतरित होने की आवश्यकता नहीं है। राम " ब्रह्म " का पर्याय है।

हिन्दी और पंजाबी भाषा के संत दोनों ही अवतार विरोधी थे। उनके अनुसार जिस पूजा का संबंध दृश्य जगत से है, वह व्यर्थ है। उनकी दृष्टि में मनुष्य को ईश्वर नहीं माना जा सकता। ईश्वर की मनुष्य रूप में कल्पना करना तर्क और ज्ञान का विरोध करना है।

---

१. कबीर ग्रंथावली- पृ०-२४२-३

अतः स्पष्ट शब्दों में उन्होंने अवतारवाद का विरोध किया है। अवतार विरोध के कारण देते हुए डा० बड़थ्वाल ने कहा है - " उसके द्वारा नर पूजा का विधान हो जाने के कारण धर्म में पाखंड को घुसने का मार्ग मिल जाता है।[1]

अवतारों की कल्पना लोगों में स्थूल रूप में ही समझी जाती रही है। यह माना गया है कि ईश्वर - स्थूल रूप या शरीर धारण कर इन अवतारों में सम्मिलित हुआ है। संतों को यह अस्वाभाविक प्रतीत हुआ और उन्होंने कहा कि भला ईश्वर को नरदेह धारण करने की क्या आवश्यकता ? वस्तुतः संतों का उद्देश्य अवतारों या पैगम्बरों की निंदा करना नहीं था, उनका उद्देश्य था सत्य का प्रचार करना। असत्य का निवारण करने के लिए ही अवतारों के विरुद्ध उन्हें आवाज उठानी पड़ी थी।

ईश्वर तो मृत्यु से परे है। वह अकाल है। किंतु त्रिदेवों को तो काल लगा हुआ है। गुरु गोविंदसिंह जी कहते हैं कि - ब्रह्मा विष्णु, महेश, सूर्य, चन्द्रमा आदि में तो मृत्यु वास करता है। ये नश्वर हैं। ईश्वर तो अनित्य है। वेदों, पुराणों एवं कुरान ने उसका अंत नहीं पाया। इन्द्र एवं महान ऋषि-मुनियों ने तपस्या करके अपना जीवन लगा दिया। फिर भी उसे ईश्वर को नहीं जान पाए। जिसका रूप रंग हो नहीं जानते उसको कैसे स्याम कहते हैं। मुक्ति तो हरि के चरणों में ही लौटने से मिलती है।[2] सिख गुरुओं में गोविंदसिंहजो ने ही अवतारों के प्रति सर्वाधिक आस्था और अनास्था का भाव व्यक्त किया है।

अवतार विरोध का एक कारण यह भी था कि संतों ने निराकार ब्रह्म की कल्पना की थी और इस बात को स्वीकार किया था कि ब्रह्म निर्गुण, निराकार और अनंत है। अवतारों में तो ब्रह्म सगुण रूप का ही वर्णन मिलता है। इसलिये निराकार उपासना में साकारोपासना का प्रश्न ही नहीं उठता।

---

१. हिन्दी में निर्गुण सम्प्रदाय-पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल-पृ०-१७०
२. गुरु गोविंदसिंह अकाल स्तुति- चौपाई ५-६

ईश्वर को जब उन्होंने निर्गुण कहा तो उसके सगुण रूप को भला वे कैसे स्वीकार करते ? इसमें संदेह नहीं है कि संतों ने अवतारों का विरोध तो किया है किंतु अवतारों के रूप में भक्तों पर भगवान ने जो दया की है उसे वे भुला नहीं सके । भगवान की इन बातों का और लीलाओं का अनेक स्थानों पर वर्णन मिलता है। विष्णु ने अवतार लेकर भक्तों के लिये जो कार्य किये उनकी महिमा गाते-गाते ये संत अघाते नहीं हैं । कबीर ने कहा है कि कृष्ण का दुर्योधन का राजसी भोजन छोड़कर विदुर के साथ सूखा भोजन करना प्रिय लगा ।

" राजन कौन तुम्हारे आवै।
ऐसाभव विदुर को देख्यो, बहु गरीब मोहि भावै।
हस्ती देख भरम ते भुल्यो, हरि भगवान न जाना।[1]

अवतारों की महिमा सर्वाधिक सुन्दर-साहित्य में उपलब्ध होता है। सुन्दरदास ने भगवान कृष्ण की लीलाओं का भी वर्णन किया है। नामदेव ने कृष्ण की लीलाओं के पदों का गान किया है । वे कहते हैं -

" मेरा बाप तु मन कैसो सांवलियो ।
कर धरै चक्र बैकुण्ठ ते आयो, तु रे गज का प्रान उबारयो।
दुहशासन की सभा द्रौपदी अम्बर लेत उबारयो।
गौतम नारि अहिल तारो पापिन केतिक तारयो।।[2]

किंतु अवतारों को संतों ने किसी रूप में स्वीकार नहीं किया । वे इस सिद्धांत को मानते ही नहीं कि ईश्वर भी नर देह धारण कर सकता है। गुरु गोविंदसिंहजी कहते हैं कि - " जिसे निंदा-स्तुति की चिंता नहीं है, जिसके शत्रु मित्र नहीं है, उसे भला क्या आवश्यकता है कि नरदेह धारण कर वह सारथी का कार्य करे । जिसके न माता-पिता ही है, और न ही पुत्र है उसे देवकी के नंद होने की भला क्या आवश्यकता थी?[3]

---

1. कबीर ग्रंथावली-पृ०-२१८
2. संत सुधा सार -भाग-१,पृ०-५०
3. सुन्दर गुटका-पातशाही १०-पृ०-६४

अवतारों को तो मृत्यु ने ग्रस लिया था और ईश्वर तो नित्य है। संतोंने अवतारों का विरोध तो किया किंतु कई सम्प्रदायों में इन्हीं संतों को अवतार माना जाने लगा। कबीर पंथियों ने ' कबीर ही को अवतार मान लिया, जबकि स्वयं कबीर ने अवतारवाद का खंडन किया है। संतों ने तो स्पष्ट शब्दों मे कहा है कि अवतार तो मनुष्य ही है। गुरु गोविंदसिंहजी ने कहा -

' जो मोको परमेश्वर उच्चरि है, ते नरक कुंड मेंहि परिहैं।
मैं ही परम पुरुष को दासा। देखन आयो जगत तमासा ।[१]

विशेष रूप से पंजाबी संतों में सिख गुरुओं ने इस बात पर अधिक बल दिया कि उन्हें साधारण मनुष्य ही समझ कर स्वीकार किया जाए। इन सिख गुरुओं ने न तो अपने को ईश्वर का दूत ही घोषित किया और न ईश्वर का एकलौता पुत्र। ईश्वर को वैष्णव संतों ने निराकार ब्रह्म के रूप में ही ग्रहण किया।

६- मूर्ति पूजा संबंधी विचार -

संतों ने जिस प्रकार अवतारवाद का विरोध किया, उसी प्रकार ' मूर्ति-पूजा ' का भी एक स्वर से विरोध किया। संतों ने निराकार ब्रह्म की उपासना की है। इस कारण प्रतिमा को साकारता इस विचार में बाधा उपस्थित करती है। कबीर जी कहते हैं-

' जो पाथर कउ कहते देव।
ताकी बिरथा होवै सेव।
जो पाथर की पांई पाई
तिस की घाल अंजाई जाई
ठाकुरु हमरा सद बोलता। सरब जीआ कउ प्रभु दानु देता।[२]

१. विचित्र नाटक-गुरु गोविंदसिंह-पृ०-४० २-संतसुधासार-पृ०-२१८

संतों ने प्रतिमा-पूजन का विरोध तो किया है किंतु मूर्ति भंजन का उपदेश कहीं भी नहीं दिया है। संतों ने जब यह कहा कि - ईश्वर घट-घट में है तो उन्होंने यह भी कहा कि देवता मन्दिर और मस्जिद में भी नहीं है, वह तो हमारे हृदय में भी है। वह किसी देवता विशेष में नहीं है। वह तो घट-घट में व्याप्त है। लोग एक पत्थर पर तो पांव रखते हैं और दूसरे की पूजा करते हैं। पत्थर यदि पवित्र है तो उसे भला कुचलते क्यों है।[1]

गुरुनानक देवजी ने कहा है - " हिन्दू बिल्कुल भूले हुए कुमार्ग पर जा रहे हैं। उन अंधों और गूंगों के लिये घनघोर अंधकार है। वे मूर्ख और गंवार पत्थर लेकर पूज रहे हैं। हे भाई जिन पत्थरों को तुम पूजा करते हो, यदि वे स्वयं ही पानी में डूब जाते हैं, तो उन्हें पूजकर संसार-सागर से किस प्रकार तर सकते हो ?[2]

इस प्रकार प्रतिमा पूजन के विरोध में पंजाबी और हिन्दी भाषी संतों में मतैक्य है।

१०- जाति प्रथा को चुनौती विषयक विचार -

भारतीय इतिहास के इस मध्यकाल में निम्न जातियां अत्याचारों से पिसी जा रही थीं। समाज में उच्च वर्णों ने इनके लिये समस्त मार्ग बंद कर रखे थे। फिर भी नामदेव, रैदास, सेन आदि नीची जाति के संतों ने आध्यात्मिक जगत् में ऊँचे उठकर अपने आपको श्रद्धा का भाजन बना लिया। शूद्रों की तपस्या ने परिस्थितियों में परिवर्तन प्रारंभ किया। जब सब ईश्वर की ही संतान है तो फिर भेद-भाव कैसा? संतों ने जब समाज में समानता का अव्यवहारिक रूप देखा तो उन्हें पीड़ा हुई। पंडित और मुल्लाओं से उन्हें कोई विरोध नहीं था, अपितु इस घोर असामाजिकता के लिए उनके हृदय में गहरी वेदना थी।

---

१. संत सुधा सार - पृ०-५४
२. नानक-वाणी पृ० राग बिहागड़ की वार, सलोक-२ पृ०-३६६

सामाजिकता के ये स्वर जब बुद्ध के समय में बुलन्द हुए थे तो उस समय में ब्राह्मणों ने उसका विरोध किया था, क्योंकि उससे उनकी श्रेष्ठता को आंच आती थी और उनकी कमाई में बाधा उत्पन्न होती थी । बुद्ध के समय में ही जाति भेद इतना बढ़ गया था कि शूद्रों का समाज में जीना दूभर हो गया था । इस्लाम के आगमन से धार्मिक असमानता कई समस्याएं उत्पन्न कर रही थी । फलतः वैष्णव आचार्यों ने इन निम्न वर्णों जातियों की भक्ति भावना देखकर, भक्ति का द्वार सबके लिए खोल दिया, भक्ति के क्षेत्र में उनकी भावना थी -

"जांति-पांति पुछे नहीं कोई, हरि को भजे सो
हरि का होई ।

रामानंदजी ने हिन्दू मुसलमान दोनों को अपना शिष्य बनाया। इसके साथ निम्नवर्णों, धन्ना जाट, सेन नाई, रैदास चमार भी थे ।

ब्राह्मणों के अत्याचारों से पीड़ित संतों ने ब्राह्मणों को ही उन्मुख करके सम्बोधित किया है । कबीरजी कहते हैं-

कहु रे पंडित बामन कब के होए।
बामन कहि कहि जनम माते खोए
जौ तु ब्राह्मण ब्राह्मणी जाइआ
आन बाट काहे नही आइआ
तुम कत ब्राह्मण हम कत सूद
हम कत लौहू तुम कत दूध।
कहु कबीर जो ब्रह्म बीचारे।
सो ब्राह्मणु कहीअतु है हमारे ।[1]

---

१. संत कबीर-डा० रामकुमार वर्मा-परिशिष्ट पृ०-६

उपर्युक्त तुलना-विवेचना में सामान्य रूप से पंजाबी और हिन्दी के संतों की साधना पद्धति , विचारों और वाणियों की तुलना की गई है। अब हिन्दी के प्रतिनिधि कवि संत ` कबीर ` और पंजाबी के संत कवि ` गुरुनानक देव की वाणी का तुलनात्मक अध्ययन कर दोनों प्रकार के संतों की निकटता एवं विभिन्नता देखेंगे ।

कबीर साहब और गुरुनानक देवजी समकालीन थे। ऐतिहासिक ग्रंथों के अनुसार दोनों के पचास वर्षों का समय समान है। भले ही कबीरदास उत्तरप्रदेश एवं गुरुनानक देवजी पंजाब में हुए, किंतु दोनों भक्ति परम्परा के मुख्य प्रचारक, समाज सुधारक, आदर्श गृहस्थ एवं मानवता के उद्धारक थे । दोनों को प्राय: एक सी सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों का सामना करना पड़ा था। उनके समक्ष जाति और देश की एक सी समस्याएं थी । अत: दोनों की वाणी को पढ़ने से यही ज्ञात होता है कि इन दोनों की विचारधारा बहुत साम्य है।

महात्मा कबीर और संत गुरुनानकजी एक ईश्वर को सर्वव्यापक निर्गुण और निराकार मानते थे। आत्मा-परमात्मा की एकता में विश्वास करते थे । मूर्ति-पूजा, देवपूजा, और अवतारवाद के विरोधी थे । जाति-पांति, छुआछूत, मिथ्या कर्मकांड, तीर्थस्नान, वर्णाश्रम आदि को अस्वीकार नहीं करते थे। वे जन्म से जाति न मानकर कर्म से मनुष्य की जाति निर्धारित करते थे । हिंदू और मुसलमानों में धार्मिक वैमनस्य को दूर कर एकता स्थापित करने वाले थे ।

एकेश्वरवाद- एकेश्वरवाद के विषय में गुरुनानक जी एवं कबीरजी के विचार परस्पर मिलते हैं । दोनों की वाणी में ` ईश्वर` के लिये ओंमकार ` सतिनाम, आदि शब्द प्रयुक्त किए हैं ।

ओमकार आदि में जाना ।

लिखि अरु मेटै ताहि ना माना ।[1]

कबीर सुत न रहै जुगि

करहि जु बहुत मीत।।

जो चितु राखहि ऐक सिउ

ते सुखु पावहि नीत।[2]

इसी प्रकार गुरुनानकजी का कथन है -

साहब मेरा एको है, एको है भाई एको है ।[3]

ईश्वर की सर्वव्यापकता के संबंध में कबीर यों कहते हैं -

लोगा भरमि न भूलहु भाई

खालिक खलक खलक महि खालिकु[4]

पूरि रहिउ सरब ठाई ।।

गुरुनानकजी के अनुसार -

सभि महि जोत जोति है सोई।

तिसदै चानणि सभ महि चानणु होई।।[5]

मूर्ति-पूजा - कबीरजी मूर्ति पूजा के समर्थक नहीं है । उनके

अनुसार - ` पाखान गढ़ि के मूरति कोनी

दैके छाती पाउ ।

जे इह मूरति साची है, तउ गढ़नहारे खाउ।।[6]

गुरुनानक मूर्ति पूजा का विरोध इन शब्दों में करते हैं-

पाथर ले पूजहि मुगध गवार।

ओहि जा आपि डुबे तुम कहा तारणहार।।[7]

अवतारवाद- इस संबंध में कबीरजी के विचार हैं-

नाम निरंजनु जाको रे।

कबीर को स्वामी ऐसा ठाकुर-जाकै माइ न बापो रे।।[8]

---

१. आदि ग्रंथ कबीर -राग गउड़ी- १,६,५ २ आंग्रं सटीक भगत कबीरके पृ०१३६५

३- आ०ग्रं० महला-१ पृ०-३५०

४-वही विभास प्रभाती कबीर-३

५. आ०ग्रं० महला-१,धनासरी-६६३

६. वही कबीर आसाम-५ १

७. श्री आदिग्रंथ महला-१ वार बिहागड़ा-१-२०

८. वही कबीर गउड़ी-२,१८,७०

गुरुनानकजी के अनुसार -

पवणु उपाई धरी सब धरती, जल अगनी का बंधु कीआ ।।
अंधुलै दहसिर मुंडु कट ईआी रावणु मारि किआ वडा भइआ ।।[१]

बाह्य संस्कारों का विरोध-

इस संबंध में कबीर जी मानते हैं कि पितृ पूजा और बाह्याचार व्यर्थ है । जैसे-

जीवत पितर न माने कोऊ। मुए सिराध कराही
पितर भी बपुरे कहु किउ पावहि, कऊआ कूकर खाही।[२]

गुरुनानक देवजी के विचार भी इसी प्रकार हैं-

जे मोहाका घर मुहै घर मुहि पितरी देइ।।
अगै वसतु सिञाणीऐ पितरी चोर करेइ।
वढीअहि हथ दलाल के मुसफी एह करेइ
नानक अगै सो मिलै जि खटे घाले देइ।।[३]

इस प्रकार सहज योग, आत्मा की अमरता, सृष्टि विचार, माया गुरु महात्म्य आदि विचारों में साम्य है। अंतर केवल इतना है कि कबीरजी की खंडन पद्धति अत्यन्त रूखी एवं चुभती है जबकि गुरुनानक जी प्रेम एवं कोमलता के साथ अपने कथन को प्रभावी बनाते हैं ।

श्री आदि ग्रंथ साहब में कबीरजी की एक विशेष बाणी गउड़ी राग में " बावन अखरी " है , जिसमें संस्कृत के बावन अक्षरों का वर्णन है परन्तु संस्कृत लिपि के क्रमानुसार नहीं है। इनके अक्षरों का उच्चारण गुरु नानक देवजी की आसा राग में लिखी हुई पट्टी" से मेल खाता है ।[४]

---

१. आदि ग्रंथ महला-१ बासना
२. आदि ग्रंथ -कबीर गउडी-४-८-४५ पृ०-३३२
३. आदि ग्रंथ महला-१ आसा दी वार १७ पृ०-४७२
४. भक्ति काव्य-बानी प्रतापसिंह - पृ०-२७८

अंत में यह कहा जा सकता है कि हिन्दी संतों के विचारों का परिणाम वैष्णव सम्प्रदाय है , जिसमें अहिंसा आदि जिसमें महत् गुणों का समावेश है और पंज बी संतों के विचारों का प्रतिफल ' खालसा पंथ ' है जिसमें भक्ति, शक्ति और वीरता की प्रधानता है। इन दोनों प्रकार के संतों ने मिलकर देश कल्याण का कार्य बलिदान देकर भी किया।

उ प दे श -

संत परम्परा का सूत्रपात आज से नौ सौ वर्ष पूर्व हो चुका था , किंतु इसकी निश्चित रूपरेखा उसके दो सौ वर्ष पीछे कबीर साहब के जीवनकाल में उनके क्रान्तिकारी विचारों द्वारा प्रकट हुई । कबीर साहब तथा उनके पूर्ववर्ती तथा समसामयिक संतों की प्रवृत्ति अपने मत को किसी वर्ग विशेष के साम्प्रदायिक रूप में ढालने की नहीं थी। वे अपने विचारों को व्यक्तिगत अनुभव पर आश्रित समझते थे और सर्वसाधारण को भी उसी प्रकार स्वयं निर्णय लेने का उपदेश देते थे। संतों के अनुसार ' भाव ' ही प्रधान है, भावनाहीन पठन- पाठन यहाँ तक कि श्रवण भी व्यर्थ है। भावों की अनुभूति अपेक्षित है। भावानुभव ही वह चैतन्य प्रकाश है , जिसके द्वारा सभी प्रकाशित हो जाते हैं ।

संत विचारक नैतिकता को ईश्वरीय विधान नहीं मानता और उस विधान के निमित्त किसी ग्रंथ का सहारा नहीं लेता । कबीरजी कहते हैं -

कबीर पढ़िबा दूर करि, अथि पढ़िया संसार।
पीड़ न उपजि प्रीति सूं, तो क्यू करि करै पुकार।।१

' कर्म को संतों ने विभिन्न रूपों में देखा है । उनके अनुसार कर्म के कई अर्थ हैं - आचरण, लोक व्यवहार, आचार, कर्मकांड आदि। कर्म का फल जन्म से नहीं मिलता। नीच जन्मा होने की कुंठा किसी संत में नहीं मिलती -

---

१. कबीर ग्रंथावली पृ- ३८।३७६

अपितु वह इसे एक प्रकार का वरदान मानता है, औ विश्वास करता है कि इसी नीचता के कारण प्रभु के दर्शन संभव हुए । उच्चता अहंकार की जननी है। अहंकार, दृष्टि की क्षमता को संकुचित कर देता है । गुरुनानकजी के अनुसार -

हउमै एहै जाति है हउमै करम कमाहि।हउमै एई बंधना
फिर फिर जोनी पाहि।।[1]

संत कवियों के अनुसार स्वार्थ में स्नेह की संभावना नहीं होती । प्रतीति के अभाव में स्नेह का निर्वाह संभव नहीं है । कबीरजी कहते हैं -

प्रीति बिना कैसे बंधे स्नेहु । जब लग रसु तब
तब लग नही नेहु ।।[2]

सांसारिक दुखों का कारण है - मानव की स्वार्थ बुद्धि का विस्तार एवं असिमित आकांक्षाएं । संतों ने स्वार्थ को अमान्य माना है।

संतों ने जीवन का ध्येय बताया है - भय से मुक्ति । पाप-पुण्य का भय, स्वर्ग नरक की चिंता, जीवन-मरण की आशंका व्यर्थ है । भय अविचार और अज्ञान का फल है। सच्चे संत और विचारक को पाप-पुण्य स्पर्श नहीं कर पाते । सच्चा साधक न कभी मरता है न शोक करता है और न वियोग का संताप ही उसे दग्ध करता है । यथा-

भैरै राजन में बैरागी जोगी, मरत न सोग बिओगी[3]
संत कवि भय के कारण हिंसा का त्याग नहीं

अपितु समस्त जीवों के प्रति उसकी व्यापक सम्वेदना है । संत कवि का विश्वास है कि मानवीय धर्म का मूल है - ' जीवन का प्रसार ' विस्तार और उन्नति एवं जीवन का ह्रास और नाश अधर्म है। अत: जीवन के प्रति उसका उदार दृष्टिकोण है, जीव और जीवन के प्रति सम्मान का भाव है।

---

1. आदि ग्रंथ वार आसा महला १ पृ०-४७१
2. संत कबीर, गउड़ी, २३
3. संत कबीर - पृ०-२६

इस सम्मान भाव के कारण वह काया-कष्ट को गर्हित समझता है। आत्म संतुष्टि और आत्म-सम्मान के लिए निज उपार्जित द्रव्य से संतों ने जीविका निर्वाह आवश्यक समझा था । अपने व्यवसाय में लगकर भी उन्होंने धर्म के प्रति आस्था रखी । संतों का एक ही कथन है -

संत समरथ में राखि मन, करिय जगत का काम।
जग जीवन यह मंत्र है, सादा सुख बिसराम।[1]

संत-सम्प्रदाय वैराग्य और गृहत्याग को अनिवार्य नहीं मानता । इनके अनुसार समत्व प्राप्ति से अधिक भावात्मक संबद्धता की अपेक्षा है। हृदय की शुद्धता आवश्यक है। भावात्मक एकता ही इसकी कसौटी है। यथा -

किया जपु किया तपु संजमों किया बरतु किया इसनानु।
जब लगु जुगति न जानीऐ भाव भगति भगवान् ।।[2]

संतों ने मानव मात्र के लिए एक उपदेश दिये । उनके अनुसार ' मनुष्य स्वयं अपना विधायक है' । वह नगण्य नहीं, दीन हीन भी नहीं है । अतः मानव जीवन का निश्चित उद्देश्य है । सृष्टि मायावी अवश्य है किंतु मानव जीवन निरुद्देश्य नहीं है। आत्म-प्रतीति का अवश्य उसे इस जीवनमें प्राप्त है। यह संसार निःसार है किंतु जीवन का महत्व कम नहीं । मानव जन्म अत्यन्त दुर्लभ है , बार-बार नहीं मिलता है । महात्मा कबीर के अनुसार-

मानुष जन्म दुर्लभ है, हो न बारम्बार ।[3]

अतः जो जीवन एक बार प्राप्त हो गया है, उसे सफल बनाना मानव का धर्म है ।' सत्संग के अभाव बैकुण्ठ का सुख भी तुच्छ हो जाता है। यथा-

राम बुलावा भेजिया ,दिया कबीरा रोय
जो सुख साधु संग में सो बैकुण्ठ न होय ।[4]

---

१. संत बानी संग्रह ( ) पृ०--११८
२. संत कबीर-गउड़ी-६२
३. संत बानी संग्रह (भाग-१) पृ०-१३८

मानव जीवन अनमोल है इसे खोना उचित नहीं । संतों ने अपनी वाणी में यही कहा है कि मानव तुम महत्वहीन नहीं, नगण्य नहीं व्यर्थ भी नहीं अतः जीवन को प्रभु चरणों कल्याण में समर्पित करना चाहिये ।

संतनिंदा-स्तुति दोनों में लिप्त नहीं होते। संत-लक्षण में कहा गया है - संत लोहा और सोना में तुल्य बुद्धि काम क्रोध मोह और अहंकार का त्यागी, तृष्णा और माया से मुक्त होता है। ' परोपकार ' ही संत का जीवन है, दूसरों के लिए ही वह शरीर धारण करता है । वृक्षनदी और संत तीनों की एक सी अवस्था है । संत संसार में रहकर भी कमल-पत्र की भांति रहता है, कीचड़ से दूर किंतु अन्तर में ज्ञान की सुगंध होती है। ' गुरु अर्जुनदेव ' के अनुसार संत ब्रह्मज्ञानी होता है -

' ब्रह्म गिआनी सदा निर्लेप ,जैसे जलि महि कमल अलेप।[1]

आसक्ति का मिटना, स्थिरता की प्राप्ति, सांसारिकता में रंकता, शान्त, और शीतल वाणी, सुबुद्धि और विवेक साधु महात्मा के लक्षण होते हैं । ऐसे संतों के दर्शन और उपदेश भाग्य से मिलते हैं । इनकी संगति से मन हरिरूप हो जाता है । संत काम क्रोध से हीन, निंदा स्तुति में तुल्यभाव और दुष्ट मित्र में समान भाव से रहते हैं । गुरु अर्जुनदेवजी कहते हैं -

काम क्रोध अरु लोभ मोह बिनास जाए अहंमेव।
नानक प्रभु सणागति करि प्रसाद गुरदेव।[2]

पंजाबी संत गुरुओं एवं हिंदी के संतों ने समान रूप से मानव के नैतिक गुणों की प्रतिष्ठा की है। आचार विधान में ' धर्म का आना स्वाभाविक है । किंतु संतों ने धर्म के व्याप्त रूप को स्वीकार करने के लिये प्रेरित किया है । गुरुनानकजी ने आचार संबंधी कथन में कहा है -

- -

१. सुखमनी महला-५ सलोक-८
२. सुखमनी-गुरु अर्जुनदेव-सलोक-४

" सबहु उरै सम को उबारि सबु आचार।।[1]

इस मानववाद का उद्देश्य मानव-मात्र को सम्पूर्ण प्राप्ति है। संत-साहित्य का लक्ष्य है कि वह व्यक्तिको इस योग्य बनाए कि वह व्यक्ति एक ओर तो सांसारिक उत्तरदायित्व को व्यवस्थित ढंग से निबाहे एवं दूसरी ओर आध्यात्मिक मंडलों के साथ भी जुड़ा रहे। अतः जहां इन्होंने, भक्ति प्रेम आदि धार्मिक भावनाओं पर बल दिया, वहां उन्होंने अधर्म आदि अवगुणों - पाप, अपुन, दुराचार। पहले आदर्श मानव बनना है। अतः गुरु वाणी में संतों ने ऐसे व्यक्ति को " गुरमुख " संत साध एवं " ब्रह्म ज्ञानी की संज्ञा से विभूषित किया है। ऐसे व्यक्ति समाज में " सामाजिक आचार को आचार शिक्षा को लक्ष्त बनाते है। जैसे विश्वबंधुत्व की भावना, परोपकार एवं सेवाभाव उदार चित वाले व्यक्ति के लिए सम्पूर्ण विश्व ही कुटुम्ब है। जाति प्रथा को रूढ़ियों को तोड़कर रामानंद कबीरजी ने मानवतावाद को बल दिया। उनके अनुसार-

जाति-पांति पूछे नहीं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई।

इसी स्वर को और बुलंद गुरु नानक देव ने किया और कहा कि जाति का अभिमान नहीं करना चाहिये, जो ब्रह्म को जानता है, वही ब्राह्मण है। यथा-

जाति का गरब न करीअहु कोई, ब्रह्म बिंदे सो ब्राह्मण होई।[2]

स्त्री की प्रतिष्ठा, परोपकार एवं सेवा भाव का महान उद्देश्य लेकर संतों ने कार्य किया। संतो ने " सांस्कृतिक आचार " पर भी बल दिया, जिससे तात्पर्य है " सभ्यता " अथवा गुण। " शील " के अर्थ में भी इसे प्रयुक्त कर सकते हैं। इसके अन्तर्गत, नम्रता, क्षमा, मधुर भाषण दया, अहिंसा समदृष्टि, निंदा-त्याग आदि गुण आते है।

- -

1. आदि ग्रंथ महला-१ पृ०-६२
2. वही -३ पृ०-११२८

संतों ने नैतिक आदर्शों को सामने रखकर आदर्श व्यक्ति, आदर्श समाज एवं आदर्श जीवन की स्थापना करना चाहते हैं। अत: वे मानव को अंत: एवं बाह्य दोनों रूपों में तपा कर खरा बनाना चाहते हैं जिससे मानव - मानव एवं मानव तथा समाज के संबंध पूर्णत: आदर्श रूप में प्रस्तुत हों।

इस दृष्टि से संतों का आचार विधान मानववादी है। मैकालिफ ने लिखा है कि पंजाबी संतों के आदिग्रंथ के आचार दर्शन में ईमानदारी, परोपकार, न्याय, निष्पक्षता, सत्य-निष्ठा, आदि नैतिक गुण भली प्रकार उपलब्ध हैं, जो किसी भी राष्ट्र के महान नागरिक में होने चाहिये। [१]

27.3.83

---

१. एम०ए०मैकालिफ - दि सिक्ख रिलीजन वॉ०१म० (परिशिष्ट)

- षष्टम अध्याय -

-: पंजाबी संत-साहित्य का काव्य शास्त्रीय मूल्यांकन :-

आध्यात्मिक-साधना के क्षेत्र में निरंतर साधना करने के उपरान्त प्राप्त किए आध्यात्मिक अनुभवों को अपने हृदय में रोक रखना एक साधक के लिये अत्यन्त कठिन कार्य है । इन सत्यानुभूतियों को प्रकट करने के लिये साधक विह्वल हो उठता है । इसी विह्वलता में ` काव्य-कला ` की उत्पत्ति का रहस्य निहित है । सत्य का साधक जब तक इन भावों को प्रकट नहीं कर लेता उसके अन्तर में उथल-पुथल मची रहती है , अत: जब अन्तर के भावों का भंडार भर जाता है तो स्वत: वाणी मुखरित हो जाती है। यही काव्य-निर्झर सत्य के अभिलाषियों के लिए उद्धारक का कार्य करता है । [१]

वस्तुत: एक पहुंचे हुए साधक के अनुभव जब प्रकट होते हैं तो संगीत और लयात्मक गुंजों के रूप में अभिव्यक्त होते हैं , क्योंकि काव्य का ` सहज-आनंद ` और आत्मानुभव का ` ब्रह्म - आनंद ` परस्पर सहोदर है । शायद इसी लिये संस्कृत के आलोचकों ने काव्यानंद को ` ब्रह्मानंद सहोदर ` कहा है। संभवतय: इस सम्बन्ध को दृष्टि में रखकर ही रहस्यवादियों ने ` शब्द ब्रह्म ` का प्रचार किया । यहां ` शब्द ` काव्य का सूचक ही है । इसका अभिप्राय यह है कि आध्यात्मिक जगत के रहस्यमयी अनुभव काव्य की कलात्मक शैली में ही स्वाभाविक रूप में प्रगट होते हैं । यही कारण है कि पंजाबी संत साधकों के रहस्य अनुभव काव्य की सहज कला में रूपायित हुए हैं । गुरु-नानक और उनके अनुयायी गुरु पहले संत, साधक और उच्चादर्श पूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले थे,बाद में कवि ।
अत: पंजाबी संत-वाणी का मुख्य अंग ` अनुभूति है ` काव्य-कला तो उसकी सहायक विधि है । [२]

---

१. हिंदी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ०-३७५
२. गुरुनानक और निर्गुणधारा , पृ०-२७२

डा० गोविंद त्रिगुणायत ने कहा है कि - ' संतों ने काव्य-रचना नहीं की थी । फिर भी उनकी वाणियां ' सहज काव्य ' का सुंदर उदाहरण है ।'[1] पंजाबी संत-काव्य सहज स्वाभाविक रूप में प्रस्फुटित हुआ एक सहज कलारूप है । यहां ' सहज ' विशेषण साभिप्राय है । ' सहज ' इसलिए कि संत कवियों ने काव्य-निर्माण किसी परम्परा या रूढ़ि में आबद्ध होकर - नहीं किया, यह तो उनकी आत्मा का सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति है । इसलिये संतों का वाणी को ' आध्यात्मिक काव्य ' अथवा ' सहज काव्य ' कहना अधिक उपयुक्त है । फिर भी पंजाबी संत-साहित्य में काव्य-कला के जो तत्व सहज रूप में प्रगट हुए हैं, वे श्लाघनीय हैं । ये तत्व हैं -

१- रस
२- अलंकार
३- प्रतीक
४- बिम्ब
५- छंद
६- भाषा
७- संगीतात्मकता

रस- भारतीय आलोचना शास्त्र तथा काव्य शास्त्र में ' रस ' का अत्याधिक महत्व है । इसका कारण यह है कि रस सिद्धांत एक ओर भौतिक चेतना के साथ और दूसरी ओर मनोचेतना के साथ संबंधित है । इसलिये इससे मनुष्य की मनोवैज्ञानिक क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण प्रस्तुत होता है। चूंकि काव्य में भावों का विशेष स्थान है, इसीलिये भावों का विश्लेषण करने वाला ' रस सिद्धांत ' इतनी लोकप्रियता प्राप्त कर सका है ।

पंजाबी संत कवि एवं निर्गुण काव्य के संस्थापक श्री गुरु नानक देवजी की वाणी को सामने रखकर डा० जयराम मिश्र ने ठीक ही कहा है -

---

१. हिन्दी काव्य निर्गुणधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ०-४३८
(पं० गोविंद त्रिगुणायत)

• गुरुनानकजी ने भावों के आवेश में वाणी का उच्चारण किया था, अत: यह वाणी उनके हार्दिक प्रेम को प्रकट करने वाली है, या किसी प्रतिदिए गए उपदेश के रूप में है । गुरुनानकजी के अधिकांश पद भावपुर्ण हैं। यही कारण है कि उनकी वाणी में अनेक रसों का प्रकटीकरण सहज स्वाभाविक रूप में हो गया है । ये रस बड़े सहज सरल रूप में श्रोता - पाठक के मन को मुग्ध करते हैं ।" [१]

निर्गुण काव्य में यह मुख्य रस है -

शृंगार - भारतीय आचार्यों ने शृंगार को " रसराज " कहा है । पंजाबी संत काव्य में शृंगार रस के जो स्थल हैं, वहाँ वह रस अलौकिक होकर प्रकट हुआ है , वहाँ लौकिक वातावरण की गंध भी समाप्त हो गई है । शास्त्रीय दृष्टि से इसे " भक्ति रस " भी कहा जा सकता है। जैसे गुरुनानकजी का निम्नलिखित पद है -

" सावणि सरस मना घण बरसहिं रुति आए ।
मैं मनि तनि सहु भावै पिर परदेसि सिधाए ।।
पिरु घरि नहीं आवै मरीए हावै दामनि चमकि डराए।
सेज इकेली खरी दुहेली मरणु भइआ दुखु माए ।।
हरि बिनु नीद भूख कहु कैसी कापड़ु तनि न सुखावए ।। [२]

गुरुनानकजी ने अपनी रागात्मिक अथवा प्रेम भक्ति में परमात्मा के साथ विविध सम्बन्ध स्थापित किए हैं जिनमें से मुख्य हैं -

माता-पिता और पुत्र का संबंध, स्वामी-सेवक भावका संबंध ,
सखा-भाव का संबंध, दाता-भिखारी का संबंध , तथा
पति-पत्नि का संबंध । उपरोक्त सब संबंधों में से पति-पत्नि के संबंध में जो एकरूपता, तदाकारिता और तन्मयता है, वह किसी अन्य संबंध में नहीं है । कान्तासक्ति में द्वैतभाव के लिए कोई स्थान नहीं है । [३]

---

१. नानक वाणी- पृ०-२१
२. आदिग्रंथ, महला-१, पृ०-११०८
३. आदिग्रंथ नानक वाणी-पृ०-२२ - डा० जयराम मिश्र

गुरु नानक जी का शृंगार-रस लौकिक नहीं दिव्य है। पति-परमात्मा के साक्षात्कार करने पर जीवात्मा रूपी स्त्री को दिव्य आनंद प्राप्त होता है। वही उसका स्थायी भाव ' रति ' है।

एक पद में गुरुनानकदेवजी ने जीवात्मा रूपी स्त्री की चार अवस्थाओं का चित्रण किया है - ' पहली अवस्था वो वह है, जिसमें जीवात्मा रूपी स्त्री परमात्मा रूपी पति से अपरिचित रहती है। उसे यह ज्ञान नहीं होता कि परमात्मा रूपी पति का क्या कहाँ ठिकाना है। दूसरी अवस्था में उसे यह बोध होता है कि मेरा प्रियतम है, और वह एक है। वह गुरु कृपा से मिल सकता है। तीसरी अवस्था वह है जब ससुराल में पहुंच कर, उसे अपने प्रियतम का पूर्ण ज्ञान होता है कि यही मेरा प्रियतम है। गुरु की कृपा होती है, तब जीवात्मा (कामिनी) परमात्मा (पति) को अच्छा लगती है। चौथी और अंतिम अवस्था वह है, जब भय और भाव का शृंगार करके, वह प्रियतम के पास जाती है। प्रियतम उसके शृंगार पर आकृष्ट होकर, उसे सदैव के लिये अपना बना लेता है और सदैव उसके साथ रमण करता है। [1]

गुरुनानकजी द्वारा निरूपित शृंगार रस में स्थान स्थान पर प्रियतम हरि के स्वरूप का सुखद चित्रण मिलता है। -

' तेरे बंके लोइण, दंत रीसाला।
सोहणे नक, जिन [illegible] वाला।
कंचन काया, सुइने की ढाला।।

तेरी चाल सुहाती मधुराड़ी बाणी।
कुहकनि कोकिला, तरल जुआणी।। [2]

गुरुनानकजी ने शृंगार के दोनों पक्षों संयोग और वियोग का चित्रण किया है।

---

१. नानक वाणी, पृ०-२३
२. आदिग्रंथ, [illegible]- राग वडहंसु छंत-२

वियोग शृंगार -

नानक मिलहु कपट दर खोलहु
एक घड़ी खटु मासा । [1]

यहां पर गुरुनानक देव का ' एक घड़ी खटु मासा ' मीराबाई के ' भई छमासी रैन ' की स्मृति दिलाता है ।

संयोग शृंगार - प्रियतम हरि के मिलन का सुख संयोग शृंगार में इस प्रकार चित्रित है -

* फुल माला गलि पहिरउगी हारो ।
मिलैगा प्रीतमु तब करउगी सीगारो ।। [2]

करुण रस - गुरु नानक देवजी करुणा रस का का विविध उक्तियों के माध्यम से विषयासक्त प्राणी की दशा का कारुणिक दृश्य उपस्थित किया है । उन्होंने मनुष्य की आयु के चार प्रहरों में विभाजित करके संसार की असारता प्रदर्शित कर उसके करुणायुक्त परिणामों पर दृष्टि डालकर मनुष्य को हरि भक्ति प्राप्ति के लिये संकेत किया है -

* नानक दुखिया जुग चारे बिनु नाम हरि के मन थी ।। [3]

गुरुनानक देव ने अनेक स्थलों पर इस बात का संकेत किया है कि मनुष्य के सौंदर्य , वस्त्रादिक भोग्य वस्तुएं यहीं रह जाती हैं । अवगुणों के कारण नंगे होकर नरक जाना पड़ता है ।

* पउड़ी - ' कपडु रूपु सुहावणा छडि दुनीआं अंदरि जावणा।
मंदा चंगा आपणा आपे ही कीता पावणा।।
हुकम कीए मन भावदे राहि भीड़ै अगै जावणा।
नंगा दोजकि चालिआ ता दिसै खरा डरावणा।
करि अउगण पछोतावणा । [4]

- -

1. आदिग्रंथ, महला पहला, राग तुखारी, बारहमाह
2. आदिग्रंथ, महला-1, आसा शबद-35
3. आदिग्रंथ महला,1 तुखारी छंद-2
4. वही राग आसा कीवार - पउड़ी-12

हास्यरस - गुरुनानकजी हास्यप्रिय एवं विनोदी थे । उन्होंने हंसी हंसी में बहुतों को उपदेश दिए । उन्होंने समय-समय पर बाह्याचार-रत एवं आडम्बरयुक्त धार्मिकों को मीठी चुटकी ली । ऐसी चुटकियों से संयत एवं मर्यादापूर्ण हास्य मिलता है । पाखंडी ब्राह्मणों की मीठी चुटकी लेते हुए कहते हैं :-

'अखी त मीटहि नाक पकड़हि ठगण कउ संसारु ।। [१]

वीभत्स रस - एकाध स्थल पर गुरुओं ने वीभत्स रस का भी निरूपण किया है। उदाहरणार्थ ` जैनी सिर के बाल नुचवा कर गंदा पानी पीते हैं और जूठी वस्तुएं मांग-मांग कर खाते हैं । वे अपना मल फैला देते हैं और मुंह से गंदी सांस लेते हैं और पानी देखकर सहमते हैं । [२]

वीर रस - गुरुओं की वाणी में गुरु गोविंदसिंह को छोड़कर मुख्य विषय आध्यात्मिक अनुभवों का प्रकाशन है । अतः सारा वातावरण ` शान्त रस ` के अनुकूल है । गुरु गोविंदसिंह के काव्य में वीर रस विशेष रूप से मिलता है । अन्य गुरुओं की वाणी में वीर रस का प्रकाशन कहीं कहीं हुआ है । जैसे -

इहु भवजलु जगतु सबदि गुर तरीऐ
अंतर की दुबिधा अंतरि जरीऐ।
पंच बाण ले जम कउ मारै गगनंतरि धणखु चड़ाइआ ।। [३]

रौद्र रस - गुरुनानकजी अत्यन्त संयमी विनम्र और मृदुभाषी होते हुए भी समाज धर्म एवं राजनीति में कुव्यवस्था और अनाचार होते देखकर अपने आन्तरिक भावों को अभिव्यक्त किए बिना न रोक सके । ऐसी परिस्थिति में उन्होंने परमात्मा के प्रति भी अपना रोष एवं क्षोभ प्रकट किया है ।

---

१. आदिग्रंथ महला १, राग धनासरी सबद -८
२. वही माझ की वार सलोक-४५
३. वही मारु सोलहे -२१
४. वही आसा राग सबद -३९

बाबर के आक्रमण से खिन्न होकर वे परमात्मा से कहते हैं -

'हे प्रभु हिन्दुस्तान पर इतनी मार पड़ी, जनता को इतना कष्ट हुआ , इतनी मार काट हुई, किंतु तुम्हें जरा भी दर्द नहीं हुआ ।'

'एती मार पई करलाणे तैं की दरदु न आइआ ।' [1]

भयानक रस - पंजाबी संतों की वाणी में भयानक रस दो रूपों में पाया जाता है । पहले रूप में तो परमात्मा का भय - सभी तत्वों से ऊपर है, और उसी के भय के कारण समस्त सृष्टि अपनी मर्यादा में स्थिर रहती है। भय का दूसरा रूप विषयासक्त, मायाग्रस्त परमात्मा-विमुख प्राणियों की भय का प्रथम उदाहरण है-

भै विचि पवणु वहै सद वाउ।
भै विचि चलहि लख दरीआउ।।
भै विचि अगनि कढै वेगारि।
भै विचि धरती दबी भारि ।। [2]

भय का दूसरा रूप इसमें देखिए -

अंतरि चीरु मुहि वरु मंदरु इनि साकति दूजु न जाता है।
दुंदर दूत भूत भीहाले । खिंचोताणि करहि बेताले।।
सबद सुरति बिनु आवै जावै पति खोई आवत जाता है।
कूड़ कलरु तनु भसमै ढेरी । बिनु नावै कैसी पति तेरी।। [3]

अद्भुत रस - परमात्मा आश्चर्य रूप है, उसकी सृष्टि भी आश्चर्यमयी है और उसके कार्य भी आश्चर्य जनक है वह कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं समर्थ है । अत: आश्चर्य का होना स्वाभाविक है । परमात्मा की सृष्टि के नाद, वेद, जीव, जीवों के अनंत प्रकार, सृष्टि के विभिन्न रूप-रंग ,वायु जल,अग्नि और उसके विविध खेल धरती,विभिन्न स्वाद,संयोग-वियोग,भूखा-भोग, स्तुति-निंदा सभी आश्चर्यमय हैं ।

---

1. आदिग्रंथ महला-१ बाबा दी वार, सलोक-७
2. वही मारु सोलह -११

गुरुजी ' आसा दी वार ' में विस्माद ' शब्द द्वारा अपने आश्चर्य भाव को प्रकट करते हैं-

विसमाद नाद विसमादु वेद । विसमादु जीअ विसमादु भेद।।
विसमाद रूप विसमाद रंग । विसमाद नागे फिरहि जंत [1]

क्या कम आश्चर्यमय है कि प्रभु ही सब कुछ बना है, और वही समस्त वस्तुओं में व्याप्त है । जो इस तत्व को जानता है, उसे महान् आश्चर्य होता है-

' आपि पटी कलम आपि उपरि लेख भी तूं।
एको कहीऐ नानका दूजा काहे कू ।। [2]

शान्त रस - गुरु नानक देव एवं पंजाबी संतों की वाणियों में शान्त रस की प्रधानता । इनकी वाणी ज्ञान वैराग्य, भक्ति और योगपूर्ण है। यथा-

अनहदो अनहदु वाजै रुण झुण कारे राम।
मेरा मनो मेरा मनु राता लाल पिआरे राम ।।
अनदिनु राता मनु बैरागी सुन मंडलि घरु पाइआ
आदि पुरखु अपरंपरु पिआरा सति गुरु अलखु लखाइआ
आसणि बैसणि थिरु नारायणु तितु मनु राता वीचारे।
नानक नाम रटे बैरागी अनहद रुण झुण कारे ।। [3]

पंजाबी संत काव्य का शृंगार वास्तव में आध्यात्मिक शृंगार है । सूफियों की भाषा में आध्यात्मिक शृंगार इश्क हकीकी है । परन्तु भारतीय काव्य-शास्त्र की दृष्टि में आध्यात्मिक शृंगार कोई रस नहीं है । यह तो भक्ति आन्दोलन के प्रभाव के कारण ' भक्ति रस ' की स्थापना हुई । इस स्थापना में ' भक्ति रस ' का शास्त्रीय विवेचन भी हुआ है । कुछ आलोचकों ने ' भक्ति रस ' को शान्त रस में ही समेटने की चेष्टा की । किन्तु भक्ति रस को शान्त रस में लीन नहीं कर सके ।

---

1. आदि-ग्रंथ, महला १५०-४६३
2. वही मलार की वार श्लोक-२४
3. वही आसा महला १ छंद-२

दोनों में बुनियादी अन्तर है। शान्त रस का स्थायीभाव 'शम है, भक्ति का भगवान सम्बन्धी अनन्य स्नेह (रति) है। शान्त रस का आलंबन विभाव परमतत्व का चिंतन या इस संसार की नश्वरता है, किन्तु भक्ति-रस का आलंबन 'भगवान है'। शान्त रस निवृत्ति प्रधान है, परन्तु भक्ति रस प्रवृत्ति मूलक है। भक्ति-रस अधिक व्यापक है और शान्त रस से अधिक लोगों को प्रभावित करने वाला है। [1]

उपरोक्त विवेचना को सामने रखकर जब हम पंजाबी संत-साहित्य का अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि इस काव्य में 'भक्ति रस' का निरंतर प्रवाह मिलता है। इसीलिए डा० गोविंद त्रिगुणायत कहते हैं कि - "मेरी तो अपनी धारणा यह है कि संतों की रचनाओं में भक्ति रस की स्थापना 'रस राज' के रूप में प्राप्त होती है।[2] किन्तु पंजाबी संत काव्य में एक अन्य विशेषता और मिलती है। इस काव्य में आलंबन कोई अवतार नहीं अपितु-निर्गुण प्रभु है। इसीलिए पंजाबी संत काव्य के भक्ति रस को निर्गुण भक्ति रस ही कहें तो अधिक उत्तम होगा। निर्गुण काव्य में भक्ति रस के अनंत उदाहरण हैं। गुरु रामदासजी का शब्द भक्ति रसमय है।—

> 'हर दरसन कउ मेरा मन बहु तिपतै जिउ त्रिखावंत बिनु नीर।
> मेरै मनि प्रेमु लगो हरि तीर। हमरी बेदन हरि प्रभु जानै
> मेरे मन अंतरि की पीर। रहाउ ।।
> मेरे हरि प्रीतम की कोई बात सुनावै सो भाई सो मेरा बीर।
> मिलु मिलु सखी गुण कहु मेरे प्रभ के ले सतिगुर की मति धीर।
> जन नानक की हरि आस पुजावहु हरि दरसनि सांति सरीर।। [3]

---

1. राम दहिन मिश्र - काव्य दर्पण पृ०-२१३
2. हिन्दी निर्गुण काव्य की पृष्ठभूमि,पृ०-५४४
3. आदि ग्रंथ महला-४,पृ०-८६१-८२

इसी प्रकार गुरु रामदासजी का निम्नलिखित छंद भी भक्ति रस से पूरित है :-

> " गुर सुखि पिआरे आइ मिलु मैं चिरी विछुंने राम राजे
> मेरा मनु तनु बहुतु बैरागिआ हरि नैण रसि भिंने।
> मै हरि प्रभु पिआरा दसि गुरु मिलि हरि मनु मंने।
> हउ मूरखु कारै लाईआ नानक हरि कंमे।। " [1]

पंजाबी संत कवियों ने अपनी काव्य शब्दावली द्वारा भक्ति रस को " अमृत रस " " हरि रस " " राम रस " कहा है और इसे ही अंगारस भी कह सकते हैं ।

गुरु गोविंदसिंह रस के ज्ञाता कवि थे । उन्होंने अपनी रचनाओं में श्रृंगार, वात्सल्य का वर्णन किया है किंतु प्रधानता " वीर रस " को दी है । उनका चंडी-चरित्र, विचित्र नाटक, चौबीस अवतार पख्यान चरित आदि ग्रंथों में वीर भाव के चित्रण भरे पड़े हैं । इसी के अन्तर्गत उन्होंने रौद्र, वीभत्स और भयानक रसों का भी यथेष्ट वर्णन किया है । निशुंभ वध प्रसंग में शिव, शक्ति को देवताओं की ओर से युद्ध करने के लिये भेजते हैं -

> " चली शक्त शीघ्र ही कृपाणि पाणि धार कै "
> उठे सुग्रिध ब्रिध डौर डाकनी उचार कै ।।
> हसे सुकंक कंकंप कबंध अंध उठही। बिसेख देवता सबीर बाण धार जुट्ठही।। [2]

---

१. आदिग्रंथ महला-४, पृ०-४४६

२. चंडी चरित्र उक्ति विलास-श्री दशम ग्रंथ- छंद संख्या-१४७

अलंकार-विधान- अलंकार-योजना ,कला-विधान का महत्वपूर्ण अंग है । भारतीय काव्य-शास्त्र के इतिहास में अलंकार-विधान की एक दीर्घ परम्परा है । कभी अलंकार अलंकार्य रहा है , कभी साधना । इतना स्पष्ट है कि अलंकार का महत्व सदैव रहा ।

अलंकार-विधान की तुला पर जब पंजाबी संत साहित्य को तौलते हैं , तो पाते हैं कि पंजाबी संत-काव्य में कई प्रकार के अलंकार मिलते हैं । यों तो निर्गुण काव्य वाणी में अलंकार सहज-स्वाभाविक रूप से प्रकट हुए हैं , यह अलग बात है कि ये संबंधित काव्य-वस्तु का और भाव या काव्य-शिल्प का उत्कर्ष करने वाले हैं । सहज रूप से प्रकट होने वाले अलंकार काव्य के भूषण बन जाते हैं । गुरु नानक की वाणी में ' विरोधाभास अलंकार देखिये -

सागर महि बूंद बूंद महि सागर
कवणि बुझै बिधि जाणी ।।
उतभुज चलत आपि करि चीनै
आपे तत पछाणी ।[1]

निर्गुण वाणी में अलंकारों की महानता का कारण यह है कि वे रहस्यमय सारवस्तु से परिपूर्ण हैं । गुरु कवि अपनी वस्तु विषय को सामने रखते हैं, वह विषय अपने अनुसार सहज कला ग्रहण कर लेती है और वाणी में स्वभावतः अलंकार प्रकट होते जाते हैं । ये अलंकार भावों को तीक्ष्णता प्रदान करते हैं । ये विचार दार्शनिकों की तर्क शैली में नहीं होते अपितु भावमय वातावरण में रहस्यमय बनाए जाते हैं।

---

१. आदिग्रंथ महला-१, पृ०-१

प्रभु की अनंतता एवं उसके अलौकिक होने का आलंकारिक वर्णन गुरुनानक देवजी ने नीचे लिखे पद में रूपक अलंकार के माध्यम से किया है ।

तू दरी आउ दाना-बीना मैं मछुली कैसे अंतु लहा।
जह जह देखा तह तह तू है तुझ ते निकसी फूटि मरा।[१]

अलंकारों का चुनाव कवि की सूक्ष्म दृष्टि की पहचान होती है। इन से स्पष्ट हो जाता है कि कलाकार कितनी गंभीरता से अपने चारों ओर के विद्यमान पदार्थों को देखता है, प्राकृतिक या युगीन घटनाओं की आत्मा को पकड़ता है । पंजाबी संत कवि इस प्रतिभा के स्वामी थे । उन्होंने अपने आध्यात्मिक और सामाजिक विषयों के लिए जाने पहचाने उपमान ही प्रयोग में लाए हैं । इनके उपमानों का चुनाव बड़ा विशाल एवं दीर्घ-दृष्टि का परिचायक है । अमूर्त भावों को मूर्त उपमानों द्वारा प्रकट कर अलंकारों की प्रतीति कराई है ।

गुरुजी ने कभी उपमान मानवीय जगत , मानवीय व्यवहार एवं इनसे संबंधित लिए हैं । जैसे - खेती-बाड़ी, तेल दीया, बेड़ी(नाव) दुलहा, बनजारा व्यापार, कोल्हू, रहट आदि ।

गुरुजी ने सबसे अधिक उपमान प्रकृति से ग्रहण में सहज ग्रहण-शीलता , स्पष्टता और निकट का संबंध उत्पन्न कर ` साकार ` के साथ निराकार ` का अंकन बड़े विश्वास के साथ किया । इन उपमानों में - भंवरा, फूल, मछली, हरिणी, वन, सरवर हंस, आकाश-पाताल वन पंछी आदि आते हैं । [२]

अनुप्रास का उदाहरण -

बावे को विदिआ बिखम बीचार । [३]

उपमा-

` मारवाडा नानक प्रगटिआ मिट धुंध जगि चानण होआ।
जिउ करि सूरजु निकलिआ तारे छप अंधेर पलोआ । [४]

---

१. आदिग्रंथ,महला-१-पृ०-२५
२. गुरुनानक की निर्गुण-धारा-पृ०-२६५
३. आदिग्रंथ,महला-१,पृ०-२
४. वही पृ०-३५

दृष्टांत -

सतिगुरु नानक प्रगटिआ मिट धुंध जगि चानण होआ।
जिउ करि सुरजु निकलिआ तारि छप अंधेर पलोआ। [1]

भ्रान्तिमान-

सुपने आइआ भी गइआ मै जलि भरिआ रोइ
आइ न सका तुझ कनि पिआरे भेजि न सका कोइ । [2]

विभावना-

अंखी बाझहु वेखणा विनु कंना सुनणा।
पैरी बाझहु चलणा विनु हथां करणा।।
जीभै बाझहु बोलणा इउ जीवत मरणा।
नानक हुकमु पछाड़ि तउ खसमि मरणा ।। [3]

विचित्र-

आपस कउ जो जाणै नीचा।
सोऊ गनिऐ सभते ऊंचा।। [4]

वक्रोक्ति-

तिन कउ किया उप देसीऐ
जिन गुरु नानक देऊ।। [5]

इस प्रकार पंजाबी संत काव्य में अलंकारों की कमी नहीं है । गुरु गोविंद सिंहजी ने प्रायः सभी अलंकारों का यथासंभव प्रयोग किया है ।

प्रतीप अलंकार-

सुनि कूक कोकिला कोप करैं सुख देख के चंद दरेर डारैं
लखि नैन वाकैं मृगी मीन मोख लखे गात के सुर की गोति ...।। [6]

---

१. वारां भाई गुरुदास, पृ०-१।२७
२. आदिग्रंथ महला-१, पृ०-२८
३. वही वार माझ महला-२
४. वही सुखमनी महला-५
५. वही महला वार माझ
६. गोविंद रामायण -गुरु गोविंदसिंह, पृ०-७७

उल्लेख-

करुणाल्य है । अघाल्य है।

खल खंडन है । महि मंडन है । [1]

यमक-

मुक्ति पड़ी प्रभु कीजे क्षिमा मुहि नारि नवाइ के नारि सुनाई। [2]

इस प्रकार हम देखते हैं पंजाबी संत कवियों ने अपने काव्य में पर्याप्त अलंकारों को स्थान देकर काव्य की शोभा को द्विगुणित किया है।

बिम्ब-योजना-

पंजाबी संत साहित्य में काव्य शास्त्रीय विधान के अन्तर्गत 'बिम्ब' एक आवश्यक तत्व है । इस से काव्य में शक्ति सजीवता सकलता एवं व्यंजना प्राप्त होता है । इसलिए बिम्ब योजना की उपयोगिता है। कविता बिम्बमय होता है । बिम्ब रूप गुण का होना चाहिए चित्रात्मकता भी बिम्ब का गुण है - ये सभी मिलकर काव्य को सशक्त और जीवंत बनाते हैं । [3]

इस दृष्टिकोण को सामने रखकर अगर हम पंजाबी संत काव्य की विवेचना करें तो पाते हैं कि इस काव्य में बहुविध बिम्बावली के दर्शन होते हैं । गुरुनानक संवेदनशील हृदय एवं व्यापक काव्य-चेतना के स्वामी थे । वे अनुभवों में पगे महापुरुष थे । उनमें काव्य-चेतना कूट-कूटकर भरी हुई थी । इसका ही परिणाम है कि पंजाबी संत-काव्य में हर प्रकार की बिम्ब योजना सफलीभूत हुई है । उनके बाद के संतों ने इसका अनुगमन किया है । इस संदर्भ में यह कहना अयुक्तिपूर्ण नहीं होगा कि अन्य पंजाबी संतों की अपेक्षा गुरुनानकजी की बिम्ब-योजना अधिक गौरवपूर्ण है । फिर भी सम्पूर्ण पंजाबी संत-काव्य में बिम्बों की बहुरूपता दर्शनीय है-

- -

१. जाप साहब-गुरु गोबिंदसिंह-छंद-१७०
२. कृष्णावतार वही -छंद सं०-२१५८
३. गुरुनानक की निर्गुण काव्यधारा-पृ०-३०२

" तूं सुणि हरणा कालिआ की वाड़ीऐ राता राम।
बिखु फलु मीठा चारि दिन फिरि होवै ताता राम।
फिरि होइ ताता खरा माता नाम बिनु परतापए।" १

इस छंद में " काले हिरण " के प्रतीक द्वारा रूप बिम्ब का सृजन हुआ है। यह प्रतीक पर आधारित बिम्ब है। विषयी और विलासी पुरुष के अर्थ में " काले हिरण " का प्रतीक प्रयुक्त हुआ है। इससे वर्णन में एक मूर्तिमान बिम्ब उभरता है। इससे विचारणीय विषय को बड़ी सार्थकता मिलती है। पंजाबी संत-काव्य की बिम्बावली का आधार - पंजाबी संत साहित्य के प्रणेता गुरु नानक देवजी को लक्ष्य करके डा० सुरिन्दर सिंह कोहली ने लिखा है कि -" गुरु नानकजी ने इस संसार में दूर दराज देशों की यात्री की थी। वे आध्यात्मिक मंडलों की गहराई तक पहुंचे थे। इसलिए उनके बिम्ब ए विशाल क्षेत्र से लिए गए हैं। जल-थल, आकाश-पाताल साधारण कृषक से लेकर भूपति, अमीर गरीब, मुसलमान ब्राह्मण आदि तक उनका बिम्ब मंडल प्रसारित है।" २ इससे स्पष्ट है कि गुरुनानकजी ने काव्य में बिम्ब सामग्री लोकों अनुभवों के क्षेत्र से चयन की है। यह सामग्री दो प्रकार की है।

(१) प्राकृतिक सामग्री (२) जीवनगत सामग्री।

प्राकृतिक सामग्री के अन्तर्गत धरती माँ प्रत्यक्ष वस्तु को नैसर्गिक नाम के अन्तर्गत वर्णित किया गया है। इनमें से भी प्रकृति के सुन्दर अंग बिम्ब योजना के लिये प्रयुक्त किये हैं। जैसे -
जल, मछली, कमल, पपीहा, हंस, चकवा सूरज, बिजली, हिरणी, भंवरा, मोर, कोयल, गुलाब आदि।

- -

१, गुरु आदिग्रंथ महला-१ पृ० ४७६-३६

२ ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ आदिग्रंथ - पृ १४१

जैसे - रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी मछुली नीर।[१]

` हरिणी ` होवां बानि वसां कंदि मुल चुनि खाउ।[२]

` जीवनगत सामग्री ` के अन्तर्गत - जीवन के प्रत्येक पक्ष - सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक जीवन में से महत्वपूर्ण बिम्बों को चुनकर बिम्ब निर्माण किया है। गुरुनानक देवजी पंजाब की आर्थिक-जीवन पद्धति जो सुनार-गिरी से संबंधित है, विस्तार से चित्रण किया है और उसके माध्यम से आध्यात्मिक अर्थों को मूर्तिमान किया है -

जतु पहारा धीरज सुनियार। अहरणि मति वेदु हथिआर।

भउ खला अगनी तपताउ। भांडा भाउ अमृत तित ढालि।।[3]

बिम्बों के दो प्रकार मुख्य माने गए हैं - माध्यम अभिव्यक्ति या शैली। माध्यम वह है कि कौनसा सा बिम्ब इन्द्रियों के माध्यम से जाना है या किसी इन्द्रिय को प्रभावित करता है। इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य की जितनी ज्ञान-इन्द्रिय हैं, बिम्ब के उतने ही प्रकार हैं।

जैसे शब्द बिम्ब - ` बाबीहा प्रिउ बोले कोकिल बाणीआं।[४]

गंध बिम्ब - ` कसतुरि कुंगु अगरि चंदनि लीपि आवै चाउ।`[५]

` अभिव्यक्ति ` का अर्थ है शैली अर्थात प्रतीक, उपमा, चिन्ह युक्त बिम्ब। इस शैली के बिम्ब योजना भी पंजाबी संत काव्य में मिलती है।

स्पर्श बिम्ब- करि साध संगति सिमरु माधो होहि पतित पुनीत।

कालु बिआलु जिउ परिओ डोलै मुखु पसारे मीत।।[६]

चाक्षुष बिम्ब - पहुप मधि जिउ बासु बसतु है मुकर माहि जैसे छाई।।[७]

---

१. आदि ग्रंथ महला १, पृ०-६०
२. वही पृ०-१५७
३. आदिग्रंथ महला १ जपुजी पउड़ी-३८
४. वही १ पृ०-११०७
५. वही पृ०-२४
६. वही महला ९ पृ०-
७. वही पृ०

इसके अतिरिक्त आर्थिक जीवन से संबंधित प्रतीक भी मिलते हैं। `वनजारा` संतों का `सौदा` भक्ति का प्रतीक है। गुरुनानकजी कहते हैं-

` वणजारिआ सिउ वणजु करि लै लाहा मन हसु।[1]

पंजाबी संत वाणी में प्रतीकों की बहुविधता दर्शनीय है।

घट- (शरीर) - ` घटि वसहि चरणारबिंद।[2]

धूप छांह - (सुखदुख) - ` धूप छांह जो सम करि जाणै।[3]

हंस - (संत) - ` सिव हंस सरोवर इकट्ठे होए।[4]

परिजात- (ब्रह्म तत्व) -` परिजात इहु हरि को नामु॥[5]

पंचचोर - (पंचेन्द्रिय)` इक नगरी पंच चोर बसीअले॥[6]

इस प्रकार पंजाबी संतों ने अपने काव्य में प्रतीकों के माध्यम को एक नई अभिव्यक्ति प्रदान की है। इससे साहित्य जगत में गूढ़ अर्थों को समझने में सहायता मिलती है। इन प्रतीकों ने काव्य में शक्ति, व्यंजना, स्वाभाविकता और प्रभाव उत्पन्न किया है साथ ही अर्थों को सघनता प्रदान की है।

---

१. आदि ग्रंथ महला-१ पृ०-६३५
२. वही पृ०-५५४
३. वही पृ०-६३२
४. वही पृ०-६९०
५. वही ५, सुखमनी पउड़ी-१
६. आदि ग्रंथ महला-१ पृ०-५०३

छंद-विधान और काव्य रूप -

' छंद ' काव्य का आवश्यक तत्व है । हमारे प्राचीन साहित्य में तो छंद-विहीन काव्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। भले ही आधुनिक युग में छंद-मुक्त कविता को भी काव्य मान लिया जाता है । फिर भी काव्य-सृजन में छंदों की महत्ता आज भी यथावत् स्वीकार की जाती है । काव्य में छंद का बड़ा महत्व है । यह महत्व कई रूपों में आंका जा सकता है । कविता चूंकि कोमल कला है, इसलिये उसकी प्रभावकता को बढ़ाने के लिये कोमल तत्वों का आश्रय लेना पड़ता है - जिनमें छंद भी एक है । छंद काव्य के अर्थ-तत्व से पूर्णतः संबंधित है । अतः छंदों के माध्यम से भावों का प्रकाशन, उनका सौंदर्य एवं रसदायक काव्य के साथ संबंध जोड़ा जा सकता है ।[1]

पंजाबी संत-साहित्य में छंदों का महत्व संस्कृत की प्राकृतिक अपभ्रंश के छंदों की अपेक्षा अधिक है । पंजाबी संत-साहित्य के जनक श्री गुरुनानक देवजी को परम्परा के रूप में अपभ्रंश छंदावली ही सिद्ध-साहित्य और नाथ-साहित्य द्वारा प्राप्त हुई थी , जिसमें लोक-ध्वनि को मिलाकर उन्होंने अपने ढंग से छंदों का प्रयोग किया था । पंजाबी संतों का युग एवं लक्ष्य संस्कृत छंदों के अनुकूल नहीं था। इसका कारण है कि संस्कृत छंद वार्णिक थे जो नाद-संगीत के लिए उपयुक्त नहीं बैठते । इसलिये मात्रिक छंदों को ही विशेष प्रयुक्त किया गया ।

पंजाबी-संतों का लक्ष्य अपने अनुभवों को साधारण जनता में प्रेषित करना था , और उनके काव्य की ध्वनि भक्ति-प्रधान थी, जिसमें भावों की बहुलता होती है ।

- -

1. मात्रिक छंदों का विकास - शिवनंदन प्रसाद, पृ०-६
2. वही पृ०-२४१

इनको भावों को प्रकट करने के लिए मात्रिक छंद ही उपयुक्त हो सकते हैं। वस्तुत: पंजाबी संत कवियों का उद्देश्य छंद रचना करना नहीं था , वे तो किसी भी लोक-धुन या राग में कविता अलापते थे , कविता को शास्त्रीय ढाँचे में बाँध कर यत्नपूर्वक बनाते नहीं थे । इस अलाप-प्रवाह में उनकी ऊँची आत्मा के भीतर रमे हुए आध्यात्मिक अनुभव अनायास किसी छंद का विधान धारण कर लेते हैं तो यह उनके लिये गौण साधना कर्म था। यही कारण है कि पंजाबी संतों का आदर्श रूप आदि-ग्रंथ में छंद प्रयोगों का कोई सिद्धांतानुसार निरूपण नहीं हुआ, अनायास ही अनेक प्रामाणिक छंद प्रकट हो गए हैं, जो मात्रिक प्रकार के छंद हैं।

पंजाबी संतों के काव्य में छंद विधान के विषय में सुरिन्दर सिंह कोहली ने कहा है - " गुरु कवि लोकप्रिय कवि थे । वे लोक समूह के कवि थे , जिन्होंने लोक-धुनों का उच्चारण किया। उनकी दृष्टि में छंद-नियमानुकूलता नहीं थी, न ही उन्होंने मात्रा या वर्णों की गिनती की ही पाबंदी रखी ।[१] इसका परिणाम यह है कि इन संतों को अपनी रचना में छंद-योजना की पूरी छूट रही । अगर किसी प्रकार इन्हें मात्रिक छंदों की कसौटी पर परखने का यत्न करें तो सफलता नहीं मिलेगी। दूसरी बात गुरुमुखी लिपि में लिखे शब्दों की है । कई स्थलों पर मात्राओं को घटा-बढ़ा के लिये लघु-गुरु का आरोप करना पड़ता है और ठीक उच्चारण के लिये वर्णों का ध्यान करना पड़ता है क्योंकि गुरु काव्य-वाणी में लिखते समय अर्धों का प्रचार नहीं था ।

- -

१. ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ आदिग्रंथ, पृ०-८५ डा० सुरिन्दरसिंह कोहली

परन्तु राग की दृष्टि से गीत गोविंद (जयदेव) ही संस्कृत का पहला काव्य-ग्रंथ है, जिसमें राग ताल सहित पदों का उल्लेख है । इसके पश्चात सिद्ध साहित्य और जैन साहित्य में भी संगीत काव्य के अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं । गोरखबानी में भी रागों का स्पष्ट उल्लेख तो नहीं है किंतु ' सब्दी पद ' मिलते हैं , जिनमें गीति-शैली के अंश हैं ।[1]

दक्षिणी भारत में ' तमिल प्रबंधम् ' भक्ति गीतों का महान ग्रंथ है जिसके रचनाकार अलवार भक्त थे । इसमें मिथिला प्रांत की तत्कालीन भाषा का प्रयोग है और भक्ति भावना से ओत-प्रोत गीत पद हैं । निर्गुण भक्ति - परम्परा में नामदेव के ' अभंग, गीति-काव्य के सुन्दर उदाहरण हैं । कबीर इसी श्रृंखला के गीतिकार हैं । कबीरजी ने साखी, सबद, रमैनी की वाणी रचित की । कबीर के सबद गीति-पद हैं , किंतु रागों का उल्लेख नहीं होने पर भी स्वरों की योजना स्पष्ट है ।[2]

पंजाबी संतों की काव्य वाणी संगीत मिश्रित है । गुरुनानक देव संगीत विद्या में निपुण थे । इनका साथ मरदाना, जो रबाबी कहलाता था रबाब के स्वरों के साथ ' खसम की वाणी ' का अलाप करता था ।[3] गुरु नानकजी ने १९ रागों में गुरु अमरदासजी १७ रागों में, गुरु रामदासजी और गुरु अर्जुनदेवजी ने ३० में वाणी-रचना की । आदि ग्रंथ साहब में कुल मिलाकर ३१ राग हैं । वे हैं- श्री राग, माझ, गउड़ी, आसा, गूजरी, देवगंधारी, बिहागड़ा वडहंस, सोरठि, धनासरी, टोडी, बैराड़ी, तिलंग, सूही, बिलावल, गौंड,

- -

१. गुरुनानक से निर्गुण धारा - डा० प्रेमप्रकाशसिंह, पृ०-३२५
२. वही पृ०-३२५
३. वही वारां भाई गुरुदास १।३५ पृ०-३२६

रामकली, नर नाराईण, माळी गउड़ा, मारु, तुखारी, केदारा, भैरउ, बसंत, सारंग, मळार, कानड़ा, कळियाण, प्रभाती, जैजावंती।[१]

गुरुनानक देवजी ने संगीत की महिमा का भिन्न-भिन्न कला संदर्भों के साथ वर्णन किया है। संगीत को आप 'गेय रस' मानते हैं - "इकना नाद ना बेद - न गेय रस"[२]

अभिप्राय यह है कि गुरु नानक देवजी की सूक्ष्म विवेक दृष्टि में संगीत-रस मानवीय व्यक्तित्व का एक आवश्यक गुण है। अतः पंजाबी संत साहित्य में कला और संगीत का पूरा पूरा मेल हुआ है, जिससे भक्ति रस और शान्त रस के भाव बड़े उदात्त रूप में प्रकट हुए हैं।

वस्तुतः 'रस' को प्रमुखता देने के लिये संगीत का संगम आवश्यक है। संगीत का रूप 'नादमय' है। इसी के द्वारा हर्ष-शोक, आशा, निराशा आदि के भाव अभिव्यक्त होते हैं। 'नाद-मय' प्रकाशन इतना सरल और सूक्ष्म होता है कि उसका गूढ़ सम्बन्ध हृदय के हर्ष और विषाद के साथ सहज ही हो जाता है। इन तरल रूपों को प्रकट करने के लिये 'राग' जैसी सूक्ष्म कला ही सक्षम हो सकती है। यही कारण है कि विश्व का भक्ति काव्य रागात्मक (संगीतात्मक) है, जिसको रहस्यवादी भी कहा गया है, क्योंकि प्रभु के प्रेम में मग्न हुआ साधक (भक्त) अपनी विह्वलता, नम्रता, आत्मनिवेदन को जब व्यक्त करना चाहता है तो संगीत के स्वर उनका माध्यम बनकर सहायता करते हैं।[३] उदाहरणार्थ गुरुनानक देवजी का शब्द है -

---

१. गुरुनानक की निर्गुण धारा - पृ०-३२६
२. आदि ग्रंथ महला १, पृ०-१२४६
३. मनमोहन सिंह गौतम- सूर का काव्य-कला, पृ०-२७०

साहिब सिमरहु मेरे भाईं हो सभना एहु पइआणा।
ऐथै धंधा कूड़ा चारि दिहा आगै सिर पर जाणा।
आगै सर पर जाणा जिउ मिहमाणा काहे गारबु कीजै।
जितु सेवाजै न पै मुले सिरि सिरि किआ विहाणा।
साहिब सिमरहु मेरे भाईं हो सभना एहु पइआणा। [1]

इस पद की अभिव्यक्तता में शान्त रस है। लोक में निर्वेद स्थायी भाव होने के कारण शान्त रस को और तीव्रता प्रदान करने के लिये गुरु नानकजी ने अपने मनोभावों को 'वडहंस' राग का गाया है। इसका काव्य प्रकार 'अलाहणीआ' है जो पंजाब के गावों में मृत्यु के समय गायी जाती हैं।

इस प्रकार पंजाबी संतों में गुरु गोविंद, गुरु तेगबहादुर, गुरु अर्जुन देव के पद रागमय हैं। इस संबंध में डा० तारनसिंह का विचार है - 'रागों की प्रधानता के कारण श्री गुरु ग्रंथ साहब के सभी कवियों की शैली- विचारों और भावों में एकरूपता आ गई है, क्योंकि प्रत्येक राग में एक विषय वर्णित किया गया है और उसका निर्वाह भी एक सा हुआ है।' [2] इसके अतिरिक्त इन तत्वों के कारण संतों की भाषा रागमय, नादमय और लयात्मक हो गई है। भाववस्तु और अभिव्यंजना कला के मध्य एक सघनता आ गई है। जिसके फलस्वरूप वस्तु को प्रभावशाली बनाने में सहायता मिली है। वस्तुतः भक्ति-काव्य रागात्मक शैली के कारण ही अधिक व्यापक और प्रभावपूर्ण बन सका है।

- -

१. आदि ग्रंथ महला १, पृ०-५७६
२. श्री गुरु ग्रंथ साहब जी का साहित्यिक इतिहास-
डा० तारन सिंह, पृ०-८४

काव्य भाषा -

पंजाबी संतों की काव्य भाषा का विवेचन एक मनोरंजक विषय है। इस काव्य के जनक गुरुनानकजी ने अपने समय में उदित हो रही पंजाबी भाषा को अपने आध्यात्मिक भावों के माध्यम से जिस प्रवीणता के साथ प्रयुक्त किया है, वह पंजाबी काव्य भाषा के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ है। काव्य-वस्तु की प्रौढ़ता, विषय की विविधता के संदर्भ में पंजाबी संत-काव्य की जितनी महानता देखी जा सकती है, वह काव्य भाषायी दृष्टि से कहीं कम नहीं बैठती। उन्होंने अपने आध्यात्मिक, अलौकिक विषयों के प्रकटीकरण के लिए ऐसी अनुकूल भाषा को चुना, जो लोकप्रिय बनी। इस काव्य-भाषा में कला की सौष्ठता, रसों की मधुर मिठास, विभिन्न रेखाओं की चित्रकारी है। अलंकारों की जड़त है, राग संगीत की ध्वनि है, छंदों की छटक है और मुहावरे सूक्तियों की खान है।[१]

इसका स्पष्ट कारण यह है कि गुरु नानकजी की अनुभवी शक्ति के स्पर्श से ही उनकी काव्य-भाषा भी नया संस्कार प्राप्त करके सूक्ष्म विषयों का शक्तिशाली माध्यम बन सकी। गुरु नानकजी एवं पंजाबी संतों ने एक ओर सर्व पवित्र विषयों के द्वारा पंजाबी काव्य को धनी बनाया तो वहीं दूसरी ओर पंजाबी साहित्यिक भाषा को भी कला-स्पर्श देकर नवीन आत्मा प्रदान की। यही कारण है कि पंजाबी संतों की काव्य-भाषा- गंभीर अध्ययन की अधिकारी बन सकी है।[२]

---

१. गुरुनानक और निर्गुण धारा - डा० प्रेमप्रकाशसिंह-पृ०-३२८
२. गुरुनानक और निर्गुणधारा, पृ-३२८

पंजाबी संत जहां दार्शनिक विचारों, तथ्यों के साथ अपने विषय का निरूपण करते हैं, वहां उनकी भाषा में अभिधा शक्ति का चमत्कार दिखाई पड़ता है । ' जपुजी ' में गुरुनानक देवजी की काव्य-भाषा अभिधा शक्ति सम्पन्न है । ' जपुजी ' एक विचार प्रधान रचना है, जहां कथन तर्कपूर्ण है और शैली तर्कप्रधान है । ब्रह्म का स्वरूप वर्णन करते हुए नानकजी कहते हैं -

> ' थापिआ न जाई कीता न होई ।
> आपे आप निरंजन सोई ।। [१]

गुरुजी के अनुसार ब्रह्म (निरंजन) न तो उत्पन्न किया जाता है न रचा जाता है, वह तो स्वयंमेव (प्रकाशमान) है। यहां प्रयुक्त सभी शब्दों एवं उनके अर्थों का सीधा प्रत्यक्ष अर्थ घोतित है। गुरु तेग बहादुरजीने भी अभिधा शक्ति का प्रयोग अपने काव्य में किया है -

> ' हरि को नाम सदा सुखदाई ।
> जा कउ सिमरि अजामलु उधरिओ गनका हू पति पाई ।। [२]

अभिधा के द्वारा काव्य शब्द का अर्थ ग्रहण किया जाता है, परन्तु यदि वह अर्थ हमारी तर्क शक्ति के साथ मेल नहीं खाता है तो अन्य अर्थ की कल्पना करनी पड़ती है । जैसे -

> ' नानक निउहु कपट दर खोलहु एक घड़ी खट मास । [३]

यहां गुरुजी परमात्मा के समक्ष अपनी मनोवेदनाओं का वर्णन कर रहे हैं कि - हे प्रभु अपने अलौकिक द्वार खोलो मेरे लिए एक एक घड़ी छमास बन रही है ।

- -

१. आदि-ग्रंथ महला १, पृ०-२
२. आदि-ग्रंथ महला ६ पृ०-१००८
३. आदि-ग्रंथ महला १ पृ०-११०६

यह एक घड़ी का अर्थ, षट्मास वाली पीड़ा
' लक्षणा शक्ति ' द्वारा प्राप्त होता है ।

गुरु रामदासजी गुरु की महिमा का वर्णन करते हैं -

' अमृतसर सतिगुरु सतिवादी जितु नातै कउआ
हंस होहि । [१]

अमृतसर का सामान्य अर्थ है अमर कर देने वाला जल का सरोवर है किंतु यह सामान्य अर्थ नहीं घटित हो रहा । सतिगुरु अमृत का सरोवर कैसे बन सकता है इसलिए मुख्यार्थ बाधित है । ' अमृतसर ' का अर्थ लक्षणा शक्ति के द्वारा है -

अमर कर देने वाला, मोक्षदाता, शीतलता प्रदान करने वाला, अमृत तुल्य गुणों वाला आरोपित किया जाता है । जैसे अमृतसर में स्नान कर (साखी के अनुसार) कौवा हंस बन गया था , वैसे ही सच्चे गुरु की संगत के साथ पापी (कउआ) मुक्तात्मा (हंस) बनता है । ' लक्षणा शक्ति ' के द्वारा ही यह अर्थ प्राप्त हुए ।

गुरु तेग बहादुरजी ने भी कहा है -

' जैसे जल ते बुदबुदा, उपजै बिनसै नीत ।
जग रचना तैसी रची कहु नानक सुनु मीत ।। [२]

अभिधा या लक्षणा शक्ति के बाद व्यंजना शक्ति द्वारा एक और नए अर्थ की प्रतीति होती है जिसे व्यंग्यार्थ कहा जाता है । यह व्यंजना के द्वारा प्राप्त होता है ।

- -

१. आदि-ग्रंथ महला ४-पृ०
२. आदि-ग्रंथ महला ९- पृ० १४२८

व्यंजना द्वारा प्राप्त अर्थ साधारण लोगों का अर्थ नहीं है, केवल प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति ही इसे समझ सकते हैं। इसलिए इसका योग्य क्षेत्र काव्य-कला है। गुरु नानकजी ने व्यंजना द्वारा कहा है -

> कलि काती राजे कासाई धरमु पंख करि उडरिआ।
> कुडु अमावस सचु चन्द्रमा दीसै नाही कह चड़िआ।। [1]

अभिप्राय यह है कि कलियुग का समय कृपाण जैसा है और राजे कसाइयों जैसे अत्याचारी है। धर्म पंख लगाकर उड़ गया है। झूठ की अमावस में सच का चन्द्रमा दिखाई नहीं दे रहा है। इस पद का अर्थ पहले अभिधा द्वारा फिर लक्षणा द्वारा प्राप्त हुआ है पर इन अर्थों के अतिरिक्त हमारी कल्पना के आगे अन्य भी अर्थ सूझते हैं जैसे धर्म का बोलबाला समाप्त होने के कारण, पाप अत्याचार बढ़ गए बेइमानी ठगी चोरी बढ़ गई। गुरु नानकजी राजा को कसाई कह कर कितने ही व्यांग्यार्थ उत्पन्न कर देते हैं - अर्थात राजा निर्दई, अत्याचारी एवं अपनी प्रजा को कष्ट दे रहे है। इस प्रकार राजे ' कसाई ' दो शब्दों के अनेक व्यंग्यार्थ निकलते हैं।

गुरु तेग बहादुरजी का शब्द भी व्यंजना से भरपूर है -

> जैसे - पाहनि जलि महि राखिओ भेदे नाहि
> तिह पानी।।
> तैसे ही तुम ताहि पछानो भगतिहीन
> जो प्रानी ।। [2]

- -

१. आदि-ग्रंथ महला १ माझ को वार -सलोक-२३
२. आदि-ग्रंथ महला ६, बिलावल -

इसी प्रकार भाई गुरदासजी की पउड़ी में भी व्यंगार्थ देखा जा सकता है।

> सतिगुरु नानक प्रगटिआ मिटी धुंध जगि चानणु होइआ।
> जिउ करि सूरजु निकलिआ तारे छपे अंधेरु पलोआ।।[1]

यहां पहले लक्ष्यार्थ और फिर कई प्रकार के व्यंगार्थ प्रतीत होते है। सतिगुरु नानक के आगमन द्वारा धुंध समाप्त होने की जो बात कही गई है, उसका व्यंगार्थ है कि अज्ञान समाप्त होने लगा और ज्ञान, चेतना जागृति आने लगी। इसका यह भी अर्थ निकलता है कि लोग स्वयं सचेत होने लगे और अपने अधिकारों की रक्षा करने लगे, अन्याय के साथ संघर्ष हुआ, धार्मिक ईर्ष्या, धार्मिक कलह समाप्त होने और शान्ति की स्थापना हो गयी। इसमें घंटे पर पड़ी चोट से निकली हुई लगातार गूंजों प्रतिगूंजों की तरह अनेक अर्थ गूंजते सुनाई देते हैं।

इस प्रकार पंजाबी संत-साहित्य में अभिधा, लक्षणा आदि शक्तियों से प्राप्त विभिन्नता दिखाई पड़ती है। इन अर्थों में पंजाबी संत-काव्य संस्कृत आचार्यों की शब्दावली में 'ध्वनि-काव्य' का अद्भुत उदाहरण है।

27.3.83

- -

१, वारां भाई गुरदास - १।२७

काव्य-गुण - भारतीय आचार्यों ने काव्य-भाषा के विश्लेषण में ' रीति ' की कल्पना की है । वामन इसके प्रवर्तक हैं । इस रीति का आधार काव्य-गुण माने गये हैं । अर्थात् काव्य-शैली या काव्य-भाषा को उत्कृष्ट बनाने के लिए काव्य-गुणों की आवश्यकता है । काव्य गुण कई माने गये हैं , किंतु प्रमुख गुण तीन हैं -

१- माधुर्य २- ओज ३- प्रसाद

पंजाबी संत-साहित्य में भी इन्हीं तीनों गुणों का अस्तित्व मिलता है । प्रसंग विषय और शैली के अनुसार इन काव्य-गुणों की प्रतीति होती है ।

माधुर्य गुण -

चेतु बसंतु भला भवर सुहावड़े ।
बन फूले मंझ बारि मै पिरु घरि बाहुड़ै।
फिर घरि नही आवै धन किउ सुखु पावै
बिरहि बिरोध तनु छीजै।
कोकिल अंब सुहावी बोलै किउ दुखु अंकि सहीजै।
भवर भवंता फूली डाली किउ जीवा मरमाए।
नानक चेति सहजि सुखु पावै जे हरिवर घरि धन पाए।[१]

यहां शृंगार रस से पुष्ट किया हुआ भक्ति रस है , इसलिए आध्यात्मिक विरह की व्यंजना हुई है । इसका वातावरण कोमल एवं हृदय को पिघलाने वाला है । कोमलकान्त पदावली है । प्राकृतिक सौंदर्य पूर्ण रूप से विद्यमान है एवं अलौकिक आनंद की अनुभूति होती है । बसंत, मंझ,अंब, अंक शब्द माधुर्य रस के सहायकशब्द हैं ।

- -

१, आदि-ग्रंथ महला १, पृ०-११०८

ओज गुण - गुरुनानकजी और संतों ने जहां राजा, धर्म के ठेकेदारों, दंभियों, पाखंडियों की आलोचना की है वहां ओजगुण मिलता है । जैसे -

राजे सीह मुकदम कुते । जाई जगाईन बैठे सुते
चाकर नहदा पाईन घाऊ । रतुपितु कतिहो
चटि जाऊ।
जिथै जीआ होसी सार । नकी वढ़ी ला ईतबार।। [१]

गुरु गोविंदसिंहजी का तो अधिकांश काव्य ओजपूर्ण है । सम्पूर्ण चंडी - चरित्र काव्य है । उदाहरण देखिए -

चले सकत्त शीघ्र ही कृपाणि पाणि धारकै ।
उठे गृध्रिघ बिघ्र और डाकनी डकार कै।
हसे सुकंक अकंप कबंध अंध उठही।
बिसेख देवतास वीर बाण धार तुठही ।। [२]

प्रसाद गुण - पंजाबी संत साहित्य में प्रसाद गुण के अनेक उदाहरण मिलते हैं । पंजाबी संत कवि जहां किसी सिद्धांत , विचार अथवा अनुभव को स्वाभाविक रीति से प्रकट करते हैं , वहां प्रसाद गुण होता है । नवम गुरु तेग बहादुरजी के साहित्य में प्रसाद गुण की बहुलता है । 'प्रसाद गुण' सर्वरस मय एवं सर्वविध रचना प्रयुक्त गुण है। 'प्रसाद गुण' की स्थिति शान्तचित्तता का बोधक है । शान्त रस के लिये प्रसाद गुण ही सर्वाधिक उपयोगी है ।

- -

१. आदि-ग्रंथ महला, १ नानक वाणी मलार की वार, सलोक-१३
२. चंडी चरित्र उक्ति विलास, श्री दशम गुरुग्रंथ, छंद सं० १४७

इस गुण से युक्त पदावली प्रस्तुत है -

काहे रे बन खोजन जाई।।
सरब निवासी सदा अलेपा तोही संगि समाई।।रहाउ।।
पुहप मधि जिउ बासु बसतु है मुकर माहि जैसे छाई ।।
तैसे ही हरि बसे निरंतरि घट ही खोजहु भाई ।। १ ।।
बाहरि भीतरि एको जानहु इहु गुरु गिआनु बताई ।।
जन नानक बिनु आपा चीनै मिटै न भ्रम की काई ।।२।।१।।

गुरु गोबिंद सिंह के काव्य में भी प्रसाद गुण युक्त पदावली के दर्शन[1] होते हैं -

प्रभु जू तो कहं लाज हमारी
नीलकण्ठ नर हरि नारायण नील बसन बनवारी।
परम पुरख परमेसवर स्वामी पावन पउन अहारी।
माधव महाज्योतिमइ मरदन मान मुकन्द मुरारी।
निर्विकार निरजर निद्रा बिन निर्विख नरक निवारी।
कृपा सिंधु काल त्रै दरसी कुकृत प्रनासन कारी।
धनुरपान धृत मान धराधर अनिविकार असिधारी।
हौ मति मन्द चरन सरनागति कर गहि लेहु उबारी।।[2]

इस प्रकार पंजाबी संतों ने सरल शब्दों के द्वारा सामासिक शैली में अपने भावों को जनता के समक्ष प्रस्तुत किया । इसमें भावों की बेरोक लड़ी दृष्टि गोचर होती है और भाषा का एक रस प्रवाह बना है जो संतों की भावनाओं के अनुरूप है ।

- -

१. आदि-ग्रंथ महला ९, धनासरी महला २।।१।। पृ०-६८४
२. शब्द हजारे, श्री दसम गुरु ग्रंथ सं०३

काव्य वक्रोक्ति - पंजाबी संत-साहित्य में वक्रोक्ति के द्वारा कवियों ने अनेक स्थलों पर काव्य सहज का प्रभाव उत्पन्न किया है। गुरु नानक देव-जनेऊ वाले संस्कार की आलोचना करते हुए आश्चर्य-मिश्रित शैली में कहते हैं -

> तुणि वेतहु लोका रेहु विडाणु ।
> मनि अंधा नाउ सुजाणु ।। [1]

इसी प्रकार तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का चित्रण करते हुए बाबर के आक्रमण के विषय में "पाप की जंक लै काबलहु धाइआ" कहते हैं। जंक (बारात) शब्द में कितना व्यंग, कितनी तीखी चुभन छुपी हुई है - एक आश्चर्य मिश्रित भाव भी दिखाई पड़ता है। यह वक्रोक्ति भाषा का चमत्कार है।

सहज सौंदर्य -

पंजाबी संत कवियों ने विशेष रूप से गुरु नानक जी ने सहज-स्वाभाविक रूप में भाषा के बड़े समर्थ और कुशल प्रयोग किए हैं। अपने भिन्न-भिन्न विषयों को कलात्मक रंगों में संप्रेषित करने के लिए उन्होंने विविध काव्य-विधियों का सहज रूप में सहारा लिया है। इनकी काव्य-प्रतिभा का यह चमत्कार है कि विषयों के अनुकूल भाषा अनुगामी होकर चली है। काव्य-वस्तु का यथावत् प्रभाव उत्पन्न करने के लिए शब्दों का चयन भी कलात्मक बन पड़ा है। यही कारण है कि पंजाबी-संतों ने अपनी हर प्रकार की मनोस्थितियों प्रतिक्रियाओं, संवेदन रेखाओं को एक विशेष दृष्टि से चित्रित किया है। ऐसा प्रतीत होता है मानो इन कवियों ने अपने काव्य में शब्द-सौंदर्य की अपेक्षा भाव-सौंदर्य को अधिक चमकाया है। वर्णन की

---

१. आदि-ग्रंथ महला-१, पृ०-४७१

की कुशलता में जो भाव प्रेरक बने हुए हैं, वे अपने आप में उत्कृष्ट है। परन्तु कवियों की शब्द शक्ति, काव्य-चेतना शिल्प चित्रकारी, नाटकीयता, रंग की विविक्ता ने सम्पूर्ण रूप में मिलकर पंजाबी कवियों की काव्य-भाषा को भरपूर निखारा है और काव्य-कला को प्रमापिकता की पदवी का अधिकारी बनाया है।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन के उपरान्त मैं यह कह सकते में संकोच न करूंगी कि पंजाबी संतों की भाषा कलात्मक दृष्टि से प्रौढ़, प्रामाणिक और समर्थ है। काव्य-वस्तु के अनुकूल शब्दावली का विन्यास और शैली का प्रयोग इस भाषा की उल्लेखनीय प्राप्ति है। इनकी शब्द-योजना में किए गए आध्यात्मिक लाक्षणिक, और व्यंजक शब्द प्रयोगों के साथ इसकी अभिव्यंजना शक्ति में बहुत विकास हुआ है। लोक प्रचलित मुहावरे, लोकोक्तियों ने इस भाषा की सम्प्रेषण शक्ति में विस्तार किया है।

इस भाषा का उद्देश्य न केवल विषय वस्तु का स्वरूप चित्रण है, अपितु इसका लक्ष्य चेतना को प्रबुद्ध करके नवीन दृष्टि प्रदान करना भी है।

इस भाषा की प्रकृति समन्वयवादी है, जिस कारण इसकी शब्दावली में विशेषकर गुरु नानक देवजी की काव्य भाषा में अभारतीय अंश प्रविष्ट हुए हैं। परन्तु इस समन्वय के अतिरिक्त भी इसकी शैली एवं मुहावरे पंजाबी ही हैं।[१]

अतः पंजाबी संत-काव्य की भाषा रसात्मक संगीतमय, प्रतीकमय, काव्य-गुणपूर्ण और लाक्षणिक होती हुई कलात्मक सौंदर्य को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करने में सफल हुई है।

- -

१. गुरु नानक से निर्गुणधारा-पृ०-३३७

:- नवम अध्याय :-

" भारतीय संत-साधना में पंजाबी संतों की देन "

भारतीय संत साधना में पंजाबी संतों की देन -

यह एक निर्विवाद तथ्य है कि महापुरुष किसी जाति विशेष अथवा किसी देश में जन्म लेते हैं , किंतु वे किसी जाति विशेष अथवा किसी एक देश की जागीर बन कर नहीं रह जाते , वे संपूर्ण मानव समाज के हितैषी होते हैं और मानव-मात्र का कल्याण करने के लिए अवतीर्ण होते हैं । अगर महापुरुष किसी जाति विशेष के विषय में सोचें और वहीं तक सीमित हों तो कोई भी उन्हें महापुरुष नहीं कह सकता और उनकी गणना भी साधारण व्यक्तियों में होगी।

भारत वर्ष संतों-भक्तों की पवित्र भूमि है । भारत के महापुरुष संत महात्मा एवं गुरुओं ने मानव मात्र के लिए भक्ति का सहज सरल मार्ग प्रतिष्ठापित किया । इस मार्ग पर चलकर मानव अपने लक्ष्य तक पहुंच सकता है, संतों का निर्देशित मार्ग घुमाव, अड़ंगे एवं वक्रता से रहित है । यह मार्ग विरोधों की दीवार नहीं खींचता, अपितु समस्त दीवारों को गिराकर , समस्त सीमाओं को तोड़कर ऐसी विशालता उत्पन्न करता है जिसमें ' तू ' और ' मैं ' का भेदभाव ही मिट जाता है एवं अहं का बीज नष्ट हो जाता है । सभी को एक ही ब्रह्म सब में व्याप्त दिखाई पड़ता है ।

संतों एवं भक्तों के मार्ग सभी के लिए एक समान है। इनका ईश्वर, वाहिगुरु, अल्लाह, राम, रहीम, कृष्ण, करीम न किसी एक का है एवं न ही किसी एक स्थान का रहने वाला है। उसका न कोई विशेष रूप है और न विशेष रंग वह हिंदू मुसलमान, सिख ईसाई सभी का एक इष्ट है। जहां चाहे उसे बैठ कर स्मरण कर लें, जिस रूप में देखना चाहे देख लें। न उसका कोई आदि है न अंत। न वह जन्म लेता है न मरता है वह तो अगम अगोचर, अव्याप्त ,अपार है। वह प्रकाशों का प्रकाश और अनंत शक्ति का पुंज है।

संतों ने उस धर्म का प्रतिपादन किया, जिसमें संकीर्णता का कोई स्थान नहीं। जिसमें मानव-मात्र के लिए प्रेम, सम्मान है। जहां घृणा, द्वेष एवं पक्षपात का कोई स्थान नहीं। केवल मित्रता का भाव ही प्रधान है एवं मानवता के सर्व-हितैषी धर्म का उल्लेख एवं विस्तृत व्याख्या है। यह प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक देश एवं प्रत्येक काल में सुख-शान्ति का मार्ग बताने वाली ऐसी ज्ञान गंगा है, जो सदैव - सदैव प्रवाहित रहेगी।

' भक्ति ' मध्य युग की सबसे बड़ी देन है। इसका प्रस्फुटन आकस्मिक और अप्रत्याशित नहीं था। तत्कालीन वातावरण में भक्ति से अधिक सरल और लाभकारी भावकी संभावना नहीं हो सकती थी।[1]

मध्य युग राजनीतिक दृष्टि से यवन सत्ता के प्रस्थापन और प्रसार का युग था। यवनों ने अपनी तलवार के द्वारा भारत को अधीन कर लिया था तथा भारतीयों की फूट के कारण उन्हें पंगु बना दिया था।

---

१. हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि - डा० गोविंद त्रिगुणायत, पृ०-६८०

यवन भारत में न केवल शासन करना चाहते थे अपितु हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति की जड़ भी खोद डालना चाहते थे । अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए वे क्रूर शासक बनकर तलवार के बल पर हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के लिए बाध्य करते थे । यदि हिन्दू इस्लाम धर्म स्वीकार करने में हिचकता था, तो वे उसे तत्काल मौत के घाट उतार दिया जाता था । हिन्दुओं की माँ-बहनों की लाज उनकी आँखों के सामने लूट ली जाती थी, और वे जीभ तक नहीं हिला सकते थे । देवी-देवताओं की मूर्तियाँ जो अपनी आँखों के सामने पद-दलित अपमानित कर तोड़ी जाती देखते-देखते उनकी आँखें प्रस्तर हो गयी थीं। राजनीति और धर्म के मार्ग से ढकेले हुए हिन्दुओं के सामाजिक अधिकार तक छीन लिए गए थे । वे न तो अच्छा भोजन खा सकते थे और न अच्छे वस्त्र आभूषण ही धारण कर सकते थे । यहाँ तक कि अपने पास तीन महीने से अधिक तक की भोजन सामग्री भी नहीं रख सकते थे। हिन्दुओं को अच्छी नौकरियां भी नहीं दी जाती थी । उन राजनीतिक परिस्थितियों के फलस्वरूप हिन्दू जनता में घोर निराशा, वैराग्य और सगुणोपासना के प्रति प्रतिक्रिया की भावना जाग्रत हो गई थी ।[१]

मध्य युग की धार्मिक स्थिति और भी शोचनीय थी। हिन्दू धर्म पुरोहित वाद के प्रभाव से अंधविश्वासों, मिथ्याचारों, बाह्याडम्बरों एवं धार्मिक संघर्षों का अड्डा बन गया था । दूसरी ओर दर्शन के क्षेत्र में भिन्न-भिन्न दर्शन अपनी बुद्धि के चमत्कार दिखा रहे थे । साधना-क्षेत्र और भी अधिक विकृत और कलुषित हो रहा था ।

---

१. हिन्दी की निर्गुण काव्य-धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि पृ०-६८१

देश की समाजिक स्थिति भी अधिक अच्छी नहीं थी। सदाचार के स्थान पर कु-प्रथाओं ,अंध-विश्वासों का बोलबाला था। यवन समाज हिन्दू समाज से भी अधिक दूषित था । उसमें व्यभिचार, चोरी और अनाचार अपनी पराकाष्ठा पर थे ।

उपर्युक्त भीषण परिस्थितियों से त्रस्त और पथभ्रष्ट सामान्य जनता त्राण के लिए पुकार रही थी । इस प्रकार की सुन कर हिंदू और मुसलमान संत मिलकर एक ऐसा मार्ग ढुंढने लगे जिससे किसी का भी विरोध न हो और जिसमें कोई भी दोष न हो तथा जो सहज सरल स्वाभाविक और अकृत्रिम भी हो । उनके इस प्रयत्न के फलस्वरूप ही ` संत मत ` का प्रवर्तन हुआ ।

इस्लाम के आने के पूर्व भारतीय संस्कृति की यह विशेषता थी कि बाहर से आने वाले अनेकों विदेशी तत्वों को इसने आत्मसात् कर लिया । कई विदेशी संस्कृतियों को मिलाकर अपने - आप को उसने समयानुकूल रखा । हिन्दू कहलाने वाली जाति में नीग्रो, द्राविड़, आस्ट्रिक, आर्य, शक, हुण आदि का मिश्रण था। वह किसी एक पैगम्बर या धर्माचार्य का धर्म नहीं था । इसके सिद्धांतों की एकता में भी विभिन्नता थी और विभिन्नता में भी एकता/इस्लाम और हिन्दुओं में स्थित गहरी खाई को पाटने का प्रयास संतों ने किया ।[१]

संतों ने चाहा कि जनता ` अंधविश्वासों ` से बचे ओर धर्म के नाम ` बाह्याचारों ` में न फंसे । परोक्ष तत्व से भले ही हिन्दू निराकारवादी रहे हों, किंतु उनकी उपासना पद्धति तो सदैव ही साकार रही है ।

- -

१. संत-साहित्य - मजीठिया , पृ०-३६१

अनेक प्रकार के निराकार दर्शनों के उपरांत भी इन्होंने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि परमात्मा का प्रतीक साकार ही है । अपनी दुर्बलता के कारण ही मानव साकार प्रतीक ढूंढता है । सगुणोपासकों की संख्या निर्गुणपासकों से कहीं अधिक है । [1]

' संतों की देन ' का विवेचन करने से पूर्व एक बात स्पष्ट करना चाहूंगी कि इसका अध्ययन किसी विशेष वाद या संप्रदाय के प्रकाश में नहीं किया जाना चाहिए । ' संतमत ' वस्तुत: सब प्रकार के वादों, पंथों और संप्रदायों से परे है । उसका अपना एक व्यवस्थित और मौलिक रूप है । यही कारण है कि इस मत में हमें सर्वत्र पंथवाद, और वादविवाद की निंदा मिलती है ।

' संत-मत ' की विवेचना के लिए संतों की दो स्वभावगत विशेषताओं को भी ध्यान में रखना होगा । संत जन स्वभाव से ही बुद्धिवादी और क्रान्तिप्रिय महात्मा थे । पाखंडपूर्ण अंधविश्वास प्रधान रूढ़ियों के प्रति उनकी सत्यनिष्ठ आत्मा सदैव विद्रोह करती रही है । उनका रूढ़िविरोध क्रान्ति की सीमा तक पहुंच गया था यही कारण है कि उन्हों ने रूढ़ियों के प्रवर्तक मुल्ला और पंडित दोनों का बहिष्कार किया है । कबीर ने लिखा है -

पंडित मुल्ला जो लिख दिया ।
छांडि चले हम कुछ न लिया ।। [2]

जिस कठोरता से उन्होंने रूढ़ियों का विरोध किया था, उसी दृढ़ता से उन्होंने बुद्धिवादी एवं अनुभूत सत्य-खण्डों की भी स्थापना की थी । वे किसी भी बात को तभी स्वीकार करते थे जब वे उनकी बुद्धि की कसौटी पर खरी उतरती थी ।

- -

१. संतसुधासार -भाग: १ पृ०-१०८
२. कबीर ग्रंथावली, पृ०-२७२

यही कारण है कि उनके द्वारा प्रवर्तित मत की प्रवृत्तियाँ वो अनुभूत सत्य के रूप में अभिव्यक्त हुई है या बुद्धिवादिता की ठोस भूमिका पर टिकी हुई हैं । संतों की स्वभावगत विशेषताओं में उनकी अलमस्त फक्कड़ता विशेष उल्लेखनीय है । वे फक्कड़, घुमक्कड़ और मनमौजी संत थे । उनकी फक्कड़ता इन पंक्तियों में दिखाई पड़ती है -

> हम घर जाल्या आपना लिया मुराणा हाथ ।
> अब घर जालौ तास का जे चलै हमारे साथ ।। [१]

उनकी फक्कड़ता ने उनकी अभिव्यक्ति को निष्कपट और प्रवेपपूर्ण तथा उनके मत को अत्याधिक लोकप्रिय बना दिया है ।

संतों में ' दुराग्रह ' का अभाव था । धर्म के ऐसे व्यवहारित नेता भारतीय इतिहास में बिरले ही हैं । वे सहजमार्गी थे । धर्म की कोरी बातों के उपदेश देते रहना उनका लक्ष्य नहीं था । उन्होंने सरल और व्यावहारिक बातों को ही लोगों के समक्ष रखा। धर्म के नाम पर अंधविश्वासों को बढ़ावा देना उनकी परम्परा में नहीं था । धर्म से जो कुछ भी प्राप्त होता है वह उसकी आचार और नीति के कारण ही होता है । इस कारण उन्होंने अपना बल आचार और नीति पर ही दिया ।

पंडित और मुल्लाओं का नाम उन्होंने नहीं पकड़ा । वेदों ब्राह्मणों और मुल्लाओं की निंदा उनका कोई लक्ष्य नहीं था । वे साधुता के प्रतीक थे । वे वाणी के धनी और संकल्प के पक्के थे । वाणी और आचरण से वे विनयी और कोमल थे । किसी के द्वारा अपमानित होने पर भी उस पर क्षोभ न कर अपितु क्षमा कर अपने बड़प्पन को और भी बढ़ा देना संतों का स्वभाव होता है जैसे गुरु अमरदास (सिक्खों के तीसरे गुरु) को गुरु गद्दी दिए जाने पर

---

१. कबीर ग्रंथावली, पृ०-५७

गुरु अंगदजी (सिखों के दूसरे गुरु) के पुत्र दातु को क्रोध आ गया। उसने अपने आपको गुरु घोषित कर दिया और कहा कि अमरदास तो हमारा नौकर है । किंतु अमरदास जी की प्रतिष्ठा बढ़ती जा रही थी । वह चिढ़कर गुरुजी के पास आया और बोला -

" कल तक तो तू हमारा पानी भरता था, आज गुरु बनकर कैसे बैठ गया । " यह कहकर उसने गुरु अमरदास को एक लात जमा दी। लात खाकर गुरुजी ने क्रोध व्यक्त नहीं किया । उन्होंने नम्रता से उत्तर दिया कि ' आपके चरणों को चोट तो नहीं लगी ' ।[1] इससे बढ़कर नम्रता का प्रमाण और कहा मिल सकता है । वाणी और आचरण से वे अत्यन्त कोमल थे । उनकी वाणी और व्यावहारिक करणी में एकता थी । अन्य पुरोहित और मुल्लाओं की तरह उनकी कथनी और करनी में अन्तर नहीं था । यदि ऐसा न होता तो उस घोर पतन के समय में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही से उन्हें आदर प्राप्त न होता । उनकी स्पष्टता में सत्य का प्रतिनिधित्व था घमंड या अहंकार का नहीं । वह तो ऊंची जातियों के अभिमान का प्रत्युत्तर भाव था । निंदा, कुत्सा और विरोध का भी संतों को पग-पग पर सामना करना पड़ा किन्तु सत्य एवं आन्तरिक बल के द्वारा वे सदैव विजयी हुए ।

संतों के आगमन से पूर्व उपनिषदों की यह भावना कि - ' जन्म लेना ही बुरा है और हम प्रयत्न करें कि जन्म लेना ही न पड़े ।[2] लोगों के मन में बैठ चुकी थी । इसकी सत्यता को समझे बिना लोग पलायनवादी बन रहे थे । जीवन उनके लिए घृणा की मूल वस्तु बन गया था । और जैनों ने इस भावना को और अधिक प्रोत्साहन दिया ।

1. पंजाब प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य का इतिहास पृ - २३२
2. संत साहित्य पृ - ३९२

मध्य युग में एक तो राजनैतिक दासता, और ऊपर से यह वैराग्य भावना। इससे लोगों की रही चेतना भी नष्ट हो रही थी। संतों में भी यद्यपि निवृत्ति की भावना किसी न किसी रूप में पाई जाती है, फिर भी उन्होंने गृहस्थ-जीवन की महिमा बताई है। भारत की पुरातन काल में जितनी भी धार्मिक विचारधाराएं मिली हैं उनमें निवृत्ति को किसी न किसी प्रकार स्थान मिला हो है। संतों का मार्ग 'मध्यम', विशेषकर 'सहज' था। सिख गुरुओं ने तो गृहस्थ धर्म की हो महिमा पर अत्यधिक बल दिया। उन्होंने स्पष्ट किया -

"काहे रे बन खोजन जाई।
सरब निवासी सदा अलेपा तो ही संगि समाई।। १ ।। रहाउ ।।"[1]

यह वह धर्म नहीं था, जहां पर कि मुक्ति केवल सन्यास से ही प्राप्त होती है। इसके लिए उन्होंने राजा जनक का उदाहरण सामने रखा। संसार में रहकर संसार से अलिप्त रहना अत्यन्त कठिन है। ~~उनके अनुसार~~- 'गृहस्थ ~~जीवन~~ जीवन' का आदर्श अध्यात्मज्ञान संस्कृति की एक देन कही जा सकती है।

जिस "जाति-प्रथा" को चुनौती देकर भगवान बुद्ध ने एक महान् आन्दोलन का श्रीगणेश किया था संतों ने उसे चरम सीमा पर पहुंचा दिया। उन्होंने कहा कि - केवल ब्राह्मण कुल में ही जन्म लेने से कोई ब्राह्मण नहीं हो जाता। उन्होंने मनुष्य की मर्यादा को पूरा-पूरा ऊपर उठाया व महानता का ठेका ब्राह्मणों ने ही नहीं उठा रखा है। कोई न केवल ब्राह्मणत्व के कारण और न ही कोई शूद्रत्व के कारण महान या नीच हो सकता है। हिन्दुओं में कई जातियां और उपजातियां तो थी ही किंतु मुसलमान भी इस दोष से बचे नहीं थे। शिया और सुन्नी मुसलमान होकर भी एक दूसरे को नीची दृष्टि से देखते थे।

- -

१. ~~सुखमनी - सलोक - ८ - गुरु अर्जुनदेव~~ : धनासरी महला ९ आदि गुरु ग्रंथ साहब

दिनकर ने कहा है कि - " अगर बुद्ध नहीं हुए होते तो इस देश में दादू कबीर नानक और हरिदास निरंजनी कोई भी नहीं हुआ होता ।[1] यद्यपि इस कथन को अक्षरशः तो नहीं माना जा सकता कि इसमें सच्चाई अवश्य " । वह यह है कि तब शायद इन संतों द्वारा जाति प्रथा या बाह्याचारों पर ऐसे गहरे प्रहार न होते । इसलिए संतों ने एकता के व्यावहारिक पक्ष पर अत्यधिक बल दिया ।

" संत विचार धारा " भारत के लिए कोई नई वस्तु तो थी नहीं, किंतु उसकी विशिष्टता तो उस दिन से ही प्रतीत होने लगी थी, जिस दिन से निम्न वर्णों को उच्च वर्णों के अमानुषिक अत्याचारों का सामना करना पड़ा था । संतों को मुसलमानों की अपेक्षा हिन्दुओं से इसलिए बल प्राप्त हुआ क्योंकि मुसलमानों की अपेक्षा वे अधिक उदार थे । हिन्दुओं पर संतों का व्यापक प्रभाव तो नहीं पड़ सका लेकिन लोगों के सामूहिक जीवन पर उसका बहुत प्रभाव पड़ा । निम्न जातियों के लिए यह विचारधारा एक प्रकार से वरदान ही थी। समाज के निम्न धरातल से उठकर उन्होंने यह बता दिया कि अपनी अनवरत तपस्या और साधना से वे उच्च जातियों से कहीं आगे बढ़ सकते हैं।निम्न जातियों को उन्होंने उच्च वर्ण की जातियों के अत्याचारों से रोका । इतना तो नहीं बल्कि उन्हें इस्लाम की ओर प्रवृत्त होने से बचा लिया । निम्न जातियों को इन सन्तों ने भारत के महान् सांस्कृतिक गौरव का परिचय इसी रूप में करवाया । संतों ने ऊंचे आदर्शों का पालन स्वयं कर उसका आदर्श लोगों के समक्ष रखा ।

लगभग १४वीं और १५वीं सदी तक इस्लाम भारत का एक अंग बन गया था । अतः संतों ने इस समय यह अनुभव किया कि उन्हें भारत से बाहर जाने के लिए कहना सर्वथा असंभव था ।

- -

१. संस्कृति के चार अध्याय - पृ०- दिनकर

यहां की मिट्टी का पानी उनमें रक्त बनकर बहने लगा था। अतः संतोंने हिन्दू और मुसलमानों दोनों को वैमनस्य छोड़कर स्नेह सम्बन्ध स्थापित करने का आग्रह किया। उन्होंने राम और रहीम का भेद समाप्त कर कहा -

" राह दोवै इकु जाणै सोई सिझसी। [1]

इनमें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही जातियों के संत थे। भारत के प्रत्येक भाग में इनकी वाणी का प्रसार प्रचार हुआ। संतों की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इन्होंने " जनता की वाणी " में ही अपना संदेश पहुंचाया। समस्त संतों ने हिन्दी में पद रचना अवश्य की। हिन्दी संतों की वाणी तो हिन्दी भाषा में थी ही किंतु महाराष्ट्र पंजाब, बंगाल तक के भक्तों ने भी हिन्दी में अपनी वाणी रची। इस प्रकार संतोंने जहां एक ओर लोगों में एकता का प्रचार किया वहां दूसरी ओर हिन्दी भाषा को प्रचारित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। हिन्दी जिस रूप में आज दिखाई पड़ रही है वह संतों की ही देन है। भाषा की इस एकता ने राष्ट्र के बड़े भाग में पुनः एकता का प्रयास किया। हिन्दी को जन-जन में फैलाकर उन्होंने उसे जनता की भाषा बनाया। परतंत्रता काल में भारत में फारसी राजभाषा के पद पर आसीन रही है। अंग्रेजों के शासन काल में अंग्रेजी राजभाषा बनी। हिन्दी जो भारत की भाषा है, उसे कहीं भी आदर नहीं मिला वह जन-जन के भीतर अदृश्य स्त्रोत्र के समान समायी रही। आधुनिक युग में हिन्दी राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित है। इसकी पृष्ठभूमि के प्रणेता किसी सीमा तक संत ही थे। वैयाकरण के नियमों से अनभिज्ञ होने पर भी ये संत अपनी बात को सहज रूप में जनता के समक्ष रखने में निष्णात थे। [2]

- -

२. संत-साहित्य - भाटिया - पृ०-३६४

१ श्रीआदिग्रन्थ साहब महला १ वार माझ की ५वी पउड़ी

सभी धर्मों के संतों में बाह्य विभिन्नता के रहते हुए भी इनकी मूल विचारधारा में विशृंखला नहीं आने पाई। उनके द्वारा प्रस्तुत मत केवल दार्शनिकों का नहीं था, वह सर्व साधारण का था। मध्य युग में भारतीय सांस्कृतिक पुनरुत्थान में यह एक अद्भुत योगदान है। बौद्ध धर्म भारत में लोकप्रिय तो हुआ किंतु हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान का झोंका वह सहने में असमर्थ रहा अतः वह क्रमशः क्षीण पड़ गया। संत इन सारे झंझावातों को सहने में सक्षम रहे।

अपनी वाणी और कर्म पर अडिग रहने के लिए संतों को बलिदान तक देने पड़े। विशेष रूप से सिख गुरुओं ने इसके ज्वलंत प्रमाण प्रस्तुत किए हैं। गुरु नानक देव से लेकर दशम गुरु गोविंदसिंह का बलिदान इस कथन का प्रमाण है। गुरुनानक देवजी ने मुसलमान शासक बाबर की क्रूरता का सामना किया। बाबर भले ही योग्य शासक था किंतु वह हिन्दुओं से घृणा करता था। सैयदपुर के हिन्दुओं के प्रति किए गये दुर्व्यवहारों और अत्याचारों का संकेत संत बाबा नानकजी ने जोकि वहां उपस्थित थे, किया है। उन्होंने लिखा है कि आज का युग तलवार का युग है, बादशाह कसाई है, हिन्दू जानवर है। न्याय पर लगाकर उड़ गया है, असत्य के इस महान अंधकार में सत्य का सूर्य दिखाई नहीं पड़ता। मैं उसकी खोज में व्याकुल हूं। अहंकार से विमूढ़ित मैं दुख से रोता हूं कि मोक्ष किस प्रकार मिलेगा।[1]

कलिकाल राजे कसाई धरमु परंतु करि उडरिआ।
कूड़ि अमावस सचु चन्द्रमा दीसै नाही कह चड़िआ।
हउ भालि विकुनी होई। आधेरै राहु न कोई॥
विचि हउमै करि दुखु रोई। कहु नानक किनि
विधि गति होई॥[2]

- -

१. सिख रिलीजन, भाग १, २, भूमिका पृ०-४४ "मैकालिफ"
२. आदिग्रंथ महला १, माझ की वार सलोक -३५

और भी -

'राजे सीह मुकदम कुते । जाइ जगाइन बैठे सुत ।।
चाकर नहदा पाइन्हि घाउ । रतु पितु कुति ही चटि जाहु।।
जियै जीआं होसी सार । नकीं वढ़ी लाइत बार ।।[१]

गुरु (पंचम) अर्जुनदेव का बलिदान शहीदों के लिए अनुकरणीय है । अपने सिद्धांतों के लिए बादशाह जहांगीर से लोहा लेना अर्जुनदेव की ही शक्ति की बात थी । भौतिक कष्टों से भयभीत होना वे नहीं जानते थे । इन पर गर्म रेत डाली गयी , लोहे के सलाखों से इनका शरीर दागा गया , खौलते पानी में इन्हें उबाला गया । समस्त यातनाओं को सहते हुए भी इन्होंने आह तक नहीं भरी। बंदीगृह में बैठे भी ये नाम-स्मरण करते रहे । पांच दिन की असह यन्त्रणा सहने के पश्चात रावी नदी में स्नान कर शरीर त्याग दिया - अपने सिद्धांतों के लिये शहीद हो गए । गुरु अर्जुनदेव दया, शान्ति और विनम्रता की मूर्ति थे । अपनी वाणी और नेतृत्व में उन्हें विश्वास था । यदि वह विश्वास कृत्रिम होता तो वे इतने अत्याचार सहन कर अपने प्राण इस प्रकार न त्यागते ।[२]

गुरु तेगबहादुर बलिदानी की परम्परा में एक अनुपम उदाहरण हैं । अपने दादा गुरु अर्जुनदेव की भांति उन्होंने भी धर्म और देश के लिए अपना बलिदान कर दिया इसके पूर्व गुरु अर्जुनदेव के बलिदान के पश्चात सिख धर्म एक मोड़ पर आ खड़ा हुआ । गुरु अर्जुनदेव पर जब अमानुषिक और वीभत्स अत्याचार किए गए तब उनके शिष्यों का खून खौल उठा ।

---

१. संत-साहित्य - मजीठिया, पृ०-३६४
२. संत-साहित्य - मजीठिया, पृ०-१६६

इन जघन्य और अमानुषिक अत्याचारों से बचाने के लिए उन्हें तलवार उठानी पड़ी । सारे पंजाब में उस समय विदेशियों के अत्याचारों के के कारण राजनैतिक वातावरण क्षुब्ध था । उस समय चुप रह जाना निरी कायरता होती । इस युग के संतों में तत्कालीन शासन के विरुद्ध ' विद्रोह ' ~~की आवाज~~ की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है । धर्म के रक्षार्थ श्री गुरु हरगोविंदसिंह (छठे गुरु) जी (जो अर्जुनदेव के पुत्र और गुरु तेगबहादुर के पिता थे) ने तलवार की मूठ पर हाथ रखा था । उन्होंने दो तलवारें एक साथ रखी - एक मीरी की दूसरी पीरी की। बाईं ओर मीरी की तलवार थी जो राजनैतिक शक्ति की प्रतीक थी और दायीं ओर पीरी की तलवार थी जो आध्यात्मिक और दैवी शक्ति, की प्रतीक थी । इन दोनों तलवारों को धारण कर वे ' संत-सिपाही कहलाए, जो इतिहास में विरोधाभास व्यक्तित्व है । किसी भी इतिहास में ऐसा विलक्षण योद्धा आज तक नहीं मिला जो एक साथ संत और सिपाही का कार्य कर सके । समय की मांग और देश में बढ़ते हुए अत्याचारों को देखकर आँखें मुंद लेना भक्तों का कार्य नहीं है । इसी लिये श्री गुरु हरगोविंद सिंह की परम्परा को उनके पुत्र गुरु तेगबहादुरजी ने आगे बढ़ाया।

तत्कालीन बादशाह औरंगजेब कट्टर मुसलमान था। अतः अन्य जातियों के प्रति असहिष्णुता का व्यवहार करने लगा । बलात् धर्म परिवर्तन की घटनाएं घटने लगी । कवि और संगीतज्ञ भी औरंगजेब के अत्याचार से न बच सके । संगीत तो दफना ही दिया गया था । संगीतज्ञों ने दिल्ली में ' संगीत का जनाजा ' भी निकाला था । जजिया का भी विरोध हो रहा था ।

तब भी औरंगजेब के अत्याचार नहीं रुके। औरंगजेब के अत्याचारों से तंग आकर पांच सौ पंडित आनंदपुर गुरु तेगबहादुर के पास पहुंचे । कुरुक्षेत्र हरिद्वार और श्रीनगर आदि स्थानों से भी ब्राह्मण एवं विद्वान वहां गए । इनमें मटन निवासी काश्मीरी ब्राह्मण कृपाराम भी था ।[1] वहीं इनका नेतृत्व कर रहा था । इन्होंने गुरुजी से औरंगजेब के अत्याचार रोकने की प्रार्थना की । औरंगजेब का विश्वास था कि काश्मीरी ब्राह्मण यदि धर्म परिवर्तन कर लें तो सारा भारत दब जायेगा । गुरुजी ने पंडितों से कहा कि किसी महान् पुरुष के बलिदान के बिना हिन्दू धर्म की रक्षा कठिन है । गोविंदसिंहजी उस समय बालक ही थे । सुनकर उन्होंने कहा कि - " इस पुण्य कार्य के लिए आपसे बढ़कर भला कौन महापुरुष हो सकता है ।[2]
गुरु तेगबहादुरजी ने ब्राह्मणों से कहा - बादशाह से जाकर कहो कि तेग बहादुरजी धर्म परिवर्तन कर लें तो सब धर्म परिवर्तन करने के लिये तैयार हैं -" । यह समाचार पाकर बादशाह ने गुरु तेगबहादुर को दिल्ली बुलवा भेजा । दिल्ली आते ही इन्हें बंदी बना लिया गया । बादशाह ने इन्हें इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिये कहा । इनके अस्वीकार करने पर इन्हें इनके अन्य पांच शिष्यों-भाई मतिदास, भाई सतिदास, भाई दयालदास, और भाई गुरुदित्ताजी आदि सहित बंदीगृह में डाल दिया गया । इस्लाम अस्वीकार करने पर इन्हें पहले से अधिक कष्ट दिया जाने लगा । सबसे पहले इनके शिष्य मतिदास को पकड़ा गया। उसे दो तख्तों के बीच बांधा गया और आरे से काटा गया । अंत समय तक मतिदासजी जपुजी साहब का पाठ करते रहे । चांदनी चौक दिल्ली का

- -

१. तवारीख गुरु खालसा - ज्ञानसिंह, पृ०-२७६
२. गुरुविलास - भाई सुखासिंह-अध्याय - ५

' मतिदास चौक ' उन्हीं शहीद का स्मारक है जो आज भी शहीदों की अमर कहानी कह रहा है । भाई दयालजी को उबलते देग में उबाल दिया गया और तब नवम् गुरु से कहा गया कि इस्लाम धर्म स्वीकार कर लो नहीं तो आप के साथ भी ऐसा ही व्यवहार किया जायेगा । इस पर गुरु साहब ने कहा - ' सच्चाई को किसी कीमत पर नहीं छोड़ा जा सकता, आखिर यह देही का ठीकर ही तो फोड़ना है -

चिव चरन कंवल का आसरा, चिव चरन कंवल संग जोड़िए।
मन लौचे बुरिआईयां गुर सबदी इन मन होड़िए।
बांहि जिन्हां दी पकड़िए, सिर दीजै बांहि न छोड़िए।
गुरु तेगबहादुर बोलिआ, धरि पईए धर्म न छोड़िए।। [१]

बादशाह गुरुजी को इस्लाम स्वीकार करने में असमर्थ हो हो गया तब बादशाह ने एक मौलवी को भेजकर यह कहलवाया कि यदि तुम गुरु हो तो कोई चमत्कार दिखाओ , तब तुम्हें छोड़ दिया जायेगा नहीं तो दण्ड स्वरूप धन देना होगा । इस पर भी नवम् गुरु ने स्पष्ट उत्तर दिया कि - धन अमीरों के पास है और करामात पीरों के पास, हम तो प्रभु के फकीर हैं और हमें उसी के नाम का आश्रय है। हां बिना किसी अधिकार के सच्चाई के लिए लड़ मरना सबसे बड़ी करामात है । तेगबहादुर का मौजजिजा यही है । उसकी बहादुरी के आगे जबर जुल्म की तेग हार जायेगी । गुरु तेगबहादुर मानते थे कि - साधो इहु तन मिथिआ मानउ । या भीतर जो राम बसत है साचउ ताहि पछानउ ।। यह उनका महामंत्र था । इनके अनुसार मनुष्य का कार्य ईश्वर की आराधना करना है ।

- -

१. वाणी गुरु तेगबहादुर - (भूमिका सरदार प्यारासिंह पध)
भाषा विभाग पंजाब - पृ०-६१

२ - वही - -६८

पंजी

फिर भी उन्होंने कहा कि वे अपने गले पर लिखकर कुछ चिपका लें जिस पर तलवार का प्रभाव नहीं होगा । अंधविश्वास से भरे दरबार के लिए एक हाथ ही पर्याप्त था । कागज पर लिखा था -

" सर दिया पर सार न दिया ।। [1]

दूसरे दिन गुरु तेगबहादुर को उस स्थान पर लाया गया जहां जलालुद्दीन जल्लाद तलवार लिए खड़ा था । काले बादल छा रहे थे । नवम गुरु ने रोती हुई जनता को शान्त किया एवं स्वयं ध्यान मग्न हो गये । जलालुद्दीन ने अपनी तलवार से उनका सिर धड़ से अलग कर दिया । यह भारतीय जीवन भयंकर काला दिन ११ नवम्बर १६७५ था ।

नवम गुरु का बलिदान दशम गुरु गोविंदसिंहजी ने अत्यन्त मार्मिक शब्दों में काव्य मय वर्णित किया है -

" तेगबहादुर के चलत भयो जगत महिं शोक ।
है है है सब जग भयो जै जै जै सुर लोक ।।
ठीकर फोरि दिलीश सिर प्रभु पुरि किया पयान।
तेगबहादुर सी क्रिया, करीन मैं किन्हुं आन । [2]

आज भी प्रतिदिन प्रतिक्षण शीशगंज गुरुद्वारा, चांदनी चौक दिल्ली से गुरु तेगबहादुर का बलिदानी स्वर गुंजता है। भारत की जनता को उस त्यागी, वैरागी, धीर वीरात्मा नवम गुरु की स्मृति दिलाता है । इस बलिदानी नवम गुरु की जाति भेद रहित उच्च मानवीय वृत्ति का समाचार लोक में फैल गया । अहिंसा और हिंसा, अत्याचार और सदाचार एवं दया और क्रूरता में बलिदानी त्यागी की विजय हुई । भावी युगों में अजर अमर रूप भारतीय जनता के जीवन में सितारों की देन स्मरण रहेगी ।

---

१. वाणी गुरु तेगबहादुर, पृ०-६८
२. विचित्र नाटक, गुरु गोविंदसिंह, पा०-१०, १५-१६

भारतीय बलिदानी वीर इस बलिदानी से सदैव प्रेरणा लेते रहेंगे ।

तिलक जंझू राखा प्रभताका,

कीनो बड़ा कलूमहि साका ।।

साधन हत इति जिन करी।।

सीस दीया पर सीन उचरी।। १

गुरु गोविंदसिंह की देन तो और भी विभूत है। उनका सम्पूर्ण जीवन त्याग और संघर्ष से पूर्ण था । गुरु गोविंदसिंह के व्यक्तित्व में एक साथ संत, कवि और योद्धा का व्यक्तित्व था । इसी कारण वे सफल लोक-नायक हो सके । उन्होंने अपने पिता गुरु तेगबहादुर के बलिदान का प्रतिशोध लेने के लिए तलवार की मुंठ पर उसी प्रकार हाथ रखा जिस प्रकार गुरु हर गोविंदसिंहजी ने अपने पिता गुरु अर्जुनदेव का बदला लेने के लिये रखा था। गुरु गोविंदसिंहजी ने सबसे महत्वपूर्ण कार्य ' सैनिक संगठन ' प्रारंभ का किया । इसके द्वारा उन्होंने भारत में फैली वर्ण व्यवस्था के विष को समाप्त किया) तथा अन्याय के विरुद्ध लड़ने के लिए शक्ति का संचार किया । जो जाति कायर एवं भीरु बन गई थी उसे अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिये संगठित किया। जो हिन्दू जाति मुगलों के अत्याचारों के समक्ष बकरी एवं कुत्ते की मौत मर रही थी वह भी अपने सम्मान और प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष करने लगी ।

गुरु गोविंदसिंह जी की सबसे बड़ी देन है उनकी ' वीर रसात्मक रचनाएं ' भले ही आज तक उनकी रचनाओं का सही मूल्यांकन नहीं हो पाया है, उसका कारण यह है, कि उनकी रचनाएं देवनागरी लिपि में न होकर फारसी और गुरुमुखी में है ।

---

१. विचित्र नाटक - गुरु गोविंदसिंह - पा०-१० , १३

इसलिये हिन्दी के साहित्यकार गुरुजी की एक दो रचनाओं के नाम गिनकर ही छुट्टी कर लेते हैं । वस्तुत: उनकी अनेक रचनाएं हैं और उनका साहित्यिक सौष्ठव अन्य गुरुओं की रचनाओं की अपेक्षाकृत अधिक है ।

गुरु गोविंदसिंहजी अपने अनेक कार्यों के साथ दो प्रमुख कार्य किए - प्रथम खालसा पंथ की स्थापना एवं द्वितीय गुरु ग्रंथ साहिब को गुरु पद पर आसीन करना।

खालसा सजाकर उन्होंने प्रत्येक सिख को यह आज्ञा दे रखी थी कि वह कभी भी अपनी कृपाण से न तो कोई अत्याचार करें और न अपना धर्म बलात् दूसरों पर लादें । शक्ति का प्रयोग केवल निर्बल को सबल के पंजे से मुक्त कराने तथा न्यायोचित कार्यों में ही किया जाए ।[1] देशसेवा के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व बलिदान किया किंतु भक्ति भावना को कभी भी न छोड़ा । युद्धों में भी वे अपने सैनिकों सहित ईश्वर की उपासना का समय निकाल लेते थे । ईश्वर की प्रार्थना और आराधना उनका दैनिक कार्यक्रम था और इसका पालन वे गोलियों और तीरों का बौछार में भी निरंतर करते रहे । धर्म रक्षा के लिए स्वयं को बलिदान कर देना ही उनका लक्ष्य था । भारतवर्ष ने अनेक विद्वानों साहित्यकारों तथा वीरों को उत्पन्न किया किंतु वे एक साथ योद्धा और संत न बन सके । गोस्वामी तुलसीदास ज्ञानी एवं महात्मा अवश्य थे, पर वे योद्धा नहीं थे, चंदबरदायी कवि और योद्धा तो थे, पर वे संत नहीं थे । ऊंच कोटि के योद्धा और नीतिज्ञ उपमा विहीन ज्ञानी एवं संत तथा सर्वश्रेष्ठ कवि और साहित्यकार श्री गुरु गोविंदसिंह भारत के गौरव थे ।[2]

- -

१. दि सिख रिलीजन, वोल्युम -५ ,पृ०-१९०
२. वही पृ०-१४८

गुरुजी एकेश्वरवादी थे । मूर्ति पूजा का उन्होंने सदैव खंडन किया और स्पष्ट किया कि प्रेम के बिना सगुण अथवा निर्गुण ईश्वर को मानना व्यर्थ है । प्रेम के द्वारा ही ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है । जो अशिक्षित और अज्ञानी हैं, वे ही बाह्याडम्बरों में विश्वास रखते हैं । ब्राह्मणों द्वारा प्रसारित धार्मिक अंधविश्वास के वे घोर विरोधी थे । गुरुजी धर्म परायण वीर पुरुष थे । प्रारम्भिक जीवन में ही उन्होंने कठिनाइयों का सामना त्याग बलिदान, धैर्य और निर्भयता पूर्वक करने का पाठ सीख लिया था। वे दृढ़ संकल्पी व्यक्ति थे और अपने संकल्प पर प्रकृति के नियमों की तरह अटल रहते थे । वे ईश्वर से वरदान मांगते हैं -

देहु शिवा वर मोहि इहै, शुभ कर्मन ते कबहु न टरों।
न डरो अरि सों जब जाइ लरों। निश्चय कर अपनो जीत करो।
अरु सिख हों अपने मन को, इह लालच हौं गुण तौ उचरों।
जब आयक अउद निदान बनै । अतही रण में तब जूझ मरों। [1]

उनकी देनों की गिनती कहां तक कराई जाए। उनका वैयक्तिक प्रभाव ही उनके सैनिकों पर विशेष रूप से पड़ा। उसी कारण वे युद्धों में सदैव विजयी हुए । वे कर्म निष्ठ योगी थे । देश, जाति, धर्म के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया और अपने निजी पारिवारिक सुख से जाति और देश के सुख को सर्वोपरि समझा। वे त्याग के मूर्ति और मानवता की भावना से ओत-प्रोत थे । शरणागत की रक्षा करना वे अपना कर्तव्य समझते थे । अतः चारों पुत्रों के बलिदान करने पर भी वे प्रसन्न चित्त रहे । इतिहास में इतनी महान देनों का योगदान देने वाले विरले हैं ।

---

1. चंडी चरित्र, छंद सं० २३१ - गुरुगोविंदसिंह

सिख गुरु सभी प्रकार के कष्ट सहन कर भी अपने मार्ग से विचलित नहीं हुए । ' समन्वय ' के सिद्धांत को लेकर उन्होंने एक ऐसा धर्म प्रस्तुत किया जिसके मतावलम्बियों ने भारतीयसंस्कृति के आदर्शों की पुनः स्थापना की । उन गुरुओं की परम्परा तो समाप्त हो गई किंतु उनके पश्चात उनकी वाणी को लेकर अमरता प्रदान करने के लिए गुरु ग्रंथ साहिब का रूप रह गया । दस गुरुओं की यह क्रमिक परम्परा भारत के धार्मिक इतिहास की महत्वपूर्ण घटना है । उस युग में जब एक योग्य गुरु को योग्य शिष्य प्राप्त नहीं होता था उस समय सिख गुरुओं में एक के पश्चात एक दस योग्य गुरु हुए । वे योग्य अधिकारी थे । पंजाब (प्राचीन समय का पंचनद) विदेशियों द्वारा रौंद डाला गया था , विदेशियों का गढ़ बन चुका था । पंचनद की आर्य संस्कृति तुर्क और अफगानों के नीचे अपने आपको मिटा चुकी थी । इसकी पुनः स्थापना का श्रेय सिख गुरुओं को ही है । विदेशियों ने पश्चिमोत्तर भाग से प्रवेश कर भारत पर आक्रमण किया और सिखों ने भारत के उसी पश्चिमोत्तर भाग पर आक्रमण कर विदेशियों को एक बार भारतीयों की शक्ति बता दी थी । रणजीतसिंह की सेना ने भारत के पश्चिमोत्तर भाग को रौंद डाला था । यह पंजाबी संतों की वाणी का ही प्रभाव था ।[1] उनकी वाणी में कृत्रिमता होती तो इतने सिख भक्त कभी बलिदान न देते । सिख गुरुओं की विचारधारा ने परिस्थिति विशेष के कारण ही एक विशेष धर्म का स्वरूप लिया । ये परिस्थितियाँ हिन्दी संतों की परिस्थितियों से भिन्न थीं । हिन्दी संतों की अपेक्षा पंजाबी संतों को अमानुषिक अत्याचारों का अधिक सामना करना पड़ा ।

- -

१. संत-साहित्य - मजीठिया , पृ०-३६५

'जातिप्रथा को चुनौती' देने के पश्चात संतों ने 'हिन्दू मुस्लिम ऐक्य' प्रयास में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। सूफियों और भक्तों के बीच में संतों ने आकर इस्लाम और हिन्दुत्व दोनों को एकता के सूत्र में बांधा। जाति और धर्म अनेकता के कारण होते हैं। वह अनेकता संतों ने संस्कृति के अनुशासन के नीचे दबा दी और एक नए मानव धर्म का अभ्युत्थान किया। संतों का योगदान-समाज, साहित्य और धर्म में सबसे अधिक था। समाज, साहित्य और धर्म के दृष्टिकोण से यदि इनकी देनों को देखें तो उनके कार्यों की गंभीरता समझ में आ सकती है। वाह्याचार, छुआछूत आदि के विरोध में अपने विचारों को प्रकट कर भारतीय समाज में इन्होंने एक क्रान्ति को जन्म दिया। इतना ही नहीं अपितु निम्नजातियों की सामाजिक मर्यादा को उनकी तत्कालीन अवस्था से कहीं ऊपर उठाया। अवतारवाद, मूर्ति पूजा आदि विरोध के माध्यम से धर्म से इन्होंने अंधविश्वास दूर करने का प्रयास किया। साहित्य के क्षेत्र में जो इनकी देन है वह सर्वविदित है।[१]

इनकी वाणी में कड़ुवाहट है किंतु औषधि का का घूंट कड़ुवा ही होता है। भारतीय मध्यकालीन संस्कृति की एकता को बनाये रखने का श्रेय संतों का है। कबीर नानक, दादू ने जो भी कहा वह लोगों की आत्मा की सच्ची वाणी थी। इसका न तो कट्टर ब्राह्मण खंडन कर सकते थे, न ही कट्टर मुसलमान। संत अपने समय से बहुत आगे चल रहे थे। भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात हम जिन आदर्शों को स्थापित करने का प्रयास कर रहे हैं उनका आरम्भिक स्वरूप संतों की वाणी में सहजमें देखा जा सकता है। इस दृष्टि से हिन्दी और पंजाबी संतों का भारतीय संस्कृति के अभ्युत्थान में महत्वपूर्ण योगदान है।[२]

---

१. संतसाहित्य - मजीठिया, पृ०-३६६
२. वही वही

साधना के क्षेत्र में पंजाबी संतों का योगदान -

पंजाबी संतों की भारतीय संत साधना में भी महत्वपूर्ण देन है जिन्हें विस्मृत नहीं किया जा सकता । किसी वस्तु की सिद्धि के लिए किया गया प्रयत्न आध्यात्मिक शब्दावली में ' साधना ' कहलाता है । डा० रामजीलाल सहायक के अनुसार मूल तत्व (ब्रह्म) के साक्षात्कार या आत्मा के शुद्ध स्वरूप में स्थिति के लिए साधक (जिज्ञासु) को कई प्रकार के प्रयत्न करने पड़ते हैं , जिनको ' साधना का नाम दिया जाता है ।[1] सिद्धि अर्थात फल की प्राप्ति के प्रयोजन के साथ जो कार्य किया जाता है उसका नाम है साधना ।[2] साधना का अर्थ है मन को किसी विषय में एकनिष्ठ भाव से जोड़ना । मनुस्मृति के अनुसार जिसके द्वारा चार पदार्थ (धर्म अर्थ, काम, मोक्ष) को साधा जाए वही साधना है ।[3] डा० शेरसिंह साधना को ' मार्ग ' नामकरण देते हैं और लिखते हैं कि - ' किसी मत के धार्मिक और व्यावहारिक पक्षों में भेद बहुत पुराना है । एक का पहलू सिद्धांत दर्शन है और दूसरा पहलू है ' मार्ग ' , उस दर्शन को जीने का ढंग। दूसरा पक्ष होता है - मार्ग (गाड़ी, रास्ता, पंथ, मार्ग) जिस पर चलकर प्रत्येक व्यक्ति बेखटके निश्चिंत होकर सिद्धांत पक्ष में बताई गई मुक्ति को प्राप्त कर सके । ये दो पक्ष प्रत्येक मत में हैं ।[4]

उपरोक्त विवेचन का सार यह है कि चिंतन के मार्गप्रद जिज्ञासु, ब्रह्म आत्मा, जीव+ सृष्टि तत्व आदि की वास्तविकता को जानने की चेष्टा करता है । उसको इस की प्रतीति हो जाती है कि ब्रह्म निर्गुण एवं अव्यक्त है, निरंकार है,आत्मा अजर है ,अमर है।

---

१. कबीर दर्शन-पृ०-२४८
२. कल्याण (साधना अंक) पृ०-१६८
३. साध्यते या चतुर्वर्ग सैवास्ति साधना
४. फिलॉसोफी ऑफ सिक्खिज्म, पृ०-२६०-डा०शेर सिंह

सारे ब्रह्मांड एवं घट-घट में निरंकार बसा हुआ है । आत्मा के प्रकाश के साथ परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है । परन्तु इतने से ही समस्या का समाधान नहीं हो जाता । इन सिद्धांतों के अनुभव के उपरान्त इनकी प्राप्ति के लिये अर्थात आत्म-पहचान या परमात्मा के साक्षात्कार के लिए अभ्यास आवश्यक है । बिना अभ्यास के अनुभव के कोरा ज्ञान व्यर्थ है । यही अभ्यास ही ' साधना ' है । बौद्धिक पद्धति का चिंतन यहां पहुंच कर अभ्यासी बन जाता है। इसी को साधक कहना चाहिए । चिंतन के बाद साधना के द्वारा ही सही अर्थों में मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है।

पंजाबी संतों की साधनाओं को विभिन्न नामों से विभूषित किया गया है । डा० गोविंद त्रिगुणायत सर्व भारतीय निर्गुण धारा को सामने रखते हुए निर्गुण काव्य की साधना को ' सहज साधना ' कहा है । वे लिखते हैं - ' हमारी पक्की धारणा है कि उन्होंने (कबीर, गुरुनानक आदि) तीनों साधनाओं (ज्ञान, योग, भक्ति) का समन्वय करके एवं उसका सहजीकरण करके एक नये साधना मार्ग को प्रचारित किया। उसको हम ' सहज साधना ' की संज्ञा दे सकते हैं '। [1] डा० शेरसिंह के अनुसार ' संत मार्ग (पंजाबी गुरमति मार्ग) भले ही इन तीनों मार्गों के कुछ कुछ अंश रखता है फिर भी इन तीनों में से किसी एक के साथ नहीं मिलाया जा सकता । यह एक नया मार्ग है....... हम इस मार्ग और सिद्धांत को ' नाम ' पक्ष को ' विस्माद ' कहेंगे । [2]

डा० मनमोहन सहगल का विचार है - इसलिये गुरुनानक पंथ को ' निष्काम प्रवृत्तिमय ज्ञानपूर्ण भक्ति मार्ग कहा जाये तो अनुचित नहीं होगा । [3]

---

१. हिन्दी की निर्गुण काव्य धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि - पृ०-४६४

२. गुरमति दर्शन - पृ०-२७५

३. संत काव्य का दार्शनिक विवेचन - पृ ०-२५२

इसी प्रकार डा० सुरेंण सिंह पिलखु का कथन है कि - ब्रह्म प्राप्ति के जिस मार्ग का निरुपण ग्रंथ साहिब में किया गया है, उसका नाम 'गुरमति साधना मार्ग' रखा गया है । [१] 'विस्माद मार्ग' 'निष्काम प्रवृत्ति मार्ग' और 'गुरमति साधना मार्ग' आदि विभिन्न नाम कल्पित किए हैं, परन्तु अगर समुचे पंजाबी संत साहित्य को दृष्टि में रखकर पंजाबी संतों की साधना को 'निर्गुण भक्ति साधना' कहा जाए तो न्याय संगत हो सकता है और पंजाबी संतों की साधना का पता भारतीय संत-साधना के समकक्ष रख कर इनकी देन को समझा जा सकता है ।

पंजाबी संतों की साधना 'निर्गुण भक्ति साधना है । अर्थात वह भक्ति जो उस परम शक्ति के लिए की जाती है जो अरूप है, निराकार है, जिसको सैद्धांतिक शब्दावली में 'निर्गुण' कहा गया है अर्थात जो निर्गुण साधकों को मान्य है, जो भक्ति सम्प्रदाय की 'वैधी' भक्ति के विपरीत 'रागानुगा' भक्ति से मिलती है । रागानुगा भक्ति 'अनुराग' परमात्मा के प्रेम के सहारे चलने वाली भक्ति जो वैराग्य के विपरीत है । किंतु 'रागानुगा' एवं निर्गुण' में किंचित अंतर है । रागानुगा का संबंध सगुण प्रभु के साथ है जब कि निर्गुण का संबंध निर्गुण प्रभु के साथ है । यद्यपि दोनों की प्रकृति और स्वभाव एक सा है । निर्गुण भक्ति को 'पराभक्ति' की संज्ञा भी दे सकते हैं । इस भक्ति के अन्तर्गत बाह्य-आडम्बर, कर्मकांड, अनुष्ठान, विधियों और विधानों को त्यागा गया है और आन्तरिक अर्थात आध्यात्मिक प्रकार की विधियाँ जैसे -

- -

१. पंजाबी दुनियाँ, गुरुनानक, अंक पृ०-८६

सिमरण, जप, ध्यान, मर्यादापूर्ण प्रीति आदि को महानता दी गई है। यही `बिस्माद मार्ग है जिसका अर्थ है आन्तरिक आनंद की अनुभूति।

पंजाबी संतों ने अपनी साधना में निःसंदेह `भक्ति` को प्रधानता दी है। डा० जयराम मिश्र लिखते हैं कि ` श्री गुरु ग्रंथ साहिब में भक्ति प्रधान है, यह बात बिना वाद-विवाद के पुष्ट होती है.......... गुरुओं के द्वारा निरूपित सारे मार्ग भक्ति की धारा से सिंचे हुए हैं। बिना परमात्मा की भक्ति से कर्म पाखंडपूर्ण और आडम्बरयुक्त हैं। ज्ञान शुष्क ज्ञान मात्र है एवं योग केवल शारीरिक कसरत है। परमात्मा की प्रेम-भक्ति ही कर्मयोग को निष्काम कर्मयोग बनाती है, ज्ञान को ब्रह्म ज्ञान का रूप देती है और योग को सहज योग में परिवर्तित कर देती है। इसलिए गुरु साहिबों के अनुसार किसी भी मार्ग की साधना बिना भक्ति के निष्प्राण है थोथी है।[१]

डा० मनमोहन सहगल के अनुसार स्पष्ट है कि पंजाबी संतों ने गुरुमत के अर्थों में भक्ति, ज्ञान और कर्म तीनों का उचित रूप में समन्वय प्रस्तुत किया है, किन्तु प्रमुखता `भक्ति` की ही है।[२] डा० दिलीप सिंह दीप लिखते हैं - जपुजी एवं गुरुनानक देव की वाणी में भक्ति-योग का रंग प्रधान है, जिसका मुख्य आधार प्रभु का नाम है।[३]

परन्तु एक बात जिसका उल्लेख करना नितांत आवश्यक है वह यह है कि पंजाबी संतों की भक्ति वह भक्ति नहीं है, जिसे हम परम्परा रूप में भक्ति समझते हैं।

- -

१. श्री गुरु ग्रंथ दर्शन-पृ० २६१ - २६३
२. संत काव्य का दार्शनिक विश्लेषण-पृ०२५३
३. जपुजी.... एक तुलनात्मक अध्ययन-पृ०१२१

उस भक्ति का सीधा संबंध अवतारवादी धारा के साथ है जिसमें प्रभु का सगुण रूप ही स्वीकार है, परन्तु इस भक्ति का अवतारवादी रूप नहीं वरन् ब्रह्म शक्ति है। अपनी इसी विशेषता के कारण इस भक्ति को " निर्गुण भक्ति " कहना युक्ति संगत है। भारतीय संत साधना की समकक्ष निर्गुण भक्ति साधना " को रखकर तुलनात्मक रूप प्रस्तुत कर सकते हैं -

भारतीयसंत साधना एवं निर्गुण भक्ति -

भारत की आध्यात्मिक साधना के इतिहास में भक्ति के निम्नलिखित रूप हैं - क- भक्ति मार्ग

ख- कर्ममार्ग

ग- योग मार्ग

घ- ज्ञान मार्ग

ङ- सूफी मार्ग

निर्गुण वाणी में इन सभी मार्गों के तात्त्विक संकेत मिलते हैं। परन्तु इन सभी में निर्गुण भक्ति का जो स्पष्ट स्वरूप उजागर हुआ है, उसको जानने के लिए इन सभी का संक्षिप्त तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक है।

क- निर्गुण भक्ति एवं भक्ति मार्ग - दक्षिण के आलवार भक्तों व उत्तरी भारत के संतों की छत्रछाया में भक्ति आन्दोलन उत्पन्न हुआ जिसके परिणाम स्वरूप पंजाब में बड़े वेग से नाम-भक्ति की मधुर गूंज गूंजी। गुरु नानक देवजी उसके आदि प्रवर्तक थे। नानक वाणी में इसकी प्रतिध्वनि बड़े जोर से सुनाई देती है। गुरु नानकजी का महावाक्य है -

" भाजो भगति कर नीवु सदाए। तऊँ नानक मोखंतर पाए। [1]

भक्ति के साथ ही मुक्ति की प्राप्ति बताई गई है। धनासरी राग में बड़े ही स्पष्ट शब्दों में गुरुनानकजी उच्चारते हैं - हे लोगों सुनो। बिना भक्ति से प्रभु के घर निवास नहीं कर सकते।

---

1. आदिग्रंथ महला-1, पृ0-470
2. वही पृ0-663

बाकी के पंजाबी संतों एवं गुरुओं ने भी भक्ति की स्थापना में गुरु नानक का ही अनुकरण किया है । परन्तु भक्ति के स्वरूप चिंतन में गुरुनानक ने एक बड़ा भारी परिवर्तन कर दिया है । गुरुनानक सम्प्रदाय की भक्ति अन्य भक्तियों से श्रेष्ठ है ।

भारत में भक्ति के अंश बहुत प्राचीन हैं । साधना में क्षेत्र में भक्ति मार्ग का बड़ा आदर है। गीता में श्रीकृष्ण ने भक्ति मार्ग को अन्य विधाओं से श्रेष्ठ बाना है ।[1] भक्ति के दो भेद परा और गौणी माने जाते हैं । गौणी के वैधी और रागानुगा प्रभेद गये हैं । भागवत में नौ प्रकार की " नवधा भक्ति" बताई गई है । किंतु भक्ति के जितने भी लक्षण एवं प्रकार भेद हैं उन सभी में दो तत्त्वों पर विशेष बल दिया गया है -

१- ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम

२- सांसारिकता से वैराग्य ।

भक्ति का यह स्वरूप भारतीय धर्म ग्रंथ गीता, भागवत, पुराण, आदि में उपलब्ध है ।[2]

पंजाबी संतों के भक्ति अंश इस परम्परा में रखकर परखे जा सकते हैं । गुरुनानक सम्प्रदाय की भक्ति के सबसे प्रथम विशेषता है कि इनकी भक्ति का विषय " निर्गुण ब्रह्म " है, अवतार नहीं । सूर तुलसी की भक्ति " सगुण भक्ति" है और संत कबीर, गुरुनानक की भक्ति " निर्गुण भक्ति " है । गुरुनानक की भक्ति का स्वरूप निर्गुण भक्ति ही है । " भक्ति ही वे परम सत्ता (ब्रह्म) में अनन्य प्रेम, विरह, तड़प, विव्हलता, एवं सहजवादी

- -

१. गीता ६।२ (राजविद्या राज गुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्)

२. सूर और उनका साहित्य, पृ०-२२७ डा० हरवंशलाल शर्मा

...... शैली में प्रकट करते हैं । इस दृष्टि से गुरुनानक की भक्ति ' रागनुगा भक्ति ' ही जिसमें अपने निर्गुण प्रभु के साथ ' राग ', अर्थात प्रेम की मात्रा बहुत अधिक । गुरु वैधी भक्ति में विश्वास नहीं करते क्योंकि वे वैधी भक्ति की पूजा विधियों, विधानों, क्रियाचारों एवं सम्प्रदायिक चिन्हों का सारहीन मानते हैं।[1] इस प्रकार गुरुनानक सम्प्रदाय की निर्गुण काव्यधारा की भक्ति न तो भारतीय परम्परा के उस रूप से मिलाई जा सकती है, जिसमें ' पोथी ज्ञान को आवश्यक समझकर देह साधना का महत्व माना जा सकता है और न ही उस ईश्वर प्रधान सूफी भक्ति के साथ, जिसमें सूफी साधकों की स्थूल तड़प और विव्हलता, उन्माद एवं मादकता की हद तक पहुंचती है। गुरुनानक एवं पंजाबी संतों की भक्ति का रूप स्वच्छ एवं निर्मल है जिसमें दीनता, नम्रता, विश्वास, मर्यादा, भाव एवं वैराग्य की प्रधानता है । इसलिए पंजाबी संत साहित्य में भक्ति का अद्भुत निर्गुण भक्ति रूप मिलता है ।

स- निर्गुण भक्ति और कर्म मार्ग -

भारतीय दर्शन में परम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये ज्ञान भक्ति, योग के साथ कर्म की स्थिति भी स्वीकार की गई है । कर्म करना और उसके फल पर विश्वास करना ही कर्मवाद है । संसार में हर क्षण कोई न कोई गति चलती रहती है । और प्राणी क्रियाशील है। अनादि काल से संसार में कर्म चक्र चला आ रहा है जिस दिन यह चक्र रुक जायेगा संसार वहीं रुक जायेगा ।[2] भारतीय सभी दर्शन प्रणालियों एवं सम्प्रदायों में कर्म पर विवेचन हुआ है । वास्तव में कर्म हमारे जीवन का महत्वपूर्ण अंग है । विश्व की प्रत्येक वस्तु में ' रजोगुण ' वर्तमान रहता है ।

- -

१. पाढ़ि पुस्तक संध्या वाद मिस पूजासि बगुल समाधं.....
सा फोकिट निसफल करमं-आदि ग्रंथ महला पहला, पृ०-४७०

२. भारती दर्शन, उमेश मिश्र, पृ०-३६

रजोगुण का स्वभाव है - क्रियाशीलता । इसलिए सांसारिक वस्तुओं में किसी न किसी रूप में क्रियाँ वर्तमान रहती है । श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है - हम कर्मकिए बिना एक पल भी नहीं रह सकते, कर्म हमारा स्वाभाविक कार्य है । [1]

गुरुनानकजी कर्म के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए अपने काव्य में ` कर्मभूमि ` करमखंड ` का प्रयोग करते हैं -

" केतीआ करम भूमि मेरू केते
करम खंड की बाणी जोरु " [2]

कर्म को निर्गुण काव्य में विभिन्न शब्दों द्वारा प्रकट किया गया है। बहुधा ऐसे शब्दों की मूल धातु क्री है जिसका अर्थ है ` करना ` ऐसे शब्द हैं - कर्म, करनी, करमाऊ, कार, किरत, घालणा आदि ।

कर्म योग एवं कर्मकाण्ड में अन्तर है । कर्मकाण्ड में यज्ञ, होम, पूजा, तर्पण, संध्या, पुस्तक पाठ, क्रिमँ आते हैं। इसी में शिखा सूत, तीर्थ गमन, और अन्य कर्म माने जाते हैं। गुरुनानक ने इन कर्मकांडी कर्मों को स्वीकार नहीं कियाहै। उनके अनुसार - होम, यज्ञ, पुण्य, तप, पूजा इनसे देह को दुखी किया जाता है । पुस्तक पाठ संध्या कर्म में प्राणी उलझ मरता है। इनके द्वारा मुक्ति की प्राप्ति संभव नहीं ।

" जगन होम पुन्न तप पूजा देह दुखी नित दूख सहै ।" [3]

धंधा अर्थात कर्मकांडों को करने से मन का भ्रम नहीं मिटता -

धंधा करम सगली पति खोवहि भरम न मिटसि गंवारा । [4]

- -

१. गीता ३।५
२. आदिग्रंथ महला-१, पृ ७७-८
३. वही पृ०-११२७
४. वही पृ०११२७

इसी धारणा के अन्तर्गत मांक की वार राग में गुरनानकजीने जैन साधना के बाहरी आचारों का एवं सुही राग में योगियों के सिंधा, डंडा, भस्म, मुद्रा, सिंगी आदि का खंडन किया है । १
पंडित समाज को सम्बोधित करते हुए गुरु अर्जुनदेव जी कहते हैं - कि यदि अपने घर परलोक में कुशलतापूर्वक जाना है तो कर्मकांड का अहंकार न करो एवं राम नाम का गायन करो -

" राम नाम गुण गाए पंडित । करम कांड अहंकार न कीजै कुसल सेती धरि जाए पंडित । २

इस प्रकार पंजाबी संतों के स्वरों में कर्मकांडों का निषेधात्मक स्वर गुंजता सुनाई देता है । परन्तु कर्मयोग के प्रति गुरुदेवजी की मान्यता स्पष्ट प्राप्त होती है । गुरुजी अपने कर्मयोग संबंधी आशय को कहीं " आध्यात्मिक कर्म " एवं कहीं ब्रह्म कर्म " कहकर प्रकट करते हैं । उनके अनुसार जो आध्यात्मिक कर्म करता है वही सच्चा है ।[3] इसी प्रकार " आसा दीवार " में - जे जाणसि ब्रहमं करमं । सभ फोकट निसचउ करमं " । के द्वारा ब्रह्म कर्म के ज्ञान के लिए उपदेश देते हैं। गुरु अर्जुनदेव जी ने स्पष्ट शब्दों में कर्मयोग को प्रकाशित किया है । उनके अनुसार -

" उद्यम करेदिआ जीउ तू कमावदिआ सुख भुंच
धिआइदिआ तू प्रभु मिलु नानक उतरी चिंत ।। ४

इस प्रसंग में डा० जयराम मिश्र का यह कथन उल्लेखनीय है कि सिख गुरुओं (पंजाबी संतों) ने कर्म त्यागने के लिये नहीं अपितु कर्मों को विधि पूर्वक करने पर बल दिया है । ५ गुरुजी के अनुसार सारी जड़ चेतन सृष्टि के अन्दर वर्तमान एक ही शक्ति कि निर्मित किए हुए कर्म आध्यात्मिक कर्म है ।

- -

१. आदि ग्रंथ महला-१, पृ०-७३०
२. आदि ग्रंथ महला-५, पृ०-८६१
३. आदि ग्रंथ महला-१, पृ०-२२३
४. आदि ग्रंथ महला-५, पृ०५२२
५. श्री गुरु ग्रंथ दर्शन, पृ०-२२७

निर्गुण काव्य में आध्यात्मिक कर्म उन कर्मों को कहा जाता है, जो जीवात्मा और परमात्मा के बोध एवं उनके बीच संबंध स्थापित करते हैं। गुरुनानक देवजी ने आध्यात्मिक कर्मों को सच्चा माना है।[1]

आध्यात्मी-करण : निर्गुण काव्य में कर्मयोग का एक और रूप भी प्राप्त होता है, वह है ' चिन्हात्मक बाहरी कर्मों का आध्यात्मीकरण। यह आध्यात्मीकरण ' निर्गुण कवियों की व्यापक रूप से अपनाई गई है एक अद्भुत शैली है। इसमें प्रचलित धार्मिक एवं सम्प्रदायिक अर्थों के स्थान पर आन्तरिक अर्थों की व्यंजना ही आध्यात्मीकरण की विधि है, जो निर्गुण वाणी में, विशेष रूप से नानक वाणी में बड़े विस्तार से मिलती है। गुरु नानक देवजी ने पांच नमाजों और पांच समयों के आध्यात्मिक अर्थ स्पष्ट किए हैं। उनके अनुसार सत्य ' पहली नमाज है, हलाल दूसरी, ' खैर खुदाए तीसरी, शुद्ध नीयत चौथी और सिफतसलाह पांचवीं। इसी प्रकार योगियों, ब्राह्मणों जैनियों के क्रियाचारों के आध्यात्मिक अर्थ प्रस्तुत किए हैं। बाहरी क्रियाचारों के आध्यात्मीकरण का उद्देश्य यह है कि गुरुजी इसके द्वारा संयमी जीवन, एवं नैतिकता पर बल देना चाहते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि पंजाबी संत काव्य में ' कर्मसाधना ' की कोई विशेष प्रमुखता नहीं है। प्रमुखता केवल ' भक्ति ' को ही है जिसके सहायक रूप में कर्मयोग का थोड़ा बहुत वर्णन मिल जाता है।

निर्गुण भक्ति एवं योग मार्ग - पंजाबी संत काव्य में योग के तत्व काफी उभर कर सामने आए हैं। योग के ये तत्व रहस्यवादी अनुभव, दार्शनिक व्याख्या, ब्रह्म निरूपण, सृष्टि विज्ञान, साधना प्रणाली, सांस्कृतिक वायुमंडल एवं जीवन मुक्ति आदि प्रत्येक क्षेत्र में सांकेतिक होते हैं।

- -

१. आदि ग्रंथ महला-१ पृ०-२२३

यह पृथक बात है कि ये यौगिक अंश पंजाबी संत साहित्य में अधिकांशत: नवरूपित होकर आए हैं, परम्परागत रूप में नहीं ।

' योग ' शब्द के दो अर्थ माने गए हैं - पहला है जीवन का अन्तिम लक्ष्य और दूसरा है उस तक पहुंचने वाला मार्ग यानी साधना । वस्तुत: साधना ' ही योग है । अर्थात चित्तवृत्तियों का निरोध ही योग है । [1]

योग के कई प्रकार माने गए हैं । गीता में अठारह प्रकार के योग माने गए हैं । किंतु योग के सिद्धांत ग्रंथों में चार प्रकार के योग की स्थापना की गई है -
हठयोग, लययोग, मंत्र योग और राजयोग । परन्तु इन चारों का आधार पंतुज्जलि का अष्टांग योग है । [2]

निर्गुण काव्य में योग - योग साधना के इन रूपों को सामने रखकर जब हम पंजाबी संतों की वाणी का अध्ययन करते हैं तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि गुरुनानक एवं अन्य संत योग प्रणालियों से भली प्रकार परिचित थे । गुरु नानक देवजी की ऐतिहासिक साधना का मार्ग पांतज्जलि के योग सुत्रों से एक क्रमबद्ध रूप में जारी रहा । परन्तु तंत्र-सम्प्रदाय और वज्र यानी सिद्ध समुदाय के साथ इसका खूब विस्तार हुआ है । सिद्ध साधना की ईश्वरवादी कड़ी ' नाथ सम्प्रदाय ' कही जा सकती है । गुरुनानक देवजी को नाथपंथी योग-साधना का सामना करना पड़ा था । अत: जब गुरुनानक देव ' योग ' या योगी ' का संकेत करते हैं तो उनका अभिप्राय नाथ-पंथी योगियों एवं ' योग मत ' से ही होता है। नाथ पंथ का योग हठयोग ही था । [3]

- -

१. पांतज्जलि योग सुत्र- १।२
२. योग सुत्र - २।२६
३. हजारी प्रसाद द्विवेदी-कबीर, पृ०-४४

यही कारण है कि नानक वाणी एवं सभी पंजाबी संतवाणी में, जहां योग की बात आती है वह हठ योग की व्याख्या या आलोचना से ही सम्बन्धित होती है। इस प्रकार पंजाबी संत-काव्य में हठ यौगिक शब्दावली, परिभाषिक संकेत, सिद्धांत वचन, क्रियाओं एवं प्रणालियाँ आदि का विस्तारपूर्वक निरूपण हुआ है। पंजाबी संत-साहित्य में ऐसे पारिभाषिक शब्द हैं - निग्रह , षटचक्र, नौली करम, मुद्रा, आदेश, अमृत, इड़ा, पिंगला, सुषम्ना, त्रिकुटी, योगी, यती, शून्य, अवधूत, अजपाजाप, अलख, परमपद, ताड़ी, कायाशोधन, रेचक, पूरक कुंभक आदि।

स्पष्ट है कि पंजाबी संतों ने योगकेविपुल शब्दों को अपने काव्य में स्थान दिया है। इसका एक कारण यह भी है कि गुरुनानकजी ने भारतीय सामाजिक एवं आध्यात्मिक मंडलों में जब प्रवेश किया था तो सबसे अधिक उनका टकराव तंत्रमत, शैवमत, शाक्तमत, सिद्ध सम्प्रदाय, नाथपंथ, के योग साधनों से हुआ। गुरुनानक के समकालीन समाज में नाथ पंथी योगियों का बड़ा प्रभाव था। उनके सिद्धांत साधारण जनमानस में बहुत प्रचलित थे। गुरुनानक देवजी के समक्ष इस कार्य के लिये उन्होंने येग के पारिभाषिक शब्दों को अपने अनुभवों द्वारा परिमार्जित कर जनता के समक्ष रखा। यह कार्य उत्तरी भारत में कबीर जी द्वारा किया जा रहा था। परन्तु पंजाब में इसे गुरु नानक देवजी ने ही प्रारम्भ किया। यही कारण है कि निर्गुण काव्य में योग-सम्बन्धी क्रियाएं विस्तार से निरूपित हुई हैं।

- -

पंजाबी संतों ने योग-अंशों का चार प्रकार से अपने काव्य में चित्रित किया है -

१- योग क्रियाओं का खंडन का वास्तविक रूप प्रस्तुत किया अर्थात योग के परम्परागत रूप को स्वीकार नहीं किया जैसे -

जोग न खिंथा जोग न डंडै जोगु न भसम चढाइयै ।। [१]

२- पुर्नमूल्यांकन द्वारा अर्थात योग के पारिभाषिक शब्दों का समय एवं युग की नवीन परिस्थिति के अनुसार प्रयोग किया है जैसे - शब्द

२- अनहद नाद, दसम् द्वार, शून्य, सुन्न समाप्ति आदि शब्दों को अपने ढंग से व्यंजित किया है ।

३- आध्यात्मीकरण - पंजाबी संतों की एक विशेषता रही है कि वाह्याडम्बार विधि विधान को उन्होंने भले ही निंदनीय समझा है । किंतु उनके प्रति उग्र प्रतिक्रियावादी भावना कभी भी प्रकट नहीं की नही तिरस्कार पुर्ण शब्दों में उनकी भर्त्सना ही की, अपितु उन्हीं भावना को नवीन अर्थों के माध्यम से समझाया और इस नई शैली को ' आध्यात्मीकरण ' या ' सहजीकरण ' का नाम दिया ।

४- सहजीकरण - सहजीकरण का अभिप्राय है कि जहां गुरुजी योग के आन्तरिक अंशों एवं सैद्धान्तिक विचारों को अस्वीकार नहीं करते हैं, वे वहां ' सहज ' विशेषण जोड़कर सहज समाधि आदि रूप दे देते है । संतों ने सिद्धांत-रूप में कभी स्वीकार नहीं बल्कि नए योग-प्रकार अपनी वाणी में उभारे ।

भक्ति की प्रमुखता - इस व्याख्या से यह स्पष्ट हो जाता है कि गुरुनानक एवं अन्य पंजाबी संतों ने कहीं भी योग साधना को अन्तिम सिद्धांत स्वीकार नहीं किया है । उनका अन्तिम सिद्धांत तो भक्ति है ।

- -

१- आदिग्रंथ महला १, पृ०-७३०

नि:संदेह योग के सम्पूर्ण वातावरण में भक्ति की रंगीन रेखाएं स्पष्ट फलकती है । भक्ति से शून्य योग निष्प्राण है । गुरु अमरदासजी का कथन है -

अनहद वाजे धुनि वजदे गुरु सबदि सुणीजि।
तितु घट अंतरि चानणा करि भगति मिलीजि ।। १

गुरु नानकजी ` नाम ` को भक्ति का अंग स्वीकार करते हुए स्पष्ट कहते हैं कि ` नाम ` के बिना योग कभी नहीं होता -

` नानक बिनु नावै जोगु कदे न होवै देखहु रिदै वीचारि। २

अत: ` नानक का योग ` नवीन प्रकार का है । इसे हम ` नानक योग ` कहें तो अधिक समीचीन होगा । यही पंजाबी संत भक्ति का आधार है।

निर्गुण भक्ति और ज्ञान मार्ग - पूर्व और पश्चिम दोनों मंडलों का आध्यात्मिक जगत में पुरातन काल से ही साधन रूप में ` ज्ञान ` की चर्चा होती आ रही है । ज्ञान की उत्पत्ति, ज्ञान की सीमा, ज्ञान का विस्तार आदि को विचारने वाली दार्शनिक शाखा को (ज्ञान मीमांसा (कहा जाता है । ज्ञान मीमांसा पश्चिम की देन है, परन्तु पूर्व में मुख्यत: भारत में ज्ञान-साधना ` ही अधिक प्रचलित है।

भारतीय साधकों का अनुभव है कि ` अज्ञान ` या अविवेक ही सभी दुखों का मूल कारण है । इन दुखों से छुटकारा पाने के लिये ज्ञान की बहुत आवश्यकता है । ज्ञान के द्वारा सांसारिक और पारमार्थिक सच्चाइयों को अनुभव करके साधक अपने परम लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है। इसलिये ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति हित ज्ञान साधना का महत्त्व है।

---

१. आदिग्रंथ महला-३ पृ०-६५४
२. वही -१ पृ०-६४६

भारत में ज्ञान की दीर्घ परम्परा है। वेद उपनिषद्, गीता, योग वशिष्ठ आदि में ज्ञान को उत्तम रूप में स्वीकारा गया है । भारतीय दर्शन शास्त्रों में ज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है । न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, सांख्य, योग, बौद्ध, वेदांत, द्वैत, द्वैतवाद, विशिष्ट द्वैतवाद, शुद्ध द्वैतवाद आदि ज्ञान की चर्चा करते हैं । किंतु ' शुद्ध द्वैतवाद ' में ज्ञान की चर्चा ' भक्ति प्रधान ' है । अभिप्राय यह कि भारतीय दार्शनिक, चाहे वह आस्तिक हो अथवा नास्तिक सभी ने ' ज्ञान ' पर विचार किया है। इस ज्ञान परम्परा को सम्मुख रखकर पंजाबी निर्गुण काव्य में प्राप्त ज्ञान मार्ग का अध्ययन करना सरल होगा ।

पंजाबी संत-साहित्य में ज्ञान का स्थान है जो शुद्ध द्वैतवाद में मिलता है अर्थात् ' भक्ति प्रधान ज्ञान ' । गुरुनानक वाणी में कई ऐसे स्थल हैं जहां ज्ञान के महत्व का वर्णन हुआ है। गुरुनानक देवजी कहते हैं - ' ज्ञान से हीन सारा संसार घूमता फिर रहा है परन्तु सच्चा हरि भीतर गुप्त रूप में है -

" गिआन विहूणो भवै सबाई। साचा रवि रहिआ लिव लाई।[1]

गुरुनानक ज्ञान को ' महारस ' की संज्ञा देते हैं ।[2] यथा-

" गिआन महारस भोगवै बाहुण भूख न होइ ।।[2]

गुरुजी ज्ञान को लोहे के समान कड़ा बताते हैं, जिसे केवल बातों के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता है । इसी प्रकार गुरु अमरदासजी ज्ञान को तीर्थ ' की संज्ञा देते हैं जो जीव के अन्तःकरण में है ।[3] गुरु रामदासजी के अनुसार जब ज्ञान तेजी से प्रकाशता है तो शरीर रूपी घट में प्रकाश हो जाता है -" ~~गिआन-अर्जुनदेवजी-ने-ज्ञान-को-...~~

1. आदि ग्रंथ महला-१ पृ०-१०३४
2. वही पृ०- ४६६
3. वही पृ ०-५८७
4. वही -४ पृ०-७७४

" गिआन प्रचंड बलिआ घटि चानणु घर मंदिर सोहाइया। [1]

गुरु अर्जुनदेवजी ने ज्ञान को " खड़ग " कहा है, जो काम, क्रोध आदि दूतों को मारने के लिए सति गुरु सौंपता है। जैसा-

" गिआन खड़ग करि किरपा दीना दूत मारे करि धाइ है। [2]

इस प्रकार पंजाबी संत काव्य में ज्ञान का भली प्रकार वर्णन हुआ है। पंजाबी संतों ने ज्ञान सूचक शब्दों द्वारा ज्ञान को प्रकट किया है। जैसे तत्व ज्ञान, ध्रुव ज्ञान, ब्रह्म ज्ञान, विशेष ज्ञान, मति, विवेक, परचा, प्रतीति, दीप रत्न, अंजन आदि।

ज्ञान का स्वरूप - भारतीय परम्परा में ज्ञान का स्वरूप, भौतिक भी है और आध्यात्मिक भी। गुरुनानक निर्गुण ब्रह्म को ही आध्यात्मिक एवं पारमार्थिक रूप में स्वीकार करते हैं। ब्रह्म ही सच्चा ज्ञान है। वही सत्य ज्ञान है। इस ज्ञान स्वरूप ब्रह्म को प्राप्त करने के लिये गुरुजी नाम-रूपात्मक जगत के व्यावहारिक अस्तित्व को स्वीकार करते हैं तथा इसके माध्यम से सत् स्वरूप एवं ज्ञान स्वरूप ब्रह्म की खोज करते हैं। जिस प्रकार दीये का प्रकाश अंधेरे को दूर करके हर वस्तु का ज्ञान देने में समर्थ होता है इसी प्रकार ज्ञान का जब प्रकाश फैलता है तो अविद्या का अंधेरा मिट जाता है। गुरुनानक देव का कथन है -

दीवा बलै अंधेरा जाइ। बेद पाठ मति पापा खाइ।
उगवै सूरु न जापै चंदु। जह गिआन प्रगासु अगिआन मिटंतु।। [1]

गुरु रामदास कहते हैं कि जब ज्ञान प्रकाशता है तो अंधकार नष्ट होता है, इस कारण हरि रूप रत्न पदार्थ प्राप्त होते हैं। इसके साथ ही " हउमै " के रोग से भी छुटकारा मिलता है और दुख दूर हो जाते हैं और " स्वरूप " में स्थिति हो जाती है। [2]

- -

1. आदि ग्रंथ महला-5 पृ०-1072
2. आदि ग्रंथ महला -1 पृ०-791

आत्म ज्ञान ज्ञान साधना का परम लक्ष्य है। पंजाबी संतों ने अपने काव्य में स्वयं की पहचान, आत्म विचार, आदि शब्दों के माध्यम से इस भाव को स्पष्ट किया है। गुरुनानक देवजी आत्म ज्ञान को परमात्मा के समान ही वर्णित करते हैं और आत्मा परमात्मा की अद्वैत अवस्था का चित्रण करते हैं।[१] गुरु अंगद देवजी उसी को " पारखु " अर्थात " ज्ञानी " कहते हैं जो स्वयं की परख करता है। यह आपा परख ही आत्मज्ञान है।[२] गुरु अमरदास के अनुसार -

" आप पछाणै ता सभि गुण जाणै " से भी यह बात स्पष्ट होती है।[३] गुरु तेग बहादुरजी ने अंकित किया है कि-आत्म ज्ञान के बिना भ्रम की काई दूर नहीं हो सकती।[४] इस प्रकार आत्म ज्ञान माया अज्ञान को दूर करके ज्ञान स्वरूपी प्रभु का ज्ञान ही ज्ञान का स्वरूप है।

इस प्रकार गुरुनानक सम्प्रदाय में ज्ञान का ऐसा स्वरूप अंकित हुआ है जिसमें स्वयं को पहचाना जाता है, और ऐसा साधक गुरु की कृपा द्वारा सचखंड में स्वीकार किया जाता है। गुरुनानकजी ज्ञानवान पुरुष का स्वरूप निरूपण करते हैं -

प्रणवति नानक गिआनी कैसा होई। आप पछाणै बूझै सोई।
गुर प्रसादि करे बीचारु। सो गिआनी दरगह परवाणु।[५]

विशेष ज्ञान - भारतीय संत साधना परम्परा से हट कर अगर गंभीरता पूर्वक विचार करें तो हम पायेंगे कि पंजाबी संत गुरु नानक देवजी ने अपने ढंग से ज्ञान के स्वरूप का चिंतन किया है। गुरु अर्जुनदेवजी के शब्दों में यह ज्ञान - " सभि महि ऊंच बिसेख ज्ञान " है

- -

१. आदिग्रंथ महला-४, पृ० ७४
२. वही १, पृ० ४२१
३. वही २ पृ० १४८
४. वही ३ पृ० १०५६
५. वही ६ पृ० ९८४

अर्थात् यह सबसे ऊंचा और विशेष ज्ञान है। यह विशेष ज्ञान पंजाबी संतों की मौलिक देन है । गुरु परम्परावादी ज्ञान के साथ कुछ अन्य तथ्यों को भी जोड़ते हैं , ये ही ज्ञान का विशेषीकरण करते है। ज्ञान की पहली शर्त है - " प्रभु कृपा " दूसरी है " गुरु उपदेश " तीसरी है " संगत " इसीलिए गुरु अर्जुनदेवजी कहते हैं -

" साधु के संग प्रगैटे सुगिआन " अर्थात् सत्संग से ही ज्ञान सुज्ञान प्रकट होता है । [1]

ज्ञान के साधन (साधन) - ज्ञान प्राप्ति के साधनों में - श्रवण, मनन, निदिध्यासन, मुख्य माने जाते हैं ।

श्रवण - जपुजी साहिब में " श्रवण " की बड़ी महानता है । जपुजी की केवल चार पऊड़ी सुनने से माहत्म मिलता है श्रवण द्वारा सिद्ध , पीर एवं नाथों संबंधी ज्ञान प्राप्त होता । श्रवण से ही सत् संतोष ज्ञान प्राप्त होता है ।

मनन- श्रवण की अगली भूमिका मनन है । गुरुनानक जी इस मनन को " मनै " क्रिया रूप में वर्णित करते हैं । जपुजी में इसका विस्तार पूर्वक वर्णन हुआ । [2]

निध्यासन - संस्कृत - कोष अनुसार निध्यासन का अर्थ है - बार बार स्मरण, बार-बार ध्यान में लाना । [3]

पंजाबी संत वाणी में निध्यासन का कोई विवेचन नहीं है । जपुजी की सुणि में और " मनै " की पउड़ियों में इसका भाव आ गया है।-
" सुणियै मनिया मनि कीता भाउ " [4]

भक्ति की प्रमुखता - गुरु साहब की वाणियों में ज्ञान-मार्ग का

---

1. आदिग्रंथ महला पृ०-२५
2. आदिग्रंथ महला-५ पृ०-२७१
3. आदिग्रंथ महला-१,पृ०-१-२
4. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ पृ०-५८६

विस्तृत वर्णन है किंतु निर्णायिका बुद्धि द्वारा निर्णय करें तो हम देखेंगे कि पंजाबी संत काव्य में ' ज्ञान ' और ' भक्ति ' का स्थान समान नहीं है । गुरु नानक का स्पष्ट मत है - ' बुद्धि द्वारा, पाठ द्वारा , बहुत चतुराई द्वारा मन चाहता (प्रभु) नहीं पा सकते । वह तो ' भाव ' अर्थात भक्ति के साथ ही मिलता है ।[1] कहने का तात्पर्य यह है कि गुरुनानक देवजी ' भक्ति ' को ज्ञान से श्रेष्ठ स्थान देते हैं । ज्ञान तो भक्ति का सहायक बनकर आया है । ' बुद्धि चतुराई ' तर्क का विषय है, नाम स्मरण भाव भक्ति का अंग है । गुरु अर्जुनदेवजी कहते हैं -

' गुरु की मति तू लेहि इआने । भगति बिना बहु डूबे सिआने '[2]

अर्थात् चतुराई छोड़ भक्ति का आश्रय लेना ही श्रेष्ठ है ।

निर्गुण भक्ति साधना और सूफी मार्ग - सूफी साधना में रहस्यवादी साधना प्रचलित हुई है । रहस्यवाद का मूलाधार है - प्रिय के प्रति तीव्र विरह भावना व्यक्त करना/इसकी प्रमुख स्वरूप हमें सूफी साधना में दिखाई पड़ते हैं । ऐसी तीव्र भावना पंजाबी संत-काव्य में भी वर्तमान है । इसलिए दोनों में साम्य दिखाई पड़ता है। डा० गोविंद त्रिगुणायत के अनुसार सूफी रहस्यवाद की प्रमुख चार विशेषताएं हैं - प्रेम, विरह, मादकता एवं उपमायुक्ता ।[3] ये सारी विशेषताएं थोड़े बहुत अन्तर के साथ पंजाबी संत-साहित्य में दृष्टिगोचर होती है । इनके अतिरिक्त रजा ' कुफ्र ', भय, प्रतिवाद सूफियों के सिद्धांत हैं जिनको वास्तव झलक निर्गुण वाणी में मिलती है । परन्तु इतना स्पष्ट करना आवश्यक है ये सूफी सिद्धांत यथावत् पंजाबी संतों ने नहीं अपनाए हैं , अपितु पंजाबी संत साधना में इनका ' निर्गुणीकरण ' किया गया है ।

- -

१. आदिग्रंथ महला-१, पृ०-४
२. वही १,पृ०-४३६
३. वही ५,पृ०-२८८

यही कारण है कि इस काव्य धारा में सूफियों की अमर्यादित रंगनियों का अभाव है ।

प्रेम - डा० विमल कुमार जैन का कहना है कि सूफीमत का सारा भवन प्रेम पर ही आधारित है ।[1] वैसे रहस्यवाद की नींव प्रेम है । पंजाबी संत सूफी कवि फरीदजी कहते हैं -

> " दिलहु मुहब्बत जि सेई सचिआ " और " रती रत्क
> खुदाई रगि दीदार के । [2]

वस्तुत: सूफियों का प्रेम ही साधन है । इसमें संदेह नहीं कि सूफियों से पहले भारतीय साधना में " प्रेम तत्व " वर्तमान हैं परन्तु वह प्रेम साकार प्रभु के प्रति है । भागवत के गोपी कृष्ण के प्रेमभाव से यह प्राप्त है, परन्तु सूफियों के प्रेमभाव की एक विशेषता है कि सूफियों का प्रेम निराकार प्रभु को " आलंबन " बनाता है । [3] पंजाबी निर्गुण काव्य में सूफी प्रेम की झलक है । गुरु नानकजी स्पष्ट शब्दों में " हरि सिउ प्रीत सनेही " लिखते हैं । [4] एक अन्य स्थल पर - " जउ तउ प्रेम खेलण का चाउ

सिर धरि तली गली मेरी आउ ।[5]

कहा है गुरु अर्जुनदेवजी का मुखवाक है कि अति सुन्दर, कुलीन, ज्ञानी और धनवान सारे गुणों वाला व्यक्ति मृतक समान है । अगर भगवंत (भगवान) के प्रति उसकी प्रीति नहीं है । [6]

परन्तु सूफियों के प्रेम एवं गुरु संतों के प्रेम में अन्तर है । सूफी कवि प्रेम में मर्यादा का उल्लंघन कर जाते हैं , मस्ती में सब कुछ कर जाते हैं । परन्तु गुरु कवि मर्यादा एवं संयम में रहता है।

- -

१. हिन्दी की निर्गुण काव्य धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि पृ०-५८०
२. सूफी मत और हिन्दी साहित्य, डा० विमल कुमार जैन, पृ०-६३
३. आदिग्रंथ, फरीदबाणी - १३७८
४. सूफी मत और हिन्दी साहित्य, पृ०-२२६
५. आदिग्रंथ महला-१, पृ०-११०८
६. वही पृ०-१४१२

वह तो प्रेम का सार जानने के लिए प्रभु की मेहर की दुआ मांगते हैं यथा - " प्रेम की सार सोई जाणै जिसनुं नदरि तुमारी जीऊ" [1] इसमें इश्क हकीकी या आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना है साथ ही निर्गुण वाणी में व्यक्त प्रेम भावना में वैराग्य अंश स्थित रहता है, जो सूफी प्रेम में नहीं मिलता । सूफी प्रेम में मधुरता के साथ मादक भाव रहता है जो वैराग्य से विपरीत है । प्रेम प्रभु की कृपा है । सूफी सिद्धांतों को सुधार कर पंजाबी-संत उसे अपने काव्य में चित्रित करते हैं।

विरह - विरह भावना सूफी साधना का एक और प्रमुख तत्व है । सूफी इश्क के बाद विरह को प्रभु प्राप्ति के लिए आवश्यक मानते हैं । फरीदजी तो विरह को प्रभु के समकक्ष मानते हैं एवं उस शरीर को श्मशान तुल्य मानते हैं जिसमें विरह नहीं [1] इस प्रसंग में गुरुनानक के ` बारहमाहा ` की चर्चा प्रसंगानुकूल है । उस बारहमाहा में गुरुनानक का आध्यात्मिक विरह पूरी तरह प्रकट हुआ है । गुरुनानकजी कहते हैं -

" पिरु घर नहीं आवै धन किउ सुख पावै बिरहि विरोध तनु छीजै. [2]

गुरुनानकजी के विरह काव्य का महानायक प्यार का धनी एवं प्रेम का प्रतीक है जिसके विरह में जीव नायिका की विव्हलता उक्त पंक्ति में प्रकट हुई है ।

पतिवाद - सूफियों ने जीव को पत्नी और परमात्मा को पति के रूप में कल्पित करके दाम्पत्य संबंध की शैली स्थापित की है । पहले प्रकार के सूफियों में इसके विपरीत पतिवाद प्रचलित था । पंजाबी सूफी जीव को पत्नी रूप में चित्रित करते हैं ।

- -

१. आदिग्रंथ सलोक शेख फरीद के पृ०-१३७६
२. आदिग्रंथ सलोक,महला-१ पृ०-११०८

फरीदजी लिखते हैं -

" अज न सुती कंत सिउ अंग मुड़ि मुड़ जाइ।

जाइ पुछहु डोहागणी तुम किउ रैण विहाइ।। [१]

पंजाबी निर्गुण काव्य में " पतिवाद " बड़े विस्तृत रूप में चित्रित हुआ है एवं " नारि भतार ", कंत-कामनी " के संबंधों की चर्चा की गई है। गुरुनानकजी ने अपने प्रभु को कंत के रूप में कल्पित कर प्रिय , प्यारा, साजन, प्रीतम, वर, रसिया, कंता आदि विशेषताओं से युक्त किया है - " नानक अहिनिस रावै प्रीतम "

हरि वरु थिरु सोहागी । [२]

सम्पूर्ण तुलनात्मक निर्णय -

इस तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात हम इस निर्णय पर पहुंचते हैं कि निर्गुण काव्य वाणी में भक्ति मार्ग, कर्म , योग और सूफी साधने की अपेक्षा निर्गुण भक्ति ही प्रधान है । यह भक्ति तत्व उपर्युक्त सभी साधना मार्गों में विद्यमान है, जिसका तात्पर्य यह है कि पंजाबी संतों न जहां कहीं कर्म योग या ज्ञान साधना रूप की चर्चा की है , वहां उस के द्वारा निर्गुण भक्ति को पुष्ट किया है। कर्म योग, ज्ञान योग, भक्ति योग या सूफी साधना का जो वर्णन हुआ है उनमें पंजाबी संतों , गुरु कवियों ने मात्र वही तत्व स्वीकार किए हैं उनकी भक्ति के अनुकूल थे , बाकी तत्वों का उन्होंने बलपूर्वक खंडन किया है । इसी खंडन शैली में उन्होंने भक्ति के उन अंशों को भी रद्द कर दिया है जो आध्यात्मिक अर्थ से शून्य हैं । इस प्रकार उपरोक्त सभी साधनाओं के आवश्यक त्याग एवं उपयुक्त समन्वय के बाद साधना का जो रूप निर्गुण काव्य में विकसित हुआ है वही " निर्गुण भक्ति " है ।

- -

१. आदिग्रंथ सलोक शेख फरीद के पृ०१३७९

२. वही, महला-१ पृ०-१११०

निर्गुण भक्ति के साधन -

डा० जयराम मिश्रजी के अनुसार वैसे तो भक्ति के अनेकउपकरण गुरु ग्रंथ साहब में मिलते हैं परन्तु जिन उपकरणों पर गुरु साहिबों ने व्यापक दृष्टि डाली है वे हैं - गुरु कृपा, नाम संगत, हुकुम, दृढ़ विश्वास, आत्मसमर्पण, सिमरन कीर्तन और प्रभु कृपा । [1]

परन्तु अगर गंभीरता से देखें तो पायेंगे कि निर्गुण काव्य में वैष्णवों की नवधा भक्ति के पाद-सेवन, अर्चन, को छोड़कर बाकी श्रवण ,कीर्तन, सिमरन, वंदना, दासभाव, स्वप्रार्थना (आत्मनिवेदन) आदि अंग साधना रूप में प्राप्त होते हैं । गुरु अर्जुनदेवजी ने ~~भक्ति नौ प्रकार में~~ नवधा भक्ति की ओर संकेत किया है ।[2] किंतु नवधा भक्ति के उपरोक्त अंग जिनकी झलक पंजाबी संत काव्य में है, उनका वातावरण और लक्ष्य यहां परिवर्तित हो जाता है। नवधा भक्ति का लक्ष्य ' सगुण ' ब्रह्म है जबकि पंजाबी संतों की भक्ति का लक्ष्य निराकार प्रभु है । नवधा भक्ति के श्रवण, कीर्तन, सिमरन बिंब प्रधान है परन्तु निर्गुण भक्ति के श्रवण कीर्तन सिमरन प्रतीक प्रधान हैं , क्योंकि इनका लक्ष्य अलौकिक होने के कारण लौकिक विषय को प्रतीक रूप में वर्णन करना ही है । निर्गुण भक्ति के मुख्य साधन है- श्रवण - कीर्तन - कीर्तन का अर्थ है - यश का गायन, अर्थात् भगवान की कथा का संगीत द्वारा वर्णन करना। गुरुनानक जी कहते हैं -

जो नर करै कीरतनु गुपाल, तिस कउ पोहि न सकै जमकाल ।[3]

गुरु अर्जुनदेवजी भी इसका समर्थन करते हैं -

' कीरतन निरमोलक हीरा, आनंद गुणी गहीरा । [4]

ऐसा कीरतन करि मन मेरे । ईहा ऊहा जा कामि तेरै । [5]

सम्पूर्ण निर्गुण काव्य वाणी कीर्तन शैली में है और संगीत से पूर्ण है।

- -

१. श्री गुरु दर्शन-पृ०-२६५ २. आ०ग्र० महला-५ पृ०-७१ ३. वही महला-५,पृ०-८६७ ४. वही पृ०-८९३ ५. वही पृ०२३६

संस्कृत कोशों में " वंदन " के कई अर्थ हैं - प्रणाम, नमस्कार, डंडवत, सन्मान, अर्चन, पूजन, प्रशंसा आदि। वंदना के भी यही अर्थ हैं - गुरु अर्जुनदेवजी

" डंडऊति बंदन अनिक बार सरब कला समरथ।
डोलन ते राखहु प्रभु नानक देकरि हथ ।। [१]

आत्म निवेदन - भक्त साधक अपने कृपालु एवं रहीम प्रभु के साथ प्रस्तुत करता है। वह प्रभु को इस भाव से संबोधित करता है कि प्रभु चरणों से जाकर जुड़ जाता है। पंजाबी निर्गुण काव्य में इसके अनेक दृष्टांत मिलते हैं। सोरठ राग में गुरु नानक देवजी अपने निरंकार के समक्ष आत्म निवेदन करते हैं।

" हे ठाकुर मैं गिरा हुआ हूं, मैं पापी पतित एवं महान पाखंडी हूं तू निर्मल और निराकार स्वरूप है। हे ठाकुर तेरी शरण में आकर मैने अमृत का रसास्वादन किया है और महान आनंद में अनुरक्त हो गया हूं। कर्ता तू मुझ मान रहित का मान है। मेरे लिए मान बढ़ाई यही है कि नाम-धन मेरे पल्ले हो। हम ओछे और तू पूर्ण हो, तू सच्चा है हम तेरे ही में समाए हुए हैं। [२] गुरु अमरदासजी[३] गुरु अर्जुनदेवजी भी इसी प्रकार का विनम्र आत्म निवेदन प्रस्तुत करते हैं।[४]

विश्वास - पंजाबी संतों की साधना में " विश्वास " या " भरोसा " एक आवश्यक साधन है। निर्गुण काव्य में यह विश्वास दो प्रकार से मूर्तिमान हुआ है - एक विश्वास का प्रत्यक्ष वर्णन है और दूसरा विश्वास की अभिव्यक्ति है। गुरु अर्जुनदेवजी ने विश्वास का प्रत्यक्ष वर्णन करते हुए कहा है -

---

१. आदि ग्रंथ महला ५, पृ०-२५६
२. वही पृ०-५६६
३. वही महला ३, पृ०-१२५७
४. वही महला ५, पृ०-६२८

" जिसकै मनि साचा विसवासु । पेखि पेखि स्वामी की सोभा आनंद
सदा उल्लास " [१]

इसी प्रकार गुरु अमरदासजी[२] गुरु रामदास[३] प्रतीति का पूर्ण रूप से निरूपण करते हैं । विश्वास की अभिव्यक्ति प्रभु परमात्मा की अलौकिक कृपा, कृपा दृष्टि, रक्षा भावना, भगवत्-वत्सलता आदि गुणों से प्रकट हुई है । गुरु अमरदास अपने प्रभु पर कितना विश्वास रखते हैं और युग-युगांतर तक उसकी लाज रखने की मर्यादा की ओर संकेत करते हैं -

" हरि जुग जुग भगत उपाइया पैज रखदा आया राम राजे। " [४]

साध संगत - सत्संगत, साध संगत, सुसंगति का भक्ति साधना में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है । वैसे तो भारतीय आध्यात्म साधना के सम्पूर्ण इतिहास में सत्संगत की बड़ी महिमा गाई जाती रही है, परन्तु सैद्धांतिक रूप इसकी स्थापना बौद्धधर्म की साधना में मिलती है जिसका प्रमाण उनका ' त्रिशरण ' सिद्धांत है जिसमें ' संघं शरणम् गच्छामि ' का संघ सिद्धांत, सत्संगत का ही पूर्ण रूप है। वस्तुतः साध संगत साधना का सामाजिक पहलु है और साधक के आचार पक्ष से इसका संबंध है । फिर भी साधक की आन्तरिक स्थिति के लिए इसकी आवश्यकता है । पंजाबी संत साहित्य में साध संगत या सत्संगत का बड़ा ऊंचा स्थान है और आध्यात्मिक साधना का एक अंग माना गया है । गुरु नानकजी का सुवाक है - " चाहे हम लाख चतुराई कर लें परन्तु साध संगत के बिना तसल्ली नहीं होती तृष्णा नहीं बुझती । [५]

- -

१. आदिग्रंथ महला ५ पृ० - ६७७

२. वही ३ पृ०-६४०
३. वही ४ पृ०-२३४
४. वही १ पृ०-३४५
५. वही १ पृ०-२०

सत्संगत का प्रत्यक्ष प्रमाण ही है कि वहां ` नाम ` की महिमा का गायन होता है ।[1] गुरु अर्जुनदेवजी ने अनेक स्थलों पर साध संगत की प्रभुता की चर्चा की है -

दीन दयाल कृपालु प्रभु नानक साध संगि मेरी
जलनि बुझाई ।[2]

गुरु कृपा और उपदेश - भारती चिंतन साधना में ` गुरु ` का स्थान निर्विवाद और सर्वप्रमाणित रहा हैं । गुरु का पुराणों, उपनिषदों बौद्धतंत्रों , सिद्ध साहित्य में बहुत ऊंचा स्थान है । इस परम्परा में पंजाबी संत काव्य की गुरु आराधना का अध्ययन किया जा सकता है । पंजाबी संतों ने गुरु की महिमा, कृपा दृष्टि और गुरु की आवश्यकता पर बहुत बल दिया है । डा० जयराम मिश्र ने ` गुरु वाणी ` में वर्णित गुरु परम्परा का बड़े विस्तार के साथ विश्लेषण किया है और गुरु को निर्गुण साधना के प्रसंग में ` सर्वोपरि ` तत्व कहा है ।[3] निर्गुण वाणी में गुरु के विशेषण रूप में या समाज के पूरक अंग में कई शब्द आए हैं -` आदि गुरु ` ` युगादि गुरु,` सति गुरु ` , ` वाहिगुरु, ` गुरुदेव ` । इन सभी विशेषणों का प्रयोग हुआ है किंतु सबसे अधिक ` सतिगुरु ` का प्रयोग हुआ है । पंजाबी निर्गुण काव्य में सच्चे गुरु के गुण , गुरु की महानता, गुरु की प्राप्ति के लिए प्रभु कृपा, सति गुरु और गुरु शब्द, सतिगुरु प्रति आत्मसमर्पण सतिगुरु के लिए सेवा भावना, निगुरे की निंदा आदि महत्वपूर्ण पक्षों पर प्रकाश डाला गया है ।

गुरु अंगद देवजी गुरु की आवश्यकता का प्रभावशाली चित्रण करते हैं -

जे सौ चंदा ऊगवै सूरज चड़हि हजार
ऐते चानण होदिआ गुरु बिन घोर अंधार ।[4]

- -

१. आदिग्रंथ महला -१ , पृ०-७२
२. वही -५ , पृ०-३८५
३. वही श्री गुरु ग्रंथ दर्शन पृ०-३१५-३८२
४. आदि ग्रंथ, महला २, पृ०-४६३

नाम-साधना - साधना के प्रसंग में ` नाम ` का बड़ा महत्व है। ` नाम `, जप साधना का ही एक भेद है । श्री कृष्णजीने गीता में ` यज्ञों में जपयज्ञ हूं कहकर जप की उत्तमता बताई है ।[१] बौद्ध दर्शन की साधना में ` मंत्रयान ` एक महत्वपूर्ण अंग है जिसका भाव नाम-जप ही है।[२] इस प्रकार ` नाम ` ` जप ` की एक लम्बी परम्परा है । मध्य युग की सभी धर्म साधनाओं को ` नाम ` साधना कहा जा सकता है । भले ही सगुण भक्त हो या निर्गुण साधक, नाम जप के विषय में कोई मतभेद नहीं है इस अपार भवसागर में मात्र नाम ही तुल्हा है यह नाम रूप की उपासना मध्यकालीन भक्तों की अपनी विशेषता है ।[३]

उपरोक्त विवेचना के उपरान्त पंजाबी संत वाणी में ` नाम ` तत्व का अध्ययन करें तो स्पष्ट होगा कि इन संतों ने ` नाम ` पर बहुत बल दिया है । डा० शेरसिंह ने नाम साधना को नाम- मार्ग ` कहा है और लिखा है - श्री गुरु ग्रंथ साहिब में नाम की बहुत महिमा है। सारे दुखों , रोगों, कलेशों की दवा नाम बताई गई है ।[४] नाम प्राप्ति की आनंदावस्था का वर्णन करते हुए गुरु साहब कहते हैं -

` हरि हरि नाम दीऊ दारू
तिनि सगला रोगु बिदारू
अपनी कृपा धारी ।।
तिनि सगली बात सवारी ।।[५]

परन्तु भारतीय संत साधना में प्राप्त ` नाम ` एवं पंजाबी संतों की साधना में प्रयुक्त ` नाम ` में पर्याप्त अन्तर है । परम्परागत ` नाम ` केवल साधना ही है और ` नाम रूप के पहलू तक सीमित है पंजाबी संत काव्य में नाम साधना से आगे निकलकर लक्ष्य बन गया ।

- -

१. गीता - १०।२५
२. कल्याण - वर्ष १५ अंक-१
३. मध्यकाली धर्म साधना-डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी- १३।१४
४. गुरमति दर्शन, पृ०-३०१
५. आदि ग्रंथ महला-५,पृ०-६२२

जब गुरु अर्जुनदेवजी - ` नाम ` के धारे सगल जंत ` कहते हैं तो ` नाम ` और नामी ` की अभेद अवस्था का वर्णन करते हैं । यहां नाम, प्रतीक ` मात्र नहीं खुद ` प्रतीकित वस्तु बन गया है । भाई जोधसिंहजी के अनुसार ` नाम ` इसलिए सर्वव्यापक शक्ति है जो हर जगह भरपूर होकर घट-घट को धार रही है । [1] इसलिए नाम भक्ति मार्ग का अंग भी है और एक स्वतंत्र साधन भी है । यहां एक बात और ध्यातव्य है कि पंजाबी संत-काव्य में कुछ स्थलों में ` हुकुम ` शब्द और ` नाम ` एक ही अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं -

जहु दिसि हुकुम वरतै प्रभ तेरा जहु दिसि नाम पताउं ।।
सम महि शब्द वरतै प्रभ साचा करम मिलै बै आउं ।। [2]

इस प्रकार हम पंजाबी संत साधना की महत्वपूर्ण देनों को भारतीय साहित्य साधना से अलग करके देख सकते हैं । पंजाबी संत-साधना में भक्ति की सभी प्रसिद्ध साधनाओं - कर्म, योग, ज्ञान, सूफी और भक्ति का समन्वय है । इनमें से भी जो भी अंश गुरु नानक देवजी के अनुभव में खरे प्रतीत नहीं हुए उनका बेझिझक त्याग किया, खंडन किया। क्योंकि पंजाब संत-भक्ति सारी साधनाओं और खरे अनुभवों का निचोड़ या सार है। इसके अतिरिक्त पंजाबी संत कवियों ने कर्म, योग और भक्ति के बाह्य साम्प्रदायिक चिन्हों के आन्तरिक अर्थ ढूंढ कर उनका आध्यात्मीकरण किया और वस्तु पूजा के स्थान पर ` भावात्मक पूजा ` का उपदेश दिया। इसलिए पंजाबी संतों की भक्ति ` भाव भक्ति ` है । यही प्रेमा भक्ति ` है ।

पंजाबी संत भक्ति ` निवृत्ति ` के सिद्धांत को लेकर नहीं चलती अपितु इसकी पद्धति प्रवृत्तिमूलक है । इसके अतिरिक्त पंजाबी संत भक्ति सामूहिक है व्यक्ति वादी नहीं ।

29.3.83

---

१. गुरमति निर्णय - पृ०-३०१
२. आदिग्रंथ महला-१, पृ०-१२७५

:- उपसंहार -:

भारतीय साधना के इतिहास से यह ज्ञात होता है कि प्राचीन वैदिक काल से ऊपर ८वीं-९वीं शताब्दी तक भिन्न-भिन्न प्रकार की साधना-पद्धतियां प्रचलित रहीं। कुछ साधकों ने इनमें समन्वय करने की चेष्टा की, किंतु साधना के क्षेत्र में वैविध्य बना रहा। मुस्लिम देशों से आए सूफी सम्प्रदाय के प्रचारकों ने भी उक्त प्रवृत्ति को आगे बढ़ाने में सहयोग दिया। संतों की परम्परा यहीं से प्रारम्भ हुई जिसका महत्त्वपूर्ण नेतृत्व कबीर, दादू, रैदास, गुरु नानकजी ने किया। संत-परम्परा के क्रम का सूत्रपात आज से प्राय: नौ सौ वर्ष पूर्व भक्त जयदेव के समय में ही हो चुका था। किंतु इसकी निश्चित रूपरेखा लगभग दो सौ वर्ष पीछे कबीर साहब के क्रान्तिकारी विचारों द्वारा प्रकट हुई। कबीर साहब, गुरु नानक, रैदास, दादू आदि तथा उनके पूर्ववर्ती संतों की प्रवृत्ति अपने मत को किसी वर्ग विशेष के साम्प्रदायिक रूप में ढालने की नहीं थी न उन्होंने कभी इसके लिए प्रयत्न किया। वे अपने विचारों को व्यक्तिगत अनुभव पर आश्रित समझते थे और मानवमात्र को भी उसी प्रकार स्वयं निर्णय लेने का उपदेश देते थे। इसी के द्वारा वे विश्वकल्याण में भी सहयोग देने में विश्वास रखते थे। कबीरजी के बाद गुरुनानक के समय में संत मत को अधिक व्यवस्थित रूप देने और उसे प्रचारित करने की भी आवश्यकता का अनुभव होने लगा था। अत: संतों एवं उनके अनुयायियों ने अपने संगठन और सम्प्रदाय प्रारंभ कर दिए थे। किंतु इन सम्प्रदायों में संकीर्णता नहीं आने दी गई थी।

संत मत पूर्णत: सहज तथा सार्वभौम सिद्धांतों पर प्रतिष्ठित था अत: इसका पुनरुत्थान स्वाभाविक था। संत मत का क्षेत्र अब केवल धार्मिक और साम्प्रदायिक न बनकर पूर्ण आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक भी समझा जाने लगा।

संत मत किसी वर्ग विशेष के निजी सिद्धांतों का संग्रह मात्र नहीं है, न वह किसी आदर्श विशेष का ही संगठन है । वस्तुतः संत मत का मूल नियम सत्य, सर्वव्यापक, सर्वोपयोगी तथा सर्वसुलभ है । उसको अपनाने के लिए केवल स्वतंत्र विचार, आत्मचिंतन, एकांत निष्ठा तथा आदर्श और व्यवहार के सामंजस्य की आवश्यकता है । इसका लक्ष्य प्रत्येक व्यक्ति का शुद्ध-सात्विक जीवन है जिसके द्वारा विश्वजनीन कल्याण तथा शान्ति की ओर भी अग्रसर है ।

संत परम्परा के विविध पंथ आधुनिक युग में भी वर्तमान हैं । प्राचीन संतों ने जिस उद्देश्य को लेकर अपना कार्य प्रारंभ किया था , उसका महत्व आज भी उसी प्रकार बना हुआ है। संतों ने जिस बात पर विशेष ध्यान दिया है, वह सर्वसाधारण के विभिन्न तथा पारस्परिक झगड़ों का सदा के लिए समाप्त करना है। इसके लिए उन्होंने व्यक्तिगत सुधार तथा सदाचार के उपदेश दिए हैं। वे व्यक्ति के समुचित विकास के आधार पर ही समष्टिगत विकास तथा पूर्णता के आदर्श को अपनाने के लिए प्रेरित करते हैं ।

विश्वकल्याण इन संतों का लक्ष्य रहा है । आत्मानुभूति पर भी उन्होंने सर्वाधिक बल दिया है। उनका जीवन उनके उपदेशों से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण था । उनमें उनके उद्देश्यों, आदर्शों तथा व्यवहारों की रूपरेखा कहीं अधिक स्पष्ट मिल सकती थी। किंतु हमें उनके जीवन के विशेष विवरण उपलब्ध नहीं है अतः उनके विषय में हमारी समस्त धारणाएं मात्र कुछ संकेतों पर ही निर्भर रह जाती हैं । इसके अतिरिक्त उनकी रचनाओं में भी उनके जीवन के अधूरे चित्र ही मिलते हैं , फलस्वरूप उनके प्रति हमारी धारणा कभी-कभी विपरीत रूप ग्रहण करने लगती है। कबीर साहब, गुरु नानक देव के समकालीन समाज ने भी उनके महत्व को भली-भांति

महत्त्व

नहीं समझाया न उनके अनुकरण में पंथों व समुदायों की स्थापना करने वाले ने संतों का ही उनके समाज ने समुचित आदर किया। बहुत से संतों को अपने जीवन में अनेक कष्ट झेलने पड़े। शासकों द्वारा बंदी बनाया जाना, शारीरिक यातनाएं सहना एवं जनता का उपहास सहना आदि साधारण बातें थीं। गुरु तेगबहादुर, गुरु अर्जुनदेवजी को तो अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा था। ये सभी घटनाएं संतों को पूर्णतः न समझने के कारण हुईं। लेकिन इस पर भी संत अपने मार्ग पर अविचल चलते रहे दशमेशजी ने अपनी वाणियों द्वारा अपने युग के अज्ञानजन्य अंधविश्वासों और रूढ़ियों के विरुद्ध प्रबल आंदोलन किया उन्होंने मूर्ति पूजा अवतारवाद तीर्थ आदि बाह्याडम्बरों को समाप्त कर उनके स्थान पर विशुद्ध ईश्वरवाद की स्थापना की वहीं जाति-पांति का समूलोच्छेदन करके अखण्ड जातीय एकता का अपूर्व संदेश दिए।

संत चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय से सम्बद्ध रहे हों, सच्चे संतों का व्यक्तित्व और कृतित्व मलिन हो नहीं युग युगांतर तक जीने की क्षमता रखते हैं। इसी कोटि में, दशमेश गुरु श्री गोविंदसिंहजी का नाम अत्यन्त उल्लेखनीय है उन्होंने सत् असत् संघर्ष के वास्तविक तत्वों का मर्म उद्घाटन कर जिस स्पष्टता एवं रसमयता का परिचय दिया है वह निरन्तर उसी चिर नवीन रूप में भावुक सात्विक और रसज्ञ जीवों को न केवल मनोरंजन ही वरन् आवश्यकता पड़ने पर उचित मार्गदर्शन भी करेगी

29.3.83

:- सहायक ग्रंथ सूची :-

पंजाबी -

१- आदि ग्रंथ

२- शब्द मूरत - श्री रणधीर सिंह - १८५६

३- दशम गुरु ग्रंथ भाग १-२ गुरुगोबिंदसिंह-१९५७

४- गुरु विलास, भाई सुक्खासिंह

५- जीवनकथा, श्री गुरुगोबिंदसिंह - प्रो० कपूर सिंह-१९४६

६- श्री दशमेश चमत्कार, भाई बूटासिंह-१९५५

७- दशम ग्रंथ, रूप ते रस - श्री तारनसिंह-१९६७

८- गुरुनानक भाषा, डा० भाई कालासिंह

९- गुरुमति प्रकाश (पत्रिका संग्रह दशमेश अंश)

१०- दशमेश गुरु - जीवन तेशख्सीयत - प्रो० दीवानसिंह

११- हीर वारिसशाह- वारिसशाह

१२- जीवन वृतांत - गुरुगोबिंदसिंहजी, प्रो० साहिब सिंह

१३- सिख इतिहास - प्रो० कपूर सिंह

१४- पंजाबी दुनिया - भक्ति अंक

१५- कबीर जीवन ते सिखिआ - डा० भाई जोधसिंह

१६- भक्ति काव्य - प्रकाशक लालसिंह - १९७०

१७- सिद्धांत गुरुनानक - संत आत्मसिंह

१८- गुरुनानक शब्द रत्नाकर - डा० कालासिंह बेदी-१९६१

१९- गुरुमत प्रभाकर - भाई कान्हसिंह नाभा - १९७०

२०- गुरुनानक ते निर्गुण धारा - डा० प्रेमप्रकाशसिंह

२१- भक्ति बाणी - संत संपूरणसिंह - १९३२

हिन्दी -

१- विचित्र नाटक - श्री गुरु गोबिंदसिंह, अमृतसर संस्करण -१९५१

२- गोबिंद रामायण-श्रीगुरुगोबिंदसिंह सम्पादक संत इन्द्रसिंह - १९५३

३- अकालस्तुति-गुरुगोबिंदसिंह शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, अमृतसर - १९५०

४- जीवन श्री गुरु गोबिंदसिंहजी-भाई सोढ़ी तेजासिंहजी

५- गुरु गोबिंदसिंह - एक युग व्यक्तित्व-डा० महीपसिंह

६- सिख इतिहास-ठाकुर देशराज-१९५५

७- गुरु गोबिंदसिंह और उनका काव्य-डा० कु०प्रसिन्नी सहगल

८- गुरु तेगबहादुर की वाणी-डा०ओम् प्रकाश शर्मा-शास्त्री, - १९७६

९- संस्कृति के चार अध्याय- रामधारी सिंह दिनकर

१०- नानक-वाणी, डा० जयराम मिश्र, १९६२

११- हिन्दी और मराठी का निर्गुण संत काव्य-डा० प्रभाकर माचवे-१९६२

१२- संतसाहित्य-परशुराम चतुर्वेदी-१९५३

१३- संत-सुधा-सार - वियोगि हरि-१९५३

१४- नाथपंथ और निर्गुण संत काव्य-डा० कोमलसिंह सोलंकी-१९६६

१५- संत साहित्य और साधना-भुवनेश्वरनाथ मिश्र-१९६६

१६- संत साहित्य-डा०सुदर्शनसिंह मजीठिया

१७- उत्तरी भारत की संत परम्परा-आचार्य परशुराम चतुर्वेदी-१९७२

१८- कबीर की भाषा- माताबदल जायसवाल-१९६५

१९- हिन्दी की निर्गुण काव्य और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि - डा० त्रिगुणायत

२१- भक्ति आंदोलन का अध्ययन-डा० रतिभानुसिंह नाहर

२२- हिंदी संतों का उत्तरवासी साहित्य डा० रमेशचन्द्र मिश्र - १९६६

२३- मध्यकालीन संत-साहित्य-डा० रामखिलावन पांडेय-१९६५

२४- कबीर और कबीर पंथ- डा० केदारनाथ द्विवेदी-१९६५

२५- सूफी मत और हिंदी साहित्य-डा० विमल कुमार जैन - १९५५

२६- संत वैष्णव काव्य पर तांत्रिक प्रभाव-डा० विश्वंभरनाथ उपाध्याय

२७- मध्यकालीन धर्म-साधना - हजारी प्रसाद द्विवेदी-१९६२

२८- कबीर की विचारधारा - डा० गोविंद त्रिगुणायत-१९६८

२९- निर्गुण साहित्य-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि-डा० मोतीसिंह-१९६३

३०- हिंदी संत साहित्य - त्रिलोकी नारायण दीक्षित-१९६३

३१- रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना - श्री भुवनेश्वरनाथ मिश्र -१९५८

३२- हिंदी और बंगाली वैष्णव कवि(तुलनात्मक अध्ययन) - रत्न कुमारी - १९५६

३३- भक्ति कालीन राम तथा कृष्ण काव्य की नारी भावना (एक तुलनात्मक अध्ययन) डा० श्यामला गोयल, -१९७६

३४- कबीर साहित्य की परख - आचार्य परशुराम चतुर्वेदी-१९६५

३५- दादू दयाल की वाणी - भाग-१ (बेलवेडियर प्रेस-प्रयाग)

३६- वाणी ज्ञानसागर (संत वाणी संग्रह)

३७- बुल्लाशाह की सीहर्फी - वेंकटेश्वर करीम प्रेस

३८- भजन संग्रह - चौथा भाग - गीता प्रेस गोरखपुर

३९- पंजाब में उर्दू - शीरानी

४०- पंचामृत - स्वामी मंगलदास

४१- हिंदी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय-डा०पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल

४२- काव्य दर्पण - रामदहिन मिश्र

४३- चंडी चरित्र, दशम ग्रंथ-गुरु गोविंदसिंह

४४- सूर की काव्यमाला-मनमोहन गौतम

४५- ध्वनि सम्प्रदाय और उनके सिद्धांत -भोलाशंकर व्यास

४६- संस्कृति के चार अध्याय -/दिनकर

४७- कबीर दर्शन - डा० रामजीलाल सहायक

४८- संत-काव्य का विश्लेषण- डा० मनमोहन सहगल-१९५६

पत्रिकाएं -

१- कल्याण - संत अंक , गोरखपुर

२- हस्तलिखित प्रति भगत कान्हजी

३- कल्याण साधना

४- पंजाबी दुनिया(गुरनानक अंक भाषा विभाग,पटियाला)

५- गुरु अर्जुनदेवजी की कविता (प्रो०दीवानसिंह)

अंग्रेजी -

१- फिलासफी आफ सिक्खिज्म - डा० शेर सिंह

२- सल्तनत आफ इंडिया - डा० श्रीवास्तव-१९५०

३- दि सिख गुरूस - डा० पी०एस०अहलूवालिया-१९६३

४- दि सिक्ख रिलीजन भाग-५ एम०ए०मैकालिफ-१९०९

५- दि पोइट्री आफ दशमग्रंथ - डा० धर्मपाल आष्टा-१९५९

६- हिस्ट्री आफ औरंगजेब, डा० सर यदुनाथ सरकार

७- हिस्ट्री आफ लिट्रेचर,डा० मोहनसिंह दीवाना-१९३२